लेव तोलस्तोय

युद्ध और शान्ति

लेव तोलस्तोय

युद्ध और शान्ति

उपन्यास
चार खण्डों में

खण्ड ४

रादुगा प्रकाशन · मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लि.
चमेलीवाला मार्केट, एम. आई. रोड, जयपुर-302001

अनुवादक : डा० मदनलाल 'मधु'
चित्रकार : देमेन्ती श्मारिनोव

ЛЕВ ТОЛСТОЙ

ВОЙНА И МИР

Том IV

На языке хинди

LEO TOLSTOY

WAR AND PEACE

Vol. IV

In Hindi

सोवियत संघ में प्रकाशित

अनुक्रम

भाग १

श्री विक्रम पन्नू जी सैक्टर-14 रोहतक द्वारा इस किताब की मुल प्रति उपलब्ध करवाई गई ताकि सत्यनारायण हुड्डा इसकी पीडीएफ बना कर मुफ्त में सर्वसुलभ करवा सकें

१

पीटर्सबर्ग के उच्चतम क्षेत्रों में रुम्यान्त्सेव, फ़ांसीसियों, मरीया फ़्योदोरोव्ना, युवराज और अन्य लोगों के दलों के बीच किसी भी अन्य समय की तुलना में इस वक़्त कहीं उग्र और जटिल संघर्ष चल रहा था। सदा की भांति जी-हुज़ूरी करनेवाले दरबारी टुकड़ख़ोरों का कोलाहल इसपर हावी रहता था। किन्तु पीटर्सबर्ग का सुख-चैन, ऐश-आराम, मनोलीला और चिन्तन-मनन का जीवन पहले की भांति ही चल रहा था। जीवन के इसी रंग-ढंग के कारण ख़तरे और मुश्किल की उस हालत को समझने के लिये, जिसमें रूस उस समय था, बहुत यत्न करना पड़ता था। वही शानदार शाही दरबार लगते थे और बॉल-नृत्य होते थे, वही फ़्रांसीसी थियेटर था, राजदरबार में वही पहले जैसी गतिविधियां थीं, सरकारी दफ़्तरों में वही दिलचस्पियां और साज़िशें थीं। केवल सबसे ऊंचे क्षेत्रों में ही वास्तविक स्थिति की कठिनाई की ओर ध्यान देने का प्रयास किया जाता था। दबी-दबी ज़बान से यह चर्चा भी की जाती थी कि इतनी कठिन परिस्थितियों के बावजूद दोनों सम्राज्ञियों ने कैसे एक-दूसरी के बिल्कुल उलट व्यवहार किया था। मां-सम्राज्ञी मरीया फ़्योदोरोव्ना ने उन ख़ैराती और शिक्षा-संस्थाओं की चिन्ता करते हुए, जिनकी वह सरपरस्ती करती थीं, यह आदेश दिया था कि इन सभी संस्थाओं को कज़ान शहर ले जाया जाये और इनकी सभी चीज़ें, सारा सामान पैक कर दिया गया था। सम्राज्ञी येलिज़ावेता अलेक्सेयेव्ना से यह पूछा जाने पर कि वह क्या आदेश देना चाहेंगी, उन्होंने रूसी देशभक्ति की भावना के अनुरूप यह उत्तर दिया कि राजकीय संस्थाओं के बारे में वह कोई आदेश नहीं दे सकतीं, क्योंकि वह सम्राट का अधिकार-क्षेत्र था, किन्तु जहां तक स्वयं उनका सम्बन्ध है तो वह सबसे बाद में ही पीटर्सबर्ग से जायेंगी।

२६ अगस्त को यानी बोरोदिनो की लड़ाई के दिन ही आन्ना

पाव्लोव्ना के यहां एक दावत थी। धर्माध्यक्ष द्वारा सन्त सेर्गेई की प्रतिमा के साथ सम्राट के नाम भेजे गये पत्र के पाठ को ही इस दावत का मुख्य आकर्षण बनना था। इस पत्र को देशभक्ति और धार्मिक वाक्-पटुता का श्रेष्ठ उदाहरण माना गया था। इस पत्र को पाठ-कला के लिये विख्यात प्रिंस वसीली को ही पढ़ना था। (सम्राज्ञी के यहां भी वह ऐसा पाठ कर चुका था।) प्रिंस वसीली की पाठ-कला इसी चीज़ में निहित थी कि वह बहुत ऊंचे-ऊंचे और मानो गाते हुए पढ़ता था, शब्दों के अर्थ के महत्त्व की ओर ध्यान दिये बिना कभी ज़ोर से विलाप करता था और कभी धीरे से फुसफुसाता था तथा इस तरह केवल संयोगवश ही किसी शब्द पर विलाप करने और किसी पर फुसफुसाने लगता था। आन्ना पाव्लोव्ना के यहां आयोजित होनेवाली सभी दावतों की भांति पत्र-पाठ की यह शाम भी राजनीतिक महत्त्व लिये हुए थी। इस शाम को कुछ महत्त्वपूर्ण लोग यहां आनेवाले थे जिन्हें फ़्रांसीसी थियेटर में जाने के लिये लज्जित करना और उनमें देशभक्ति की भावना जगाना ज़रूरी था। काफ़ी लोग आ चुके थे, किन्तु आन्ना पाव्लोव्ना को अपने ड्राइंगरूम में अभी तक वे सभी लोग दिखाई नहीं दे रहे थे जिनकी उपस्थिति को वह आवश्यक मानती थी और इसलिये पत्र-पाठ आरंभ न करवाकर इधर-उधर की बातों में ही वक़्त बिता रही थी।

इस दिन पीटर्सबर्ग की सबसे बड़ी ख़बर काउंटेस बेज़ूख़ोवा की बीमारी थी। काउंटेस कुछ दिन पहले अचानक ही बीमार हो गयी थी, वह कई ऐसी महफ़िलों में नहीं आई थी जिनकी शोभा बन सकती थी। सुनने में आया था कि किसी से मिलती-जुलती नहीं थी और पीट-र्सबर्ग के जाने-माने डाक्टरों के बजाय, जो आम तौर पर उसका इलाज करते थे, उसने अपने को किसी इतालवी डाक्टर के हाथों में सौंप दिया था जो किसी नये और असाधारण ढंग से उसका इलाज करता था।

सभी लोग इस बात को बहुत अच्छी तरह से जानते थे कि अतीव रूपवती काउंटेस की बीमारी का कारण एकसाथ दो पतियों की पत्नी बनने की इच्छा से पैदा होनेवाली परेशानी है और इतालवी डाक्टर के इलाज का उद्देश्य इस परेशानी को दूर करना था। किन्तु आन्ना पाव्लोव्ना के यहां न केवल कोई ऐसा सोचने का साहस ही नहीं कर सकता था, बल्कि इस बारे में मानो किसी को कुछ भी मालूम नहीं था।

"सुनने में आया है कि बेचारी काउंटेस बहुत ही ज़्यादा बीमार है। डाक्टर का कहना है कि उसे 'वक्ष-शोथ'* है।"

"वक्ष-शोथ? ओह, यह तो भयानक रोग है!"

"कहते हैं कि इसी रोग के कारण प्रतिस्पर्धियों ने आपस में सुलह कर ली है..."

"वक्ष-शोथ" शब्दों को बड़े चटख़ारे ले लेकर दोहराया जाता था।

"लोगों का कहना है कि बूढ़े काउंट के मन पर बहुत भारी गुज़र रही है। डाक्टर के यह बताने पर कि बीमारी ख़तरनाक है, वह फूट-फूटकर रो पड़ा।"

"ओह, यह तो बहुत बड़ी क्षति होगी। कितनी सुन्दर महिला है वह!"

"आप लोग बेचारी काउंटेस की चर्चा कर रहे हैं," आन्ना पाव्लोव्ना ने इन लोगों के पास आकर कहा। "मैंने उसका हालचाल जानने के लिये आदमी भेजा था। पता चला कि अब उसकी तबीयत पहले से कुछ बेहतर है। ओह, निस्सन्देह, वह तो दुनिया की एक सबसे अनुपम नारी है," आन्ना पाव्लोव्ना अपने उल्लास पर मुस्कराते हुए कहती गयी। "यह ठीक है कि हम दोनों विभिन्न दलों से सम्बन्ध रखती हैं, किन्तु इसके बावजूद मैं उस चीज़ के लिये तो उसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकती जिसके वह योग्य है। वह बहुत ही दुखी है," आन्ना पाव्लोव्ना ने इतना और जोड़ दिया।

यह मानते हुए कि उक्त शब्द कहकर आन्ना पाव्लोव्ना ने बीमार काउंटेस की बीमारी पर पड़े हुए परदे को कुछ ऊपर उठा दिया है, एक असावधान नौजवान ने इस बात पर हैरानी ज़ाहिर कर दी कि न जाने क्यों प्रसिद्ध डाक्टरों के बजाय एक नीम हकीम उसका इलाज कर रहा है जो उसे कोई ख़तरनाक दवाई दे सकता है।

"मेरी तुलना में आपकी सूचना अधिक सही हो सकती है," आन्ना पाव्लोव्ना इस अनुभवहीन युवक पर अचानक व्यंग्य-बाण चलाते हुए कह उठी, "किंतु मैं बहुत अच्छे स्रोतों से जानती हूं कि यह डाक्टर बहुत विद्वान और योग्य व्यक्ति है। वह स्पेन की महारानी का निजी डाक्टर है।" इस तरह इस नौजवान की तबीयत साफ़ करके आन्ना

---

* तपेदिक से अभिप्राय है। – अनु०

पाव्लोव्ना ने दूसरी मण्डली में बैठे हुए बिलीबिन की तरफ़ ध्यान दिया जो आस्ट्रियावालों की चर्चा कर रहा था। उसने माथे पर बल डाल रखे थे और सम्भवतः अपना कोई फड़कता हुआ वाक्य कहकर उन्हें सीधा करनेवाला था।

"मुझे तो यह बहुत ही बढ़िया लग रहा है!" वह उस कूट-नीतिक नोट के बारे में कह रहा था जो कुछ आस्ट्रियायी झण्डों के साथ वियाना भेजा गया था। इन झण्डों पर विटगेन्श्टेन ने, जिसे पीटर्सबर्ग में पेत्रोपोल* का हीरो कहा जाता था, क़ब्ज़ा किया था।

"क्या, क्या कह रहे हैं आप?" आन्ना पाव्लोव्ना ने उस फड़कते वाक्य को सुनने के लिये, जिसे वह पहले से ही जानती थी, पूर्ण निस्त-ब्धता का वातावरण बनाते हुए कहा।

और बिलीबिन ने अपने द्वारा तैयार किये गये कूटनीतिक नोट के निम्न शब्द ज्यों के त्यों दोहरा दिये:

"सम्राट इन आस्ट्रियायी झण्डों को," बिलीबिन ने कहा, "इन मैत्रीपूर्ण और पथ-भटके झण्डों को वापस भेजते हैं जो उन्हें ग़लत रास्ते पर मिले हैं," अपने माथे पर पड़े बलों को सीधा करते हुए उसने अपना वाक्य समाप्त किया।

"बहुत ख़ूब, बहुत ख़ूब," प्रिंस वसीली ने कहा।

"शायद यह वारसा का रास्ता था," प्रिंस इप्पोलीत अचानक ऊंची आवाज़ में कह उठा। यह न समझ पाते हुए कि इन शब्दों से उसका क्या अभिप्राय था, सभी ने उसकी तरफ़ देखा। प्रिंस इप्पोलीत भी ख़ुशी भरी हैरानी से अपने इर्द-गिर्द देखने लगा। दूसरों की भांति वह ख़ुद भी यह नहीं समझ रहा था कि उसके द्वारा कहे गये शब्दों का क्या मतलब है। अपने कूटनीतिक जीवन के दौरान वह अनेक बार यह देख चुका था कि इस तरह अचानक कह दिये जानेवाले शब्द बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण माने जाते थे और वह मौक़े-बेमौक़े इसी तरह के वे शब्द कह देता था जो उसके दिमाग़ में सबसे पहले आ जाते थे। "शायद कोई बढ़िया बात बन जाये," वह सोचता, "और अगर ऐसा नहीं होगा तो किसी न किसी तरह मामला सम्भल ही जायेगा।" वास्तव में ऐसी ही हुआ। ड्राइंगरूम में जिस समय अटपटी-सी ख़ामोशी छायी

---

* समारोही भाषणों तथा कविताओं में पीटर्सबर्ग का नाम। — सं०

थी, उसी समय वह व्यक्ति भीतर आया जिसमें पर्याप्त देशभक्ति का अभाव था और जिसका आन्ना पाव्लोव्ना को इन्तज़ार था। आन्ना पाव्लोव्ना ने मुस्कराते और इप्पोलीत को उंगली दिखाकर धमकाते हुए प्रिंस वसीली को मेज़ के क़रीब बुलाया, दो मोमबत्तियां और पत्र को मेज़ पर लाकर रख दिया तथा उससे पत्र का पाठ शुरू करने का अनुरोध किया। सभी ख़ामोश हो गये।

"परम कृपालु शासक सम्राट!" प्रिंस वसीली ने ऊंची, कठोर आवाज़ में पत्र पढ़ना आरम्भ किया और सभी ओर अपने श्रोताओं पर ऐसे नज़र डाली मानो पूछ रहा हो कि किसी को कोई आपत्ति तो नहीं। किन्तु किसी ने कुछ भी नहीं कहा। "प्राचीन राजधानी मास्को, नया जेरुसलम, **अपने** मसीहा का स्वागत करता है," उसने अचानक **अपने** शब्द पर ज़ोर दिया, "मानो अपने उत्साही बेटों को बांहों में भरती हुई मां घिरते आ रहे कुहासे में से तुम्हारे प्रभुत्व की छवि की झलक पाते हुए उल्लासपूर्वक अनुपम कीर्ति-गान कर रही है–'धन्य, धन्य है आनेवाला!'" प्रिंस वसीली ने रुआंसे स्वर में अन्तिम शब्दों का उच्चारण किया।

बिलीबिन बहुत ध्यान से अपने नाख़ूनों को देख रहा था और अधिकतर श्रोता मानो हैरान होते हुए यह पूछ रहे थे कि हमने क्या अपराध किया है? आन्ना पाव्लोव्ना इस पत्र के शब्द वैसे ही बुदबुदा रही थी जैसे कोई बुढ़िया प्रार्थना के पहले से ही याद किये हुए शब्द दोहरा रही हो–"बेशक दुस्साहसी और निर्लज्ज गोलिआथ..." वह फुसफुसायी।

प्रिंस वसीली ने पढ़ना जारी रखा:

"बेशक फ़्रांस की सीमाओं से आनेवाला काफ़िर रूसी धरती पर भयानक मृत्यु-आतंक फैलाये, फिर भी रूसी डेविड की गुलेल उस रक्त-पिपासु के घमण्डी सिर को कुचल डालेगी। हमारी मातृभूमि के कल्याण की यह प्राचीन, परम हितकारी सन्त सेर्गेई की प्रतिमा आप महाप्रतापी सम्राट के पास आ रही है। मुझे खेद है कि मेरी क्षीण होती हुई शक्ति आपके अतीव कृपालु मुख-दर्शन में बाधा डाल रही है। मैं पूरे मन से प्रार्थना करता हूं कि सर्वशक्तिमान प्रभु न्याय का पक्ष-पोषण करें और अपनी अनुकम्पा से आप महाराजाधिराज की इच्छा पूरी करें।"

"वाह, कितना ज़ोर है! क्या ग़ज़ब की शैली है!" पत्र पढ़ने और लिखने के लिये प्रशंसा के शब्द सुनायी दिये। इस पत्र-पाठ से उत्प्रेरित आन्ना पाव्लोव्ना के अतिथि बहुत देर तक मातृभूमि की स्थिति की चर्चा करते रहे और उन्होंने उस लड़ाई के बारे में तरह-तरह के अनुमान लगाये जो कुछ ही दिनों में लड़ी जानेवाली थी।

"आप लोग देखेंगे," आन्ना पाव्लोव्ना ने कहा, "कि कल, सम्राट के जन्मदिन पर हमें शुभ समाचार मिलेगा। मुझे ऐसा पूर्वबोध हो रहा है।"

२

आन्ना पाव्लोव्ना का पूर्वबोध वास्तव में ही ठीक सिद्ध हुआ। अगले दिन, सम्राट के जन्मदिन के सम्बन्ध में महल के गिरजाघर में हो रही प्रार्थना के समय प्रिंस वोल्कोन्स्की को सेनापति प्रिंस कुतूज़ोव द्वारा भेजा गया एक लिफ़ाफ़ा लेने के लिये गिरजाघर से बाहर बुलाया गया। इस लिफ़ाफ़े में लड़ाई के दिन तातारिनोवा गांव से कुतूज़ोव द्वारा भेजी गयी रिपोर्ट थी। कुतूज़ोव ने लिखा था कि रूसी एक क़दम भी पीछे नहीं हटे, कि हमारी तुलना में फ़्रांसीसियों की अधिक क्षति हुई है, कि वह युद्धक्षेत्र से उतावली में यह रिपोर्ट भेज रहे हैं और अभी तक पूरी सूचनायें प्राप्त नहीं कर पाये हैं। इसका अर्थ तो यही था कि हमारी जीत हुई है। इसलिये उसी समय, गिरजाघर से बाहर आये बिना ही सहायता और विजय के लिये भगवान को धन्यवाद दिया गया।

आन्ना पाव्लोव्ना का पूर्वबोध सही सिद्ध हुआ और नगर में सारी सुबह हर्ष-समारोह की मनःस्थिति बनी रही। सभी ऐसा मानते थे कि हमारी पूरी जीत हुई है और कुछ लोग तो ख़ुद नेपोलियन के बन्दी बनाये जाने और उसकी जगह फ़्रांस के किसी नये राज्याध्यक्ष के चुने जाने की भी चर्चा करने लगे थे।

घटना-स्थल से बहुत दूर और दरबारी जीवन के वातावरण में घटनाओं का अपनी पूरी शक्ति और सम्पूर्ण रूप में प्रतिबिम्बित हो पाना बहुत कठिन होता है। ऐसी स्थिति में घटनाएं अनिवार्य रूप से

किसी व्यक्तिगत परिस्थिति के गिर्द संकेन्द्रित हो जाती हैं। इस प्रकार दरबारियों को जहां इस बात की खुशी थी कि हमारी जीत हुई है, वहां इस चीज़ की भी प्रसन्नता थी कि इसकी खबर सम्राट के जन्म-दिन पर आयी है। यह तो मानो बहुत सुखद संयोग था। कुतूज़ोव की रिपोर्ट में रूसियों के कुछ जानी नुकसान का भी उल्लेख था और युद्धक्षेत्र में खेत रहे लोगों की सूची में तुच्कोव, बग्रातिओन तथा कुताइसोव भी शामिल थे। घटना के दुखद पक्ष की दृष्टि से भी पीटर्सबर्ग की दुनिया ने एक ही व्यक्ति यानी कुताइसोव के देहान्त पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। सभी उसे जानते थे, वह सम्राट का स्नेह-पात्र, जवान और दिलचस्प आदमी था। इस दिन आपस में मिलने पर सभी लोग यही कहते :

"कैसा अद्भुत संयोग है। प्रार्थना के समय ही ऐसा शुभ समाचार आया। किन्तु कुताइसोव की मृत्यु कितनी बड़ी क्षति है! ओह, कितने दुख की बात है!"

"कुतूज़ोव के बारे में मैंने आपसे क्या कहा था?" प्रिंस वसीली अब पैग़म्बर जैसे गर्व से डींग मारता। "मैं तो हमेशा यही कहता रहा हूं कि सिर्फ़ कुतूज़ोव ही नेपोलियन को जीत सकता है।"

किन्तु अगले दिन सेना से कोई समाचार नहीं आया और लोगों के स्वर में चिन्ता की झलक मिलने लगी। सम्राट असमंजस की जिस स्थिति के कारण परेशान थे, दरबारी लोग सम्राट की इसी परेशानी से परेशान थे।

"ज़रा ख्याल तो करें कि सम्राट की स्थिति कैसी है!" दरबारी कहते थे और दो दिन पहले की तरह कुतूज़ोव का गुणगान करने के बजाय अब इसलिये उनकी भर्त्सना करते थे कि वह सम्राट को ऐसे चिन्तित होने को विवश कर रहे थे। प्रिंस वसीली अपने प्रशंसा-पात्र कुतूज़ोव की अब तारीफ़ नहीं करता था और जब सेनापति की चर्चा चलती तो मौन साधे रहता। इसके अलावा इस दिन की शाम होते न होते हालात ने मानो पीटर्सबर्ग के वासियों को और भी ज़्यादा चिन्तित तथा परेशान करने के लिये एक अन्य भयानक समाचार की वृद्धि कर दी – काउंटेस एलेन उस खतरनाक बीमारी के कारण, जिसका उच्चारण करना बड़ा अच्छा लगता था, अचानक ही इस दुनिया से कूच कर गयी। बड़ी महफ़िलों में औपचारिक रूप से सभी यह कहते

थे कि काउंटेस बेज़ूख़ोवा भयानक बीमारी के ज़बर्दस्त दौरे के कारण चल बसी, किन्तु अन्तरंग मित्र-मण्डलियों में ऐसे ब्योरे बताये जाते थे कि स्पेन की महारानी के निजी चिकित्सक ने कैसे ख़ास असर पैदा करने के लिये एक दवाई की छोटी-छोटी ख़ुराकें लेने को कहा था, किन्तु एलेन ने, जो इस कारण बहुत संतप्त थी कि बूढ़ा काउंट उसे शक की नज़र से देखता था और उसके पति (उस दुष्ट और बदचलन प्येर) ने, जिसे उसने तलाक़ देने के लिये पत्र लिखा था, कोई जवाब नहीं दिया था, इस दवाई की बहुत बड़ी ख़ुराक पी ली थी और इसके पहले कि डाक्टर उसकी कोई मदद कर सकता, वह तड़प-तड़पकर मर गयी। यह भी कहा जाता कि प्रिंस वसीली और बूढ़े काउंट ने इतालवी डाक्टर से निपटना चाहा, किन्तु उसने क़िस्मत की मारी, दिवंगता के हाथ के लिखे हुए कुछ ऐसे रुक़्क़े दिखाये कि उन्होंने मामले को जहां का तहां ही दबा दिया।

लोगों में आम तौर पर तीन दुखद बातों – सम्राट की असमंजस की स्थिति, कुताइसोव की मृत्यु और एलेन के देहान्त – की ही चर्चा होती थी।

कुतूज़ोव द्वारा भेजी गयी रिपोर्ट के तीसरे दिन मास्को का एक ज़मींदार पीटर्सबर्ग आया और सारे शहर में यह ख़बर फैल गयी कि मास्को फ़्रांसीसियों के हवाले कर दिया गया है। बहुत ही भयानक समाचार था यह! सम्राट की कैसी हालत होगी! कुतूज़ोव को ग़द्दार माना जाता था और प्रिंस वसीली बेटी की मृत्यु के सिलसिले में अफ़सोस करने के लिये आनेवाले लोगों से यह कहता (गहरे शोक की स्थिति में उसका वह भूल जाना क्षम्य था जो वह पहले कहता रहा था) कि अंधे और बदचलन बूढ़े से और कुछ आशा ही नहीं की जा सकती थी।

"मुझे तो इसी बात से हैरानी होती है कि रूस का भाग्य ऐसे आदमी के हाथों में सौंप कैसे दिया गया?"

जब तक यह अधिकृत समाचार नहीं था, इसके बारे में कुछ सन्देह हो सकता था। किन्तु अगले दिन काउंट रस्तोपचिन का यह सन्देश प्राप्त हुआ :

"प्रिंस कुतूज़ोव का एडजुटेंट मेरे पास एक पत्र लेकर आया है जिसमें यह मांग की गयी है कि मैं र्याज़ान मार्ग पर सेना को रास्ता

दिखाने के लिये पुलिस-अफ़सर भेज दूं। उन्होंने लिखा है कि वह बड़े खेद के साथ मास्को छोड़ रहे हैं। महाराज! कुतूज़ोव का व्यवहार राजधानी और आपके साम्राज्य का भाग्य-निर्णय कर रहा है। जिस शहर में रूस की गरिमा संकेन्द्रित है और जहां आपके पूर्वजों के अस्थि-पुष्प संचित हैं, उसके त्याग दिये जाने के समाचार से सारा रूस कांप उठेगा। मैं सेना का अनुगमन कर रहा हूं। मैंने यहां से सभी कुछ भिजवा दिया है, मेरे लिये तो अपनी मातृभूमि के भाग्य पर आंसू बहाने के सिवा अब और कुछ शेष नहीं रहा।"

यह सूचना मिलने पर सम्राट ने प्रिंस वोल्कोन्स्की को कुतूज़ोव के नाम यह सरकारी फ़रमान देकर भेजा:

"प्रिंस मिख़ाईल इलारिओनोविच! २९ अगस्त से आपकी ओर से कोई सूचना नहीं मिली है। इसी बीच, यारोस्लाव्ल के रास्ते मुझे मास्को के गवर्नर-जनरल के १ सितम्बर के पत्र से यह बुरी ख़बर प्राप्त हुई है कि आपने सेना को अपने साथ लेकर मास्को छोड़ने का फ़ैसला किया है। आप कल्पना कर सकते हैं कि इस ख़बर का मुझपर क्या असर हुआ और आपकी ख़ामोशी से मेरी हैरानी और भी बढ़ रही है। इस पत्र के साथ मैं एडजुटेंट-जनरल प्रिंस वोल्कोन्स्की को यह जानने के लिये आपके पास भेज रहा हूं कि सेना की स्थिति कैसी है और किन कारणों ने आपको ऐसा दुखद निर्णय करने को विवश किया है।"

३

मास्को को दुश्मन के हवाले करने के नौ दिन बाद कुतूज़ोव का सन्देशवाहक इसका अधिकृत समाचार लेकर पीटर्सबर्ग पहुंचा। यह सन्देशवाहक मीशो नाम का फ़्रांसीसी था जो रूसी भाषा का एक शब्द तक नहीं जानता था, किन्तु जैसाकि वह ख़ुद अपने बारे में कहता था, विदेशी होते हुए भी जी-जान से रूसी था।

सम्राट ने कामेन्नी ओस्त्रोव के महल के अपने कक्ष में उससे फ़ौरन मुलाक़ात की। मीशो, जिसने युद्ध के पहले कभी मास्को नहीं

देखा था और जो रूसी भाषा का एक भी शब्द नहीं जानता था, मास्को की आग का समाचार लेकर, जिसकी लपटें उसके रास्ते को रोशन करती रही थीं, परम कृपालु सम्राट के सम्मुख आने पर (जैसा-कि उसने लिखा) भाव-विह्वल हो उठा।

यद्यपि महानुभाव मीशो के दुख का स्रोत रूसियों के शोक-स्रोत से अवश्य भिन्न होना चाहिये था, तथापि सम्राट के कमरे में आने पर उसने ऐसी ग़मग़ीन सूरत बनायी कि सम्राट ने उसी क्षण उससे फ़्रांसीसी में यह पूछा:

"आप कैसा समाचार लेकर आये हैं? बुरा समाचार, कर्नल?"

"हुज़ूर, बहुत ही बुरा समाचार," मीशो ने गहरी सांस छोड़ते और नज़रें झुकाते हुए उत्तर दिया, "मास्को दुश्मन के हवाले कर दिया गया है।"

"क्या लड़ाई के बिना ही मेरी प्राचीन राजधानी को छोड़ दिया गया?" सम्राट अचानक तमतमाते हुए जल्दी-जल्दी कह उठे।

मीशो ने आदरपूर्वक वह सब कह दिया जो कुतूज़ोव ने उसे कहने का आदेश दिया था यानी यह कि मास्को के निकट लड़ाई लड़ना सम्भव नहीं था और एक ही रास्ता रह गया था कि या तो सेना और मास्को – दोनों को खो दिया जाये या अकेले मास्को को। इसलिये फ़ील्ड-मार्शल ने मास्को को खोने का ही निर्णय किया।

मीशो की ओर देखे बिना सम्राट चुपचाप उसकी बात सुनते रहे।

"क्या शत्रु नगर में दाख़िल हो गया है?" उन्होंने पूछा।

"हां, हुज़ूर, और इस वक़्त तो मास्को राख का ढेर बनकर रह गया है। मैं उसे लपटों में छोड़कर आया था," मीशो ने ज़ोर देकर कहा, किन्तु सम्राट पर दृष्टि डालते ही वह इस ख़्याल से सहमकर रह गया कि उसने ऐसे शब्द मुंह से क्यों निकाले। सम्राट कठिनाई से और जल्दी-जल्दी सांस लेने लगे, उनका निचला होंठ कांप उठा और उनकी सुन्दर नीली आंखें आन की आन में आंसुओं से तर हो गयीं।

किन्तु यह स्थिति केवल क्षण भर को ही रही। सम्राट ने अचानक नाक-भौंह सिकोड़ी मानो इस दुर्बलता के लिये अपनी भर्त्सना की और सिर ऊपर उठाकर दृढ़ आवाज़ में मीशो को सम्बोधित किया:

"इस समय जो कुछ हो रहा है, कर्नल," उन्होंने कहा, "उससे

मैं इस नतीजे पर पहुंचता हूं कि विधाता हमसे बड़ी क़ुर्बानियां चाहते हैं। मैं उनकी इच्छा पूरी करने को तैयार हूं। किन्तु मुझे यह बताइये, मीशो, कि लड़ाई के बिना मेरी प्राचीन राजधानी को दुश्मन के हवाले करनेवाली मेरी सेना किस हालत में थी? आपको ऐसा तो नहीं लगा कि उसकी हिम्मत टूट गयी है?.."

अपने परम कृपालु सम्राट को शान्त हुआ देखकर मीशो भी शान्त हो गया, किन्तु सम्राट के सीधे और महत्त्वपूर्ण प्रश्न का, जो सीधे-स्पष्ट उत्तर की ही मांग करता था, वह इतनी जल्दी जवाब नहीं तैयार कर पाया।

"हुज़ूर, आप मुझे एक फ़ौजी की तरह साफ़-साफ़ बात कहने की इजाज़त देते हैं?" मीशो ने जवाब तैयार करने को कुछ समय पाने के लिये पूछा।

"कर्नल, मैं हमेशा इसी चीज़ की मांग करता हूं," सम्राट ने उत्तर दिया। "मुझसे कुछ भी नहीं छिपाइये, मैं तो पूरी सचाई जानना चाहता हूं।"

"हुज़ूर!" मीशो ने अपने होंठों पर मुश्किल से दिखाई देनेवाली बहुत हल्की-सी मुस्कान लाते हुए कहना शुरू किया। अब तक उसने एक हल्के-फुल्के और आदरपूर्ण शब्द-खिलवाड़ के रूप में अपना जवाब तैयार कर लिया था। "हुज़ूर, किसी अपवाद के बिना बड़े से बड़े अफ़सर से लेकर मामूली फ़ौजी तक मैं पूरी सेना को बहुत ही हताशा और भय की स्थिति में छोड़कर आया हूं..."

"यह आप क्या कह रहे हैं?" सम्राट ने त्योरी चढ़ाते हुए उसे टोक दिया। "दुर्भाग्य का सामना होने पर मेरे रूसी लोग हिम्मत हार जायें... ऐसा हरगिज़ नहीं हो सकता!.."

अपने शब्द-खिलवाड़ का उपयोग करने के लिये मीशो को इसी चीज़ की प्रतीक्षा थी।

"हुज़ूर," वह आदरपूर्ण चंचलता के अन्दाज़ में कहता गया, "उन्हें केवल इस बात का भय है कि आप अपनी उदारता के कारण कहीं शान्ति-सन्धि न कर लें। वे फिर से दुश्मन के साथ लोहा लेने को बेक़रार हैं," रूसी जनता के इस प्रतिनिधि ने अपनी बात जारी रखी, "और अपने प्राणों की बलि देकर आप हुज़ूर को यह दिखा देना चाहते हैं कि आपके प्रति वे कितने निष्ठावान हैं..."

"ओह!" सम्राट ने आंखों में शान्ति और स्नेह की चमक लाते और मीशो का कंधा थपथपाते हुए कहा। "आपने मेरे दिल को बड़ी राहत दी है।"

सम्राट सिर झुकाकर कुछ समय तक ख़ामोश रहे।

"तो आप सेना में लौट जाइये," उन्होंने पूरी तरह से तनकर सीधा होते और स्नेहपूर्ण तथा भव्य ढंग से मीशो को सम्बोधित करते हुए कहा, "और जहां-जहां से भी आप गुज़रें, वहीं मेरे सूरमाओं, मेरे सभी प्रजाजन से यह कह दें कि जब मेरे पास एक भी सैनिक बाक़ी नहीं रह जायेगा तो मैं ख़ुद अपने प्यारे कुलीनों और भले किसानों का नेतृत्व करूंगा तथा अपने राज्य के अन्तिम साधनों का उपयोग करूंगा। हमारे ये साधन उनसे कहीं ज़्यादा हैं जितने कि हमारे शत्रु समझते हैं," सम्राट अधिकाधिक जोश में आकर कहते जा रहे थे। "किन्तु यदि विधाता ने यही लिख दिया है," उन्होंने अपनी सुन्दर, विनम्र और भावना से चमकती आंखों को आकाश की ओर उठाते हुए अपना कथन जारी रखा, "कि मेरे पूर्वजों के सिंहासन पर हमारे वंश का शासन समाप्त हो जाये तो मैं उन सभी साधनों का उपयोग करने के बाद, जो मेरे हाथों में हैं, अपनी दाढ़ी यहां तक बढ़ा लूंगा (सम्राट ने आधे वक्ष से नीचे तक हाथ रखकर दाढ़ी की लम्बाई का संकेत किया) और किसी ऐसी शान्ति-सन्धि पर हस्ता-क्षर करने के बजाय जो मातृभूमि तथा मेरी प्यारी जनता के लिये, जिसके बलिदानों का मैं ऊंचा मूल्यांकन करना जानता हूं, अपमानजनक हो, मामूली से मामूली किसानों के यहां जाकर आलू खाते हुए अपना जीवन बिताना कहीं अधिक बेहतर समझूंगा!.." भाव-विह्वल स्वर में ये शब्द कहकर सम्राट ने अचानक अपना मुंह दूसरी ओर कर लिया मानो आंखों में छलक आनेवाले आंसुओं को मीशो से छिपाना चाहते हों और अपने कमरे के सिरे की ओर चले गये। कुछ क्षण तक वहां खड़े रहने के बाद वह बड़े-बड़े डग भरते हुए मीशो के पास लौटे और उन्होंने ज़ोर से कोहनी से नीचे मीशो की बांह दबायी। सम्राट का सुन्दर और विनम्र-विनीत चेहरा तमतमाया हुआ था और उनकी आंखों में संकल्प एवं क्रोध की चमक थी।

"कर्नल मीशो, जो कुछ मैं आपसे यहां कह रहा हूं, उसे कभी नहीं भूलियेगा। हो सकता है कि किसी वक़्त हम बड़े सन्तोष से इसे

स्मरण करेंगे ... नेपोलियन या मैं," सम्राट ने अपना सीना छूते हुए कहा, "हम दोनों अब साथ-साथ शासन नहीं कर सकते। मैं उसे पहचान गया हूं, अब वह मेरी आंखों में फिर कभी धूल नहीं झोंक पायेगा ..." और सम्राट त्योरी चढ़ाकर ख़ामोश हो गये। ये शब्द सुनकर तथा सम्राट के चेहरे पर दृढ़ संकल्प का भाव देखकर मीशो ने, जो विदेशी होते हुए भी जी-जान से रूसी था, इस गम्भीर क्षण में उन सभी बातों से जो उसने सुनी थीं, अपने को उल्लसित अनुभव किया (जैसाकि वह बाद में कहा करता था) और उसने अपनी तथा रूसी जनता की भावना को, जिसका वह अपने को प्रतिनिधि मानता था, निम्न शब्दों में अभिव्यक्ति दी:

"हुज़ूर! इस समय आप अपनी जनता की कीर्ति और यूरोप की मुक्ति के पत्र पर हस्ताक्षर कर रहे हैं!"

सम्राट ने सिर झुका दिया और ऐसे यह संकेत किया कि मीशो अब जा सकता है।

४

जब आधा रूस जीता जा चुका था, जब मास्कोवासी दूर-दराज़ के प्रान्तों में भाग रहे थे और मातृभूमि की रक्षा के लिये एक के बाद एक जन-सेना बनायी जा रही थी तो हमें, उस समय न रहनेवाले लोगों को बरबस ऐसे लगता है कि छोटे-बड़े सभी रूसी मातृभूमि की रक्षा के लिये केवल बलिदान करने में ही व्यस्त थे या फिर उसकी तबाही पर आंसू बहाते थे। किसी अपवाद के बिना उस समय के सभी क़िस्से-कहानियां केवल आत्म-बलिदान, मातृभूमि के प्रति प्यार, घोर निराशा, दुख-दर्दों और रूसियों के बहादुरी के कारनामों का ही उल्लेख करते हैं। वास्तव में ऐसा कुछ नहीं हुआ था। हमें इसीलिये ऐसा लगता है कि हम उस वक़्त के एक सामान्य ऐतिहासिक हित की ओर ही ध्यान देते हैं और उन सभी व्यक्तिगत, उन मानवीय हितों की अवहेलना कर देते हैं जो सभी लोगों में विद्यमान थे। किन्तु सच तो यह है कि उस समय के वे व्यक्तिगत हित सार्वजनिक हितों

से इतने अधिक महत्त्वपूर्ण थे कि उनके कारण सार्वजनिक हितों की कभी अनुभूति तक नहीं होती, उनकी ओर ध्यान तक नहीं जाता। उस समय के अधिकतर लोगों ने सामान्य घटनाक्रम की कोई परवाह ही नहीं की और वे तो अपने तत्कालीन हितों से ही प्रभावित होते रहे। इन्हीं लोगों ने तो उस समय सर्वाधिक उपयोगी भूमिका अदा की।

जिन लोगों ने सामान्य घटनाक्रम को समझने और आत्म-बलिदान तथा वीर-कृत्यों से उसमें भाग लेने का प्रयास किया, वही समाज के सबसे अनुपयोगी अंग थे। वे सभी कुछ उलटे ढंग से देख रहे थे और उन्होंने जो कुछ फ़ायदे के लिये किया, वह बिल्कुल बेकार सिद्ध हुआ, जैसे कि प्येर और मामोनोव की रेजिमेंटें जो रूसी गांवों को लूटती रहीं, या फिर महिलाओं द्वारा साफ़ किये गये फाहे जो घायलों तक कभी पहुंचे ही नहीं, आदि, आदि। यहां तक कि अपने को बुद्धिमान दिखाने और अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के इच्छुक भी रूस की तत्कालीन स्थिति का विवेचन करते हुए अपने भाषणों में अन-जाने ही ढोंग या झूठ का पुट लिये रहते थे या फिर व्यर्थ ही कुछ लोगों को उन चीज़ों के लिये दोष देते हुए भला-बुरा कहते और उनपर ग़ुस्सा निकालते थे जिनके लिये कोई भी दोषी नहीं हो सकता था। ऐति-हासिक घटनाओं के मामले में ही ज्ञान-वृक्ष के फल को चखने का निषेध सर्वाधिक स्पष्ट रूप से सामने आता है। केवल अचेतन क्रियाशीलता ही फलप्रद होती है और ऐतिहासिक घटना में भूमिका अदा करनेवाला व्यक्ति उसके महत्त्व को कभी भी नहीं समझ पाता। यदि वह इसे समझने का प्रयास करता है तो उसका ऐसा प्रयास निष्फल रहता है।

रूस की उस समय की घटनाओं में कोई व्यक्ति जितनी अधिक निकटता से भाग ले रहा था, उनका महत्त्व या अर्थ उसके लिये उतना ही कम स्पष्ट था। पीटर्सबर्ग और मास्को से दूर के प्रान्तों में महिलायें और जन-सेना की वर्दियां पहने पुरुष रूस और राजधानी के भाग्य पर आंसू बहाते थे तथा आत्म-बलिदान आदि की बातें करते थे, किन्तु मास्को से पीछे हट रही सेना में मास्को की लगभग न तो कोई चर्चा होती थी, न कोई उसके बारे में सोचता था तथा उसकी आग की लपटों को देखते हुए न किसी ने फ़्रांसीसियों से बदला लेने की क़सम

ही खाई थी। सैनिक तो अगले वेतन, अगले पड़ाव और रेजिमेंट की दुकान के बारे में ही सोचते थे।

निकोलाई रोस्तोव किसी प्रकार के आत्म-बलिदान के बिना, केवल संयोग से ही, क्योंकि वह सेना में था, मातृभूमि की रक्षा में घनिष्ठ रूप से तथा काफ़ी अरसे से भाग ले रहा था और इसीलिये उस समय के रूस में जो कुछ हो रहा था, उससे उसे न तो किसी प्रकार की निराशा हो रही थी और न वह कोई विषादपूर्ण परिणाम ही निकाल रहा था। अगर उससे यह पूछा जाता कि तत्कालीन रूस की स्थिति के बारे में वह क्या सोचता है तो उसने यही उत्तर दिया होता कि उसे यह सब सोचने की क्या ज़रूरत है, कि इसके लिये कुतूज़ोव और दूसरे लोग हैं, कि उसने सुना है कि नयी रेजिमेंटें बनायी जा रही हैं, कि लड़ाई अभी बहुत देर तक चलेगी, कि वर्तमान स्थितियों को ध्यान में रखते हुए इसमें हैरानी की कोई बात नहीं होगी कि लगभग दो साल में वह रेजिमेंट-कमांडर बन जाये।

चूंकि इस मामले में उसका ऐसा रवैया था, इसलिये यह समाचार मिलने पर कि डिवीज़न के घोड़े ख़रीदने के हेतु उसे वोरोनेज़ भेजा जा रहा है, उसे न केवल इस बात का अफ़सोस ही नहीं हुआ कि वह निकट भविष्य में होनेवाली लड़ाई में हिस्सा नहीं ले सकेगा, बल्कि बेहद ख़ुशी भी हुई। उसने इस ख़ुशी को छिपाने की कोशिश नहीं की और उसके साथी भी इस चीज़ को बहुत अच्छी तरह से समझते थे।

बोरोदिनो की लड़ाई के कुछ दिन पहले निकोलाई को पैसे और ज़रूरी काग़ज़ात मिल गये और कुछ हुस्सारों को अपने से पहले भेजकर वह डाक-घोड़ा-गाड़ी से वोरोनेज़ के लिये रवाना हो गया।

कई महीनों तक युद्ध और सक्रिय सैनिक गति-विधियों के वातावरण में रहनेवाला व्यक्ति ही उस ख़ुशी को समझ सकता है जो निकोलाई ने उस क्षेत्र से बाहर आकर अनुभव की जहां सेनायें थीं, जहां चारे की तलाश में उनके दल आते रहते थे, जहां रसद की घोड़ा-गाड़ियां और युद्ध-क्षेत्रीय अस्पताल थे तथा जब सैनिकों, फ़ौजी घोड़ा-गाड़ियों और फ़ौजी कैम्प की उपस्थिति की द्योतक गन्दगी के बजाय उसने ऐसे गांव देखे जहां किसान औरतें और मर्द थे, ज़मींदारों के घर थे, चरागाहों में पशु चरते थे तथा डाक-घोड़ा-गाड़ियों के घोड़े बदलने की वे चौकियां थीं जिनके प्रबन्धक हमेशा ऊंघते रहते

थे। उसने ऐसी खुशी महसूस की मानो पहली बार यह सब कुछ देख रहा हो। जवान और स्वस्थ औरतों को देखकर, जिनके इर्द-गिर्द इस समय दसियों फ़ौजी अफ़सर नहीं मंडराते थे, उसे विशेष रूप से बहुत प्रसन्नता और आश्चर्य हुआ। इन औरतों को भी इस चीज़ से खुशी होती थी कि बाहर से आनेवाला फ़ौजी अफ़सर उनके साथ हंसी-मज़ाक़ करता है।

निकोलाई रोस्तोव बहुत ही अच्छे मूड में रात के वक़्त वोरोनेज़ के होटल में पहुंचा। वहां उसने खाने-पीने की उन सभी चीज़ों का आर्डर दिया जिनसे सेना में बहुत समय से वंचित रहा था और अगले दिन बहुत अच्छी तरह से दाढ़ी बनाकर तथा पूरी फ़ौजी वर्दी पहनकर, जिसे उसने बहुत समय से नहीं पहना था, अधिकारियों से मिलने गया।

एक बूढ़ा और असैनिक जनरल जन-सेना का संचालक था जिसे अपनी सैनिक उपाधि और पद सम्भवतः बहुत दिलचस्प लग रहे थे। वह झुंझलाते हुए (ऐसा मानकर कि यही उचित सैनिक ढंग है) निकोलाई से मिला और बड़े महत्त्वपूर्ण अन्दाज़ में, मानो उसे इसका अधिकार हो, सामान्य घटनाक्रम की विवेचना और कुछ चीज़ों का अनुमोदन तथा खण्डन करते हुए निकोलाई से सवाल पूछता रहा। निकोलाई का मन इतना अधिक खिला हुआ था कि इसमें उसे मज़ा ही आता रहा।

जन-सेना के संचालक के यहां से वह गवर्नर के यहां गया। गवर्नर नाटा, चुस्त-फुर्तीला, बड़ा स्नेहशील और सीधा-सादा आदमी था। उसने निकोलाई को उन अश्व-पालन-फ़ार्मों की जानकारी दी जहां वह घोड़े ख़रीद सकता था, नगर में घोड़ों के एक व्यापारी और नगर से बीस वेर्स्ता दूर एक ज़मींदार का पता-ठिकाना बताया जिनके पास सबसे अच्छे घोड़े मिल सकते थे और सभी तरह की मदद करने का वचन दिया।

"आप काउंट इल्या अन्द्रेयेविच के बेटे हैं न? मेरी पत्नी और आपकी मां बहुत पक्की सहेलियां थीं। हर बृहस्पतिवार को हमारे यहां महफ़िल जमती है। आज बृहस्पतिवार ही है। किसी प्रकार की औपचारिकता के बिना हमारे यहां पधारिये," गवर्नर ने निकोलाई को विदा करते हुए कहा।

गवर्नर के यहां से बाहर आते ही निकोलाई ने डाक की घोड़ा-

गाड़ी किराये पर ली, क्वाटर मास्टर को अपने साथ बिठाया और घोड़ों को सरपट दौड़ाता हुआ बीस वेर्स्ता की मंज़िल तय करके ज़मींदार के अश्व-पालन-फ़ार्म पर पहुंचा। वोरोनेज़ में शुरू के वक़्त में निकोलाई को हर चीज़ सुखद और आसान लग रही थी और, जैसाकि किसी व्यक्ति का मन ख़ुश होने की स्थिति में होता है, सभी कुछ ढंग से और जल्दी-जल्दी होता चला जा रहा था।

निकोलाई जिस ज़मींदार के यहां पहुंचा, वह कभी घुड़सेना का अफ़सर रहा था, अविवाहित था, घोड़ों का बहुत अच्छा पारखी और शिकारी था। उसके दीवानख़ाने के फ़र्श और दीवारों पर क़ालीन लगे थे, उसके यहां सौ साल पुरानी मसालेदार ब्रांडी और पुरानी हंगेरियाई शराब थी तथा बांके घोड़े थे।

निकोलाई ने थोड़ी-सी बातचीत के बाद ही उससे छः हज़ार रूबल में चुने हुए सत्रह घोड़े ख़रीद लिये जो उसकी रेजिमेंट के लिये बढ़िया नमूने का काम देंगे। भोजन करने, ज़रूरत से कुछ अधिक हंगेरियाई शराब पीने और ज़मींदार से गले मिलकर, जिसे वह घनिष्ठता के रूप में "तू" और "तुम" कहकर सम्बोधित करने लगा था, बहुत ही प्रसन्नतापूर्ण मनःस्थिति में टूटी-फूटी और बेहद बुरी सड़क पर घोड़ों को ताबड़तोड़ दौड़ाने के लिये कोचवान को लगातार विवश करता हुआ जल्दी से जल्दी वापस लौटा ताकि गवर्नर के यहां आयोजित महफ़िल में हिस्सा ले सके।

निकोलाई ने कपड़े बदले, सिर को ठण्डे पानी से तर किया, अपने ऊपर इत्र-फुलेल छिड़का और कुछ देर से तथा यह कहते हुए कि "देर आये, दुरुस्त आये" गवर्नर के यहां महफ़िल में शामिल हुआ।

यह बॉल-नृत्य की महफ़िल नहीं थी, ऐसा कहा भी नहीं गया था, किन्तु सभी जानते थे कि कतेरीना पेत्रोव्ना क्लावीकॉर्ड बाजे पर वाल्ज़ और एकोसेज़ की धुनें बजायेगी तथा नाच होगा। इसी चीज़ को ध्यान में रखते हुए सभी बॉल-नृत्य की पोशाक पहनकर आये थे।

सन् १८१२ में प्रान्तीय जीवन हमेशा जैसा ही था। अगर कोई फ़र्क़ था तो इतना ही कि मास्को से अनेक धनी परिवारों के आ जाने के फलस्वरूप नगर में कहीं अधिक रौनक़ और चहल-पहल थी तथा तत्कालीन सारे रूस की भांति एक ख़ास तरह की मस्ती और "भाड़ में जाये सब कुछ" का वातावरण था। इसके अलावा यह अन्तर भी

था कि लोगों के बीच अनिवार्य रूप से होनेवाली इधर-उधर की बातों में, जो पहले मौसम और साझे परिचितों पर केन्द्रित रहती थीं, अब मास्को, सेनाओं और नेपोलियन की ही चर्चा होती थी।

गवर्नर के यहां वोरोनेज़ के चुने हुए लोग एकत्रित थे।

बहुत बड़ी संख्या में जवान महिलायें थीं, निकोलाई के मास्को के कुछ परिचित लोग भी थे। किन्तु एक भी तो ऐसा मर्द नहीं था जो सेंट जार्ज के पदक से सम्मानित हुस्सार-अफ़सर और साथ ही ख़ुशमिज़ाज तथा बहुत बढ़िया तौर-तरीक़ेवाले काउंट रोस्तोव से होड़ कर सकता। मर्दों में फ़्रांसीसी सेना का अफ़सर, एक इतालवी बन्दी भी था और निकोलाई ने अनुभव किया कि इस बन्दी की उपस्थिति से उसका – रूसी वीर का – महत्त्व और भी बढ़ गया है। वह तो मानो जीता-जागता विजयोपहार था। निकोलाई ऐसा अनुभव करता था और उसे लगता था कि बाक़ी सब लोग भी इस इतालवी को इसी रूप में देखते थे और वह उसके साथ स्नेहपूर्वक, किन्तु गरिमा तथा संयत ढंग से पेश आया।

हुस्सार की वर्दी पहने, अपने इर्द-गिर्द इत्र तथा शराब की महक फैलाता और अपने द्वारा कहे गये इस वाक्य – देर आये, दुरुस्त आये – को दूसरों के मुंह से सुनता हुआ निकोलाई जैसे ही भीतर आया, वैसे ही लोगों ने उसे घेर लिया। सभी की नज़रें उसपर जमी थीं और उसने फ़ौरन यह महसूस किया कि वह प्रान्तीय नगरों में सभी का चहेता होने तथा हमेशा बहुत ही प्रिय लगनेवाली स्थिति में है। किन्तु बहुत समय तक ऐसी सम्भावना से वंचित रहने के बाद सभी का चहेता होने की इस स्थिति से उसपर नशा-सा तारी हो रहा था। न केवल घोड़ा-बदल-चौकियों, सरायों और ज़मींदार के क़ालीनोंवाले दीवानख़ाने में नौकरानियां ही उसके ध्यान देने से प्रसन्न हुई थीं, बल्कि यहां, गवर्नर की इस महफ़िल में भी (जैसाकि उसे प्रतीत हुआ) अनेक जवान महिलायें और प्यारी-प्यारी युवतियां थीं जो बड़ी बेचैनी से इस बात का इन्तज़ार कर रही थीं कि निकोलाई उनकी तरफ़ ध्यान दे। जवान महिलायें और युवतियां उसके साथ चोचलेबाज़ी करती थीं और वृद्धायें पहले ही दिन से यह चिन्ता करने लगीं कि किस तरह इस जवान और बांके-छैले हुस्सार के लिये कोई अच्छी जोड़ी ढूंढ़कर इसे शादी के बन्धन में बांध दें।

इनमें गवर्नर की पत्नी भी शामिल थी जिसने एक रिश्तेदार की तरह निकोलाई का स्वागत किया और जो उसे "निकोलस" तथा घनिष्ठता दिखाते हुए "तुम" कहकर सम्बोधित करती थी।

कतेरीना पेत्रोव्ना ने तो सचमुच वाल्ज़ और एकोसेज़ की धुनें बजानी शुरू कर दीं तथा नाच शुरू हो गये जिनमें निकोलाई ने अपनी नृत्य-दक्षता से सारी प्रान्तीय सोसाइटी का और भी अधिक मन मोह लिया। उसने तो नाच के अपने विशेष, बेतकल्लुफ़ अन्दाज़ से सबको हैरान भी कर दिया। इस शाम को नाचने के अपने ढंग से निकोलाई ख़ुद भी कुछ हैरान हुए बिना न रह सका। मास्को में वह कभी ऐसे नहीं नाचा था और नाच के अपने इस बेहद बेतकल्लुफ़ अन्दाज़ को उसने वहां अशिष्ट और बुरा अन्दाज़ भी माना होता। किन्तु यहां उसने इस बात की ज़रूरत महसूस की कि सभी को किसी असाधारण, किसी ऐसी चीज़ से आश्चर्यचकित करे जिसे राजधानियों में सामान्य और प्रान्तों में अभी तक नया माना जाये।

एक स्थानीय कर्मचारी की नीली आंखों तथा गदराये बदन और सुनहरे बालोंवाली प्यारी-सी बीवी की ओर ही निकोलाई सारी शाम को सबसे अधिक ध्यान देता रहा। मौज करने की लहर में बहनेवाले जवान लोगों के इस भोले-भाले विश्वास के अनुरूप कि दूसरों की बी-वियां उन्हीं के लिये बनी हैं, वह इस महिला के इर्द-गिर्द ही मंडराता रहा और उसके पति के साथ मैत्री तथा ऐसे रहस्यपूर्ण अन्दाज़ में पेश आता रहा मानो बेशक उन्होंने इसकी चर्चा नहीं की, किन्तु वे यह जानते हैं कि ये दोनों यानी निकोलाई और इस आदमी की पत्नी आपस में कैसे घुल-मिल जायेंगे। किन्तु महिला का पति निकोलाई के इस विश्वास का समर्थन करता प्रतीत नहीं होता था और उसके साथ कुछ उदासीनता का व्यवहार करता था। लेकिन ख़ुशमिज़ाजी के रंग में डूबे निकोलाई की ख़ुशमिज़ाजी इस हद तक बढ़ी हुई थी कि पति कभी-कभी उसकी उल्लासपूर्ण मन:स्थिति से प्रभावित भी हो जाता था। मगर इस महफ़िल के ख़त्म होते-होते पत्नी के चेहरे पर जितनी अधिक लाली और रंगीनी आती गयी, पति का चेहरा उतना ही अधिक उदास और गम्भीर होता गया मानो इन दोनों को रंगीनी का साझा हिस्सा मिला हो और इसलिये पत्नी की रंगीनी जितनी अधिक बढ़ती जाती थी, पति के उल्लास की मात्रा उतनी ही कम होती जाती थी।

५

होंठों पर लगातार मुस्कान चस्पां किये निकोलाई स्वर्णकेशी सुन्दरी के साथ सटा हुआ और उसपर कुछ झुका-सा आरामकुर्सी पर बैठा था तथा पौराणिक बिम्बों का उपयोग करते हुए उसकी प्रशंसा कर रहा था।

कसी हुई बिरजस में टांगों की स्थिति को बड़े बांकपन से बदलते, इत्र की ख़ुशबू फैलाते, अपनी प्रशंसा-पात्र महिला, खुद अपने पर तथा अपनी सुडौल टांगों पर मुग्ध होते हुए निकोलाई सुनहरे बालोंवाली सुन्दरी से यह कह रहा था कि वह यहां से, वोरोनेज़ से एक महिला को भगा ले जाना चाहता है।

"किसे ?"

"बहुत ही सुन्दर, परी जैसी एक महिला को। उसकी आंखें (निकोलाई ने इस महिला की ओर देखा) नीली हैं, मुंह मूंगे की तरह लाल है और वह कितनी गोरी-गोरी है..." उसने महिला के गोरे-गोरे कंधों पर नज़र डाली, – "डिआना * जैसी है..."

इस महिला का पति निकट आया और उसने बुझी-सी आवाज़ में पत्नी से यह पूछा कि वह किस बात की चर्चा कर रही है।

"अरे! निकीता इवानिच," निकोलाई ने शिष्टतापूर्वक उठते हुए कहा और मानो इस इच्छा से कि निकीता इवानिच भी उसके हंसी-मज़ाक़ में हिस्सा ले, वह उससे भी एक स्वर्णकेशी को भगा ले जाने के अपने इरादे का ज़िक्र करने लगा।

पति उदासी से और पत्नी ख़ुशी से चहकते हुए मुस्करा दी। गवर्नर की दयालु पत्नी अपने चेहरे पर भर्त्सना का भाव लिये उनके क़रीब आई।

"आन्ना इग्नातेव्ना तुमसे मिलना चाहती है, निकोलाई," उसने कहा और आन्ना इग्नातेव्ना का ऐसे उच्चारण किया कि रोस्तोव को यह समझने में ज़रा भी देर न लगी कि आन्ना इग्नातेव्ना कोई महत्त्व-पूर्ण महिला है। "मेरे साथ आओ, निकोलाई। तुमने तो खुद ही मुझे तुम्हें इस ढंग से सम्बोधित करने की अनुमति दी थी न?"

---

* डिआना – पौराणिक रोमन कथाओं के अनुसार आखेट की बहुत ही सुन्दर देवी। – सं०

"हां, हां, ma tante*. आप जिसकी चर्चा कर रही हैं, वह महिला कौन है?"

"आन्ना इग्नातेव्ना माल्विन्त्सेवा। उसने अपनी भानजी के मुंह से तुम्हारे बारे में यह सुना है कि कैसे तुमने उसकी जान बचायी थी... अब तो तुम अनुमान लगा सकते हो न? .."

"मैंने तो न जाने किस-किस की जान बचायी है!" निकोलाई ने जवाब दिया।

"उसकी भानजी प्रिंसेस बोल्कोन्स्काया की भी। वह अपनी मौसी के साथ यहां वोरोनेज़ में है। ओहो! देखो तो चेहरे पर कैसे लाली दौड़ गयी है! यह क्या मामला है, शायद?.."

"नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं है, मौसी!"

"ख़ैर, ठीक है, ठीक है। अरे, ख़ूब हो तुम भी!"

गवर्नर की बीवी उसे एक लम्बी और बहुत ही मोटी बुढ़िया के पास ले गयी जो आसमानी रंग की गोल टोपी पहने थी और जिसने अभी-अभी नगर के बहुत ही महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ ताश की बाज़ी ख़त्म की थी। यह प्रिंसेस मरीया की मां की बहन यानी उसकी मौसी, सन्तानहीन धनी विधवा थी जो हमेशा से वोरोनेज़ में ही रह रही थी। रोस्तोव जब उसके पास पहुंचा तो वह ताश की बाज़ी में हारे हुए पैसों का हिसाब चुका रही थी। उसने कठोरता और बड़ी अकड़ दिखाते हुए आंखें सिकोड़कर निकोलाई पर नज़र डाली और उस जनरल को भला-बुरा कहती रही जिसने उससे पैसे जीते थे।

"तुमसे मिलकर बड़ी ख़ुशी हुई, मेरे प्यारे," उसने निकोलाई से हाथ मिलाते हुए कहा। "तुम्हें अपने यहां आमन्त्रित करती हूं।"

प्रिंसेस मरीया और उसके दिवंगत पिता की चर्चा करने के बाद, जिसे सम्भवतः वह पसन्द नहीं करती थी, और यह पूछकर कि प्रिंस अन्द्रेई के बारे में उसे क्या मालूम है, जिसपर भी सम्भवतः उसकी कृपादृष्टि नहीं थी, इस गर्वीली बुढ़िया ने फिर से अपने यहां आने की दावत देकर उससे विदा ले ली।

निकोलाई ने उसके यहां जाने का वचन दिया और उससे विदा लेने के लिये सिर झुकाते समय उसके चेहरे पर फिर से लाली दौड़

---

* मौसी। (फ़्रांसीसी)

गयी। प्रिंसेस मरीया का ज़िक्र आने पर वह न जाने क्यों झेंप, यहां तक कि कुछ भय भी अनुभव करता था।

माल्विन्त्सेवा से विदा लेने के बाद रोस्तोव ने फिर से नाच के कमरे में जाना चाहा, किन्तु गवर्नर की टुइयां-सी बीवी निकोलाई की आस्तीन पर अपना गुदगुदा-सा हाथ रखते और यह कहते हुए कि उसे उससे कुछ बात करनी है, उसे बैठक में ले गयी। बैठक में उपस्थित लोग फ़ौरन बाहर चले गये ताकि गवर्नर की पत्नी के लिये किसी प्रकार की बाधा न बनें।

"सुनो, भैया," गवर्नर की पत्नी ने अपने दयालु और छोटे-से चेहरे पर गम्भीरता का भाव लाते हुए कहा, "तुम दोनों की जोड़ी बहुत बढ़िया रहेगी। कहो तो मैं सगाई करवा दूं?"

"किसके साथ, मौसी जी?" निकोलाई ने जानना चाहा।

"प्रिंसेस के साथ। कतेरीना पेत्रोव्ना का कहना कि तुम्हारे लिये लिली ज़्यादा ठीक रहेगी, लेकिन मेरा ख़्याल है–प्रिंसेस। बोलो, चाहते हो? मुझे यक़ीन है कि तुम्हारी अम्मां आभार मानेंगी। सच, कैसी अच्छी लड़की है वह! और उसकी शक्ल-सूरत भी कुछ बुरी नहीं है।"

"बिल्कुल बुरी नहीं है," निकोलाई ने मानो बुरा मानते हुए कहा। "मौसी जी, जैसाकि फ़ौजी आदमी को शोभा देता है, मैं तो न किसी पर अपने को लादता हूं और न किसी से इन्कार करता हूं," निकोलाई ने यह विचार करने के पहले ही कि वह क्या कहने जा रहा है, उक्त शब्दों को मुंह से निकाल दिया।

"लेकिन तुम ध्यान रखना कि यह मज़ाक़ नहीं है।"

"बेशक मज़ाक़ नहीं है।"

"हां, हां," गवर्नर की बीवी ने मानो अपने आपसे बात करते हुए कहा। "हां, एक और बात भी मुझे तुमसे कहनी है, मेरे प्यारे। तुम उस सुनहरे बालोंवाली के कुछ ज़्यादा ही आगे-पीछे घूम रहे हो। उसके पति की कैसी रोनी-सी सूरत बनी हुई है..."

"अजी नहीं, वह तो मेरा दोस्त है," निकोलाई ने सरल मन से यह उत्तर दिया। उसके दिमाग़ में तो यह ख़्याल तक नहीं आया कि हंसी-खुशी से समय बिताने के लिये उसे जो कुछ इतना सुखद लग रहा है, वह किसी दूसरे के लिये दुखद भी हो सकता है।

"मैंने गवर्नर की पत्नी से कैसी बेतुकी बातें कह दी हैं!" डिनर के वक़्त निकोलाई के मन में अचानक यह विचार आया। "वह तो सगाई करवाने की कोशिश करने लगेगी। लेकिन सोन्या?.." चुनांचे जब वह गवर्नर की बीवी से विदा लेने लगा और उसने मुस्कराते हुए एक बार फिर निकोलाई से कहा – "अपने शब्द याद रखना" – तो वह उसे एक ओर को ले गया :

"मौसी जी, आपसे सच-सच कहूं..."

"क्या बात है, मेरे प्यारे? आओ हम वहां बैठ जायें।"

निकोलाई ने अचानक इससे, इस परायी औरत से अपनी दिली बातें (जो उसने मां, बहन या दोस्त से भी न कही होतीं) कह देने की इच्छा और आवश्यकता अनुभव की। उसके सामने अपना दिल खोलकर रख देने की इस अकारण और अबोधगम्य झोंक का निकोलाई को जब बाद में ध्यान आता, जिसने आगे चलकर उसके जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, तो उसे लगता (जैसाकि लोगों को हमेशा लगता है) कि यह तो महज़ बेवक़ूफ़ी भरी सनक थी। फिर भी इस झोंक और छोटी-मोटी दूसरी घटनाओं ने उसपर तथा उसके परिवार पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला।

"मौसी जी, बात यह है कि अम्मां तो बहुत अरसे से किसी अमीर लड़की के साथ मेरी शादी करना चाह रही हैं। लेकिन मुझे तो पैसे के लिये शादी करने के ख़्याल से ही नफ़रत महसूस होती है।"

"अरे हां, मैं इस चीज़ को समझती हूं," गवर्नर की बीवी ने जवाब दिया।

"किन्तु प्रिंसेस बोल्कोन्स्काया की बात दूसरी है। पहली चीज़ तो यह है – मैं आपसे बिल्कुल सच कह रहा हूं – कि वह मुझे बहुत पसन्द है, वह मेरे मन के अनुरूप है। फिर ऐसी परिस्थिति में, ऐसे अजीब ढंग से उससे मुलाक़ात होने के कारण अक्सर मेरे दिमाग़ में यह ख़्याल आता रहा है – शायद भाग्य को ऐसा ही मंज़ूर है। ख़ास तौर पर अगर आप इस बात को ध्यान में रखें कि अम्मां तो बहुत समय से ऐसा ही चाह रही हैं, किन्तु मेरी उससे कभी भेंट ही नहीं हुई थी, कुछ ऐसा हुआ कि हम दोनों कभी मिल ही नहीं सके थे। फिर जब तक मेरी बहन नताशा उसके भाई की मंगेतर थी, मैं उसके साथ शादी की सोच ही नहीं सकता था। भाग्य का खेल देखिये कि उसके साथ

मेरी तभी मुलाक़ात हुई, जब नताशा की सगाई टूट चुकी थी, उसके बाद ही सब कुछ हुआ ... हां, एक और बात है। मैंने किसी से कभी भी यह चर्चा नहीं की और न करूंगा। सिर्फ़ आपसे ही।"

गवर्नर की पत्नी ने कृतज्ञतापूर्वक उसकी कोहनी दबायी।

"आप मेरी मौसेरी बहन, सोन्या को तो जानती हैं न? मैं उसे प्यार करता हूं, मैंने उससे शादी करने का वचन दिया है और मैं उससे शादी करूंगा ... इसलिये आप समझ सकती हैं कि इस चीज़ का कोई सवाल ही पैदा नहीं हो सकता," निकोलाई ने अटपटे ढंग और झेंप से लाल होते हुए अपनी बात समाप्त की।

"मेरे अज़ीज़, मेरे प्यारे, अजीब ढंग है तुम्हारा सोचने का। सोन्या के पास तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं और तुमने खुद ही तो यह कहा था कि तुम्हारे पापा की माली हालत बहुत खराब है। फिर तुम्हारी अम्मां? उनको तो ज़रूर बहुत ही सदमा पहुंचेगा। रही सोन्या, अगर उस लड़की के सीने में दिल है तो उसे जानना चाहिये कि कैसी ज़िन्दगी होगी उसकी? अम्मां बेहद निराश-हताश, तुम सभी लोग पूरी तरह तबाहहाल ... नहीं, मेरे प्यारे, तुम्हें और सोन्या को यह समझना चाहिये।"

निकोलाई चुप रहा। उसे ऐसे तर्क सुनना अच्छा लग रहा था।

"फिर भी ऐसा नहीं हो सकता, मौसी जी," कुछ देर चुप रहने के बाद उसने आह भरते हुए कहा। "इसके अलावा यह भी कौन जानता है कि प्रिंसेस मरीया मेरे साथ शादी करने को राज़ी होगी या नहीं? आजकल तो वह यों भी मातम मना रही है। इसके बारे में भला सोचा ही कैसे जा सकता है?"

"तुम क्या समझते हो कि मैं अभी तुम्हारी शादी करवाने जा रही हूं? फिर हर चीज़ को करने का कोई ढंग, कोई तरीक़ा भी होता है," गवर्नर की पत्नी ने कहा।

"जोड़ी मिलाने के मामले में आपको कमाल हासिल है, मौसी जी ..." निकोलाई ने उसका गुदगुदा हाथ चूमते हुए प्रशंसा की।

रोस्तोव के साथ भेंट होने के बाद मास्को आने पर प्रिंसेस मरीया ने अपने भतीजे और उसके शिक्षक को वहां पाया और उसे प्रिंस अन्द्रेई का एक ख़त भी मिला जिसमें उसने यह लिखा था कि नन्हे निकोलाई को साथ लेकर वह अपनी मौसी माल्विन्त्सेवा के यहां चली जाये। सफ़र की तैयारी की व्यस्तता, भाई की चिन्ता, नये स्थान और नये लोगों के बीच जीवन को व्यवस्थित करने तथा भतीजे के शिक्षण-पालन से सम्बन्धित परेशानियां – इन सभी चीज़ों ने प्रिंसेस मरीया की आत्मा में मानो जीवन के प्रति आकर्षण की उस भावना को दबा दिया जो पिता की बीमारी और उनकी मृत्यु के बाद तथा विशेष रूप से रोस्तोव के साथ भेंट होने के पश्चात उसे संतप्त करती रही थी। वह उदासी में डूबी रहती थी। शान्त वातावरण में एक महीना बिताने के बाद वह पिता जी की क्षति को, जो उसकी आत्मा में रूस के नाश के साथ जुड़ी हुई थी, अब पहले से अधिकाधिक तीव्रता से अनुभव करती थी। वह बेचैन रहती थी – उसका भाई, जीवित रह जानेवाला उसका एकमात्र अपना व्यक्ति, हर समय जिस ख़तरे का सामना करता था, वह उसे लगातार व्यथित करता रहता था। वह भतीजे के पालन-शिक्षण के बारे में, जिसके लिये अपने को सर्वथा अयोग्य अनुभव करती थी, चिन्तित रहती थी। किन्तु मन की गहराई में वह इस चेतना से चैन अनुभव करती थी कि उसने निजी जीवन की उन आशाओं और सपनों से मुक्ति पा ली है जिन्होंने रोस्तोव के प्रकट होने पर पलकें खोली थीं।

अपने यहां आयोजित दावत के एक दिन बाद गवर्नर की बीवी माल्विन्त्सेवा के घर गयी। उसके साथ अपनी योजनाओं पर विचार करने (यह संकेत करते हुए कि वर्तमान परिस्थितियों में औपचारिक ढंग से सगाई की बात नहीं सोची जा सकती, फिर भी इन दोनों जवान व्यक्तियों को निकट लाकर उनके लिये एक-दूसरे को अधिक अच्छी तरह से जानना-समझना सम्भव बनाया जा सकता है) और मौसी का अनुमोदन-समर्थन पाने के बाद जब वह प्रिंसेस मरीया के सामने रोस्तोव की चर्चा करने लगी, उसकी तारीफ़ों के पुल बांधने और यह बताने लगी कि प्रिंसेस का ज़िक्र आने पर कैसे उसके चेहरे पर

लाली दौड़ जाती थी तो प्रिंसेस मरीया को प्रसन्नता के बजाय पीड़ा की अनुभूति हुई – उसका मानसिक चैन खण्ड-खण्ड हो गया था और इच्छाओं, सन्देहों-शंकाओं, भर्त्सनाओं तथा आशाओं ने फिर से सिर ऊपर उठा लिया था।

रोस्तोव के बारे में समाचार मिलने और दो दिन बाद उसके अपने यहां आने के बीच के वक़्त में प्रिंसेस मरीया लगातार यह सोचती रही कि रोस्तोव के साथ वह किस तरह से पेश आये। कभी तो वह यह तय करती कि जब वह मौसी के पास आयेगा तो वह ड्राइंगरूम में नहीं जायेगी, कि गहन शोक की इस स्थिति में उसके लिये मेहमानों से मिलना-जुलना शिष्ट नहीं होगा। कभी वह यह सोचती कि रोस्तोव ने उसके लिये जो कुछ किया था, उसके बाद उसका ऐसा व्यवहार बेहूदा होगा। कभी-कभी उसके दिमाग़ में यह ख़्याल आता कि उसकी मौसी और गवर्नर की पत्नी उन दोनों के बारे में कुछ इरादे बनाये हुए हैं (उनकी नज़रें और उनके मुंह से निकल जानेवाले कुछ शब्द उसे उसके ऐसे अनुमान की पुष्टि करते प्रतीत होते)। कभी वह अपने आपसे कहती कि अपनी मानसिक कलुषता के कारण ही वह उनके बारे में ऐसा सोचती है। वे तो इस चीज़ को नहीं भूल सकती थीं कि उसकी वर्तमान स्थिति में, जब उसने मातमी पोशाक भी नहीं उतारी थी, सगाई-विवाह की बात करना उसका और उसके पिता जी की पुण्य स्मृति का अपमान करना होगा। यह मानते हुए कि वह उससे मिलने के लिये ड्राइंगरूम में जायेगी, प्रिंसेस मरीया उन शब्दों के बारे में सोचने लगती जो वह उससे कहेगा और जो वह उससे कहेगी। ये शब्द कभी तो उसे अनुचित रूप से रूखे लगते और कभी आवश्यकता से अधिक अर्थपूर्ण। रोस्तोव से भेंट के मामले में सबसे अधिक तो वह उस घबराहट के कारण डरती थी जो, जैसाकि वह अनुभव करती थी, उसे देखते ही उसपर हावी हो जायेगी और उसका भंडाफोड़ कर देगी।

किन्तु रविवार को गिरजे में सुबह की प्रार्थना के बाद नौकर ने ड्राइंगरूम में आकर जब काउंट रोस्तोव के आने की सूचना दी तो प्रिंसेस घबरायी नहीं। उसके गालों पर हल्की-सी लाली ही दौड़ गयी और आंखें एक नयी और तीव्र कान्ति से चमक उठीं।

"आप उससे मिल चुकी हैं न, मौसी?" प्रिंसेस मरीया ने स्वयं

यह न जानते हुए कि कैसे वह देखने में इतनी संयत और स्वाभाविक रह सकती थी, शान्त स्वर में पूछा।

रोस्तोव के कमरे में आने पर प्रिंसेस ने क्षण भर को सिर झुका लिया और इस तरह मानो उसे मौसी का अभिवादन करने का समय दे दिया और जैसे ही निकोलाई ने उसको सम्बोधित किया, वैसे ही उसने सिर ऊपर उठाया तथा चमकती आंखों से उसकी दृष्टि का स्वागत किया। गरिमा और लालित्यपूर्ण अन्दाज़ में वह ख़ुशी से मुस्कराती हुई ज़रा उठी, उसने अपना पतला-सा और कोमल हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया तथा ऐसी आवाज़ में बोलने लगी जिसमें नयी, नारी-सुलभ और गहन ध्वनियों की पहली बार गूंज सुनायी दी। ड्राइंगरूम में उपस्थित कुमारी बुर्येन प्रिंसेस मरीया को हैरानी से देखती रह गयी। नाज़-नख़रों के मामले में ख़ुद बहुत दक्ष कुमारी बुर्येन भी उस व्यक्ति से भेंट होने पर, जिसके मन को वह जीतना चाहती हो, इससे ज़्यादा अच्छे हाव-भाव नहीं दिखा सकती थी।

"या तो काली पोशाक इसे इतनी अधिक फबती है या फिर यह सचमुच इतनी ज़्यादा निखर गयी है और मैंने इस चीज़ की तरफ़ ध्यान नहीं दिया। और सबसे बड़ी बात तो है उसका यह अन्दाज़ और सजीलापन!" कुमारी बुर्येन सोच रही थी।

यदि इस समय प्रिंसेस मरीया कुछ सोचने की स्थिति में होती तो वह कुमारी बुर्येन से भी ज़्यादा उस परिवर्तन से हैरान हुई होती जो उसके भीतर हुआ था। निकोलाई के इस सुन्दर और प्यारे चेहरे को देखते ही किसी नूतन जीवन-शक्ति ने उसे अपने वश में कर लिया था और उसके न चाहने पर भी उसने उसे बोलने-बतियाने तथा क्रियाशील होने के लिये विवश कर दिया था। रोस्तोव के ड्राइंगरूम में आते ही उसका चेहरा अचानक बदल-सा गया। जिस तरह बत्ती जलाने पर लालटेन की नक़्क़ाशी तथा चित्रकारीवाली चिमनी अचानक अपना वह चकित करनेवाला बारीक, सुन्दर और कलात्मक रूप दिखाने लगती है जो पहले भद्दा, काला और अर्थहीन-सा प्रतीत होता था, ठीक इसी तरह प्रिंसेस का चेहरा भी सहसा बदल गया। पहली बार उसकी निर्मल, उसकी सारी आत्मिक उथल-पुथल उभरकर बाहर आ गया। उसकी आत्मा की सारी आन्तरिक खोज, अपने प्रति असन्तोष, उसकी सारी व्यथा-पीड़ा, नेकी के लिये सारे प्रयास, उसकी नम्रता, प्यार और

आत्म-त्याग – यह सभी कुछ अब इन चमकती आंखों, प्यारी मुस्कान, उसके कोमल चेहरे के हर लक्षण में झलक रहा था।

रोस्तोव भी यह सब कुछ इतने स्पष्ट रूप से देख रहा था मानो जीवन भर प्रिंसेस से परिचित रहा हो। वह अनुभव कर रहा था कि यह व्यक्ति, जो इस समय उसके सामने था, अन्य सभी से भिन्न था, उनसे श्रेष्ठ था जिनसे अब तक उसकी भेंट हुई थी, और सबसे बड़ी बात तो यह कि खुद उससे श्रेष्ठ था।

इनके बीच बड़ी सीधी-सादी और मामूली बातचीत होती रही। अन्य सभी की भांति ये दोनों भी अनचाहे ही युद्ध की, इस घटना के बारे में अपने दुख की बढ़ा-चढ़ाकर चर्चा करते रहे, इन्होंने अपनी अन्तिम भेंट का ज़िक्र किया, यद्यपि निकोलाई ने इस विषय को टालने की कोशिश की, गवर्नर की दयालु बीवी तथा निकोलाई और प्रिंसेस मरीया के रिश्तेदारों की बात होती रही।

प्रिंसेस मरीया ने अपने भाई की चर्चा नहीं की और जैसे ही मौसी ने अन्द्रेई का उल्लेख किया, वैसे ही उसने बातचीत का विषय बदल दिया। स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता था कि रूस के दुर्भाग्य के बारे में वह कुछ बनावटी ढंग से बात कर सकती थी, किन्तु भाई तो उसके हृदय के इतना अधिक निकट था कि वह हल्के-फुल्के और सतही अन्दाज़ में न तो उसकी बात करना चाहती थी और न कर ही सकती थी। निकोलाई ने इस चीज़ की तरफ़ भी वैसे ही ध्यान दिया, जैसे वह प्रिंसेस मरीया के चरित्र के सभी लक्षणों की ओर बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से, जो उसका स्वाभाविक गुण नहीं था, ध्यान दे रहा था और जो उसके इस विश्वास की केवल पुष्टि ही करते थे कि प्रिंसेस एक विशेष और असाधारण प्राणी है। प्रिंसेस मरीया की भांति निकोलाई के चेहरे पर भी उस समय लाली दौड़ जाती थी और वह झेंप महसूस करता था, जब उससे प्रिंसेस की चर्चा की जाती। उसके बारे में सोचने तक पर भी ऐसा ही होता, किन्तु उसकी उपस्थिति में वह अपने को बिल्कुल सहज-स्वाभाविक अनुभव कर रहा था और वही कुछ नहीं कहता था जो पहले से तैयार करके आया था, बल्कि जो सर्वथा उचित रूप से इसी समय उसके दिमाग़ में आ जाता था।

जैसाकि हमेशा वहां होता है, जहां छोटे बच्चे होते हैं, अपनी इस छोटी-सी भेंट के समय ख़ामोशी का क्षण आने पर निकोलाई ने भी

प्रिंस अन्द्रेई के बेटे की तरफ़ ध्यान दिया, उसे प्यार से सहलाया-दुलराया और यह पूछा कि वह हुस्सार बनना चाहेगा या नहीं? उसने बालक को गोद में ले लिया, हंसते हुए उसे इधर-उधर घुमाने और उसके साथ खेलने लगा तथा मुड़कर प्रिंसेस मरीया की तरफ़ देखा। प्रिंसेस मरीया कोमल भावनाओं से ओत-प्रोत, सुखी और झेंपती दृष्टि से अपने लाड़ले बालक को अपने प्रिय व्यक्ति की गोद में देख रही थी। निकोलाई से उसकी यह दृष्टि भी छिपी न रही, उसने मानो इसके महत्त्व को समझ लिया, ख़ुशी से उसके चेहरे पर सुर्ख़ी दौड़ गयी और वह ख़ुशमिज़ाजी तथा प्यार से बालक को चूमने लगा।

सोग की स्थिति में होने के कारण प्रिंसेस मरीया सोसाइटी में आती-जाती नहीं थी और निकोलाई ने उनके यहां फिर से जाना उचित नहीं समझा। किन्तु गवर्नर की पत्नी ने इन दोनों की जोड़ी मिलाने का काम जारी रखा और प्रिंसेस मरीया द्वारा निकोलाई के बारे में कही गयी अच्छी-अच्छी बातें उसे बताकर तथा इसी तरह निकोलाई द्वारा की जानेवाली प्रिंसेस की प्रशंसा की उससे चर्चा करके इस चीज़ पर ज़ोर देती रही कि रोस्तोव प्रिंसेस मरीया के सामने अपनी भावनाओं को व्यक्त कर दे। इसी उद्देश्य से उसने सुबह की प्रार्थना के पहले बिशप के यहां इन दोनों के मिलन की व्यवस्था कर दी।

यद्यपि रोस्तोव ने गवर्नर की पत्नी से यह कह दिया था कि वह प्रिंसेस मरीया के सामने अपनी भावनायें व्यक्त नहीं करेगा, तथापि उसने आने का वचन दिया।

जैसे तिलज़ीत की लड़ाई के वक़्त रोस्तोव ने अपने मन में इस बारे में शंका नहीं पैदा होने दी थी कि जिसे सभी अच्छा समझते हैं, उसके सम्बन्ध में कोई भिन्न मत भी हो सकता है, वैसे ही अब अपने भावी जीवन को व्यवस्थित करने के मामले में अपनी बुद्धि और परि-स्थितियों के सामने घुटने टेक देने के विकल्प का चुनाव करने के लिये थोड़े-से निश्छल संघर्ष के बाद उसने दूसरा विकल्प ही चुना और अपने को उस शक्ति के हाथों में सौंप दिया जो (वह ऐसा अनुभव करता था) अदम्य रूप से उसे कहीं खींचे लिये जा रही थी। वह जानता था कि सोन्या को वचन देने के बाद प्रिंसेस मरीया के सामने अपनी भावनायें व्यक्त करना ऐसी हरकत होगी जिसे वह नीचता का नाम देगा। वह जानता था कि ऐसी नीचता कभी नहीं करेगा। किन्तु वह यह भी

जानता था (कहना चाहिये कि दिल की गहराई में महसूस करता था) कि अब परिस्थितियों और अपना निर्देशन करनेवाले लोगों के हाथों में ख़ुद को सौंपकर वह न केवल कोई बुरी बात ही नहीं करेगा, बल्कि बहुत, बहुत ही ज़्यादा महत्त्वपूर्ण कोई ऐसी बात करेगा, जैसी उसने अपने जीवन में पहले कभी नहीं की थी।

प्रिंसेस मरीया के साथ भेंट होने के बाद बाहरी तौर पर उसके जीवन का रंग-ढंग बेशक वैसा ही बना रहा, फिर भी पहले की सभी रंगीनियों-ख़ुशियों का उसके लिये आकर्षण जाता रहा और अब वह अक्सर प्रिंसेस मरीया के बारे में सोचता रहता था। किन्तु वह उसके बारे में कभी भी वैसे ही नहीं सोचता था जैसे कि किसी अपवाद के बिना सोसाइटी में मिलनेवाली सभी युवतियों के बारे में सोचता रहा था, वैसे भी नहीं, जैसे कि लम्बे अरसे तक कभी सोन्या के बारे में बड़े उल्लास से सोचता रहा था। लगभग सभी ईमानदार लोगों की तरह वह सभी युवतियों के सम्बन्ध में भावी पत्नियों के रूप में ही सोचता रहा था, उसने दाम्पत्य जीवन के वातावरण में ही उनकी कल्पना की थी – सफ़ेद ड्रेसिंग-गाउन, समोवार के क़रीब बैठी पत्नी, पत्नी की बग्घी, बच्चे, अम्मां और पिता जी, उसके साथ उनका बर्ताव, आदि, आदि। भविष्य की ऐसी कल्पनाओं से उसे ख़ुशी मिलती थी। किन्तु जब वह प्रिंसेस मरीया के बारे में सोचता, जिसके साथ उसकी सगाई की जा रही थी, तो वह भावी दाम्पत्य जीवन की कभी कोई कल्पना ही नहीं कर पाता था। अगर वह ऐसी कोशिश करता भी तो सब कुछ अटपटे और कृत्रिम रूप में सामने आता। वह केवल संत्रस्त ही हो उठता।

७

बोरोदिनो की लड़ाई, हमारे आहत और घायल सैनिकों के बारे में और इससे भी अधिक भयानक यानी मास्को को दुश्मन के हवाले करने का समाचार सितम्बर के मध्य में वोरोनेज़ पहुंचा। केवल समाचार-पत्र से भाई के घायल होने की ख़बर पाकर और उसके सम्बन्ध

में अन्य कुछ भी समाचार न मिलने पर प्रिंसेस मरीया भाई की खोज में जाने की तैयारी करने लगी। निकोलाई ने ऐसा ही सुना था (वह खुद तो उससे फिर नहीं मिला था)।

बोरोदिनो की लड़ाई और मास्को को छोड़ने का समाचार मिलने पर रोस्तोव को निराशा, क्रोध या प्रतिशोध जैसी किसी भावना की अनुभूति तो नहीं हुई, फिर भी वोरोनेज़ में उसे सभी कुछ ऊब भरा और क्लेशकर प्रतीत होने लगा, उसकी आत्मा उसकी भर्त्सना करने लगी और उसे कुछ अटपटा-सा अनुभव होने लगा। वह जितनी भी बातें सुनता था, उसे वे सभी बनावटी-सी लगती थीं। उसकी समझ में नहीं आता था कि इन सभी बातों से वह क्या निष्कर्ष निकाले और यह महसूस करता था कि केवल रेजिमेंट में जाने पर ही उसके लिये यह सब कुछ फिर से स्पष्ट हो पायेगा। उसने घोड़े ख़रीदने का काम जल्दी से जल्दी ख़त्म करने की कोशिश की और अक्सर अकारण ही अपने नौकर और क्वाटर मास्टर पर गर्म हो उठता था।

रोस्तोव के वोरोनेज़ से रवाना होने के कुछ दिन पहले रूसी सेनाओं की विजय के उपलक्ष्य में भगवान को धन्यवाद देने के लिये बड़े गिरजे में एक विशेष प्रार्थना का आयोजन किया गया। निकोलाई रोस्तोव सुबह की इस प्रार्थना में गया। वह प्रार्थना के अनुरूप गरिमापूर्ण ढंग से गवर्नर के थोड़ा पीछे खड़ा रहकर तरह-तरह के विषयों पर सोचता रहा। प्रार्थना समाप्त होने पर गवर्नर की पत्नी ने उसे अपने पास आने का संकेत किया।

"तुमने प्रिंसेस को देखा?" उसने काली पोशाक पहने और भजन-मण्डली के पीछे खड़ी महिला की ओर संकेत करते हुए पूछा।

निकोलाई ने टोपी के नीचे से नज़र आनेवाली पार्श्व झलक से तो इतना नहीं, जितना कि सतर्कता, भय और दया की उस भावना से उसे फ़ौरन पहचान लिया जो उसी क्षण उसपर हावी हो गयी थी। अपने विचारों में सम्भवतः बेहद डूबी-खोयी हुई प्रिंसेस गिरजाघर से बाहर जाने के पहले अपने ऊपर अन्तिम बार सलीब के निशान बना रही थी।

निकोलाई ने हैरानी से उसके चेहरे की तरफ़ देखा। यह वही चेहरा था जो उसने पहले देखा था, उसपर सूक्ष्म आत्मिक चिन्तन का वही सामान्य भाव था, किन्तु अब उसपर दूसरे ही ढंग की दीप्ति

थी। अब इस चेहरे पर दुख, अनुरोध और आशा का भाव था। जैसाकि उसकी उपस्थिति में निकोलाई के साथ पहले होता था, उसने प्रिंसेस के क़रीब जाने के लिये गवर्नर की पत्नी से सलाह लेने की प्रतीक्षा नहीं की, ख़ुद से भी यह नहीं पूछा कि उसके साथ गिरजे में बात करना अच्छा या शिष्ट होगा अथवा नहीं, वह उसके पास चला गया और बोला कि उसने उसकी मुसीबत के बारे में सुना है और इसके लिये वह सच्चे दिल से सहानुभूति प्रकट करता है। निकोलाई की आवाज़ सुनते ही प्रिंसेस का चेहरा सहसा तीव्र प्रकाश से चमक उठा और उसने उसके दुख और हर्ष को एकसाथ आलोकित कर दिया।

"मैं आपसे केवल इतना ही कहना चाहता हूं, प्रिंसेस, कि प्रिंस अन्द्रेई निकोलायेविच अगर ज़िन्दा न होते तो रेजिमेंट-कमांडर होने के नाते अख़बारों में उनके नाम की फ़ौरन घोषणा कर दी गयी होती।"

प्रिंसेस मरीया ने उसकी ओर देखा, उसके शब्दों को वह नहीं समझी, किन्तु उसके चेहरे पर नज़र आनेवाले सहानुभूतिपूर्ण वेदना के भाव से उसे ख़ुशी हुई।

"मैं ऐसे अनेक उदाहरण जानता हूं जब छर्रों से घायल होने के फलस्वरूप (अख़बारों में विस्फोटक गोले का उल्लेख था) या तो फ़ौरन मृत्यु हो जाती है या फिर, इसके विपरीत, बहुत हल्का घाव होता है," निकोलाई ने कहा। "हमें यही आशा करनी चाहिये कि सब कुछ ठीक-ठाक होगा और मुझे विश्वास है कि..."

प्रिंसेस मरीया ने उसे बीच में ही टोक दिया।

"ओह, यह तो बहुत ही भया..." उसने कहना शुरू किया और विह्वलता के कारण अपना वाक्य पूरा किये बिना सजीलेपन से (वैसे ही सजीलेपन से जैसे निकोलाई की उपस्थिति में वह सभी कुछ करती थी) सिर झुकाकर तथा कृतज्ञतापूर्वक उसकी ओर देखकर मौसी के पीछे-पीछे चल दी।

इस शाम को निकोलाई किसी के यहां भी नहीं गया और इस उद्देश्य से घर पर ही रहा कि घोड़े बेचनेवाले का कुछ हिसाब-किताब निपटा दे। जब यह काम ख़त्म हुआ तो किसी के यहां जाने के लिये देर हो चुकी थी, किन्तु अभी सोने का वक़्त भी नहीं हुआ था। इसलिये अपने कमरे में अकेला ही इधर-उधर जाता हुआ वह अपने जीवन पर सोच-विचार करने लगा, जैसाकि वह बहुत कम ही करता था।

स्मोलेन्स्क के क़रीब प्रिंसेस मरीया के साथ हुई भेंट ने निकोलाई के मन पर मधुर छाप छोड़ी थी। इस चीज़ ने कि उस समय ऐसी विशेष परिस्थितियों में उसके साथ उसकी भेंट हुई तथा इस चीज़ ने भी कि कभी उसकी मां ने एक धनी पत्नी के रूप में उसकी ओर संकेत किया था, अपना असर दिखाया और इसीलिये उसने उसकी तरफ़ ख़ास ध्यान दिया। वोरोनेज़ में, मौसी के घर पर हुई भेंट की छाप केवल मधुर ही नहीं, बल्कि गहरी भी थी। निकोलाई उस विशेष नैतिक सौन्दर्य से हैरान रह गया जो इस बार उसने उसमें पाया। फिर भी वह जाने की तैयारी कर रहा था और उसके दिमाग़ में इस बात का अफ़सोस पैदा करनेवाला यह ख़्याल तक नहीं आया था कि वोरोनेज़ से जाने पर वह अपने को उसके साथ भेंट की सम्भावना से वंचित कर देगा। किन्तु बड़े गिरजे में प्रिंसेस मरीया के साथ हुई आज की भेंट ने निकोलाई के दिल पर (वह ऐसा अनुभव करता था) उससे कहीं गहरी छाप छोड़ी जितनी उसने आशा की थी और उससे भी कहीं गहरी कि उसके मन का चैन बना रह सकता। प्रिंसेस के पीले, पतले, संतप्त चेहरे, उसकी चमकती नज़र, उसकी धीमी-धीमी तथा सजीली गति-विधियों और सबसे बढ़कर तो उसके पूरे नाक-नक़्शे पर झलकने-वाले गहन और मृदुल दुख ने उसे बेचैन कर दिया तथा उसमें गहरी सहानुभूति पैदा कर दी। रोस्तोव पुरुषों में उच्च आत्मिक भाव को बर्दाश्त नहीं कर सकता था (इसी कारण प्रिंस अन्द्रेई उसे अच्छा नहीं लगता था), वह उसे तिरस्कारपूर्वक दार्शनिकता और कल्पना-विलास कहता था, किन्तु प्रिंसेस मरीया के दुख में, जो उसके आत्मिक संसार की गहराई को सामने लाता था, जिससे निकोलाई ख़ुद अनजान था, उसे अदम्य आकर्षण की अनुभूति होती थी।

"कमाल की लड़की होना चाहिये इसे तो! एकदम फ़रिश्ता!" वह अपने आपसे कह रहा था। "क्यों मैं आज़ाद नहीं हूं, क्यों मैंने सोन्या को वचन देने की जल्दी की?" और बरबस वह अपने मन में इन दोनों की तुलना करने लगा – आत्मिक गुणों की दृष्टि से एक कितनी अकिंचन तथा दूसरी कितनी समृद्ध है और चूंकि ख़ुद निकोलाई में ये गुण नहीं थे, इसीलिये वह इनका इतना ऊंचा मूल्यांकन करता था। उसने यह कल्पना करने की कोशिश की कि अगर वह वचनबद्ध न होकर स्वतन्त्र होता तो क्या होता। किस तरह वह उसके सामने विवाह

का प्रस्ताव पेश करता और वह उसकी पत्नी बन जाती? नहीं, उसके लिये यह कल्पना करना सम्भव नहीं था। वह संत्रस्त हो उठा और अपने सामने कोई भी स्पष्ट चित्र नहीं बना सका। सोन्या के साथ तो वह बहुत पहले ही भविष्य की तस्वीर बना चुका था। वह भविष्य सीधा-सादा और स्पष्ट था, क्योंकि उसपर सोच-विचार किया जा चुका था, सोन्या में जो कुछ था, वह उसे जानता था। किन्तु प्रिंसेस मरीया के साथ भावी जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती थी, क्योंकि वह उसे समझता नहीं था, केवल प्यार करता था।

सोन्या के बारे में कल्पना करने में कुछ विनोदशीलता थी, कुछ मनोरंजन-सा था। किन्तु प्रिंसेस मरीया के बारे में सोचना हमेशा कठिन और कुछ-कुछ भयभीत करनेवाला होता था।

"वह कैसे प्रार्थना कर रही थी!" निकोलाई याद करने लगा। "साफ़ दिखाई दे रहा था कि उसकी आत्मा पूरी तरह से उसमें डूबी हुई थी। हां, यह वह प्रार्थना थी जो पहाड़ों को हिला देती है और मुझे यक़ीन है कि उसकी प्रार्थना सुनी जायेगी। जो कुछ मुझे चाहिये, मैं उसके लिये क्यों प्रार्थना नहीं करता?" उसे ख़्याल आया। "मुझे क्या चाहिये? आज़ादी, सोन्या से मुक्ति। वह ठीक ही कह रही थी," निकोलाई को गवर्नर की बीवी के शब्द याद हो आये, "अगर मैं उससे शादी कर लेता हूं तो दुर्भाग्य के सिवा इसका और कोई नतीजा नहीं निकलेगा। गड़बड़-घुटाला, अम्मां के दिल को धक्का... हमारी माली हालत... वह भी चौपट, सब कुछ भयानक रूप से चौपट हो जायेगा! फिर मैं उसे प्यार भी तो नहीं करता हूं। हां, उस तरह से प्यार नहीं करता हूं जैसे करना चाहिये। हे भगवान! मुझे इस भयानक, इस असहाय स्थिति से उबारिये!" वह अचानक प्रार्थना करने लगा। "हां, प्रार्थना तो पहाड़ों को हिला देती है, किन्तु उसमें आस्था होनी चाहिये और ऐसे प्रार्थना नहीं करनी चाहिये जैसे बचपन में मैं और नताशा किया करते थे कि बर्फ़ चीनी में बदल जाये और फिर यह देखने के लिये बाहर अहाते में भाग जाते थे कि हिम शक्कर में बदल रहा है या नहीं। नहीं, लेकिन अब तो मैं ऐसी बेकार बातों के लिये प्रार्थना नहीं करता हूं," उसने अपना पाइप मुंह से निकालकर एक कोने में रखते और हाथ बांधकर देव-प्रतिमा के सामने खड़े होते हुए कहा। प्रिंसेस मरीया की

याद से विह्वल होकर वह ऐसे प्रार्थना करने लगा जैसे उसने एक ज़माने से नहीं की थी। जब लाव्रूश्का कुछ काग़ज़ लेकर कमरे में आया तो निकोलाई की आंखें आंसुओं से तर थीं और उसका गला रुंधा हुआ था।

"उल्लू कहीं का! जब तुम्हारी ज़रूरत नहीं होती, तभी आ धमकते हो!" निकोलाई जल्दी से अपनी मुद्रा बदलते हुए नौकर पर बरस पड़ा।

"गवर्नर साहब का आदमी आपके लिये ख़त लाया है," लाव्रूश्का ने उनींदे-से स्वर में उत्तर दिया।

"ख़ैर, ठीक है, धन्यवाद, जाओ!"

निकोलाई ने दो पत्र ले लिये। एक पत्र मां का था और दूसरा सोन्या का। उसने लिखावट से उन्हें पहचान लिया और पहले सोन्या का पत्र खोला। कुछ पंक्तियां पढ़ते ही उसके चेहरे का रंग उड़ गया और उसकी आंखें अविश्वास तथा प्रसन्नता से फैल-सी गयीं।

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता!" वह ऊंची आवाज़ में कह उठा। उसके लिये एक ही जगह पर बैठे रहने असम्भव हो गया और इसलिये वह पत्र को हाथ में लेकर उसे पढ़ता हुआ कमरे में इधर-उधर आने-जाने लगा। वह ख़त को जल्दी-जल्दी पढ़ गया, इसके बाद उसने उसे दूसरी और तीसरी बार पढ़ा और फिर कंधे उचकाकर, हाथ फैलाकर, मुंह बाये तथा नज़र को एक ही जगह टिकाये हुए कमरे के बीचोंबीच खड़ा रह गया। अभी-अभी वह इस विश्वास के साथ जो प्रार्थना करता रहा था कि भगवान उसे सुन लेंगे, उसकी वह प्रार्थना सुन ली गयी थी। किन्तु इससे निकोलाई इतना दंग रह गया कि मानो यह सब इतना अधिक असाधारण हो, कि उसने इसकी कभी आशा ही न की हो, कि इसका इतनी जल्दी से पूरा हो जाना ही मानो इस बात का प्रमाण था कि यह भगवान की कृपा का फल नहीं था जिनसे उसने प्रार्थना की थी, बल्कि यह एक सामान्य संयोग था।

वह गांठ, जो मानो रोस्तोव को मुक्त नहीं होने दे रही थी, सोन्या के पत्र से बिल्कुल अप्रत्याशित (जैसाकि निकोलाई को प्रतीत हुआ) और अकारण ही खुल गयी थी। उसने लिखा था कि पिछले दिनों की दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियां, मास्को में रोस्तोव-परिवार की लगभग सारी सम्पत्ति का नाश, काउंटेस द्वारा कई बार व्यक्त की गयी

निकोलाई और प्रिंसेस बोल्कोन्स्काया की शादी से सम्बन्धित उनकी इच्छा, पिछले कुछ समय से उसकी खामोशी और रुखाई – ये सभी बातें उसे यह निर्णय करने के लिये विवश कर रही हैं कि वह उसे उसके वचन से मुक्त कर दे, उसे पूरी आज़ादी दे दे।

"इस ख़्याल से मुझे बहुत मानसिक पीड़ा होती थी कि जिस परिवार ने मेरे लिये इतना कुछ किया है, मैं उसके दुख या उसमें फूट डालने का कारण हो सकती हूं," उसने लिखा था। "मेरे प्यार का एकमात्र लक्ष्य उन्हें सुखी देखना है जिन्हें मैं प्यार करती हूं। इसीलिये, निकोलस, मैं आपसे अनुरोध करती हूं कि आप अपने को स्वतंत्र मान सकते हैं और यह भी जान लें कि सभी कुछ के बावजूद कोई भी आपको उससे ज़्यादा प्यार नहीं कर सकेगा, जितना आपकी सोन्या करती है।"

दोनों पत्र त्रोइत्सा से* आये थे। दूसरा पत्र काउंटेस का था। इस पत्र में मास्को में बीते अन्तिम दिनों, वहां से रवानगी, आग और सारी सम्पत्ति के नष्ट हो जाने का वर्णन था। इस पत्र में काउंटेस ने इस बात का भी उल्लेख किया था कि उनके साथ जानेवाले घायलों में प्रिंस अन्द्रेई भी शामिल है। उसकी हालत बहुत खतरनाक थी, लेकिन अब डाक्टर का कहना है कि उसकी जान बचने की बड़ी उम्मीद है। सोन्या और नताशा उसकी सेवा-शुश्रूषा में लगी रहती हैं।

अगले दिन यह पत्र लेकर निकोलाई प्रिंसेस मरीया के पास गया। न तो निकोलाई और न प्रिंसेस मरीया ने ही इस बारे में एक भी शब्द मुंह से निकाला कि "नताशा उसकी सेवा-शुश्रूषा करती है" का क्या अर्थ हो सकता है। किन्तु इस पत्र की बदौलत प्रिंसेस मरीया के लिये निकोलाई अचानक रिश्तेदार-सा बन गया।

एक दिन बाद रोस्तोव ने प्रिंसेस मरीया को यारोस्लाव्ल के लिये विदा किया और कुछ दिन बीतने पर खुद भी अपनी रेजिमेंट में वापस चला गया।

---

* त्रोइत्से-सेर्गियेवा लाव्रा – मास्को के निकट मर्दों का मठ। – सं०

निकोलाई के नाम सोन्या का ख़त, जिससे उसकी प्रार्थना सुन ली गयी थी, त्रोइत्सा मठ से आया था। इस ख़त को लिखने का कारण यह था। किसी धनी लड़की से शादी का विचार बुज़ुर्ग काउंटेस के मन पर अधिकाधिक हावी होता जा रहा था। वह जानती थीं कि सोन्या ही इसमें सबसे बड़ी बाधा थी। पिछले कुछ समय में, ख़ास तौर पर बोगु-चारोवो में प्रिंसेस मरीया के साथ निकोलाई की भेंट के वर्णनवाला पत्र आने के बाद, काउंटेस के घर में सोन्या की ज़िन्दगी ज़्यादा से ज़्यादा मुश्किल होती जा रही थी। सोन्या से कोई अपमानजनक या जली-कटी बात कहने का एक भी मौक़ा काउंटेस अपने हाथ से नहीं जाने देती थीं।

किन्तु मास्को से रवाना होने के कुछ दिन पहले, उस समय की सारी परिस्थितियों से बहुत ही विह्वल और परेशान काउंटेस ने सोन्या को अपने पास बुलवाया और किसी भी तरह की तानेबाज़ी तथा मांग करने की जगह आंसू बहाते हुए उससे यह अनुरोध किया कि वह अपनी ख़ुशी की क़ुर्बानी कर दे, उसके साथ की गयी भलाई का बदला चुकाने के लिये निकोलाई के साथ अपना नाता तोड़ ले।

"जब तक तुम मुझे इसका वचन नहीं दे दोगी, तब तक मुझे चैन नहीं मिलेगा।"

सोन्या फूट-फूटकर रोई, सिसकियां भरते हुए उसने जवाब दिया कि वह सब कुछ करेगी, कि वह हर चीज़ के लिये तैयार है, किन्तु उसने इसका वचन नहीं दिया और उससे जो अपेक्षा की जा रही थी, अपने मन में उसके बारे में निर्णय नहीं कर पायी। उस परिवार की ख़ुशी के लिये, जिसने उसे पाला-पोसा था, उसे अपनी ख़ुशी की क़ुर्बानी करनी थी। सोन्या दूसरों के सुख के लिये त्याग करने की आदी थी। इस घर में उसकी स्थिति ऐसी थी कि केवल त्याग द्वारा ही वह अपनी ख़ूबी ज़ाहिर कर सकती थी, वह इसकी अभ्यस्त हो गयी थी और इस आत्म-त्याग को प्यार करती थी। किन्तु इस तरह के आत्म-त्याग के सभी कार्य-कलापों से उसे पहले तो इस चेतना से ख़ुशी होती थी कि ऐसा करके वह ख़ुद अपनी नज़र में तथा दूसरों की नज़र में ऊपर उठती है और इस तरह अपने को निकोलाई के अधिक योग्य बनाती

है जिसे वह अपने जीवन में सबसे ज़्यादा प्यार करती थी। किन्तु अब उसके लिये त्याग करने का मतलब उससे इन्कार करना था जो उसके बलिदान का सारा पुरस्कार था, उसके जीवन का सार था। अपनी ज़िन्दगी में उसने पहली बार उन लोगों के प्रति कटुता अनुभव की जिन्होंने उसपर इसलिये कृपा और उसके साथ इसलिये नेकी की थी कि बाद में उसे कहीं अधिक यातना दें। उसे नताशा से ईर्ष्या हुई जिसे कभी इस तरह का कुछ भी अनुभव नहीं करना पड़ा था, जिसे कभी किसी तरह के त्याग और बलिदानों की आवश्यकता नहीं हुई थी, जो दूसरों को अपने लिये बलिदान करने को विवश करती थी और फिर भी सभी की चहेती थी। सोन्या ने पहली बार यह अनुभव किया कि निकोलाई के प्रति उसके शान्त और निर्मल प्यार में से अचानक एक तीव्र भावना ऊपर उठने लगी है जो सभी सिद्धान्तों, सदाचार और धर्म से भी प्रबल थी। इसी भावना के प्रभाव से सोन्या ने, जो दूसरों पर निर्भर अपने जीवन के कारण बहुत-सी बातों को दिल में छिपाने की आदी हो गयी थी, अनचाहे ही अस्पष्ट-से शब्दों में काउंटेस को उत्तर दिया, उनसे और ज़्यादा बातचीत नहीं की तथा निकोलाई से मिलन की प्रतीक्षा का निर्णय किया, सो भी इस इरादे से कि इस मिलन द्वारा मुक्त करने के बजाय वह उसे हमेशा के लिये अपने कड़े बन्धन में कस लेगी।

रोस्तोव-परिवार द्वारा मास्को में बिताये गये अन्तिम दिनों की दौड़-धूप और विकरालता ने सोन्या के दिल में उन बोझिल विचारों को दबा दिया जो उसके मन को कचोटते रहते थे। लगातार काम-काज में जुटी रहने के फलस्वरूप उनसे निजात पाकर उसे ख़ुशी हुई। किन्तु जब उसे यह मालूम हुआ कि प्रिंस अन्द्रेई उनके घर में है तो बिल्कुल सच्चे मन से प्रिंस अन्द्रेई और नताशा के प्रति दयाभाव अनुभव करते हुए भी प्रसन्नता और अन्धविश्वास की यह भावना उसके दिल पर छा गयी कि भगवान उसे निकोलाई से अलग नहीं करना चाहते हैं। वह जानती थी कि नताशा केवल प्रिंस अन्द्रेई को प्यार करती थी और हमेशा प्यार करती रही है। वह जानती थी कि ऐसी भयानक परि-स्थितियों में उनके फिर से मिल जाने पर वे पुनः एक-दूसरे को प्यार करने लगेंगे और उनके बीच रिश्ता क़ायम हो जाने के फलस्वरूप निको-लाई प्रिंसेस मरीया से शादी नहीं कर सकेगा। पिछले कुछ समय और

यात्रा के पहले दिनों में जो कुछ हुआ था, उसकी सारी भयानकता के बावजूद इस चेतना से कि उसकी भलाई के लिये भाग्य उसके निजी मामलों में दख़ल दे रहा है, वह ख़ुशी महसूस करती थी।

अपनी यात्रा के दौरान रोस्तोव-परिवार पहली बार त्रोइत्सा मठ में ठहरा।

मठ के अतिथिगृह में रोस्तोव-परिवार को तीन बड़े कमरे दे दिये गये जिनमें से एक में प्रिंस अन्द्रेई को ठहराया गया। उस दिन उसकी तबीयत बहुत बेहतर थी। नताशा उसके पास बैठी हुई थी। बग़ल के कमरे में काउंट और काउंटेस मठाधीश से बहुत आदरपूर्वक बातचीत कर रहे थे जो अपने इन पुराने परिचितों और संरक्षकों से मिलने आया था। सोन्या भी यहीं बैठी थी और उसे यह जिज्ञासा परेशान कर रही थी कि प्रिंस अन्द्रेई तथा नताशा के बीच क्या बातचीत हो रही है। दरवाज़े के पीछे से वह इनकी आवाज़ें सुन रही थी। प्रिंस अन्द्रेई के कमरे का दरवाज़ा खुला। चेहरे पर विह्वलता का भाव लिये हुए नताशा बाहर आई और मठाधीश की ओर कोई ध्यान दिये बिना, जो उसके स्वागत को उठकर खड़ा हो गया था और जिसने आशीर्वाद देने के लिये दायें हाथ की चौड़ी आस्तीन को भी पीछे हटा लिया था, सोन्या के पास गयी और उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया।

"नताशा, क्या बात है? इधर आओ," काउंटेस ने कहा।

नताशा ने मठाधीश से आशीर्वाद लिया और उसने सलाह दी कि वह भगवान तथा सन्तों की कृपादृष्टि पाने के लिये प्रार्थना करे।

मठाधीश के जाने के फ़ौरन बाद नताशा अपनी सहेली का हाथ थामकर उसे ख़ाली कमरे में ले गयी।

"सोन्या, तुम हां कहती हो न? वह ज़िन्दा रहेगा न?" नताशा ने कहा। "सोन्या, मैं कितनी ख़ुश और कितनी दुखी हूं! सोन्या, मेरी प्यारी,– सब कुछ वैसे ही है जैसे पहले था। काश, वह ज़िन्दा रह जाये! उसे मरना नहीं चाहिये... क्योंकि, क्योंकि..." और नताशा रो पड़ी।

"हां! मैं यह जानती थी! शुक्र है भगवान का," सोन्या ने कहा। "वह ज़िन्दा रहेगा!"

सोन्या अपनी सहेली के भय और चिन्ता के कारण तथा अपने व्यक्तिगत विचारों के कारण भी, जिनकी उसने किसी से भी चर्चा

नहीं की थी, अपनी सहेली की तुलना में कुछ कम विह्वल नहीं थी। वह सिसकते हुए नताशा को चूम रही थी, तसल्ली दे रही थी। "काश, वह ज़िन्दा रहे!" सोन्या सोच रही थी। रोने, बातें करने और आंसू पोंछने के बाद दोनों सहेलियां प्रिंस अन्द्रेई के कमरे के दरवाज़े के क़रीब गयीं। नताशा ने सावधानी से दरवाज़ा खोलकर कमरे में झांका। सोन्या अधखुले दरवाज़े के क़रीब उसकी बग़ल में खड़ी थी।

प्रिंस अन्द्रेई तीन तकियों पर ऊंचा लेटा हुआ था। उसका पीला चेहरा शान्त था, आंखें बन्द थीं और साफ़ नज़र आ रहा था कि वह कैसे चैन से सांस ले रहा था।

"ओह, नताशा!" अपनी मौसेरी बहन का हाथ पकड़ते और दरवाज़े से दूर हटते हुए सोन्या अचानक लगभग चीख़ उठी।

"क्या बात है? क्या बात है?" नताशा ने पूछा।

"यह तो वही है, वही..." सोन्या ने जवाब दिया। उसका चेहरा पीला हो गया था और होंठ कांप रहे थे।

नताशा ने धीरे से दरवाज़ा बन्द कर दिया और अभी यह न समझते हुए कि उससे क्या कहा जा रहा है, सोन्या को अपने साथ लेकर खिड़की के पास चली गयी।

"तुम्हें याद है," सोन्या ने कहा। उसके चेहरे पर भय और गम्भीरता का भाव था, "तुम्हें याद है, जब मैंने तुम्हारे वजाय दर्पण में देखा था... ओतरादनोये में, क्रिसमस के मौक़े पर... याद है कि तब मैंने क्या देखा था?.."

"हां, हां!" नताशा आंखें फाड़-फाड़कर देखते और बहुत अस्पष्टता से उन कुछ शब्दों को याद करते हुए बोली जो सोन्या ने प्रिंस अन्द्रेई के बारे में, जिसे उसने बिस्तर पर लेटे देखा था, उस समय कहे थे।

"तुम्हें याद है न?" सोन्या कहती गयी। "मैंने तब उसे देखा था और सबको, तुम्हें और दुन्याशा को भी इसके बारे में बताया था। मैंने देखा था कि वह बिस्तर पर लेटा हुआ है," सोन्या कहती जा रही थी और हर तफ़सील पर हाथ तथा उंगली ऊपर उठाकर ज़ोर देती जाती थी, "कि उसकी आंखें मुंदी हुई हैं, वह गुलाबी रंग की रज़ाई ओढ़े है और एक हाथ दूसरे के ऊपर टिकाये हुए है," उसने ख़ुद को यह विश्वास दिलाते हुए अपना कथन जारी रखा कि सारी तफ़सीलें वही थीं जो उसने उस वक़्त दर्पण में **देखी थीं**। उस वक़्त तो उसने

कुछ नहीं देखा था और उसके दिमाग़ में जो भी बातें आ गयी थीं, उसने वही कह दी थीं। किन्तु उस वक़्त उसने जो बातें अपने मन से बनायी थीं, वे अब उसे अन्य किसी भी स्मृति की भांति वास्तविक लग रही थीं। उसने उस वक़्त जो कुछ कहा था, वह न केवल उसे याद नहीं था – कि वह उसकी तरफ़ देखकर मुस्कराया था और कोई लाल चीज़ ओढ़े था – बल्कि उसे इस चीज़ का पक्का यक़ीन भी था कि उस वक़्त उसने यही देखा और कहा था कि वह गुलाबी रंग की रज़ाई ओढ़े था, हां, गुलाबी रंग की और उसकी आंखें मुंदी हुई थीं।

"हां, हां, गुलाबी रंग की," नताशा कह उठी। उसे भी अब ऐसा लगता था कि तब गुलाबी रंग का ही उल्लेख किया गया था और इसी में उसे भविष्यवाणी की मुख्य विलक्षणता तथा रहस्यमयता प्रतीत हो रही थी।

"किन्तु इसका अर्थ क्या है?" नताशा ने सोचते हुए पूछा।

"ओह, मुझे मालूम नहीं। यह सब कितना अजीब है!" सोन्या ने सिर को हाथों में थामते हुए जवाब दिया।

कुछ मिनट के बाद प्रिंस अन्द्रेई ने घण्टी बजायी। नताशा उसके पास चली गयी और सोन्या ऐसी उत्तेजना और विह्वलता की स्थिति में, जैसीकि वह बहुत कम ही अनुभव करती थी, खिड़की के पास खड़ी रहकर इस घटना की सारी विलक्षणता पर विचार करती रही।

इसी दिन सेना में पत्र भेजने का संयोग बन गया और काउंटेस ने बेटे को पत्र लिखा।

"सोन्या," काउंटेस ने पत्र लिखते-लिखते सिर ऊपर उठाकर अपनी भानजी को उस समय सम्बोधित किया, जब वह उनके क़रीब से गुज़री, "तुम निकोलाई को पत्र नहीं लिखोगी?" काउंटेस ने धीमी, कांपती आवाज़ में पूछा। चश्मे में से देख रही काउंटेस की थकी-थकी आंखों की दृष्टि में सोन्या ने वह सभी कुछ पढ़ लिया जो काउंटेस इन शब्दों के द्वारा कहना चाहती थीं। काउंटेस की इस दृष्टि में विनती थी, इन्कार हो जाने का भय था, इस चीज़ के लिये शर्म का भाव था कि उन्हें इसके लिये अनुरोध करना पड़ रहा था और इन्कार हो जाने पर सख़्त नफ़रत करने की तत्परता भी झलक रही थी।

सोन्या काउंटेस के पास गयी, उनके सामने घुटनों के बल हो गयी और उनका हाथ चूमकर बोली:

हां, मैं लिखूंगी, अम्मां।"

इस दिन जो कुछ हुआ था, उस सब से, और ख़ास तौर पर भविष्य के बारे में अपने रहस्यपूर्ण अनुमान की पूर्त्ति से, जो अभी-अभी हुई थी, सोन्या बहुत नर्मदिल, विह्वल और द्रवित थी। अब, जबकि वह यह जानती थी कि नताशा और प्रिंस अन्द्रेई के बीच फिर से पुराने सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर निकोलाई प्रिंसेस मरीया से शादी नहीं कर सकेगा, उसे आत्म-त्याग की अपनी उस मन:स्थिति के लौट आने की चेतना से खुशी हुई जो उसे अच्छी लगती थी और जिसकी वह आदी हो चुकी थी। इसलिये अश्रुपूरित आंखों और इस बात की चेतना से प्रसन्नता अनुभव करते हुए कि वह बहुत बड़ी दरियादिली दिखा रही है, उसने आंसुओं के कारण, जो उसकी काली, मख़मली आंखों को धुंधला देते थे, कई बार रुक-रुककर वह मर्मस्पर्शी पत्र लिखा जिसे पाकर निकोलाई को इतनी अधिक हैरानी हुई थी।

९

प्येर को जिस हवालात में ले जाया गया, उसके सभी सैनिक और अफ़सर भी, जिन्होंने उसे गिरफ़्तार किया था, उसके साथ शत्रुता और साथ ही आदरपूर्वक पेश आते थे। उसके प्रति उनके व्यवहार में अभी इस दुविधा का आभास मिलता था कि कहीं वह कोई बहुत महत्त्वपूर्ण व्यक्ति तो नहीं और उसके प्रति उनकी शत्रुता उस मार-पीट का नतीजा थी जो कुछ ही देर पहले उनके बीच हुई थी।

किन्तु अगले दिन की सुबह को जब सन्तरी बदल गये तो प्येर ने अनुभव किया कि नये पहरेदारों – सैनिकों और अफ़सरों – को उसमें वैसी ही दिलचस्पी नहीं है, जैसी उन्हें थी जिन्होंने उसे गिरफ़्तार किया था। वास्तव में ही उस दिन के पहरेदार किसानों का कोट पहने इस लम्बे-तड़ंगे और मोटे व्यक्ति के रूप में ऐसे जोशीले व्यक्ति की झलक पाने में असमर्थ थे जो लुटेरों और रक्षा-दल के सैनिकों के साथ ख़ूब डटकर लड़ा था और जिसने बालक को बचाने के बारे में बड़े उत्साह-पूर्वक शब्द कहे थे। ये तो प्येर को उन रूसी क़ैदियों में से एक यानी

१७ नम्बरवाले उस बन्दी के रूप में ही देखते थे जिन्हें उच्चाधिकारियों के आदेश से किसी कारण गिरफ़्तार किया गया था। अगर प्येर में उन्हें कोई ख़ास बात नज़र आती थी तो वह उसकी दबंग और चिन्तनमग्न मुख-मुद्रा तथा फ़्रांसीसी भाषा की जानकारी थी जो फ़्रांसीसियों को भी आश्चर्यचकित करती थी। इस चीज़ के बावजूद प्येर को इसी दिन अन्य बन्दियों के कमरे में भेज दिया गया, क्योंकि फ़ौजी अफ़सर को उस बड़े कमरे की ज़रूरत थी जिसमें प्येर अकेला था।

प्येर के साथ गिरफ़्तार किये गये सभी रूसी निचले तबक़ों के लोग थे। प्येर को कुलीन के रूप में पहचानकर वे सभी उससे कन्नी काटते थे और विशेषत: इसलिये कि वह फ़्रांसीसी बोलता था। प्येर बहुत उदास मन से अपने बारे में उनकी फबतियां सुनता था।

उसी शाम को प्येर को मालूम हुआ कि गिरफ़्तार किये गये इन सभी लोगों को (जिनमें सम्भवत: वह भी शामिल होगा) आग लगाने के जुर्म में फ़ौजी अदालत में पेश किया जायेगा। तीसरे दिन अन्य बन्दियों के साथ प्येर को किसी घर में ले जाया गया जहां पकी हुई सफ़ेद मूंछोंवाला एक जनरल, दो कर्नल और अन्य फ़्रांसीसी बैठे थे जिनकी आस्तीनों पर रूमाल बंधे थे*। अन्य बन्दियों की भांति प्येर से भी उस अचूक और नपे-तुले कृत्रिम अन्दाज़ में, जिसमें आम तौर पर मुजरिमों से सवाल पूछे जाते हैं और जिसका उद्देश्य मानवीय दुर्बलता को उभारना होता है, ये प्रश्न किये गये कि वह कौन है, वह किस जगह पर था और किस उद्देश्य से वहां गया था, आदि, आदि।

जैसाकि सभी मुक़दमों के मामले में होता है, ये प्रश्न जीवन के कार्य-कलापों के सार की ओर कोई ध्यान नहीं देते थे, इस सार को सामने लाना असम्भव बनाते थे और इनका एकमात्र उद्देश्य ऐसा नावदान पेश करना था जिसमें से मुजरिमों के जवाब गुज़रें और पूछ-ताछ करनेवाले अफ़सरों के मन के अनुरूप लक्ष्य की पूर्त्ति कर दें यानी वे अपराधी सिद्ध हो जायें। प्येर जैसे ही कुछ ऐसा कहने लगता जिससे इस लक्ष्य की पूर्त्ति में बाधा पड़ती, वैसे ही नावदान को हटा दिया जाता और उसके जवाब व्यर्थ होकर रह जाते थे। इसके अलावा प्येर उलझन भरी वही हैरानी भी अनुभव कर रहा था, जो मुक़दमे के

---

* उस समय के फ़्रांस में उच्चाधिकारी का विशेष चिह्न। – सं०

वक़्त सभी मुजरिम महसूस करते हैं, कि किसलिये उससे ये सभी सवाल पूछे जा रहे हैं। उसे अनुभव हो रहा था कि केवल कृपा करते हुए या शिष्टतावश उसके जवाबों को एक विशेष दिशा में मोड़ने के लिये इस नाबदान का उपयोग किया जा रहा है। वह जानता था कि वह इन लोगों के वश में है, कि इनकी शक्ति ही उसे यहां लायी है, कि यह ताक़त ही उसे उनके सवालों के जवाब देने को मजबूर कर रही है और इस अदालती कार्रवाई का एकमात्र उद्देश्य उसे अपराधी सिद्ध करना है। चूंकि उनके पास ताक़त थी और वे उसे अपराधी ही साबित करना चाहते थे, इसलिये सवाल करने और मुक़दमा चलाने के इस नाटक की क्या ज़रूरत थी? यह तो बिल्कुल स्पष्ट था कि सभी उत्तरों को उसका अपराध ही सिद्ध करना था। यह पूछा जाने पर कि जिस वक़्त उसे गिरफ़्तार किया गया, वह क्या कर रहा था, प्येर ने कुछ दुखद ढंग से यह जवाब दिया कि वह आग की ज्वालाओं से बचाये गये बालक को उसके माता-पिता को लौटा रहा था। लुटेरों के साथ उसने मार-पीट क्यों की? – इस सवाल के जवाब में प्येर ने कहा कि एक औरत की रक्षा करते हुए उसने ऐसा किया, कि अपमानित की जानेवाली नारी की रक्षा करना हर किसी का कर्त्तव्य है, कि... उसे यह कहकर रोक दिया गया कि इस चीज़ का इस मामले से कोई सरोकार नहीं है। वह जलते घर के अहाते में किसलिये था जहां गवाहों ने उसे देखा था? इस सवाल का उसने जवाब दिया कि वह यह देखने गया था कि मास्को में क्या हो रहा है। उसे फिर से रोक दिया गया – उससे यह नहीं पूछा जा रहा था कि वह किधर जा रहा था, बल्कि यह कि वह आग के क़रीब किसलिये गया था। वह कौन है? उससे फिर वही पहला सवाल पूछा गया जिसका उसने उत्तर नहीं देना चाहा था। उसने इस बार भी यही जवाब दिया कि वह यह नहीं बता सकता।

"यह लिख लीजिये, यह बुरी बात है। बहुत बुरी बात है," सफ़ेद मूंछों और लाल-लाल चेहरेवाले जनरल ने कड़ाई से कहा।

चौथे दिन ज़ूबोव्स्की फ़सील पर आग लग गयी।

तेरह अन्य बन्दियों के साथ प्येर को क्रीम्स्की ब्रोद पर किसी व्यापारी के घर के बग्घीख़ाने में ले जाया गया। सड़कों पर से जाते हुए धुएं के कारण, जो शहर के ऊपर लटका हुआ-सा था, प्येर के लिये सांस लेना कठिन हो रहा था। सभी दिशाओं में आग दिखाई दे

रही थी। प्येर इस समय मास्को के जलाये जाने के महत्त्व को नहीं समझता था और आग की उन लपटों को देखकर संत्रस्त हो रहा था।

क्रीम्स्की ब्रोद के क़रीबवाले इस घर के बग्घीख़ाने में प्येर चार दिन तक और रहा तथा इन दिनों के दौरान फ़्रांसीसी सैनिकों की बातचीत से उसे यह पता चल गया कि यहां क़ैद सभी व्यक्तियों के लिये हर दिन मार्शल के निर्णय का इन्तज़ार हो रहा था। किस मार्शल के निर्णय का – प्येर सैनिकों से यह मालूम नहीं कर पाया। सैनिकों के लिये मार्शल सम्भवतः सत्ता का उच्चतम और कुछ रहस्यपूर्ण प्रतीक था।

८ सितम्बर तक के ये दिन, जब बन्दियों को पूछ-ताछ के लिये फिर से बुलाया गया, प्येर के लिये सबसे कठिन दिन थे।

१०

८ सितम्बर को एक अफ़सर बग्घीख़ाने में बन्दियों के पास आया। वह कोई बहुत ही महत्त्वपूर्ण अफ़सर था, यह उसके प्रति सन्तरियों के सम्मान-प्रदर्शन से स्पष्ट हो रहा था। शायद मुख्य सैनिक कार्यालय से आनेवाले इस अफ़सर ने, जो हाथ में एक सूची लिये था, सभी रूसियों की हाज़िरी ली और प्येर को ऐसे व्यक्ति के रूप में सम्बोधित किया जो अपना नाम नहीं बताना चाहता। सभी बन्दियों पर उदासीन और अलसायी-सी दृष्टि डालने के बाद उसने पहरे के अफ़सर को यह आदेश दिया कि मार्शल के सामने पेश करने के पहले इन सबको ढंग के कपड़े पहना दिये जायें और साफ़-सुथरा बना दिया जाये। एक घण्टे बाद सैनिकों का एक दस्ता आया और तेरह अन्य बन्दियों के साथ प्येर को देविच्ये नाम के मैदान में ले गया। बारिश के बाद दिन निखरा हुआ और धूप-नहाया था तथा हवा असाधारण रूप से स्वच्छ थी। उस दिन की तरह, जिस दिन प्येर को ज़ूबोव्स्की फ़सीलवाली हवालात से लाया गया था, धुआं बहुत नीचा नहीं था, वह साफ़ हवा में स्तम्भाकार-सा ऊपर उठ रहा था। आग की लपटें कहीं पर भी नज़र नहीं आ रही थीं, किन्तु सभी ओर से धुएं के बादल ऊपर उठ रहे थे और

सारा मास्को, प्येर के लिये जो कुछ भी देखना सम्भव हो सका, सब कुछ जला-झुलसा हुआ था। सभी ओर जले हुए घर और उनके बीच ऊंचे रूसी चूल्हे-तन्दूर और चिमनियां तथा कहीं-कहीं ईंटोंवाले पक्के घरों की जली, काली दीवारें दिखाई देती थीं। प्येर जल चुके घरों को बहुत ग़ौर से देख रहा था और मास्को के अपने जाने-पहचाने मुहल्लों को पहचानने में असमर्थ था। कहीं-कहीं पर आग से बिल्कुल बच गये गिरजाघर नज़र आ रहे थे। पूरी तरह से सही-सलामत क्रेमलिन अपनी मीनारों और इवान महान के घण्टाघर की सफ़ेद छटा दिखा रहा था। नोवोदेविची नारी मठ का गुम्बज तो नज़दीक ही सुखद आभा बिखरा रहा था और उसके घण्टों की गूंज तो ख़ास तौर पर बहुत ज़ोर से सुनायी दे रही थी। इस घण्टानाद ने प्येर को यह याद दिला दिया कि आज इतवार का दिन और मां मरियम के जन्मदिन का पर्व है। किन्तु ऐसे लगता था कि इस पर्व को मनानेवाला तो कोई था ही नहीं; सभी ओर जले हुए खण्डहर थे और इने-गिने जो रूसी उन्हें दिखाई दिये, वे ख़स्ताहाल और डरे-सहमे थे तथा फ़्रांसीसियों को देखते ही कहीं छिप जाते थे।

स्पष्ट था कि रूसी घोंसला तोड़ और बरबाद कर दिया गया था, किन्तु प्येर को इस चीज़ का भी धुंधला-सा आभास हो रहा था कि जीवन के रूसी रंग-ढंग के पीछे, उस नष्ट किये गये घोंसले के ऊपर फ़्रांसीसियों ने अपनी, बिल्कुल दूसरी और दृढ़ व्यवस्था क़ायम कर दी है। उसने इसे सीधी क़तारों में चल रहे प्रफुल्ल और प्रसन्नचित्त फ़्रांसीसी सैनिकों के रूप में अनुभव किया जो उसे तथा अन्य अपराधियों को ले जा रहे थे; एक सैनिक द्वारा हांकी जा रही दो घोड़ों की बग्घी में सामने की ओर से अपने क़रीब से गुज़रनेवाले किसी महत्त्वपूर्ण फ़्रांसीसी अफ़सर को देखकर भी उसे इसकी चेतना हुई। मैदान के बायें पहलू से सुनायी दे रही रेजिमेंट के बैंड की उल्लासपूर्ण ध्वनियों से उसे इसका एहसास हुआ तथा ख़ास तौर पर तो उसने उस सूची के आधार पर इस चीज़ को महसूस किया और समझा जो यहां आनेवाले फ़्रांसीसी अफ़सर ने बन्दियों की हाज़िरी लेते वक़्त इस सुबह को पढ़ी थी। कुछ सैनिक दसियों अन्य लोगों के साथ प्येर को पहले एक और फिर दूसरी जगह पर ले गये; उसे ऐसा प्रतीत होता था कि ये सैनिक उसे भूल सकते हैं, अन्य लोगों के साथ उसे गड़बड़ा सकते हैं।

किन्तु नहीं, पूछ-ताछ के वक़्त उसके द्वारा दिये गये उत्तरों के कारण "अपना नाम न बतानेवाला व्यक्ति" के रूप में वह सभी की स्मृति में अंकित होकर रह गया था। इसी संज्ञा या नाम के साथ, जो प्येर को भयभीत करता था, चेहरों पर इस बात का पूरा विश्वास लिये हुए कि वह और बाक़ी सभी बन्दी भी वही हैं जिनकी ज़रूरत है तथा इन्हें वहीं ले जाया जा रहा है, जहां ले जाना चाहिये, फ़्रांसीसी सैनिक उसे कहीं लिये जा रहे थे। प्येर अपने को लकड़ी के उस छोटे-से टुकड़े के समान महसूस कर रहा था जो किसी ऐसी मशीन के पहियों के बीच फंस गया हो जिससे वह अपरिचित था, किन्तु जो ढंग से काम करती थी।

अन्य अपराधियों के साथ प्येर को देविच्ये मैदान के दायें पहलू की तरफ़ तथा मठ के क़रीब ही बहुत बड़े बाग़वाले एक विराट सफ़ेद मकान के सामने ले जाया गया। यह प्रिंस शेर्बातोव का मकान था। इस घर के मालिक के पास प्येर अक्सर आता रहा था और, जैसाकि उसे सैनिकों की बातचीत से पता चला, अब यहां मार्शल, एकम्यूल का ड्यूक दावू रह रहा था।

सैनिक इन्हें पोर्च में लाये और एक-एक करके भीतर ले जाने लगे। प्येर का छठा नम्बर आया। शीशोंवाली गैलरी, ड्योढ़ी और प्रवेश-कक्ष को लांघकर, जिनसे प्येर सुपरिचित था, सैनिक उसे एक लम्बे और कम ऊंचे कमरे के पास ले गये जिसके दरवाज़े पर एडजुटेंट खड़ा था।

नाक पर चश्मा टिकाये दावू कमरे के सिरे पर मेज़ के सामने बैठा था। प्येर उसके क़रीब चला गया। दावू सम्भवतः अपने सामने रखे काग़ज़ को पढ़ने में व्यस्त था और इसलिये उसने नज़र ऊपर नहीं उठाई। दृष्टि झुकाये हुए ही उसने धीमी आवाज़ में पूछा:

"आप कौन हैं?"

प्येर इसलिये ख़ामोश रहा कि अपने मुंह से एक भी शब्द निकालने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था। प्येर के लिये दावू एक सामान्य फ़्रांसीसी जनरल ही नहीं, बल्कि अपनी क्रूरता के लिये बदनाम आदमी भी था। किसी छात्र के उत्तर की प्रतीक्षा करते हुए सब्र से काम लेने-वाले कठोर अध्यापक की तरह बैठे दावू के निर्मम चेहरे को देखते हुए प्येर महसूस कर रहा था कि हर क्षण की देरी उसकी मौत का कारण बन सकती है। किन्तु उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या

कहे। पहली पूछ-ताछ के वक़्त उसने जो कुछ कहा था, उसी को दोहरा देने की वह हिम्मत नहीं कर पा रहा था। अपने पद और सामाजिक स्थिति को प्रकट कर देना ख़तरनाक और लज्जाजनक भी था। प्येर ख़ामोश रहा। उसके कुछ तय करने के पहले ही दावू ने सिर ऊपर उठाया, ऐनक को माथे पर ऊपर कर लिया, आंखें सिकोड़ीं और बहुत ग़ौर से प्येर को देखा।

"मैं इस आदमी को जानता हूं," सम्भवतः प्येर को डराने के इरादे से उसने नपे-तुले अन्दाज़ और कठोर आवाज़ में कहा। पीठ पर अनुभव होनेवाली झुरझुरी ने प्येर के सिर को शिकंजे की तरह जकड़ लिया।

"जनरल, आप मुझे नहीं जान सकते, मैं आपसे कभी नहीं मिला हूं..."

"यह रूसी जासूस है," दावू ने कमरे में उपस्थित एक अन्य जनरल को सम्बोधित करते हुए, जिसकी तरफ़ प्येर का ध्यान नहीं गया था, प्येर को टोक दिया और मुंह फेर लिया। आवाज़ में अप्रत्याशित कम्पन के साथ प्येर अचानक जल्दी-जल्दी बोलने लगा:

"नहीं, महामान्य," सहसा यह याद आ जाने पर कि दावू ड्यूक है, उसने कहा। "नहीं, महामान्य, आप मुझे नहीं जान सकते। मैं जन-सेना का अफ़सर हूं और मास्को में ही रुका रहा हूं।"

"आपका नाम?" दावू ने फिर से पूछा।

"बेज़ूख़ोव।"

"कौन इस बात का सबूत पेश कर सकता है कि आप झूठ नहीं बोल रहे हैं?"

"महामान्य!" प्येर ने नाराज़गी ज़ाहिर करनेवाली नहीं, बल्कि मिन्नत करती ऊंची आवाज़ में कहा।

दावू नज़र ऊपर उठाकर प्येर को एकटक देखने लगा। कुछ क्षणों तक ये दोनों एक-दूसरे को देखते रहे और इसी नज़र ने प्येर को बचा लिया। युद्ध और फ़ौजी अदालत की परिस्थितियों से कहीं बहुत दूर ले जानेवाली इस दृष्टि ने इन दोनों व्यक्तियों के बीच मानवीय सम्बन्ध स्थापित कर दिये। इस एक मिनट में इन दोनों को असंख्य चीज़ों की धुंधली-सी अनुभूति हो गयी और ये समझ गये कि दोनों ही मानव-जाति की सन्तान हैं, भाई हैं।

दावू ने जब उस सूची पर से, जिसमें नम्बर के हिसाब से अपराधियों के कार्यों और जीवन का वर्णन था, ज़रा सिर ऊपर उठाकर पहली बार प्येर की तरफ़ देखा था, उस समय वह उसके लिये एक मुजरिम ही था और अपनी आत्मा को किसी भी तरह से दोषी अनुभव किये बिना उसने उसे गोली मारने का हुक्म दे दिया होता। लेकिन अब वह उसमें एक इन्सान को देख रहा था। दावू कुछ क्षण तक सोचता रहा।

"आप किस तरह से यह साबित कर सकते हैं कि जो कुछ कह रहे हैं, वह सच है?" दावू ने कठोरता से पूछा।

प्येर को रामबाल याद आ गया और उसने उसकी रेजिमेंट, कुलनाम और उस सड़क का नाम बता दिया जहां वह घर था जिसमें वह ठहरा हुआ था।

"आप वह नहीं हैं जो अपने को बता रहे हैं," दावू ने फिर से अपना सन्देह प्रकट किया।

प्येर कांपती और टूटती-सी आवाज़ में यह प्रमाणित करने लगा कि वह जो कुछ कह रहा है, बिल्कुल सच है।

किन्तु इसी समय एडजुटेंट भीतर आया और उसने दावू को कोई सूचना दी।

एडजुटेंट द्वारा दी गयी सूचना को सुनते ही दावू सहसा खिल उठा और वर्दी के बटन बन्द करने लगा। उसे स्पष्टतः प्येर की सुध ही नहीं रही थी।

एडजुटेंट ने जब उसे बन्दी का ध्यान दिलाया तो उसने नाक-भौंह सिकोड़कर प्येर की ओर सिर से इशारा किया और कहा कि उसे ले जाया जाये। किन्तु उसे कहां ले जाया जाये, प्येर यह नहीं जान सका – वापस बग्घीख़ाने में या मृत्यु-दण्ड की उस जगह पर जो देविच्ये मैदान को लांघते हुए साथियों ने उसे दिखाई थी।

वह मुड़ा और उसने देखा कि एडजुटेंट ने दावू से फिर कुछ पूछा है।

"हां, बेशक!" दावू ने जवाब दिया, लेकिन "हां" से उसका क्या अभिप्राय था, प्येर को यह मालूम नहीं हो सका।

प्येर को यह याद नहीं रहा कि वह कितनी देर तक और किधर चलता रहा। वह एकदम अपनी सुध-बुध भूले, अपने इर्द-गिर्द कुछ न

देखते तथा पूरी जड़ता की हालत में दूसरों के साथ-साथ अपनी टांगें हिलाता हुआ चलता रहा और उन सभी के रुक जाने पर खुद भी रुक गया। इस सारे वक़्त में एक ही विचार प्येर के दिमाग़ में चक्कर काटता रहा था – वह यह कि आख़िर किसने उसे मृत्यु-दण्ड देने का हुक्म दिया? आयोग के उन लोगों ने तो ऐसा नहीं किया जिन्होंने उससे पूछ-ताछ की थी – उनमें से तो कोई भी ऐसा नहीं चाहता था और सम्भवत: ऐसा नहीं कर सकता था। दावू ने भी ऐसा नहीं किया था, उसने ऐसी मानवीय दृष्टि से उसकी तरफ़ देखा था। एक मिनट और बीत जाता तो दावू ने यह समझ लिया होता कि वे ग़लत क़दम उठा रहे हैं। किन्तु इसी मिनट में तो एडजुटेंट ने भीतर आकर खलल डाल दिया। सम्भवत: एडजुटेंट भी कुछ बुरा नहीं चाहता था, मगर वह भीतर आये बिना भी रह सकता था। आख़िर कौन उसे मृत्यु-दण्ड दे रहा था, उसे मार रहा था, उसकी जान ले रहा था – उसकी, प्येर की जान, उसकी सारी स्मृतियों, इच्छाओं, आशाओं और विचारों के साथ? किसने ऐसा किया है? और प्येर को अनुभव हुआ कि किसी ने भी ऐसा नहीं किया।

व्यवस्था ने, परिस्थितियों के मेल ने ही ऐसा किया था।

कोई व्यवस्था ही उसे – प्येर को मार रही थी, उसकी ज़िन्दगी, उसका सब कुछ छीन रही थी, उसे नष्ट कर रही थी।

११

प्रिंस शेर्बातोव के घर से बन्दियों को देविच्ये मैदान से होते हुए सीधे नीचे की तरफ़, नोवोदेविची मठ के बायीं ओर साग-सब्ज़ियों के बगीचे में ले जाया गया जहां एक खम्भा गाड़ दिया गया था। खम्भे के पीछे एक बहुत बड़ा गढ़ा खुदा हुआ था जिसमें से निकाली गयी ताज़ा मिट्टी वहीं पड़ी थी। गढ़े और खम्भे के गिर्द लोगों की बड़ी भीड़ अर्धचक्र बनाये खड़ी थी। इस भीड़ में रूसी बहुत कम और नेपोलियन की फ़ौज के तरह-तरह की वर्दियां पहने वे जर्मन, इतालवी और फ़्रांसीसी फ़ौजी ज़्यादा थे जो इस वक़्त ड्यूटी पर नहीं थे। खम्भे

के दायीं और बायीं ओर लाल फ़ीतियोंवाली नीली वर्दियां, बूट और ऊंची, नुकीली टोपियां पहने फ़्रांसीसी फ़ौजियों की क़तारें खड़ी थीं।

अपराधियों को सूची के क्रमानुसार खड़ा किया गया (प्येर छठा था) और खम्भे के क़रीब ले जाया गया। दोनों ओर से अचानक कई ढोल बजने लगे और प्येर ने अनुभव किया कि इस आवाज़ के साथ मानो उसकी आत्मा का एक टुकड़ा कटकर अलग हो गया है। उसकी सोचने-समझने की शक्ति जाती रही। वह तो केवल देख और सुन ही सकता था। वह सिर्फ़ यही चाह रहा था कि जो भयानक चीज़ होनेवाली थी, वह जल्दी से हो जाये। प्येर ने मुड़कर अपने साथियों की ओर देखा और बहुत ग़ौर से उन्हें देखता रहा।

पहले दो व्यक्ति मुंडे सिरोंवाले अपराधी थे। उनमें से एक लम्बा-तड़ंगा और दुबला-पतला था और दूसरा काले, घने बालों तथा चपटी नाकवाला हट्टा-कट्टा आदमी था। तीसरा कोई पैंतालीस साल का सफ़ेद होते बालों, गदराये और अच्छी तरह से पोषित शरीरवाला घरेलू भूदास नौकर था। चौथा बहुत ही सुन्दर किसान था, हल्के सुनहरे रंग की घनी दाढ़ी और काली आंखोंवाला। पांचवां अठारह साल का फ़ैक्टरी-मज़दूर था—दुबला-पतला, पीले चेहरेवाला और ढीला-ढाला-सा चोग़ा पहने।

प्येर ने फ़्रांसीसियों को इस सवाल पर विचार करते सुना कि एक-एक या दो-दो को एकसाथ गोली मारी जाये? "दो-दो को एकसाथ," बड़े अफ़सर ने भावनाहीन शान्त ढंग से उत्तर दिया। फ़ौजियों की क़तारें हिली-डुलीं और यह साफ़ दिखाई दे रहा था कि सभी उतावली कर रहे हैं—सो भी ऐसे नहीं कि सभी की समझ में आनेवाले काम को कर डालें, बल्कि इस तरह कि किसी अप्रिय और समझ में न आने-वाले काम को जल्दी से कर डालें जिसे करना ज़रूरी हो।

गुलूबन्द लपेटे एक फ़्रांसीसी कर्मचारी अपराधियों की क़तार के दायीं ओर आया और उसने रूसी तथा फ़्रांसीसी में सज़ा सुनायी।

इसके बाद फ़्रांसीसी फ़ौजियों के दो जोड़े अपराधियों के क़रीब आये और अफ़सर के इशारे के मुताबिक़ सबसे आगे खड़े दो मुजरिमों को अपने साथ ले गये। खम्भे के नज़दीक पहुंचकर ये दोनों रुक गये और जब तक बोरियां लायी गयीं, वे चुपचाप अपने इर्द-गिर्द ऐसे देखते रहे जैसे घायल जानवर क़रीब आते शिकारी को देखता है। इनमें से एक अपने ऊपर लगातार सलीब बनाता जा रहा था, दूसरा पीठ खुजला

रहा था और होंठों को ऐसे हिला-डुला रहा था मानो मुस्कराने की कोशिश कर रहा हो। सैनिक उनकी आंखों पर जल्दी-जल्दी पट्टी बांधने, उनको बोरियों से ढकने तथा उन्हें खम्भे के साथ बांधने लगे।

बन्दूकें लिये हुए बारह निशानेबाज़ फ़ौजी क़तारों से बाहर निकले और खम्भे से आठ क़दमों की दूरी पर खड़े हो गये। प्येर ने मुंह फेर लिया ताकि उसे न देखे जो होनेवाला था। अचानक खड़खड़ाहट और धमाका हुआ जो प्येर को भयानकतम घन-गर्जन से भी ज़्यादा भयानक प्रतीत हुआ और उसने मुड़कर देखा। धुआं नज़र आया और पीले चेहरों तथा कांपते हाथों से फ़्रांसीसी फ़ौजी गढ़े के क़रीब कुछ करते दिखाई दिये। अगले दो व्यक्तियों को खम्भे के पास लाया गया। ये दोनों भी अपनी आंखों में रक्षा का मूक अनुरोध लिये व्यर्थ ही लोगों की तरफ़ देख रहे थे और सम्भवतः उस चीज़ को समझ और उसपर विश्वास नहीं कर रहे थे जो होनेवाली थी। वे इसलिये विश्वास नहीं कर सकते थे कि केवल वही जानते थे कि उनके लिये उनके जीवन का क्या अर्थ था और इसी कारण वे न तो यह समझ रहे थे तथा न ही विश्वास कर पा रहे थे कि उनसे उनकी ज़िन्दगी छीनी जा सकती थी।

प्येर यह देखना नहीं चाहता था और उसने फिर से मुंह फेर लिया। भयानक विस्फोट ने पुनः उसे बहरा-सा कर दिया। इसी धमाके के साथ उसने धुआं, किसी का ख़ून और फ़्रांसीसी सैनिकों के पीले-से चेहरे देखे जो एक-दूसरे को धकेलते-धकियाते हुए कांपते हाथों से फिर खम्भे के क़रीब कुछ कर रहे थे। हांफता हुआ प्येर अपने इर्द-गिर्द देख रहा था मानो पूछ रहा हो – यह सब क्या है? प्येर की नज़र से मिलनेवाली सभी नज़रों में यही प्रश्न था।

किसी अपवाद के बिना उसे सभी रूसियों, फ़्रांसीसी सैनिकों और अफ़सरों के चेहरों पर वही भय, वही संत्रास और हलचल दिखाई दे रही थी जो उसके अपने दिल में थी। "आख़िर कौन यह कर रहा है? ये सब मेरी तरह ही व्यथित हो रहे हैं। कौन? कौन यह कर रहा है?" प्येर की आत्मा में क्षण भर को यह प्रश्न कौंध गया।

"८६वीं रेजिमेंट के निशानेबाज़ आगे आयें!" किसी ने ऊंची आवाज़ में आदेश दिया। प्येर के नज़दीक खड़े अपराधी को अकेले ही आगे ले जाया जाने लगा। प्येर यह नहीं समझ पाया कि उसकी

जान बच गयी है, कि उसे और बाक़ी सबको भी मृत्यु-दण्ड का दृश्य देखने के लिये ही यहां लाया गया था। प्येर निरन्तर बढ़ते भय के साथ और ख़ुशी या राहत महसूस किये बिना ही उस सबको देख रहा था जो हो रहा था। पांचवां अपराधी ढीला-ढाला चोग़ा पहने फ़ैक्टरी-मज़दूर था। सैनिकों ने जैसे ही उसे छुआ, वैसे ही उसने पीछे की ओर उछलकर प्येर को पकड़ लिया (प्येर सिहर उठा और उसने उसे अपने से दूर हटा दिया)। फ़ैक्टरी-मज़दूर चल नहीं पाया। फ़ौजी उसकी बग़लों में हाथ डालकर उसे घसीट ले चले और वह कुछ चिल्लाता रहा। खम्भे के नज़दीक पहुंचने पर वह अचानक ख़ामोश हो गया। या तो उसने यह समझ लिया कि चीख़ना-चिल्लाना व्यर्थ है या यह कि लोग उसकी जान ले लेंगे, यह असम्भव है। कुछ भी हो, वह खम्भे के क़रीब खड़ा हो गया और दूसरों की तरह अपनी आंखों पर भी पट्टी बांधने का इन्तज़ार करते हुए घायल जानवर की तरह चमकती आंखों से अपने इर्द-गिर्द देखने लगा।

प्येर के लिये अब मुंह फेरना और आंखें मूंद लेना सम्भव नहीं हो सका। इस पांचवें आदमी की हत्या के समय प्येर और सारी भीड़ की जिज्ञासा और विह्वलता अपने चरम-बिन्दु पर पहुंच गयी थी। अन्य की भांति यह पांचवां भी शान्त-सा प्रतीत हो रहा था – उसने अपना ढीला-ढाला चोग़ा अच्छी तरह से लपेट लिया था और वह एक नंगे पांव से दूसरा पांव खुजला रहा था।

जब उसकी आंखों पर पट्टी बांधी जाने लगी तो उसने ख़ुद ही गुद्दी पर वह गांठ ठीक कर ली जो उसे चुभ रही थी। इसके बाद जब उसे ख़ून से सने खम्भे के साथ सटाया गया तो वह पीछे को धसक गया और चूंकि इस स्थिति में बेचैनी महसूस कर रहा था, इसलिये उसने अपने को ठीक किया और दोनों पांवों को ढंग से टिकाकर खम्भे का अच्छी तरह से सहारा ले लिया। प्येर उसपर नज़र टिकाये था और उसकी छोटी से छोटी गति-विधि को भी ध्यान से देख रहा था।

ज़रूर ही किसी अफ़सर ने हुक्म दिया होगा, ज़रूर ही इस हुक्म के बाद आठ बन्दूक़ों की गोलियां चली होंगी। किन्तु प्येर ने बाद में चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न की, उसे गोलियों के चलने की ज़रा-सी भी आवाज़ याद नहीं आ पायी। उसने तो केवल यही देखा कि फ़ैक्टरी-मज़दूर अचानक रस्सों पर झुक गया, दो जगहों पर ख़ून नज़र

रूसी बन्दियों को मृत्यु-दंड देते हुए फ़्रांसीसी।

आया, लटक जानेवाले शरीर के बोझ से खुद रस्से भी झुक गये और फ़ैक्टरी-मज़दूर अस्वाभाविक रूप से सिर झुकाकर तथा एक टांग मोड़कर नीचे बैठ गया। प्येर भागकर खम्भे के पास गया। किसी ने भी उसे रोका नहीं। भयभीत और पीले चेहरोंवाले लोग फ़ैक्टरी-मज़दूर के गिर्द कुछ कर रहे थे। बड़ी-बड़ी मूंछोंवाला बूढ़ा फ़्रांसीसी जब रस्से खोल रहा था तो उसका निचला जबड़ा बहुत ज़ोर से कांप रहा था। मज़दूर का शरीर नीचे धसक गया। सैनिक अटपटे ढंग से और जल्दी-जल्दी उसे खम्भे के पीछे ले जाकर गड्ढे में डालने लगे।

ज़ाहिर था कि दण्ड देनेवाले ये सभी लोग निश्चित रूप से जानते थे कि अपराधी हैं और उन्हें अपने अपराध के चिह्नों को जल्दी से जल्दी मिटा देना चाहिये।

प्येर ने गड्ढे में झांका और यह देखा कि फ़ैक्टरी-मज़दूर वहां घुटनों को सिर के निकट ऊपर किये पड़ा था और उसका एक कंधा दूसरे से ऊंचा था। यह कंधा ऐंठता हुआ लयबद्ध ढंग से नीचे जाता था और फिर ऊपर को उठता था। किन्तु इसी समय उसके सारे शरीर पर बेलचे भर भरकर मिट्टी डाली जाने लगी थी। एक सैनिक ने व्यथित, झुंझलायी और क्रोधपूर्ण आवाज़ में चिल्लाकर प्येर से कहा कि वह अपनी जगह पर वापस चला जाये। किन्तु प्येर उसकी बात नहीं समझा, खम्भे के क़रीब ही खड़ा रहा और किसी ने भी उसे वहां से नहीं खदेड़ा।

गड्ढे के मिट्टी से भर दिये जाने पर फ़ौजी हुक्म सुनायी दिया। प्येर को उसकी जगह पर ले जाया गया, खम्भे के दोनों ओर क़तारों में खड़ी फ़्रांसीसी सेनाओं ने आधा चक्कर लगाया और सधे क़दमों से खम्भे के क़रीब से गुज़रने लगीं। घेरे के मध्य में खड़े चौबीस निशानेबाज़, जिनकी बन्दूक़ें अब ख़ाली हो चुकी थीं, भागकर उस समय अपनी क़तारों में चले गये, जब उनकी फ़ौजी कम्पनियां उनके क़रीब से गुज़रीं।

प्येर अब स्तम्भित आंखों से इन निशानेबाज़ों को देख रहा था जो घेरे के बीच से जोड़ों में वापस भागते जा रहे थे। एक निशानेबाज़ के सिवा बाक़ी सभी अपनी कम्पनियों में जा मिले। यह जवान सैनिक, जिसका चेहरा मुर्दे की तरह पीला था, जिसकी फ़ौजी टोपी पीछे की तरफ़ खिसकी हुई थी और जो अपनी बन्दूक़ को ज़मीन पर टिकाये

था, अभी तक गड्ढे के सामने उसी जगह पर खड़ा था, जहां से उसने गोली चलायी थी। वह शराबी की तरह लड़खड़ा रहा था और अपने नीचे गिरते शरीर को सम्भालने के लिये कभी तो कुछ क़दम आगे बढ़ जाता था और कभी पीछे हट जाता था। एक बूढ़ा सार्जेंट क़तार में से भागकर उसके पास गया और इस जवान सैनिक को कंधे से पकड़कर कम्पनी में खींच ले गया। रूसियों और फ़्रांसीसियों की भीड़ यहां से जाने लगी। सभी लोग सिर झुकाये और चुपचाप चले जा रहे थे।

"अब ये समझ जायेंगे कि आग लगाने का क्या नतीजा होता है," किसी फ़्रांसीसी ने कहा। प्येर ने मुड़कर इसकी तरफ़ देखा। यह एक फ़्रांसीसी सैनिक था जो किसी तरह से उसके लिये, जो यहां किया गया था, अपने मन को तसल्ली देना चाहता था, किन्तु ऐसा कर नहीं पा रहा था। अपनी बात को पूरा किये बिना ही उसने निराशा से हाथ झटका और अपने रास्ते चला गया।

१२

मृत्यु-दण्ड की उक्त घटना के बाद प्येर को बाक़ी बन्दियों से अलग करके एक छोटे-से, तबाहहाल और बदबूदार गिरजाघर में बन्द कर दिया गया।

शाम होने के कुछ पहले सन्तरियों का सार्जेंट दो सैनिकों को साथ लिये हुए गिरजे में आया और उसने प्येर को यह बताया कि उसे माफ़ कर दिया गया है और अब उसे जंगी क़ैदियों की बैरकों में चलना है। उससे जो कुछ कहा गया था, उसे न समझ पाते हुए प्येर उठकर खड़ा हो गया और सैनिकों के साथ चल दिया। उसे एक मैदान के ऊंचे भाग में जले तख़्तों, शहतीरों और तख़्तियों से बनायी गयी बैरकों में से एक में ले जाया गया। अन्धेरे में कोई बीसेक आदमियों ने प्येर को घेर लिया। प्येर यह न समझ पाते हुए कि ये कौन लोग हैं, किसलिये यहां हैं और उससे क्या चाहते हैं, इन्हें घूर रहा था। वह उन शब्दों को सुन रहा था जो उससे कहे जा रहे थे, किन्तु उनका

न तो कोई निष्कर्ष या सार निकालता था, न उनका अर्थ ही समझता था। उससे जो कुछ पूछा जाता था, वह उसका उत्तर देता था, किन्तु यह नहीं समझ पा रहा था कि कौन उसकी बात सुन रहा है और उसके जवाबों को कैसे समझा जायेगा। वह लोगों के चेहरों और आकृतियों को देख रहा था और उसे वे सभी अर्थहीन-से लग रहे थे।

प्येर ने जिस समय से उन लोगों द्वारा किया गया, जो ऐसा करना नहीं चाहते थे, यह भयानक हत्या-काण्ड देखा था, उसकी आत्मा में अचानक वह कमानी टूट गयी थी जिसपर सब कुछ टिका हुआ था तथा जीवन का जीता-जागता रूप प्रतीत होता था और सभी कुछ अर्थहीन कूड़े-करकट का ढेर-सा बनकर रह गया था। यद्यपि उसे इस बात की चेतना नहीं थी, तथापि उसकी आत्मा में संसार की सुव्यवस्था, मानवीयता, अपनी आत्मा और भगवान के अस्तित्व का विश्वास नष्ट हो गया था। प्येर को ऐसी मनोदशा की अनुभूति पहले भी हुई थी, किन्तु ऐसी तीव्रता से नहीं, जैसी इस समय। प्येर की आत्मा में इसी तरह के सन्देह जब पहले सिर उठाते थे तो उसे अपने अपराध में ही इनका स्रोत मिल जाता था। अपनी आत्मा की गहराई में उस समय प्येर यह अनुभव करता था कि उसकी घोर निराशा और सारी शंकाओं का स्वयं अपने भीतर ही निवारण उपस्थित है। किन्तु अब वह यह महसूस करता था कि अगर उसकी आंखों के सामने ही संसार खण्ड-खण्ड हो गया है और अर्थहीन खण्डहर ही बाक़ी रह गये हैं तो इसके लिये वह दोषी नहीं है। वह अनुभव करता था कि जीवन के प्रति विश्वास को लौटाना अब उसके बस की बात नहीं थी।

अन्धेरे में लोग उसे घेरे खड़े थे – निश्चय ही उन्हें उसमें कोई ख़ास दिलचस्पी महसूस हो रही थी। वे उसे कुछ बता रहे थे, उससे कुछ पूछ रहे थे। कुछ देर बाद वे उसे कहीं ले गये और आख़िर उसने अपने को बैरक के कोने में सभी से बातें करते तथा हंसते हुए कुछ लोगों के निकट पाया।

"तो मेरे भाइयो... यह वही प्रिंस है **जो** (उसने 'जो' शब्द पर ख़ास ज़ोर दिया)..." बैरक के सामनेवाले कोने से किसी की आवाज़ सुनायी दी।

दीवार के क़रीब फूस पर चुपचाप और बुत बना-सा बैठा हुआ प्येर कभी अपनी आंखें खोलता और कभी बन्द कर लेता। किन्तु आंखें

मूंदते ही वह अपने सामने वही भयानक, अपनी सरलता के कारण विशेष रूप से भयानक और अपनी इच्छा के विरुद्ध हत्या करने को विवश हत्यारों के बेचैनी के कारण और भी ज़्यादा भयानक लगनेवाले चेहरे देखता। वह फिर से अपनी आंखें खोल लेता और बहकी-बहकी दृष्टि से अन्धेरे में अपने इर्द-गिर्द देखने लगता।

एक नाटा-सा आदमी प्येर के नज़दीक झुका हुआ बैठा था। उसके ज़रा भी हिलने-डुलने से उसके बदन से आनेवाली पसीने की तेज़ गन्ध से ही प्येर को शुरू में उसकी उपस्थिति का एहसास हुआ। यह आदमी अन्धेरे में अपनी टांगों के साथ कुछ कर रहा था और इस चीज़ के बावजूद कि प्येर को उसका चेहरा नज़र नहीं आ रहा था, वह अनुभव करता था कि यह व्यक्ति उसे लगातार देख रहा है। अन्धेरे में कुछ देखने का अभ्यस्त होने पर प्येर समझ गया कि यह आदमी फ़ौजी बूटों के नीचे टांगों पर बांधी जानेवाली अपनी पट्टियां उतार रहा है। यह आदमी जिस ढंग से यह कर रहा था, प्येर को उसमें दिलचस्पी महसूस हुई।

उन रस्सियों को उतारकर जो एक टांग की पट्टियों पर बंधी हुई थीं, उसने उन्हें तरीक़े से लपेटा और उसी समय प्येर को देखते हुए दूसरी टांग पर यही कुछ करने लगा। जब तक एक हाथ ने रस्सी को टांगा, तब तक दूसरा हाथ दूसरी टांग की पट्टियां खोलने लगा। इस प्रकार बड़े तरीक़े से, ज़रा भी समय नष्ट किये बिना बड़ी फुरतीली और गोलाकार गति-विधियों से इस व्यक्ति ने पट्टियां उतारकर सिरों के ऊपर ठोंकी गयी खूंटियों पर उन्हें टांग दिया, चाक़ू निकाला, उससे कुछ काटा, उसे बन्द किया, उसे तकिये के नीचे रखा और ज़रा आराम से बैठकर अपने ऊपर को उठे घुटनों के गिर्द हाथ बांध लिये और टकटकी बांधकर प्येर को देखने लगा। इस आदमी की सधी हुई तथा फुरतीली गति-विधियों, उसके कोने में ढंग से व्यवस्थित सारी चीज़ों, यहां तक कि उसकी गन्ध में भी प्येर को किसी प्यारी और चैन देनेवाली चीज़ की अनुभूति हुई तथा वह भी उसे अपलक देखने लगा।

"बहुत दुख-दर्द देखे-सहे हैं न, मेरे हुज़ूर? ठीक है न?" इस नाटे-से आदमी ने अचानक कहा। उसकी गाती-सी आवाज़ में स्नेह और सरलता की ऐसी अभिव्यक्ति थी कि प्येर ने अनुभव किया कि

उसका निचला जबड़ा कांप उठा है और उसकी आंखें भर आयी हैं। प्येर को अपनी परेशानी ज़ाहिर करने का मौक़ा न देकर यह नाटा-सा आदमी उसी पहले जैसी सुखद आवाज़ में बोल उठा।

"मन दुखी नहीं करो, भैया," उसने बूढ़ी रूसी औरतों जैसी कोमल, स्नेहपूर्ण और गाती-सी आवाज़ में कहा। "मन दुखी नहीं करो, मेरे दोस्त – थोड़ा सहो और फिर बरसों जियो! ऐसी बात है, मेरे प्यारे। यहां रह रहे हैं, भगवान की कृपा है, कुछ बुरा नहीं। ये भी इन्सान हैं, कुछ बुरे और कुछ अच्छे," अपनी बात जारी रखते हुए ही उसने बड़े लचीले अन्दाज़ में घुटनों को झुकाया, उठकर खड़ा हुआ और ज़रा खांसकर गले को साफ़ करते हुए कहीं चल दिया।

"अरे, आ गया शैतान!" बैरक के दूसरे सिरे पर वही स्नेहपूर्ण आवाज़ सुनायी दी। "आ गया शैतान, भूला नहीं! बस, बस, बहुत है।" और यह सैनिक अपने पर उछलनेवाले छोटे से कुत्ते को दूर हटाते हुए अपनी जगह पर लौटकर बैठ गया। उसके हाथों में चिथड़े में लिपटी हुई कोई चीज़ थी।

"यह लीजिये, इन्हें खा लीजिये, मेरे हुज़ूर," उसने पहले जैसा आदरपूर्ण लहजा अपनाते, चिथड़े को खोलते और भुने हुए कुछ आलू प्येर को देते हुए कहा। "शाम के भोजन के वक़्त तो आज पतला-सा शोरबा मिला था। लेकिन इन आलुओं के क्या कहने!"

प्येर ने दिन भर कुछ नहीं खाया था और आलुओं की गन्ध उसे असाधारण रूप से प्यारी लगी। सैनिक को धन्यवाद देकर वह उन्हें खाने लगा।

"इन्हें ऐसे कौन खाता है?" सैनिक ने मुस्कराते हुए कहा और एक आलू अपने हाथ में ले लिया। "तुम इसे ऐसे खाओ।" उसने फिर से खटकेदार चाक़ू निकाला, अपनी हथेली पर आलू को दो बराबर टुकड़ों में काटा, एक कपड़े में से चुटकी भर नमक लेकर उसपर डाला और प्येर की तरफ़ बढ़ा दिया।

"आलुओं के क्या कहने!" उसने अपनी बात दोहरायी। "तुम इसे ऐसे खाओ।"

प्येर को लगा कि उसने इससे अधिक ज़ायक़ेदार कभी कुछ खाया ही नहीं।

"नहीं, मुझे अपने लिये तो कोई दुख नहीं," प्येर ने कहा,

"लेकिन उन बदक़िस्मतों को उन्होंने किसलिये गोलियों से मार डाला!.. आख़िरी तो सिर्फ़ बीसेक साल का था।"

"छि, छि..." नाटे-से आदमी ने कहा। "कैसा पाप है, कैसा पाप है..." उसने जल्दी से कह दिया मानो शब्द उसके मुंह में हमेशा तैयार रहते हों, संयोग से ही निकल आते हों और वह कहता गया – "मेरे हुज़ूर, आप मास्को में कैसे रह गये?"

"मैंने यह नहीं सोचा था कि वे इतनी जल्दी आ जायेंगे। मैं तो संयोग से ही यहां रह गया," प्येर ने जवाब दिया।

"कैसे उन्होंने तुम्हें गिरफ़्तार कर लिया, भैया? तुम्हारे घर में जाकर?"

"नहीं, मैं आग देखने जा रहा था और उसी वक़्त उन्होंने मुझे गिरफ़्तार कर लिया, आग लगानेवाले के रूप में मुझपर मुक़दमा चलाया।"

"जहां मुक़दमा, वहीं झूठ," नाटे आदमी ने राय ज़ाहिर की।

"तुम बहुत समय से हो यहां?" प्येर ने आख़िरी आलू खाते हुए पूछा।

"मैं? पिछले इतवार को मास्को के अस्पताल से मुझे लाया गया।"

"तो तुम सैनिक हो क्या?"

"हां, हम सभी अपशेरोन्स्की रेजिमेंट के सैनिक थे। मैं तो तेज़ बुख़ार से मर रहा था। हमें कुछ भी नहीं बताया गया। हमारे कोई बीसेक आदमी वहां थे। हमने तो न ऐसा कुछ सोचा था, न हमें कोई ऐसा ख़्याल ही आया था।"

"क्या तुम्हें यहां अच्छा नहीं लगता?" प्येर ने पूछा।

"अच्छा कैसे लग सकता है, भैया। मेरा नाम प्लातोन है, करातायेव उपनाम है," उसने सम्भवतः इस विचार से यह भी कह दिया कि प्येर के लिये उसे सम्बोधित करना आसान हो जाये। "सेना में मुझे नन्हा बाज़ कहा जाता था। अच्छा कैसे लगेगा, भैया! मास्को तो सभी शहरों की मां है। यह सब देखते हुए बुरा कैसे नहीं लगेगा। जो कीड़ा गोभी को खाये, वही पहले मर जाये – बड़े-बूढ़े ऐसे ही कहा करते थे," उसने जल्दी से इतना और जोड़ दिया।

"क्या, यह क्या कहा था तुमने अभी?" प्येर ने पूछा।

"मैंने तो?" करातायेव ने प्रश्न किया। "मैं कह रहा था –

आदमी तो कुछ भी चाहे, वही होता जो प्रभु मन भाये," उसने यह सोचते हुए जवाब दिया कि पहले तो दूसरे लोगों के ही शब्द दोहरा दिये थे। वह फ़ौरन आगे कहता गया – "हुज़ूर, आपकी तो जागीर होगी? घर भी? कहना चाहिये कि सब कुछ भरा-पूरा है! बीवी भी होगी? बूढ़े मां-बाप भी ज़िन्दा होंगे?" उसने पूछा और यद्यपि प्येर को अन्धेरे में दिखाई नहीं दिया, तथापि उसने यह अनुभव किया कि यह सब पूछते हुए उसके होंठों पर संयत मुस्कान के कारण ज़रा बल पड़ गये हैं। सम्भवतः उसे यह जानकर दुख हुआ था कि प्येर के मां-बाप, ख़ास तौर पर मां ज़िन्दा नहीं थी।

"बीवी सलाह के लिये, सास आदर-सत्कार के लिये, किन्तु मां से बढ़कर कोई भी प्यारा नहीं होता!" उसने कहा। "आपके बाल-बच्चे हैं?" उसने पूछना जारी रखा। प्येर के इन्कार करने से सम्भवतः उसे फिर दुख हुआ और उसने जल्दी से यह कहा – "ख़ैर, कोई बात नहीं, आप अभी जवान लोग हैं, भगवान देंगे, बाल-बच्चे भी हो जायेंगे। सबसे बड़ी बात तो यह है कि हेल-मेल बना रहे..."

"लेकिन अब तो किसी चीज़ से फ़र्क़ ही क्या पड़ता है," प्येर बरबस कह उठा।

"न जेल जाने से इन्कार करो, न भिखारी बनने से डरो," प्लातोन ने कहा। वह ढंग से बैठ गया, उसने खांसकर गला साफ़ किया मानो कोई लम्बी बात करने के लिये तैयार हो रहा हो। "तो मेरे मेहरबान दोस्त, तब मैं अपने घर पर ही था," उसने कहना शुरू किया, "अच्छा, धनी गांव है हमारा, ज़मीन बहुत है, किसान लोग मज़े से रहते हैं और भगवान की कृपा से हमारे यहां भी कुछ कमी नहीं थी। जब घास काटने जाते तो पिता जी समेत हम सात लोग होते। ढंग से रहते-सहते थे। असली किसान थे। एक बार क्या हुआ..." और प्लातोन करातायेव ने यह लम्बी कहानी सुनायी कि कैसे एक दिन वह किसी पराये जंगल में लकड़ी काटने गया और चौकीदार के हत्थे चढ़ गया, कैसे उसकी कसकर पिटाई हुई, उसपर मुक़दमा चलाया गया और उसे फ़ौज में भेज दिया गया। "तो मेरे भैया," मुस्कान के कारण बदली हुई आवाज़ में उसने अपनी बात आगे बढ़ायी, "हमने सोचा मुसीबत आ गयी, लेकिन यह ख़ुशी बन गयी! अगर मैं यह पाप न करता तो छोटे भाई को फ़ौज में जाना पड़ता। छोटे

भाई की बीवी तथा तीन बच्चे हैं और मेरी तो सिर्फ़ बीवी ही घर पर रह गयी है। एक बच्ची थी और मेरे फ़ौज में जाने के पहले भगवान ने उसे उठा लिया था। तुम्हें बताता हूं कि कैसे मैं कुछ दिन की छुट्टी पर घर गया। क्या देखा कि घर के लोग पहले से ज़्यादा अच्छे ढंग से रहते-सहते हैं। बाड़ा पशुओं से भरा हुआ है, औरतें घर पर हैं और दो भाई मजूरी करने गये हैं। सबसे छोटा भाई मिख़ाइलो ही घर पर था। बापू बोले – 'मेरे लिये सब बच्चे बराबर हैं, जिस भी उंगली को काटोगे, उसी में दर्द होगा। अगर उस वक़्त प्लातोन को फ़ौज में न भेजा जाता तो मिख़ाइलो को जाना पड़ता।' बापू ने सबको बुलाया – तुम विश्वास करो – देव-प्रतिमा के सामने खड़ा कर दिया। मिख़ाइलो से बोले – 'इधर आओ, इसके पांव छुओ, बहू तुम भी, पोते-पोतियो तुम भी। समझ गये?' बापू ने कहा। तो यह मामला है, मेरे मेहरबान दोस्त। तक़दीर के हाथ से कौन बचता है। लेकिन हम सब हमेशा शिकायत करते रहते हैं – यह अच्छा नहीं, यह बुरा है। हमारा सौभाग्य, मेरे मित्र, महाजाल है, खींचो तो फूल जाता है, बाहर निकालो तो ख़ाली होता है। ऐसी बात है।" और प्लातोन अपने फूस पर ज़रा हटकर बैठ गया।

कुछ देर चुप रहकर प्लातोन उठ खड़ा हुआ।

"तुम्हें तो शायद नींद आ रही है?" उसने कहा और प्रार्थना के शब्द बोलता हुआ अपने ऊपर जल्दी-जल्दी सलीब बनाने लगा:

"प्रभु ईसा मसीह, पावन सन्त निकोलाई, फ़्रोला और लावरा*, प्रभु ईसा मसीह, पावन सन्त निकोलाई! फ़्रोला और लावरा, प्रभु ईसा मसीह! हमें क्षमा करें, हमारी रक्षा करें!" उसने प्रार्थना समाप्त की, ज़मीन पर माथा टेका, उठकर खड़ा हुआ, गहरी सांस ली और अपने फूस पर बैठ गया। "तो यह मामला है। हे प्रभु, पत्थर की तरह गहरी नींद सुलाओ, ताज़ा रोटी की तरह उठाओ," उसने कहा और फ़ौजी कोट से अपने को ढंकते हुए सोने के लिये लेट गया।

"यह तुम क्या बोल रहे थे?" प्येर ने पूछा।

"मैं?" प्लातोन ने कहा (वह तो ऊंघ भी गया था)। "क्या

---

* फ़्रोला और लावरा – पशुओं के रक्षक-देवता। – सं०

बोल रहा था? भगवान की प्रार्थना कर रहा था। क्या तुम प्रार्थना नहीं करते?"

"क्यों नहीं, मैं भी प्रार्थना करता हूं," प्येर ने जवाब दिया। "लेकिन तुम वह फ़ोला और लावरा क्या कह रहे थे?"

"अरे," प्लातोन फ़ौरन कह उठा, "वे तो घोड़ों के देवता हैं। हमें पशुओं पर भी दया करनी चाहिये," प्लातोन बोला। "अरे, ओ शैतान, गुड़ी-मुड़ी होकर लेट गया, अपने को गर्म कर लिया, हरामी कहीं का," उसने अपने पांवों के क़रीब लेटे हुए कुत्ते को थप-थपाकर कहा और फिर से करवट लेकर आन की आन में सो गया।

बाहर, कहीं दूर से रोना और चीख़ना-चिल्लाना सुनाई दे रहा था तथा बैरक की दरारों में से आग की झलक मिल रही थी, मगर बैरक में ख़ामोशी और अन्धेरा था। प्येर को बहुत देर तक नींद नहीं आई। वह अन्धेरे में आंखें खोले हुए अपनी जगह पर लेटा था, बग़ल में सो रहे प्लातोन के लयबद्ध खर्राटे सुन रहा था और अनुभव कर रहा था कि वह दुनिया जो खण्ड-खण्ड हो गयी थी, अब किन्हीं नयी और मज़बूत नींवों पर तथा नये सौन्दर्य के साथ उसकी आत्मा में फिर से निर्मित हो रही थी।

१३

इस बैरक में, जहां प्येर ने चार हफ़्ते बिताये, उसी की तरह तेईस सैनिक, तीन अफ़सर और दो कर्मचारी बन्दी भी थे।

बाद में उसे इन सभी की बहुत धुंधली-सी याद रह गयी, किन्तु उसकी आत्मा में प्लातोन करातायेव हमेशा के लिये एक बहुत ही सजीव और मूल्यवान स्मृति, उस सभी का जो विशिष्ट रूसी, हार्दिक और "गोल" है, साकार रूप बनकर रह गया। अगली सुबह को प्येर ने जब अपने इस पड़ोसी को देखा तो उसके "गोल-गोल" होने की मन पर पड़ी पहली छाप की पूरी तरह से पुष्टि हो गयी – पेटी की जगह कमर पर रस्सी से बंधा फ़्रांसीसी फ़ौजी ओवरकोट, छज्जेदार फ़ौजी टोपी, छाल के जूतों में उसकी पूरी आकृति गोल थी, उसका

सिर एकदम गोल था, उसकी पीठ, छाती, कंधे, यहां तक कि बांहें भी, जिन्हें वह ऐसी मुद्रा में रखता था, मानो किसी चीज़ का आलिंगन करनेवाला हो, गोल थीं। उसकी मधुर मुस्कान और बड़ी-बड़ी, कोमल बादामी आंखें भी गोल थीं।

उन युद्धाभियानों के क़िस्से-कहानियों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें एक सैनिक के नाते उसने कभी हिस्सा लिया था, उसकी उम्र पचास से अधिक होनी चाहिये थी। किन्तु वह स्वयं नहीं जानता था और किसी तरह भी यह तय नहीं कर सकता था कि उसकी कितनी उम्र है। मगर उसके बहुत ही सफ़ेद और मज़बूत दांत जो उसके मुस्कराने पर (वह अक्सर ऐसा करता था) हमेशा दो अर्धचक्रों के रूप में दिखाई देते थे, बिल्कुल सही-सलामत और बढ़िया थे। उसकी दाढ़ी में या सिर पर एक भी सफ़ेद बाल नहीं था और उसका सारा शरीर लोचशीलता, विशेष रूप से दृढ़ता और सहनशीलता का प्रभाव पैदा करता था।

छोटी-छोटी गोल झुर्रियों के बावजूद उसके चेहरे पर भोलेपन और यौवन का भाव था; उसकी आवाज़ सुखद और सुरीली थी। किन्तु सहजता और पैनापन – उसकी बातों के विशेष गुण यही थे। सम्भवत: वह कभी यह नहीं सोचता था कि क्या कह चुका है और क्या कहेगा। यही चीज़ उसकी आवाज़ के पैने और निष्कपट लहजे को विशेष और अदम्य प्रभावशीलता प्रदान करती थी।

बन्दी-जीवन के पहले समय में वह ऐसी शारीरिक शक्ति और चुस्ती-फुर्ती दिखाता रहा कि लगता था मानो थकान और बीमारी किसे कहते हैं, यह जानता ही न हो। सोने के पहले हर रात को वह यह कहता – "हे प्रभु, पत्थर की तरह गहरी नींद सुलाओ, ताज़ा रोटी की तरह उठाओ।" सुबह उठने पर एक ही ढंग से अपने कंधों को झटका देता और कहता – "लेटो और गुड़ी-मुड़ी हो जाओ, उठो तो अपने को ज़ोर से हिलाओ-डुलाओ।" और वास्तव में वह लेटते ही पत्थर की तरह गहरी नींद सो जाता तथा जागने पर शरीर को हिलाते-डुलाते ही एक पल की देर किये बिना किसी काम में वैसे ही जुट जाता जैसे बच्चे बिस्तर से उठते ही खिलौनों की तरफ़ लपकते हैं। वह हर काम करना जानता था, बहुत अच्छी तरह नहीं, मगर कुछ बुरा भी नहीं। वह नानबाई का काम करना, खाना पकाना,

सिलाई तथा बढ़ई का काम करना और जूते गांठना भी जानता था। वह हमेशा व्यस्त रहता था और केवल रात के वक़्त ही बातें करता था जिसका वह शौक़ीन था और गाता भी था। वह गायकों की तरह नहीं गाता था जिन्हें यह चेतना होती है कि उनका गाना सुना जा रहा है, बल्कि पक्षियों की तरह। उसके लिये गाने की ऐसी आवाज़ें निकालना सम्भवतः वैसे ही ज़रूरी था जैसे अंगड़ाई लेना या चलना-फिरना ज़रूरी होता है। उसकी ये ध्वनियां हमेशा हल्की-हल्की, कोमल और दर्दीली, लगभग औरतों जैसी होती थीं और गाते समय उसका चेहरा बहुत ही गम्भीर होता था।

बन्दी बनने और दाढ़ी बढ़ा लेने पर उसने सम्भवतः वह सभी कुछ जो फ़ौजी जीवन के फलस्वरूप उसके लिये पराया था, त्याग दिया था तथा अनजाने ही पहले जैसा साधारण किसान बन गया था।

"सैनिक छुट्टी पर – क़मीज़ पतलून से बाहर," वह कहा करता था यानी वह सैनिक अनुशासन भूल जाता है। अपने फ़ौजी जीवन की वह मन मारकर चर्चा करता, यद्यपि उसमें शिकवा-शिकायत कभी न होता और अक्सर यह दोहराता कि सैनिक-जीवन में एक बार भी कोड़ों से उसकी पिटाई नहीं हुई थी। वह जब अपना ज़िक्र करता तो ज़्यादातर तो अपनी पुरानी और किसानी जीवन की उन स्मृतियों की ही जो उसे प्यारी थीं। अपनी बोल-चाल में वह जिन कहावतों और मुहावरों का उपयोग करता था, वे अधिकतर वैसे भोंडे और अशिष्ट नहीं होते थे जैसे कि आम तौर पर फ़ौजी इस्तेमाल करते हैं। वे तो इस तरह की लोक-कहावतें होती थीं जो प्रसंग के बिना बड़ी महत्त्व-हीन प्रतीत होती हैं, किन्तु उचित प्रसंग में सहसा बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाती हैं।

प्लातोन करातायेव अक्सर उसके उलट कुछ कह देता जो उसने पहले कहा होता, लेकिन उसकी दोनों ही बातें ठीक होतीं। उसे बातें करने का चस्का था और अच्छे ढंग से बातें करता था, उन्हें स्नेहपूर्ण शब्दों-सम्बोधनों और कहावतों-मुहावरों से सजा देता था जो प्येर को लगता कि वह अपने मन से गढ़ता है। किन्तु उसके क़िस्से-कहानियों की सबसे बड़ी ख़ूबी तो यह थी कि बहुत ही मामूली घटनायें, कभी-कभी ऐसी घटनायें जिनकी तरफ़ प्येर कोई ध्यान ही नहीं देता था, उचित लाक्षणिकता और गम्भीर सुन्दरता प्राप्त कर लेती थीं। उसे

वे क़िस्से-कहानियां सुनना पसन्द था जो एक सैनिक शामों को सुनाता था (ये क़िस्से-कहानियां हमेशा वही होते थे), किन्तु वास्तविक जीवन की बातें सुनना उसे कहीं ज़्यादा अच्छा लगता था। ऐसी बातें सुनते हुए वह ख़ुशी से मुस्कराता, कुछ शब्द जोड़ता और कभी प्रश्न पूछता, जिनका उद्देश्य सुनायी जानेवाली बातों के नैतिक पक्ष को अपने लिये स्पष्ट करना होता। लगाव, दोस्ती और प्यार-मुहब्बत – जिस रूप में प्येर इन्हें समझता था – करातायेव में ऐसा कुछ नहीं था। किन्तु जीवन में जिससे भी उसका वास्ता पड़ जाता, उसी को प्यार करता और उसके साथ हेल-मेल से रहता। इन्सान को तो वह ख़ास तौर पर प्यार करता था, किसी ख़ास इन्सान को नहीं, बल्कि उन लोगों को जो उसकी आंखों के सामने होते थे। वह अपने कुत्ते को प्यार करता था, अपने साथियों और फ़्रांसीसियों को प्यार करता था, प्येर को प्यार करता था जो उसका पड़ोसी था। किन्तु प्येर अनुभव करता था कि उसके प्रति बड़ी हार्दिकता के बावजूद (जिसके रूप में वह अनजाने ही प्येर के आत्मिक जीवन का समुचित आदर व्यक्त करता था) उससे जुदा होने पर करातायेव को क्षण भर के लिये भी अफ़सोस नहीं होगा। प्येर भी उसके प्रति इसी प्रकार की भावना अनुभव करने लगा।

बाक़ी सभी युद्ध-बन्दियों के लिये प्लातोन करातायेव बहुत ही साधारण सैनिक था। वे उसे नन्हा बाज़ या प्यार से प्लातोशा बुलाते, ख़ुशमिज़ाजी से उसका मज़ाक़ उड़ाते और उसे सभी तरह के छोटे-मोटे कामों के लिये इधर-उधर भेजते रहते। किन्तु प्येर के लिये वह सदा-सर्वदा को अनबूझ, गोल-गोल और सरलता तथा सचाई का वैसा ही साकार रूप बना रहा, जैसा पहली रात को प्रतीत हुआ था।

अपनी प्रार्थना के सिवा प्लातोन करातायेव को कुछ भी मुंहज़बानी याद नहीं था। वह जब कोई बात कहता तो ऐसा लगता कि उसको शुरू करते हुए उसे यह मालूम नहीं होता था कि उसका अन्त कैसे करेगा।

कभी-कभी उसके किसी कथन से चकित होने पर प्येर उससे उसे दोहराने का अनुरोध करता तो प्लातोन एक मिनट पहले कहे गये अपने शब्दों को भी न दोहरा पाता। ठीक इसी प्रकार वह अपना मनपसन्द गान भी प्येर को शब्दों में नहीं बता सकता था। उस गाने में "मेरी प्यारी मां, नन्हा भोज-वृक्ष, मेरा मन उदास है" – का उल्लेख होता,

किन्तु सम्बद्ध शब्दों में उसका कोई अर्थ न निकलता। किसी प्रसंग से अलग करके वह शब्दों का अर्थ नहीं समझता था, उसके लिये उन्हें समझना सम्भव ही नहीं था। उसका हर शब्द और हर कार्य-कलाप उस अज्ञात क्रियाशीलता का प्रकट रूप था जो उसका जीवन थी। किन्तु उसका जीवन, जिस रूप में वह उसे स्वयं देखता था, एक अलग इकाई के नाते कोई अर्थ नहीं रखता था। उसके लिये वह सम्पूर्ण के एक अंश के रूप में ही अर्थ रखता था और इस सम्पूर्ण की उसे हमेशा चेतना रहती थी। उसके व्यक्तित्व में से उसके शब्द और कार्य-कलाप वैसे ही लयबद्ध, अनिवार्य तथा स्वतःस्फूर्त ढंग से बाहर आते थे जैसे फूल में से सुगन्ध। वह अलग रूप से शब्दों और कार्य-कलापों का न तो महत्त्व और न अर्थ ही समझ सकता था।

१४

प्रिंसेस मरीया को निकोलाई रोस्तोव से जब यह मालूम हुआ कि उसका भाई यारोस्लाव्ल नगर में रोस्तोव-परिवार के साथ है तो मौसी के बहुत मना करने पर भी उसने उसी समय उसके पास जाने का, सो भी ख़ुद ही नहीं, बल्कि भतीजे को साथ लेकर, इरादा बना लिया। ऐसा करना मुश्किल होगा या आसान, सम्भव या असम्भव – उसने यह नहीं पूछा और वह यह जानना ही नहीं चाहती थी – उसका कर्त्तव्य था कि न केवल ख़ुद ही भाई के पास पहुंचे, जो शायद मृत्यु-शय्या पर हो, बल्कि उसके बेटे को भी उसके पास ले जाने के लिये हर सम्भव यत्न करे और उसने जाने का निर्णय कर लिया। अगर प्रिंस अन्द्रेई ने ख़ुद उसे अपने बारे में सूचना नहीं दी थी तो इसका कारण उसने यही माना था कि वह बहुत कमज़ोर और इसलिये पत्र लिखने में असमर्थ होगा या फिर इस वजह से कि इतनी लम्बी यात्रा को बहन और बेटे के लिये कठिन तथा ख़तरनाक समझता होगा।

प्रिंसेस मरीया कुछ ही दिनों में सफ़र के लिये तैयार हो गयी। इसके लिये उसने बहुत बड़ी पारिवारिक बग्घी, जिसमें वह वोरोनेज़ आई थी, टमटम और सामान की घोड़ा-गाड़ी का उपयोग किया।

कुमारी बुर्येन, शिक्षक के साथ नन्हा निकोलाई, बूढ़ी आया, तीन नौकरानियां, तीख़ोन, जवान नौकर और सन्देशवाहक, जिसे मौसी ने अपनी ओर से भेजा, उसके साथ गये।

आम रास्ते से मास्को होकर जाने की तो बात ही नहीं सोची जा सकती थी और इसलिये प्रिंसेस मरीया को लीपेत्स्क, र्याज़ान, व्लादीमिर और शूया से गुज़रते हुए जिस मार्ग से चक्कर काटकर जाने को मजबूर होना पड़ा, वह सभी घोड़ा-बदल-चौकियों पर घोड़े न मिलने के कारण बहुत लम्बा, कठिन और र्याज़ान के क़रीब, जहां, जैसाकि सुनने में आया था, फ़्रांसीसी प्रकट हो गये थे, ख़तर-नाक भी था।

इस कठिन यात्रा के समय कुमारी बुर्येन, शिक्षक डेसाल और प्रिंसेस मरीया के नौकर-नौकरानियां उसकी मानसिक दृढ़ता और उत्साह से दंग रह गये। वह सबसे बाद में बिस्तर पर जाती, सबसे पहले उठती और किसी भी तरह की कठिनाइयां उसके इरादे को कमज़ोर नहीं कर सकती थीं। उसके दृढ़ संकल्प, उसके उत्साह की बदौलत, जो दूसरों को भी प्रेरित करते थे, दूसरे सप्ताह के अन्त में ये लोग यारोस्लाव्ल के निकट पहुंच गये।

वोरोनेज़ में बीतनेवाले अन्तिम दिनों में प्रिंसेस मरीया ने अपने को जीवन में सबसे ज़्यादा सुखी अनुभव किया। निकोलाई रोस्तोव के प्रति उसका प्यार अब उसे व्यथित और विह्वल नहीं करता था। यह प्यार उसकी आत्मा में पूरी तरह समा गया था, उसके अस्तित्व का अभिन्न अंग बन गया था और इसके विरुद्ध वह अब संघर्ष नहीं करती थी। पिछले कुछ समय में प्रिंसेस मरीया को विश्वास हो गया था – यद्यपि उसने स्पष्ट रूप से शब्दों में अपने से ऐसा कभी नहीं कहा था – कि उसे प्यार किया जाता है और वह प्यार करती है। इस बात का निकोलाई के साथ अपनी अन्तिम भेंट के समय, उसे तब विश्वास हो गया था, जब वह यह बताने आया था कि उसका भाई रोस्तोव-परिवार के साथ है। निकोलाई ने एक भी शब्द से इस बात का संकेत नहीं किया था कि अब (प्रिंस अन्द्रेई के स्वस्थ हो जाने पर) नताशा के साथ उसका पुराना रिश्ता फिर से क़ायम हो सकता है, किन्तु प्रिंसेस मरीया उसके चेहरे से ऐसा देख रही थी कि उसे इस बात की चेतना है और वह इसके बारे में सोचता है। ऐसा होने

पर भी उसके प्रति निकोलाई के रवैये में, जो सतर्कतापूर्ण, कोमल और प्यार भरा था, न केवल कोई परिवर्तन ही नहीं हुआ, बल्कि ऐसा प्रतीत होता था कि उसे इससे ख़ुशी भी हो रही थी कि रिश्तेदारी के इन सम्बन्धों की बदौलत अब वह अपना मैत्रीपूर्ण प्यार (जैसाकि प्रिंसेस मरीया कभी-कभी सोचती थी) अधिक स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त कर सकेगा। प्रिंसेस मरीया जानती थी कि उसने जीवन में पहली और आख़िरी बार प्यार किया है, यह अनुभव करती थी कि उसे भी प्यार किया जा रहा है और इस दृष्टि से वह शान्त तथा सुखी थी।

किन्तु इस सुख, इस ख़ुशी ने न केवल भाई के बारे में अधिकतम चिन्तित होने में बाधा नहीं डाली, बल्कि, इसके विपरीत, एक पक्ष से अनुभव होनेवाले इस आत्मिक चैन ने उसे भाई की ज़्यादा से ज़्यादा फ़िक्र करने की सम्भावना प्रदान की। वोरोनेज़ से रवाना होने के समय यह भावना इतनी तीव्र थी कि विदा करनेवालों को चिन्ता और परेशानी से अत्यधिक व्यथित उसके चेहरे को देखते हुए इस बात का पक्का यक़ीन हो रहा था कि वह रास्ते में ज़रूर बीमार हो जायेगी। किन्तु यात्रा की कठिनाइयों और चिन्ताओं ने, जिनके विरुद्ध वह इतने उत्साह से जूझती रही, कुछ समय के लिये उसे दुख को भूलने में मदद दी और उसे सशक्त बनाया।

जैसाकि हमेशा होता है, यात्रा के समय प्रिंसेस मरीया केवल यात्रा के बारे में ही सोचती रही और यह भूल गयी कि उसका लक्ष्य क्या है। किन्तु यारोस्लाव्ल के नज़दीक पहुंचने पर जब फिर से यह विचार उसके सामने आ गया कि न जाने उसे क्या देखना होगा, सो भी कुछ दिनों के बाद नहीं, बल्कि उसी शाम को, तो प्रिंसेस मरीया की विह्वलता अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी।

सन्देशवाहक, जिसे यह मालूम करने के लिये कि यारोस्लाव्ल में रोस्तोव-परिवार कहां ठहरा हुआ है और प्रिंस अन्द्रेई की हालत कैसी है, पहले से ही आगे भेज दिया गया था, जब शहर के फाटक में दाख़िल हो रही बड़ी बग्घी के क़रीब आया और उसने खिड़की में से बाहर निकले हुए प्रिंसेस मरीया के बेहद पीले चेहरे को देखा तो धक से रह गया।

"सब कुछ मालूम कर आया हूं, माननीया जी – रोस्तोव-परिवार के लोग व्यापारी ब्रोन्निकोव के घर में, जो चौक में है, ठहरे हुए हैं।

यहां से ख़ास दूर नहीं है, वोल्गा के तट पर," सन्देशवाहक ने बताया।

प्रिंसेस मरीया ने यह न समझ पाते हुए कि उसने मुख्य प्रश्न का – यानी प्रिंस अन्द्रेई कैसा है – क्यों कोई जवाब नहीं दिया, भयभीत और प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी तरफ़ देखा। कुमारी बुर्येन ने प्रिंसेस की ओर से यह प्रश्न किया।

"प्रिंस कैसे हैं?"

"महामान्य उन लोगों के साथ उसी घर में हैं।"

"इसका मतलब है कि ज़िन्दा है," प्रिंसेस ने सोचा और धीमी आवाज़ में पूछा – उसका हाल कैसा है।

"नौकरों का कहना था कि उनका वही हाल है।"

"वही हाल है" का क्या अर्थ है, प्रिंसेस ने यह नहीं पूछा और अपने सामने बैठे सात वर्षीय निकोलाई पर, जो शहर को देखकर ख़ुश हो रहा था, छिपी-छिपी और उड़ती-सी नज़र डालकर सिर झुका लिया और तब तक उसे ऊपर नहीं उठाया, जब तक कि खड़खड़ाती, धचके खाती और डोलती हुई भारी-भरकम बग्घी कहीं जाकर रुक नहीं गयी। पायदान के बिछाये जाने की ऊंची खड़खड़ाहट सुनायी दी।

बग्घी का दरवाज़ा खुला। बायीं ओर पानी था – एक बड़ी नदी और दायीं ओर पोर्च। पोर्च में लोग थे, नौकर थे और बहुत बड़ी काली चोटी तथा लाल-लाल गालोंवाली एक युवती खड़ी थी (यह सोन्या थी) जो, जैसाकि प्रिंसेस मरीया को प्रतीत हुआ, अप्रिय और बनावटी ढंग से मुस्करा रही थी। प्रिंसेस भागती हुई पोर्च की सीढ़ियां चढ़ गयी। बनावटी ढंग से मुस्करानेवाली युवती ने उससे कहा – "इधर आइये! इधर!" प्रिंसेस ने अपने को प्रवेश-कक्ष में और पूर्वी चेहरे-मोहरेवाली एक बूढ़ी महिला के सामने पाया जो चेहरे पर व्याकुलता का भाव लिये हुए जल्दी-जल्दी उसकी ओर आ रही थी। यह बूढ़ी काउंटेस थीं। उन्होंने प्रिंसेस मरीया को गले लगाया और चूमने लगीं।

"मेरी बच्ची!" वह फ़्रांसीसी में कह उठीं। "मैं आपको प्यार करती हूं और बहुत समय से जानती हूं।"

अपनी सारी विह्वलता के बावजूद प्रिंसेस मरीया समझ गयी कि यह काउंटेस हैं और उसे जवाब में उनसे कुछ कहना चाहिये। ख़ुद भी यह न जानते हुए कि उसने कैसे यह किया, शिष्टतापूर्ण कुछ वाक्य उसी लहजे में, जिसमें उससे कहे गये थे, फ़्रांसीसी में कह दिये और

पूछा कि प्रिंस अन्द्रेई कैसा है।

"डाक्टर का कहना कि खतरे की कोई बात नहीं," काउंटेस ने उत्तर दिया, किन्तु उक्त शब्द कहते समय उन्होंने गहरी सांस छोड़ते हुए आंखें ऊपर को उठायीं और उनकी ऐसी भावाभिव्यक्ति ने उनके शब्दों का खण्डन कर दिया।

"वह कहां है? मैं उससे मिल सकती हूं?" प्रिंसेस ने पूछा।

"अभी प्रिंसेस, अभी, मेरी प्यारी। यह उसका बेटा है?" उन्होंने नन्हे निकोलाई की ओर ध्यान देते हुए पूछा जो डेसाल के साथ अभी भीतर आया था। "हम सभी के लिये यहां रहने की व्यवस्था हो जायेगी, घर काफ़ी बड़ा है। अरे, कितना प्यारा लड़का है!"

काउंटेस प्रिंसेस को ड्राइंगरूम में ले गयीं। सोन्या कुमारी बुर्येन से बातचीत कर रही थी। काउंटेस नन्हे निकोलाई से लाड़-प्यार करने लगीं। बुज़ुर्ग काउंट प्रिंसेस का स्वागत करने के लिये कमरे में आये। काउंट के साथ प्रिंसेस की पिछली मुलाक़ात के बाद के समय में उनमें बड़ा ही परिवर्तन हो गया था। उस समय वह बड़े उत्साही, ख़ुशमिज़ाज और आत्मविश्वासपूर्ण प्यारे-से बुज़ुर्ग थे, किन्तु अब दयनीय और बहके-बहके-से व्यक्ति लगते थे। प्रिंसेस के साथ बात करते हुए वह लगातार अपने इर्द-गिर्द देखते थे मानो सब से पूछ रहे हों कि वही कुछ कर रहे हैं या नहीं जो करना चाहिये। मास्को और उनकी सम्पत्ति की तबाही तथा अपने अभ्यस्त जीवन के वातावरण से अलग हो जाने के बाद वह अपने महत्त्व की चेतना ही खो बैठे थे और महसूस करते थे कि उनके लिये अब जीवन में कोई जगह नहीं रह गयी थी।

प्रिंसेस मरीया यद्यपि जल्दी से जल्दी अपने भाई से मिलना चाहती थी और उसे इस बात से बेशक दुख हो रहा था कि जब वह केवल अपने भाई से मिलने को बेक़रार है, उसे इधर-उधर की बातों में लगाया जा रहा है और उसके भतीजे की झूठ-मूठ प्रशंसा की जा रही है, फिर भी प्रिंसेस ने अपने इर्द-गिर्द हो रही सभी चीज़ों की तरफ़ ध्यान दिया और कुछ समय के लिये उस नये वातावरण में ढल जाने की आवश्यकता अनुभव की जिसमें वह इस वक़्त आ गयी थी। वह जानती थी कि यह सब कुछ ज़रूरी है और यद्यपि उसके लिये यह कठिन था, तथापि वह इन लोगों से नाराज़ नहीं हो रही थी।

"यह मेरी भानजी है," सोन्या का परिचय देते हुए काउंट ने

कहा, "आप तो इससे नहीं मिली हैं न, प्रिंसेस?"

प्रिंसेस सोन्या की तरफ़ मुड़ी और इस लड़की के प्रति अपने हृदय में उठनेवाली शत्रुता की भावना को दबाते हुए उसने उसे चूमा। किन्तु उसे इस कारण दुख होने लगा कि इस समय उसके मन पर जो बीत रही थी, उसके इर्द-गिर्द उपस्थित लोगों की मनःस्थिति उससे बिल्कुल भिन्न थी।

"वह कहां है?" उसने सभी को सम्बोधित करते हुए एक बार फिर पूछा।

"वह नीचे है, नताशा उसके पास है," सोन्या ने लज्जारुण होते हुए उत्तर दिया। "हमने वहां आदमी भेज दिया है। मेरे ख़्याल में आप तो थक गयी होंगी, प्रिंसेस?"

प्रिंसेस की आंखों में झल्लाहट के आंसू छलक आये। उसने मुंह फेर लिया और पुनः काउंटेस से पूछना चाहा कि वह उसके पास किधर से जाये कि इसी समय उसे दरवाज़े के क़रीब हल्के-फुल्के, तेज़ और मानो ख़ुशी से उमगते क़दमों की आहट मिली। प्रिंसेस मुड़ी और उसे लगभग भागी आ रही नताशा दिखाई दी, वही नताशा जो बहुत पहले मास्को में हुई भेंट के वक़्त उसे बिल्कुल अच्छी नहीं लगी थी।

किन्तु अब इसी नताशा के चेहरे पर नज़र डालते ही प्रिंसेस समझ गयी कि यही उसके दुख की सच्ची संगिनी और इसलिये मित्र है। वह उसकी ओर लपकी और उसे गले लगाते हुए उसके कंधे पर रो पड़ी।

प्रिंस अन्द्रेई के सिरहाने बैठी नताशा को जैसे ही प्रिंसेस मरीया के आने ही ख़बर मिली, वैसे ही वह दबे-दबे और ऐसे तेज़ क़दमों से उसके कमरे से बाहर आ गयी जो मरीया को ख़ुशी से उमगते प्रतीत हुए थे तथा भागती हुई उसके पास आयी।

नताशा जब भागती हुई कमरे में आयी तो उसके विह्वल चेहरे पर सिर्फ़ एक ही भाव था – प्यार का भाव, अन्द्रेई के प्रति असीम प्यार का भाव, प्रिंसेस मरीया के प्रति प्यार का भाव, उस सब कुछ के प्रति प्यार का भाव जो उसके प्रिय व्यक्ति के निकट था, दूसरों के लिये दया और वेदना तथा इस तीव्र इच्छा का भाव कि उनकी सहायता करने के लिये वह अपना सब कुछ न्योछावर कर डाले। यह साफ़ दिखाई दे रहा था कि इस क्षण उसकी आत्मा में अपने बारे में,

प्रिंस अन्द्रेई के साथ अपने सम्बन्धों के बारे में कोई भी विचार नहीं था।

नताशा के चेहरे पर पहली नज़र डालते ही संवेदनशील प्रिंसेस मरीया यह सब कुछ समझ गयी और चैन देनेवाले दुख की अनुभूति के साथ उसके कंधे पर सिर रखकर रोती रही।

"आइये, उसके पास चलें, मरीया," प्रिंसेस मरीया को दूसरे कमरे में ले जाती हुई नताशा कह उठी।

प्रिंसेस मरीया ने सिर ऊपर उठाया, आंखें पोंछीं और नताशा की तरफ़ देखा। वह अनुभव कर रही थी कि नताशा से उसे सब कुछ मालूम हो जायेगा, वह सारी स्थिति को पूरी तरह से समझ जायेगी।

"उसका हाल ..." प्रिंसेस मरीया ने पूछना चाहा, मगर यकायक चुप हो गयी। उसने अनुभव किया कि शब्दों में न तो कुछ पूछा जा सकता है और न उत्तर ही दिया जा सकता है। नताशा के चेहरे और आंखों को सभी कुछ कहीं अधिक स्पष्टता तथा गहनता से व्यक्त कर देना चाहिये था।

नताशा प्रिंसेस मरीया की तरफ़ देख रही थी, किन्तु ऐसे प्रतीत होता था कि वह इस शंका और दुविधा से जूझ रही थी कि जो कुछ वह जानती थी, उसे बताये या न बताये। नताशा तो मानो अनुभव कर रही थी कि उसके अन्तरतम की गहराई में उतर जानेवाली प्रिंसेस मरीया की इन चमकती आंखों के सामने होते हुए उस सचाई को, उस पूरी सचाई को न बताना सम्भव नहीं होगा जिस रूप में वह उसे देखती थी। नताशा का ओंठ अचानक कांपा, उसके मुंह के आस-पास भद्दे-से बल पड़े और रोना शुरू करते हुए उसने हाथों से अपना मुंह छिपा लिया।

प्रिंसेस मरीया सब कुछ समझ गयी।

किन्तु फिर भी उसके मन में कुछ उम्मीद बनी रही और उसने शब्दों में, जिनपर विश्वास नहीं करती थी, यह पूछा :

"उसका घाव कैसा है? कुल मिलाकर उसका हाल कैसा है?"

"आप, आप ... खुद देख लेंगी," नताशा सिर्फ़ इतना ही कह पायी।

निचली मंज़िल पर आकर ये दोनों कुछ समय तक प्रिंस अन्द्रेई के कमरे के क़रीब बैठी रहीं ताकि रोना बन्द कर दें और शान्त चेहरों के साथ उसके पास जायें।

"उसकी बीमारी कैसे चलती रही है? क्या बहुत दिन हो गये उसकी तबीयत ज़्यादा खराब हुए? **ऐसा** कब हुआ?" प्रिंसेस मरीया ने जानना चाहा।

नताशा ने उसे बताया कि शुरू में तो तेज़ बुख़ार और ज़ख़्म के सख़्त दर्द के कारण उसकी जान ख़तरे में रही, किन्तु त्रोइत्सा पहुंचने पर यह ठीक हो गया और तब डाक्टर को सिर्फ़ एक ही बात की चिन्ता थी कि कहीं गैंग्रीन यानी कोथ न हो जाये। किन्तु यह ख़तरा भी टल गया। यारोस्लाव्ल पहुंचने पर घाव में पीप पड़ गयी (नताशा पीप आदि के बारे में सब कुछ जानती थी) और डाक्टर ने कहा कि यह भी ठीक हो जायेगा। उसे बुख़ार आने लगा। डाक्टर ने कहा कि यह बुख़ार तो ख़ास ख़तरनाक नहीं है।

"किन्तु दो दिन पहले," नताशा ने कहा, "अचानक ही **यह** हो गया..." वह सिसकियों पर क़ाबू पाते हुए बोली। "मैं नहीं जानती कि किसलिये ऐसा हुआ, किन्तु आप स्वयं देख लेंगी कि वह कैसा हो गया है।"

"कमज़ोर हो गया है? दुबला गया है?.." प्रिंसेस ने पूछा।

"नहीं, ऐसा कुछ नहीं है, बल्कि इससे भी बुरा। आप ख़ुद देख लेंगी। ओह, मरीया, वह बहुत ही ज़्यादा अच्छा है, वह इसलिये, इसलिये ज़िन्दा नहीं रह सकता कि..."

१५

नताशा ने जब अभ्यस्त ढंग से प्रिंस अन्द्रेई के कमरे का दरवाज़ा खोला और प्रिंसेस मरीया को अपने से पहले भीतर जाने दिया तो प्रिंसेस यह महसूस कर रही थी कि उसका गला भरा आ रहा है। उसने इस क्षण के लिये अपने को चाहे कितना ही तैयार क्यों न किया, अपने को शान्त रखने का बेशक कितना ही प्रयास क्यों न किया, वह जानती थी कि आंसुओं के बिना उससे नहीं मिल पायेगी।

प्रिंसेस मरीया नताशा के इन शब्दों का – **दो दिन पहले अचानक ही यह हो गया** – अर्थ समझती थी। वह समझती थी कि इसका अर्थ

था कि प्रिंस अन्द्रेई अचानक बहुत नर्मदिल हो गया है, उसकी यह नर्मदिली और उसके हृदय की यह कोमलता मृत्यु के लक्षण थीं। दरवाज़े के क़रीब पहुंचते हुए उसने अपनी कल्पना में प्रिंस अन्द्रेई का वह चेहरा देखा जिससे वह उसके बचपन के दिनों में परिचित थी – कोमल, विनम्र और भावना से ओत-प्रोत। बहुत कम ही उसका ऐसा चेहरा होता था और इसीलिये प्रिंसेस मरीया के दिल पर उसका हमेशा इतना गहरा प्रभाव पड़ता था। वह जानती थी कि प्रिंस अन्द्रेई उससे वैसे ही कोमल-कोमल और प्यारे-प्यारे शब्द कहेगा जैसे पिता जी ने मृत्यु के पहले कहे थे, कि वह अपने को वश में नहीं रख सकेगी और उसके सामने ही फूट-फूटकर रो पड़ेगी। किंतु देर-सवेर यह तो होना ही था और वह कमरे में दाख़िल हुई। जब वह अपनी कमज़ोर नज़र से उसकी आकृति और उसके चेहरे को अधिकाधिक स्पष्ट रूप से देखने की कोशिश कर रही थी तो उसकी सिसकियां उसके गले के ज़्यादा से ज़्यादा निकट आती जा रही थीं। आख़िर उसने उसका चेहरा देखा और उनकी नज़रें मिलीं।

वह गिलहरी के समूर के अस्तरवाला ड्रेसिंग-गाउन पहने तकियों के सहारे एक सोफ़े पर लेटा हुआ था। वह दुबला-पतला था और उसके चेहरे का रंग पीला था। उसके बहुत ही कमज़ोर, मानो पारदर्शी सफ़ेद हाथ में रूमाल था और दूसरे हाथ की उंगलियों को धीरे-धीरे हिलाते-डुलाते हुए वह पतली-पतली और लम्बी हो गयी मूंछों को छू रहा था। उसकी आंखें कमरे में आनेवाली प्रिंसेस मरीया और नताशा को देख रही थीं।

प्रिंस अन्द्रेई का चेहरा देखने और उसकी नज़र से नज़र मिलने पर प्रिंसेस मरीया ने अचानक अपनी तेज़ चाल धीमी कर ली और महसूस किया कि एकाएक उसके आंसू सूख गये हैं और सिसकियां दब गयी हैं। उसके चेहरे और दृष्टि का भाव देखकर वह अचानक सहम गयी और उसने अपने को दोषी-सा अनुभव किया।

"किन्तु मैं किस बात के लिये दोषी हूं?" उसने अपने आपसे पूछा। "इस बात के लिये कि जीवित हो और जीवन के बारे में सोचती हो, जबकि मैं!.." प्रिंस अन्द्रेई की रूखी और कठोर दृष्टि ने मानो उत्तर दिया।

उसने बहन और नताशा की तरफ़ उदास और बुझा-बुझी दृष्टि

से धीरे-धीरे देखा। उसकी इस दृष्टि में लगभग शत्रुता का भाव था।

प्रिंस अन्द्रेई ने आदत के मुताबिक़ बहन के हाथ अपने हाथों में लेकर उसे चूमा।

"नमस्ते, मरीया, तुम किस तरह से यहां पहुंच गयीं?" उसने अपनी दृष्टि की भांति बुझी-बुझी और परायी-सी आवाज़ में पूछा। अगर वह ज़ोर से चीख़ उठता तो उससे प्रिंसेस मरीया के दिल को इस आवाज़ की तुलना में कहीं कम धक्का लगता।

"और नन्हे निकोलाई को भी साथ ले आयीं?" उसने स्पष्टतः याद करने का प्रयास करते हुए वैसी ही बुझी-बुझी और धीमी-सी आवाज़ में पूछा।

"तुम्हारा स्वास्थ्य अब कैसा है?" प्रिंसेस मरीया ने प्रश्न किया और ख़ुद इस बात से हैरान हुए बिना न रह सकी कि उसने यह क्या कहा है।

"मेरी बहन, यह तो डाक्टर से पूछना चाहिये," उसने जवाब दिया और सम्भवतः स्नेहशील होने की और भी अधिक कोशिश करते हुए उसने केवल कहने के लिये ही (साफ़ नज़र आ रहा था कि वह जो कुछ कह रहा था, उसे अनुभव नहीं कर रहा था) फ़्रांसीसी में इतना और कह दिया:

"धन्यवाद, मेरी प्यारी बहन कि तुम आ गयीं।"

प्रिंसेस मरीया ने प्यार से उसका हाथ दबाया। हाथ के दबाये जाने से उसके माथे पर हल्का-सा बल पड़ गया। वह चुप था और प्रिंसेस की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या कहे। दो दिन पहले उसमें जो परिवर्तन हुआ था, वह उसे समझ गयी। उसके शब्दों, उसके लहजे, ख़ास तौर पर उसकी इस भावनाहीन, लगभग शत्रुतापूर्ण दृष्टि में इस संसार की हर चीज़ के प्रति उस विरक्ति की अनुभूति होती थी जिसे ज़िन्दा इन्सान के लिये देखना बहुत भयानक होता है। इस दुनिया की बातों को शायद अब वह मुश्किल से ही समझता था, किन्तु साथ ही ऐसा भी अनुभव होता था कि वह जीवितों को इस कारण नहीं समझ पाता था कि उसमें उन्हें समझने की क्षमता नहीं रही थी, बल्कि इसलिये कि वह कुछ दूसरी, किसी ऐसी चीज़ को समझता था जिसे जीवित लोग नहीं समझ सकते और जिसमें वह पूरी तरह से खो गया था।

"हां, भाग्य ने हम दोनों को कैसे अजीब ढंग से फिर मिला दिया है!" प्रिंस अन्द्रेई ने ख़ामोशी तोड़ते और नताशा की तरफ़ संकेत करते हुए कहा। "यह हर वक़्त मेरी देख-भाल करती है।"

प्रिंसेस मरीया भाई की बात सुन रही थी और वह जो कुछ कह रहा था, उसे समझ नहीं पा रही थी। यह संवेदनशील, यह कोमल हृदयवाला प्रिंस अन्द्रेई उस नताशा के सामने ही ये शब्द कैसे कह सकता था जिसे प्यार करता था और जो उसे प्यार करती थी! अगर उसके दिल में ज़िन्दा रहने का ज़रा भी ख़्याल होता तो उसने ऐसे भावनाहीन और अपमानजनक लहजे में यह न कहा होता। अगर उसे यह मालूम न होता कि मर जायेगा तो कैसे उसे इसपर दया न आती, वह उसके सामने किस तरह ऐसे शब्द कहता! इसका केवल एक ही स्पष्टीकरण हो सकता था और वह यही कि वह हर चीज़ के प्रति उदासीन हो चुका था और उदासीन इसलिये हो गया था कि उसके सामने किसी दूसरी, किसी अधिक महत्त्वपूर्ण चीज़ के ऊपर से परदा उठ गया था।

बातचीत रूखी-रूखी और असम्बद्ध थी तथा हर मिनट के बाद टूट जाती थी।

"हमारी प्यारी मरीया र्याज़ान से होकर आयी है," नताशा ने कहा। प्रिंस अन्द्रेई ने इस बात की तरफ़ ध्यान नहीं दिया कि उसने उसकी बहन को हमारी प्यारी मरीया कहा था और स्वयं नताशा ने भी प्रिंस अन्द्रेई के सामने इस तरह प्रिंसेस का उल्लेख करने के बाद ही पहली बार इस बात की तरफ़ ध्यान दिया।

"अच्छा?" उसने कहा।

"उसे बताया गया कि मास्को बिल्कुल जल गया है, पूरी तरह से, मानो..."

नताशा चुप हो गयी—बात जारी रखना सम्भव नहीं था। प्रिंस अन्द्रेई सम्भवतः उसकी बात सुनने की कोशिश कर रहा था, फिर भी ऐसा कर नहीं पा रहा था।

"हां, सुनने में आया है कि जल गया," उसने कहा। "यह बहुत अफ़सोस की बात है," और वह खोये-खोये से अन्दाज़ में अपनी उंगलियों को मूछों पर फेरते हुए सामने की ओर देखने लगा।

"तो काउंट निकोलाई से तुम्हारी भेंट हो गयी, मरीया?" प्रिंस

अन्द्रेई ने सम्भवतः इनसे कोई सुखद बात कहने के लिये ही कहा। "उसने यहां अपने घरवालों को लिखा है कि तुम उसे बहुत अच्छी लगी हो," वह सरलता और शान्ति से कहता गया और शायद अपने शब्दों के उस जटिल महत्त्व को, जो वे जीवित लोगों के लिये रखते थे, समझने में असमर्थ था। "अगर वह तुम्हें भी पसन्द आ जाये तो बहुत अच्छा हो... ताकि तुम दोनों की शादी हो जाये," उसने मानो उन शब्दों के मिल जाने पर, जिन्हें देर से ढूंढ रहा था, खुश होते हुए ज़रा जल्दी से इतना और कह दिया। प्रिंसेस मरीया ने उसके शब्द सुने, किन्तु उसके लिये इन शब्दों का इस चीज़ को ज़ाहिर करने के अलावा और कोई महत्त्व नहीं था कि इस दुनिया की दिलचस्पियों से अब वह कितना अधिक दूर हो गया था।

"मेरी चर्चा करने में क्या रखा है!" उसने शान्ति से कहा और नताशा की तरफ़ देखा। नताशा उसकी दृष्टि को अपने चेहरे पर अनुभव कर रही थी, किन्तु उसने उसकी ओर नहीं देखा। सभी फिर से चुप हो गये।

"अन्द्रेई, तुम..." प्रिंसेस मरीया ने अचानक कांपती आवाज़ में कहा, "तुम नन्हे निकोलाई से तो मिलना चाहते हो न? वह तो हर वक़्त तुम्हें याद करता रहता है।"

प्रिंस अन्द्रेई के होंठों पर पहली बार हल्की-सी मुस्कान दिखाई दी। किन्तु उसके चेहरे को इतनी अधिक अच्छी तरह से जाननेवाली प्रिंसेस मरीया ने दहलते दिल से इतना समझ लिया कि यह खुशी की, बेटे के प्रति प्यार की मुस्कान नहीं, बल्कि इस चीज़ पर हल्के तथा विनम्र व्यंग्य की मुस्कान थी कि प्रिंसेस मरीया ने अपने उस अन्तिम अस्त्र का भी उपयोग कर लिया जिसे वह उसमें स्नेह-भावना का संचार करने के लिये कारगर मानती थी।

"हां, मुझे नन्हे निकोलाई से मिलकर बहुत खुशी होगी। वह ठीक-ठाक है न?"

नन्हे निकोलाई को जब प्रिंस अन्द्रेई के पास लाया गया तो वह सहमी-सहमी दृष्टि से पिता को देखता रहा, मगर रोया नहीं, क्योंकि कोई भी तो नहीं रो रहा था। प्रिंस अन्द्रेई ने उसे चूमा और सम्भवतः उसकी समझ में यह नहीं आया कि उससे क्या कहे।

नन्हे निकोलाई के कमरे से बाहर ले जाये जाने के बाद प्रिंसेस मरीया फिर से भाई के पास गयी, उसने भाई को चूमा और अपने को और अधिक वश में न रख पाते हुए रो पड़ी।

प्रिंस अन्द्रेई ने बहुत ग़ौर से बहन की तरफ़ देखा।

"तुम नन्हे निकोलाई के लिये रो रही हो?" उसने पूछा।

प्रिंसेस मरीया ने रोते हुए सिर झुकाकर उसकी बात की पुष्टि की।

"मरीया, तुम बाइब ..." वह अचानक चुप हो गया।

"तुम क्या कह रहे थे?"

"कुछ भी नहीं। यहां नहीं रोओ," उसने उसी भावनाहीन दृष्टि से बहन की ओर देखते हुए कहा।

प्रिंसेस मरीया के रो पड़ने पर प्रिंस अन्द्रेई समझ गया कि वह इसलिये रो रही है कि नन्हे निकोलाई के सिर पर से पिता का साया उठ जायेगा। जीवन की ओर लौटने और इस संसार के लोगों के दृष्टिकोण से इसे देखने के लिये उसे बहुत ही यत्न करना पड़ा।

"हां, इन्हें तो यह सब कुछ दयनीय प्रतीत होगा!" उसने सोचा। "किन्तु कितना सीधा-सरल है यह!"

"गगन-पखेरू बीज न बोयें, फ़सल न काटें, फिर भी प्रभु पिता उन्हें खिलायें,"* उसने अपने आपसे कहा और प्रिंसेस मरीया से भी यही कहना चाहा। "लेकिन नहीं, वे इसे अपने ही ढंग से समझेंगी, वे नहीं समझ पायेंगी! वे यह नहीं समझ सकतीं कि वे सभी भावनायें, जिन्हें वे इतना प्यार करती हैं, वे सभी विचार, जिन्हें हम इतना महत्त्व देते हैं – उनकी **कोई ज़रूरत नहीं है**। हम एक-दूसरे को नहीं समझ सकते!" और वह चुप्पी लगा गया।

प्रिंस अन्द्रेई का नन्हा बेटा सात साल का था। वह मुश्किल से ही कुछ पढ़ पाता था, कुछ भी नहीं जानता था। इस दिन के बाद उसने बहुत कुछ सहा, बहुत कुछ जाना-समझा। किन्तु यदि उसके पास बाद में प्राप्त की गयी ये सभी क्षमतायें इस समय भी मौजूद होतीं

---

* बाइबल से उद्धृत वाक्य। – सं०

तो भी वह उस दृश्य के महत्त्व को, जो उसने अपने पिता, प्रिंसेस मरीया और नताशा के बीच देखा, इससे ज़्यादा अच्छी तरह तथा अधिक गहन रूप से न समझ पाता। वह सब कुछ समझ गया, रोये बिना कमरे से बाहर चला गया, अपने पीछे-पीछे कमरे से बाहर आनेवाली नताशा के पास चुपचाप गया, अपनी विचारमग्न सुन्दर आंखों से शर्माते हुए उसने उसकी तरफ़ देखा, उसका ज़रा ऊपर को उठा हुआ ऊपरी ओंठ कांपा, उसने अपना सिर नताशा के साथ सटा दिया और रो पड़ा।

इस दिन के बाद वह डेसाल से दूर भागने लगा, लाड़-प्यार करने को उत्सुक काउंटेस से कन्नी काटता और या तो अकेला बैठा रहता और या फिर झिझकता हुआ प्रिंसेस मरीया तथा नताशा के पास चला जाता, जिसे, लगता था, वह अपनी बूआ से भी ज़्यादा प्यार करने लगा था और शान्त ढंग से तथा शर्माते हुए इन्हीं से लाड़-प्यार करता रहता।

प्रिंस अन्द्रेई के कमरे से बाहर आते हुए प्रिंसेस मरीया पूरी तरह से वह समझ गयी थी जो नताशा के चेहरे पर अंकित भाव ने उससे कहा था। भाई की ज़िन्दगी के बच जाने की उम्मीद के बारे में उसने नताशा से फिर कोई बातचीत नहीं की। वह प्रिंस अन्द्रेई के सोफ़े के पास बैठने के लिये उसके साथ अपनी बारी बदलती रहती, कभी रोती भी नहीं थी, किन्तु आत्मा से निरन्तर उस शाश्वत तथा अगम्य-अगोचर के सम्मुख प्रार्थना करती रहती जिसके अस्तित्व की मरणासन्न व्यक्ति के निकट अब इतनी अधिक प्रतीति होती थी।

१६

प्रिंस अन्द्रेई न केवल यह जानता था कि वह मर जायेगा, बल्कि अनुभव करता था कि मर रहा है, कि आधा तो मर भी चुका है। उसे सभी सांसारिक चीज़ों के प्रति विरक्ति और अपने अस्तित्व के बारे में प्रसन्नतापूर्ण तथा अजीब-सी राहत की चेतना और अनुभूति होती थी। वह इतमीनान से और घबराये बिना उसका इन्तज़ार कर

रहा था जो होनेवाला था। वह भयानक, शाश्वत, अगोचर और दूरस्थ, जिसके अस्तित्व को जीवन भर लगातार अनुभव करता रहा था, अब उसके निकट था और अपने अस्तित्व के बारे में वह जो अजीब-सी राहत महसूस करता था, उसके आधार पर उसे लगभग समझा तथा अनुभव किया जा सकता था...

. . . .

पहले वह अपने अन्त के विचार से डरता था। वह मौत, अपने अन्त की इस भयानक और यातनापूर्ण भावना को दो बार अनुभव कर चुका था और अब उससे घबराता नहीं था।

पहली बार उसने इस भावना को तब अनुभव किया था, जब छर्रोंवाला गोला एक लट्टू की तरह उसके सामने घूम रहा था और उसने डण्ठलोंवाले खेत, झाड़ियों तथा आकाश पर नज़र डाली थी और यह जानता था कि उसके सामने मौत नाच रही है। घाव के बाद जब उसे होश आया और मानो ज़िन्दगी के शिकंजे से आज़ाद हो जानेवाली उसकी आत्मा में उसी क्षण इस जीवन से पूरी तरह मुक्त, शाश्वत और बन्धनहीन प्रेम का पुष्प खिल उठा था, तब उसे न तो मौत का डर रहा था और न वह उसके बारे में सोचता ही था।

घाव के बाद बिताये गये यातनापूर्ण एकान्त और अर्ध-सन्निपात के घण्टों में अपने सम्मुख उद्घाटित होनेवाले नये, शाश्वत प्रेम के बारे में वह जितना अधिक सोचता था, उतना ही अधिक (स्वयं यह अनुभव न करते हुए) इस सांसारिक जीवन से विरक्त होता जाता था। सभी कुछ को, सबको प्यार करने, प्यार के लिये सदा आत्म-बलिदान करने का अर्थ था किसी को भी प्यार न करना, इसका अर्थ था सांसारिक जीवन को न जीना। ऐसे प्रेम की भावना से वह जितना अधिक ओत-प्रोत होता गया, जीवन के प्रति उसका मोह उतना ही कम होता गया और उतने ही अधिक पूर्ण रूप से वह उस दीवार को नष्ट करता चला गया जो ऐसे प्यार की अनुपस्थिति में जीवन और मृत्यु के बीच खड़ी रहती है। जब उसे यह ख़्याल आता (ऐसा शुरू-शुरू में हुआ) कि उसे मरना होगा तो वह अपने आपसे कहता – तो क्या हुआ, यह तो और भी अच्छी बात है।

किन्तु मितीश्ची की उस रात के बाद, जब अर्ध-सन्निपात की अवस्था में उसके सामने वह आई जिसे चाहता था और जब उसके हाथ

को अपने ओठों से लगाकर वह धीमे-धीमे और ख़ुशी के आंसू बहाते हुए रो पड़ा था, एक ही औरत के प्रति उसके प्यार ने अनजाने ही उसके दिल में जगह बना ली थी और उसने फिर से उसे जीवन के बन्धन में बांध दिया था। सुखद और चिन्ताजनक विचार उसके मन में आने लगे। चिकित्सा-केन्द्र में कुरागिन को देखने पर जो भावना उस समय उसके मन में पैदा हुई थी, अब उसके प्रति वह दया की उसी भावना को अनुभव नहीं कर सकता था। अब उसे यह प्रश्न व्यथित करता था – वह ज़िन्दा है या नहीं? वह यह पूछने की हिम्मत नहीं कर सकता था।

प्रिंस अन्द्रेई की बीमारी अपने सामान्य शारीरिक क्रम से चल रही थी। किन्तु जिसे नताशा ने इन शब्दों में व्यक्त किया – **उसे अचानक ही यह हो गया** – यह प्रिंसेस मरीया के आने के दो दिन पहले हुआ था। यह जीवन और मृत्यु के बीच वह अन्तिम नैतिक संघर्ष था जिसमें मृत्यु ने विजय प्राप्त कर ली थी। यह इस चीज़ की अप्रत्याशित चेतना थी कि वह नताशा के प्यार के रूप में व्यक्त होनेवाले अपने जीवन को अभी भी चाहता था और यह अज्ञात के सम्मुख भय की अन्तिम अभि-व्यक्ति, अन्तिम आवेश था।

प्रिंस अन्द्रेई में ऐसा परिवर्तन एक शाम को हुआ था। शाम के भोजन के बाद वह हर दिन की तरह हल्के-हल्के बुख़ार की हालत में था और उसके विचार असाधारण रूप से स्पष्ट थे। मेज़ के क़रीब सोन्या बैठी थी। प्रिंस अन्द्रेई को झपकी आ गयी। अचानक उसे अपने तन-मन में ख़ुशी की अनुभूति हुई।

"ओह, वह आ गयी है!" उसने सोचा।

वास्तव में ही सोन्या की जगह आहट किये बिना दबे क़दमों से अभी-अभी भीतर आनेवाली नताशा वहां बैठी थी।

नताशा जब से प्रिंस अन्द्रेई की सेवा-शुश्रूषा करने लगी थी, वह हमेशा अनजाने ही उसकी इस निकटता को अनुभव कर लेता था। वह उसकी ओर तिरछी होकर, ताकि मोमबत्ती की रोशनी को अपने पीछे छिपा ले, कुर्सी पर बैठी थी और जुराब बुन रही थी। (नताशा ने उसी समय से जुराब बुनना सीख लिया था, जब प्रिंस अन्द्रेई ने योंही संयोग से यह कह दिया था कि जुराब बुननेवाली बूढ़ी आयाओं से ज़्यादा अच्छी तरह कोई भी बीमार की तीमारदारी नहीं कर सकता

और यह कि जुराब बुनने से एक ख़ास क़िस्म का चैन मिलता है।) उसकी पतली-पतली उंगलियां कभी-कभार ही आपस में टकरा जानेवाली सिलाइयों से जल्दी-जल्दी बुनाई कर रही थीं और उसकी विचारमग्न तथा झुकी हुई पार्श्व मुखमुद्रा उसे बिल्कुल स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वह हिली-डुली और ऊन का गोला उसकी गोद से नीचे लुढ़क गया। वह चौंकी, उसने मुड़कर प्रिंस अन्द्रेई की तरफ़ देखा, मोमबत्ती के सामने हाथ से ओट की, अत्यधिक सावधानीपूर्वक, लचीली तथा नपी-तुली गति-विधि से नीचे झुककर उसने गोला उठाया और फिर से पहलेवाली मुद्रा में बैठ गयी।

प्रिंस अन्द्रेई हिले-डुले बिना नताशा को देखता रहा और उसने देखा कि गोला उठाने के बाद उसे खुलकर सांस लेने की ज़रूरत थी, किन्तु उसने ऐसा नहीं किया और बहुत धीरे से सांस ली।

त्रोइत्सा मठ में ठहरने के वक़्त उन्होंने अतीत की चर्चा की थी और तब प्रिंस अन्द्रेई ने उससे कहा था कि अगर वह जिन्दा रहा तो हमेशा अपने घाव के लिये भगवान को धन्यवाद देता रहेगा जिसने पुनः उसे उससे मिला दिया था। किन्तु इसके बाद इन दोनों ने कभी भी भविष्य की चर्चा नहीं की थी।

"ऐसा हो सकता है या नहीं हो सकता?" नताशा की ओर देखते और इस्पाती सिलाइयों की हल्की-सी आवाज़ सुनते हुए प्रिंस अन्द्रेई सोच रहा था। "क्या भाग्य ने इसीलिये ऐसे अजीब ढंग से मुझे इससे मिलाया है कि मैं मर जाऊं?.. क्या इसीलिये मुझे जीवन की सचाई की पहचान हुई है कि मैं झूठ का शिकार हो जाऊं? मैं इसे ही दुनिया में सबसे ज़्यादा प्यार करता हूं। लेकिन अगर मैं इसे प्यार करता हूं तो क्या करूं?" उसने अपने आपसे कहा और बीमारी के कष्टों को लगातार सहने के कारण पड़ जानेवाली आदत के मुताबिक़ अचानक तथा अनजाने ही कराह उठा।

यह आवाज़ सुनते ही नताशा ने जुराब नीचे रख दी, उसकी ओर आगे को बढ़ गयी और सहसा उसकी आंखों में चमक देखकर फुरती से उसके पास गयी और उसके ऊपर झुक गयी।

"आप सो नहीं रहे हैं?"

"नहीं, मैं बहुत देर से आपकी तरफ़ देख रहा हूं। मैंने आपका कमरे में आना भी अनुभव किया। कोई भी मुझे आपके समान मधुर

चैन ... ऐसा प्रकाश नहीं दे पाता। खुशी से मेरा मन रोने को होता है।"

नताशा उसके और क़रीब हो गयी। उसका चेहरा उल्लास से चमक रहा था।

"नताशा, मैं आपको बहुत ज़्यादा प्यार करता हूं। दुनिया में सबसे ज़्यादा।"

"और मैं?" उसने क्षण भर को मुंह दूसरी ओर कर लिया। "बहुत ज़्यादा क्यों?" नताशा ने पूछा।

"बहुत ज़्यादा क्यों?.. खैर, यह बताइये कि आप क्या सोचती हैं, अपनी आत्मा, अपनी आत्मा की पूरी गहराई से यह बतायें कि मैं ज़िन्दा रहूंगा या नहीं? आपका क्या ख़्याल है?"

"मुझे यक़ीन है, पूरा यक़ीन है!" बड़े जोश से उसके दोनों हाथों को अपने हाथों में लेते हुए वह लगभग चिल्ला उठी।

प्रिंस अन्द्रेई कुछ क्षण चुप रहा।

"कितना अच्छा हो कि ऐसा हो जाये!" और उसने नताशा का हाथ अपने हाथ में लेकर उसे चूमा।

नताशा बहुत खुश और भाव-विह्वल थी। किन्तु इसी क्षण उसे याद आ गया कि ऐसी भाव-विह्वलता ठीक नहीं है, कि प्रिंस अन्द्रेई को शान्त रहना चाहिये।

"मगर आप सोये तो नहीं," उसने अपनी खुशी को दबाते हुए कहा। "कृपया ... सोने की कोशिश कीजिये।"

प्रिंस अन्द्रेई ने प्यार से नताशा के हाथ को ज़रा दबाकर उसे छोड़ दिया और वह मोमबत्ती के पास जाकर फिर से अपनी पहलेवाली मुद्रा में बैठ गयी। उसने दो बार मुड़कर देखा और दोनों बार ही उसने प्रिंस की चमकती आंखों को अपनी ओर देखते पाया। उसने अपने लिये जुराब की बुनाई का एक भाग निर्धारित कर लिया और अपने आपसे कहा कि जब तक उसे समाप्त नहीं कर लेगी, मुड़कर नहीं देखेगी।

प्रिंस अन्द्रेई ने कुछ देर बाद वास्तव में ही आंखें मूंद लीं और सो गया। वह थोड़ी देर तक ही सोया तथा बहुत घबराकर और ठण्डे पसीनों से तर होता हुआ जाग उठा।

सोते वक़्त भी वह उसी चीज़ के बारे में सोच रहा था जिसके बारे में

वह अब हर समय सोचता रहता था यानी जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध में। जीवन से अधिक मृत्यु के सम्बन्ध में। वह अपने को मौत के क़रीब महसूस कर रहा था।

"प्यार ? क्या चीज़ है यह प्यार ?" वह सोच रहा था। "प्यार मौत के रास्ते में रुकावट बनता है। प्यार जीवन है। सभी कुछ, वह सब जो मैं समझता हूं, इसीलिये समझता हूं कि प्यार करता हूं। सब कुछ इसीलिये है, सभी कुछ का इसीलिये अस्तित्व है कि मैं प्यार करता हूं। सब कुछ केवल उसी के साथ जुड़ा हुआ है। प्यार ही भगवान है और मरने का मतलब है कि मैं, प्यार का एक छोटा-सा अंश सामान्य और शाश्वत स्रोत की ओर लौट जाऊंगा।" ये विचार उसे सान्त्वना देनेवाले प्रतीत हुए। किन्तु ये केवल विचार ही थे। इनमें किसी चीज़ की कमी थी, इनमें कुछ एकपक्षी और व्यक्तिगत था, बौद्धिक था – इनमें स्पष्टता नहीं थी। उसने बेचैनी और उलझन अनुभव की। उसकी आंख लग गयी।

सपने में प्रिंस अन्द्रेई ने देखा कि वह उसी कमरे में लेटा हुआ है जिसमें सचमुच लेटा हुआ था, मगर घायल नहीं, बिल्कुल ठीक-ठाक है। तरह-तरह के तुच्छ और उदासीन-से चेहरे प्रिंस अन्द्रेई के सामने आते हैं। वह उनके साथ बातें और व्यर्थ की किसी चीज़ पर बहस करता है। वे कहीं जाने को तैयार हो रहे हैं। प्रिंस अन्द्रेई को अस्पष्ट-सी यह चेतना होती है कि ये सब बेतुकी-सी चीज़ें हैं और यह कि उसके सामने अनेक अन्य महत्त्वपूर्ण चिन्तायें हैं। इसके बावजूद वह बोलता जाता है और इन लोगों को सारहीन शब्द-चमत्कार से, कोरी लफ़्फ़ाज़ी से हैरान करता रहता है। धीरे-धीरे और गुप्त रूप से ये सभी चेहरे ग़ायब होने लगते हैं और सारा मामला एक ही प्रश्न, दरवाज़े को बन्द करने के सवाल पर आकर केन्द्रित हो जाता है। वह उठता है, दरवाज़े की तरफ़ जाता है, ताकि कुंडी चढ़ाकर उसे ताला लगा दे। वह दरवाज़े को बन्द कर पाता है या नहीं बन्द कर पाता है, इसी पर सब कुछ निर्भर करता है। वह उधर बढ़ता है, उतावली करता है, किन्तु उसके पांव साथ नहीं देते, उसे यह मालूम है कि दरवाज़े को ताला नहीं लगा पायेगा, फिर भी एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाता है। यातनापूर्ण भय उसे दबोच लेता है। यह भय मौत का भय है – यह दरवाज़े के बाहर खड़ा है। किन्तु उसी समय जब वह अशक्त-सा तथा अटपटे ढंग से

किसी तरह दरवाज़े की तरफ़ बढ़ता है, तो वह, जो बहुत भयानक है, दूसरी ओर से दरवाज़े पर ज़ोर डालता है और भीतर आने की कोशिश करता है। कुछ ऐसा, जो मानवीय नहीं है – अर्थात् मृत्यु – दरवाज़े से भीतर आने की कोशिश में है और उसे रोकना चाहिये। वह दरवाज़े को कसकर पकड़ लेता है, अपना आख़िरी ज़ोर लगाता है – दरवाज़े को ताला लगाकर बन्द करना सम्भव नहीं – बस, उसे किसी तरह से खुलने न दिया जाये ; किन्तु उसमें इतनी ताक़त नहीं है, उसके प्रयास अटपटे-से हैं और दरवाज़े के दूसरी ओर खड़े "उस" भयानक के ज़ोर डालने पर दरवाज़ा खुलकर फिर से बन्द हो जाता है।

"वह" फिर से दरवाज़े को धकेलता है। उसके अन्तिम, अपनी पूरी शक्ति से भी बढ़-चढ़कर किये जानेवाले प्रयास असफल रहते हैं और किसी तरह की आवाज़ के बिना दरवाज़े के दोनों पट खुल जाते हैं। **वह** भीतर आ गया, वह **मौत** है। और प्रिंस अन्द्रेई मर गया।

किन्तु सपने में मृत्यु होने के इसी क्षण में प्रिंस अन्द्रेई को याद आया कि वह सो रहा है और मृत्यु के इसी क्षण में वह अपना पूरा ज़ोर लगाकर जाग गया।

"हां, यह मौत थी। मैं मर गया – मैं जाग गया। हां, मौत – जागरण है!" अचानक उसकी आत्मा में प्रकाश हो गया और वह परदा, जो अब तक अदृश्य-अगोचर को छिपाये रहा था, उसके मन की आंखों के सामने से ऊपर उठ गया था। उसने अनुभव किया कि उसकी वे आन्तरिक शक्तियां, जो पहले दबी हुई थीं, अब मुक्त हो गयी हैं और उसे उस अजीब-से हल्केपन की अनुभूति हुई जिसे वह तब से लगातार महसूस करता था।

ठण्डे पसीनों से तर होकर जागने पर जब वह अपने सोफ़े पर हिला-डुला तो नताशा ने उसके क़रीब जाकर उससे पूछा कि क्या बात है। उसने नताशा को कोई जवाब नहीं दिया और नताशा की बात समझ न पाते हुए अजीब-सी नज़र से उसकी तरफ़ देखा।

यही था जो प्रिंसेस मरीया के आने के दो दिन पहले प्रिंस अन्द्रेई के साथ हुआ था। डाक्टर के कथनानुसार शक्ति को चूसनेवाले बुख़ार ने उग्र रूप ले लिया था। किन्तु नताशा को डाक्टर के कथन में कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं थी – वह तो ये भयानक, ये मानसिक लक्षण देख रही थी जो उसके दिल में कहीं ज़्यादा घबराहट पैदा करते थे।

इसी दिन से प्रिंस अन्द्रेई के लिये नींद से जागरण के साथ-साथ जीवन के जागरण का भी आरम्भ हुआ। और जीवन की अवधि की दृष्टि से उसे वह स्वप्न की अवधि से जागने की तुलना में अधिक लम्बा प्रतीत नहीं हुआ।

इस धीमे जागरण में कुछ भी भयानक और उग्र नहीं था।

प्रिंस अन्द्रेई के जीवन के अन्तिम दिन और घण्टे सामान्य और सीधे-सादे ढंग से बीते। हर समय उसके क़रीब बैठी रहनेवाली प्रिंसेस मरीया और नताशा इसे अनुभव करती थीं। वे रोती नहीं थीं, संत्रस्त नहीं होती थीं और आख़िरी समय में तो ख़ुद भी ऐसा अनुभव करते हुए उसकी नहीं (वह तो रहा ही नहीं था, उनसे दूर जा चुका था), बल्कि उसकी निकटतम स्मृति – उसके शरीर की सेवा-शुश्रूषा करती थीं। उनकी भावनायें इतनी तीव्र थीं कि मृत्यु का बाहरी, भयानक पक्ष उनपर कोई प्रभाव नहीं डालता था और उन्हें अपने दुख को उग्र बनाने की कोई आवश्यकता अनुभव नहीं होती थी। ये दोनों न तो उसके सामने और न उसकी अनुपस्थिति में रोती थीं तथा न आपस में कभी उसकी चर्चा करती थीं। वे दोनों महसूस करती थीं कि जो कुछ समझती थीं, उसे शब्दों में व्यक्त करने में असमर्थ थीं।

वे दोनों यह देखती थीं कि कैसे धीरे-धीरे और शान्ति से वह उनसे दूर होता जा रहा था और दोनों जानती थी कि ऐसा ही होना चाहिये और यह अच्छा ही है।

प्रिंस अन्द्रेई से पाप-स्वीकारोक्ति करवाई गयी और उसका परम संस्कार किया गया, सभी उससे विदा लेने को आये। जब बेटे को उसके पास लाया गया तो उसने उसे चूमा और मुंह फेर लिया, सो भी इसलिये नहीं कि उसे दुख हुआ या तरस आया (प्रिंसेस मरीया और नताशा इस चीज़ को समझती थीं), बल्कि केवल इसलिये कि उसके विचारानुसार उससे केवल इतनी ही अपेक्षा की जा रही थी। किन्तु जब उससे यह कहा गया कि वह उसे आशीर्वाद दे तो उसने यह अनुरोध पूरा करने के बाद अपने इर्द-गिर्द ऐसे देखा मानो पूछ रहा हो कि क्या उसे कुछ और भी करना है या नहीं।

जब आत्मा के शरीर को छोड़ने की अन्तिम ऐंठनें हुईं तो प्रिंसेस मरीया और नताशा उसके कमरे में ही थीं।

"पूरा हो गया?!" प्रिंसेस मरीया ने तब कहा जब प्रिंस अन्द्रेई का ठण्डा होता हुआ शरीर कुछ मिनट तक उनके सामने निश्चेष्ट पड़ा रहा। नताशा उसके पास गयी, उसने निर्जीव आंखों में झांका और उन्हें जल्दी से बन्द कर दिया। उसने उन्हें बन्द कर दिया और चूमा नहीं, बल्कि कुछ ही समय पहले तक की याद दिलानेवाले उसके शरीर के साथ लिपट गयी।

"वह कहां चला गया? कहां है अब वह?.."

प्रिंस अन्द्रेई के शव को नहलाने-धुलाने और कपड़े पहनाने के बाद जब ताबूत में लिटाकर मेज़ पर रख दिया गया तो सभी उससे विदा लेने के लिये आये और सभी रो रहे थे।

नन्हा निकोलाई इसलिये रो रहा था कि उसका हृदय कुछ भी न समझ पाने के कारण व्यथा से टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा था। काउंटेस और सोन्या नताशा के लिये दया अनुभव करते तथा इस कारण रो रही थीं कि प्रिंस अन्द्रेई अब इस दुनिया में नहीं रहा था। बुज़ुर्ग काउंट यह अनुभव करते हुए रो रहे थे कि जल्द ही उन्हें भी इस भयानक मार्ग पर क़दम बढ़ाना होगा।

नताशा और प्रिंसेस मरीया भी अब रो रही थीं। किन्तु अपने व्यक्तिगत दुख के कारण नहीं, बल्कि उस उदात्त भावना से विह्वल होकर जिसने मृत्यु की साधारण, गम्भीर और रहस्यपूर्ण प्रक्रिया से उनकी आत्माओं को अभिभूत कर दिया था।

भाग २

१

किसी घटना के सभी कारणों को समझ पाना मानवीय मस्तिष्क के बस की बात नहीं। किन्तु इन कारणों को समझने की चाह मानवीय आत्मा का अभिन्न अंग है। मानवीय मस्तिष्क किसी घटना से सम्बन्धित असंख्य और जटिल परिस्थितियों की छान-बीन किये बिना, जिनमें से प्रत्येक अपने पृथक रूप में उसका कारण प्रतीत हो सकती है, सबसे सर्वाधिक आसानी से समझ में आनेवाले पहले निकटवर्ती अनुमान को झपट लेता है और कह उठता है – यह रहा उसका कारण। ऐतिहासिक घटनाओं के मामले में (जहां मानवीय कार्य-कलापों का अन्वेषण किया जाता है) देवताओं की इच्छा को ही प्रथमतम कारण माना गया, इसके बाद उन लोगों की इच्छा को जिन्हें प्रमुखतम ऐतिहासिक स्थान प्राप्त है यानी इतिहास के वीरों-नायकों की इच्छा को। किन्तु प्रत्येक ऐतिहासिक घटना की तह में जाते ही अर्थात् उस घटना में भाग लेने-वाले सभी जनसाधारण की गति-विधियों की जांच करते ही हमें यह विश्वास हो जाता है कि ऐतिहासिक नायकों की इच्छा न केवल जन-साधारण के कार्य-कलाप का निर्देशन ही नहीं करती, बल्कि स्वयं निरन्तर निर्देशित होती है। ऐसा प्रतीत हो सकता है कि ऐतिहासिक घटनाओं को किस रूप में समझा जाता है, इससे फ़र्क़ ही क्या पड़ता है। किन्तु जो आदमी यह कहता है कि पश्चिम के लोग इसलिये पूरब की तरफ़ गये कि नेपोलियन की ऐसी इच्छा थी तथा दूसरी ओर यह माननेवाले आदमी में कि ऐसा इसलिये हुआ कि होना ही था, उतना ही अन्तर है जितना उन लोगों के बीच जो यह मानते थे कि पृथ्वी एक ही जगह पर दृढ़ता से खड़ी है और दूसरे ग्रह उसके गिर्द घूमते हैं तथा जो यह कहते थे कि उन्हें मालूम नहीं कि पृथ्वी किस चीज़ पर टिकी हुई है, मगर जानते हैं कि ऐसे नियम हैं जो पृथ्वी और अन्य ग्रहों की गति को नियमित करते हैं। सभी कारणों के एकमात्र कारण

के सिवा ऐतिहासिक घटना का न तो कोई कारण है और न हो सकता है। किन्तु घटनाओं का संचालन करनेवाले कुछ नियम अवश्य हैं जिनमें से कुछ हमें अज्ञात हैं और कुछ को हम टटोल रहे हैं। इन नियमों की खोज तभी सम्भव हो सकती है, जब हम एक व्यक्ति की इच्छा में इनके कारण ढूंढ़ने से ठीक वैसे ही पूरी तरह इन्कार कर दें जैसे ग्रहों की गति के नियम खोजना तभी सम्भव हो सका था, जब लोगों ने पृथ्वी के एक ही जगह पर खड़ी होने की धारणा को एकदम नकार दिया था।

बोरोदिनो की लड़ाई, मास्को पर दुश्मन के क़ब्ज़े और उसके जल जाने के बाद इतिहासकार १८१२ के युद्ध की जिस घटना को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं, वह है – रूसी सेना का र्याज़ान के मार्ग से कालूगा के मार्ग और तारूतिनो गांव के शिविर की तरफ़ बढ़ना यानी क्रास्नाया पाख़रा गांव से आगे निकलकर उसका तथाकथित पार्श्व या बग़ली कूच। इतिहासकार विभिन्न लोगों को इस प्रतिभापूर्ण उपलब्धि का श्रेय देते हैं और इस बात पर विवाद करते हैं कि किसे इसका सम्मान दिया जाये। इस पार्श्व कूच की चर्चा करते हुए विदेशी, यहां तक कि फ़्रांसीसी इतिहासकार भी रूसी सेना-संचालकों की प्रतिभा को स्वीकार करते हैं। किन्तु यह समझ पाना बहुत मुश्किल है कि किस कारण सैनिक विषयों पर लिखनेवाले लेखक और उनका अनुकरण करते हुए बाक़ी सभी लोग भी क्यों ऐसा मानते हैं कि बड़ी कुशाग्रबुद्धि का परिचायक यह **पार्श्व** कूच किसी एक व्यक्ति के दिमाग़ का अविष्कार था जिसने रूस को बचा लिया और नेपोलियन को तबाह कर डाला। सबसे पहले तो यही समझना कठिन है कि इस कूच में गहरी सूझ-बूझ और प्रतिभा की कौन-सी बात है। कारण यह कि इस चीज़ का अनुमान लगाने के हेतु कि किसी सेना के लिये (जब उसपर हमला न किया जा रहा हो) उसी जगह पर होना सबसे ज़्यादा अच्छा होगा, जहां ज़्यादा रसद मिल सके – किसी विशेष बौद्धिक प्रयास की आवश्यकता नहीं। हर कोई, यहां तक कि तेरह साल का कोई बुद्धू छोकरा भी यह अनुमान लगा सकता था कि १८१२ में मास्को से पीछे हटने के बाद सेना के लिये कालूगा के मार्ग पर बढ़ना ही सबसे ज़्यादा लाभदायक था। इसलिये सर्वप्रथम तो यह समझना असम्भव है कि कौन-से निष्कर्ष इतिहासकारों

को इस युक्ति में बहुत गहरी सूझ-बूझ देखने को प्रेरित करते हैं। दूसरे, इस चीज़ को समझना तो और भी ज़्यादा कठिन है कि इतिहासकार किसलिये इस युक्ति को रूसियों की रक्षा और फ़्रांसीसियों का नाश करनेवाली मानते हैं। कारण कि इस पार्श्व कूच के पहले, कूच के समय या उसके बाद यदि कुछ अन्य परिस्थितियां होतीं तो यही कूच रूसियों को नष्ट कर सकता था और फ़्रांसीसियों को बचा सकता था। इस कूच के समय से यदि रूसी सेना की स्थिति बेहतर होने लगी तो इससे हरगिज़ यह नतीजा नहीं निकाला जा सकता कि इसी कूच की बदौलत ऐसा हुआ।

यदि दूसरी परिस्थितियां साथ न देतीं तो यह पार्श्व कूच रूसी सेना के लिये न केवल लाभदायक, बल्कि घातक भी हो सकता था। अगर मास्को न जल जाता तो क्या होता? अगर रूसी सेना पर से म्युराट की नज़र न चूक जाती तो क्या होता?* अगर नेपोलियन हाथ पर हाथ धरे न बैठा रहता तो क्या नतीजा सामने आता? अगर बेनिगसेन और बार्कले की सलाह पर रूसी सेना ने क्रास्नाया पाख़रा गांव के निकट लड़ाई लड़ी होती तो स्थिति क्या करवट लेती? रूसी सेना जिस वक़्त पाखरा नदी से आगे जा रही थी, उस वक़्त फ़्रांसीसियों ने अगर उसपर हमला कर दिया होता तो क्या होता? अगर बाद में, तारूतिनो पहुंचने पर नेपोलियन ने उस जोश के दसवें भाग से भी रूसी सेना पर हमला किया होता जिससे उसने स्मोलेन्स्क पर आक्रमण किया था तो क्या होता? अगर फ़्रांसीसी पीटर्सबर्ग की तरफ़ बढ़ जाते तो क्या होता?.. इन सभी परिस्थितियों में पार्श्व कूच रक्षात्मक होने के बजाय घातक हो सकता था।

तीसरी, सबसे ज़्यादा समझ में न आनेवाली बात यह है कि इतिहास का अध्ययन करनेवाले लोग किसलिये जान-बूझकर यह नहीं देखना चाहते कि इस पार्श्व कूच का किसी भी एक व्यक्ति को श्रेय नहीं दिया जा सकता, कि किसी ने भी कभी इसकी पूर्वकल्पना नहीं की, कि वास्तव में फ़िली में हुई युद्ध-परिषद की बैठक में मास्को छोड़ने

---

* म्युराट कुतूज़ोव की रणनीतिक चाल को भांप नहीं पाया जिन्होंने मुख्य सेनाओं को दूसरी दिशा में भेज दिया, जबकि पहलेवाली दिशा में सिर्फ़ दो रेजिमेंटें छोड़ दीं। – सं०

के निर्णय की भांति यह युक्ति भी अपने सम्पूर्ण रूप में किसी के दिमाग़ में कभी नहीं आई थी, बल्कि एक के बाद एक क़दम, एक के बाद एक घटना, एक के बाद एक क्षण की अत्यधिक विविधतापूर्ण असंख्य परिस्थितियों का परिणाम थी। यह युक्ति पूरी हो जाने और अतीत का भाग बन जाने पर ही अपने सम्पूर्ण रूप में सामने आई।

फ़िली में हुई युद्ध-परिषद की बैठक में अधिकतर रूसी सेना-संचालकों के मन में निर्विवाद रूप से यही विचार था कि सीधे नीज्नी नोव्गोरोद के मार्ग पर पीछे हटा जाये। इसका प्रमाण यह है कि बहुमत ने इसी विचार का समर्थन किया था और सबसे महत्त्वपूर्ण तो वह बातचीत है जो परिषद की बैठक के बाद सेनापति और लान्स्की के बीच हुई जो उस समय रसद-विभाग का अध्यक्ष था। लान्स्की ने सेनापति को सूचित किया कि मुख्य रूप से तो ओका नदी के तटवर्ती क्षेत्रों – तूला और कालूगा प्रान्तों में ही सेना के लिये रसद जमा की गयी है और नीज्नी नोव्गोरोद के मार्ग पर पीछे हटने से बड़ी ओका नदी के कारण, जिसे जाड़े के आरम्भ में पार करना सम्भव नहीं होता, रसद सेना की पहुंच से बाहर हो जायेगी। नीज्नी नोव्गोरोद के मार्ग पर पीछे हटने के इस समय तक सर्वथा स्वाभाविक प्रतीत होनेवाले निर्णय को बदलने की आवश्यकता का यह पहला संकेत था। रूसी सेना अधिक दक्षिण की ओर तथा रसद-भण्डारों के ज़्यादा नज़दीक रहती हुई र्याज़ान के मार्ग पर पीछे हटने लगी। बाद में फ़्रांसीसियों की निष्क्रियता, जिन्हें यह तक मालूम नहीं रहा था कि रूसी सेनायें कहां हैं, तूला के हथियार बनानेवाले कारख़ाने की रक्षा की चिन्ता और सबसे बढ़कर तो अपने रसद-भण्डारों की निकटता के लाभों ने रूसी सेना को और भी ज़्यादा दक्षिण की तरफ़, तूला के मार्ग पर हट जाने को विवश कर दिया। पाख़रा नदी से आगे मजबूरन कूच करते हुए तूला के मार्ग पर आकर रूसी सेना-संचालकों ने पोदोल्स्क* में ही रुकने का इरादा बनाया और उनके मन में तारूतिनो में सेना को लड़ाई के लिये तैनात करने का विचार तक नहीं था। किन्तु अनगिनत परिस्थितियों और फ़्रांसीसी

---

* कुतूज़ोव की सेनायें ८–९ सितम्बर को रक्षात्मक स्थिति में तैनात कर दी गयी थीं। मास्को से दक्षिण-पूरब की ओर पोदोल्स्क नगर इनका केन्द्र बना। शुरू में यहीं लड़ाई लड़ने का ख़्याल था। – सं०

सेनाओं के फिर से प्रकट हो जाने पर, जिनकी पहले रूसी सेनाओं पर से नज़र चूक गयी थी, लड़ाई की योजनाओं और मुख्यतः तो कालूगा में रसद के बाहुल्य ने रूसी सेनाओं को और भी अधिक दक्षिण की ओर हटने तथा रसद के क्षेत्र के ज़्यादा नज़दीक यानी तूला से कालूगा के मार्ग पर, तारूतिनो की तरफ़ जाने को मजबूर कर दिया। जैसे इस प्रश्न का उत्तर देना सम्भव नहीं कि मास्को को कब छोड़ा गया, ठीक वैसे ही यह जवाब भी नहीं दिया जा सकता कि तारूतिनो को जाने का निर्णय कब लिया गया और किसने यह निर्णय लिया। जब असंख्य विभिन्न कारणों के फलस्वरूप रूसी सेनायें तारूतिनो पहुंच गयीं, केवल तभी लोग अपने को यह यक़ीन दिलाने लगे कि वे ऐसा ही चाहते थे और बहुत पहले से ही ऐसा जानते थे।

२

प्रसिद्ध पार्श्व कूच सिर्फ़ यही था कि शत्रु के आक्रमण के फलस्वरूप पीछे हटती जानेवाली रूसी सेनाओं ने फ़्रांसीसियों का हमला ख़त्म होने पर पीछे हटने का सीधा रास्ता छोड़ दिया और यह देखकर कि उनका पीछा नहीं किया जा रहा है, स्वाभाविक रूप से उधर मुड़ गयीं, जिधर रसद का बाहुल्य था।

अगर हम प्रतिभावान सेना-संचालक और किसी तरह के संचालन के बिना साधारण रूसी सेना की कल्पना कर लें तो ऐसी सेना भी रसद के बाहुल्यवाले और अधिक समृद्ध क्षेत्र के गिर्द अर्धचक्र-सा बनाती हुई मास्को की ओर लौटने के अलावा कोई दूसरा मार्ग न अपनाती।

नीज्नी नोव्गोरोद के मार्ग छोड़कर र्याज़ान, तूला और कालूगा के मार्गों की तरफ़ बढ़ना इस हद तक स्वाभाविक था कि रूसी सेना के लूट-मार करनेवाले भगोड़े भी इधर ही भागते थे और पीटर्सबर्ग ने कुतूज़ोव से भी अपनी सेनाओं को इसी दिशा में ले जाने की मांग की थी। तारूतिनो में कुतूज़ोव को सम्राट की ओर से इस बात के लिये लगभग फटकार मिली कि वह अपनी सेनाओं को र्याज़ान के मार्ग पर ले गये और उनसे कालूगा के सामने वही स्थिति अपनाने को कहा

गया जिस स्थिति को वह सम्राट का पत्र मिलने के समय अपना चुके थे।

पूरे युद्ध-अभियान और बोरोदिनो की लड़ाई द्वारा एक गेंद की तरह उसी दिशा में लुढ़कने के बाद, जिसमें रूसी सेना को धकेल दिया गया था, धक्के का ज़ोर समाप्त होने और लड़ाई के नये धक्के न लगने पर उसने वही स्थिति अपना ली जो उसके लिये स्वाभाविक थी।

कुतूज़ोव का श्रेय प्रतिभापूर्ण कहलानेवाली किसी रणनीतिक युक्ति में नहीं, बल्कि इस चीज़ में निहित था कि सिर्फ़ वही उस घटना के महत्त्व को समझते थे जो घटी थी। केवल उन्हींने उस समय फ़्रांसीसी सेना की निष्क्रियता का महत्त्व समझा था, सिर्फ़ वही इस बात पर ज़ोर देते जा रहे थे कि बोरोदिनो की लड़ाई में रूसियों की विजय हुई थी; सिर्फ़ उन्हींने – जिन्हें अवश्य ही सेनापति होने के नाते शत्रु पर आक्रमण करने के पक्ष में होना चाहिये था – रूसी सेना को व्यर्थ की लड़ाइयों से दूर रखने के लिये एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया।

बोरोदिनो के क़रीब घायल होनेवाला दरिन्दा वहीं पड़ा हुआ था, जहां भाग जानेवाले शिकारी ने उसे छोड़ा था। वह ज़िन्दा है या नहीं, उसमें ताक़त है या नहीं या फिर वह सिर्फ़ छिपा हुआ है – शिकारी को यह मालूम नहीं था। अचानक इस दरिन्दे का कराहना सुनायी दिया।

इस घायल दरिन्दे यानी फ़्रांसीसी सेना का यह कराहना, जो उसके अन्त का परिचायक था, लोरिस्टन के रूप में सामने आया जिसे नेपोलियन ने शान्ति-सन्धि का अनुरोध करने के लिये कुतूज़ोव के पास भेजा था।

नेपोलियन ने अपने इस आत्मविश्वास के साथ कि वही ठीक नहीं, जो ठीक है, बल्कि जो उसके दिमाग़ में आ जाये, कुतूज़ोव को ऐसे शब्द लिख भेजे जो सबसे पहले उसके दिमाग़ में आ गये और जो बिल्कुल बेमानी थे।

"प्रिंस कुतूज़ोव," नेपोलियन ने लिखा था, "आपके साथ अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर बातचीत करने के लिये अपना एक एडजुटेंट-जनरल भेज रहा हूं। आप महामान्य से अनुरोध करता हूं कि वह आपसे जो कुछ कहे, आप उस सब पर विश्वास करें, **ख़ास तौर पर जब वह आदर और विशेष सम्मान की वे भावनायें व्यक्त करे जो बहुत अरसे**

से मैं आपके प्रति अनुभव करता हूं। भगवान से प्रार्थना करता हूं कि वह आप पर अपनी कृपादृष्टि और छत्र-छाया बनाये रखें। मास्को, ३० अक्तूबर, १८१२, **नेपोलियन।**"

"किसी तरह का समझौता करने के लिये अगर मैं कोई पहलक़दमी करूं तो लानत है मुझपर। **हमारी जनता की यही इच्छा है,"** कुतूज़ोव ने जवाब भेजा और अपनी सेना को हमला करने से रोकने के लिये अपना पूरा ज़ोर लगाते रहे।

उस एक महीने के दौरान, जब फ़्रांसीसी सेनायें मास्को को लूटती रहीं और रूसी सेनायें तारूतिनो के क़रीब आराम करती रहीं, दोनों सेनाओं के शक्ति-संतुलन (मनोभाव और संख्या की दृष्टि से भी) में परिवर्तन हो गया। इसके परिणामस्वरूप रूसी सेना अधिक शक्तिशाली हो गयी। बेशक यह सही है कि फ़्रांसीसी सेना की स्थिति और उसकी सैनिक-संख्या का रूसियों को ज्ञान नहीं था, फिर भी जैसे ही शक्ति-सन्तुलन बदला, फ़्रांसीसियों पर आक्रमण करने की आवश्यकता अनेक लक्षणों के रूप में सामने आई। ये लक्षण थे—लोरिस्टन का आगमन, तारूतिनो में रसद का बाहुल्य, फ़्रांसीसियों की निष्क्रियता और उनमें सभी दिशाओं से आने-वाले अव्यवस्था के समाचार, हमारी रेजिमेंटों में रंगरूटों की भर्ती, अच्छा मौसम, रूसी सैनिकों का लम्बा विश्राम और विश्राम के फलस्वरूप सैनिकों में सामान्यतः उस काम को पूरा करने के लिये पैदा होनेवाली बेक़रारी जिसकी ख़ातिर उन्हें इकट्ठा किया गया था, बहुत समय से नज़र से ओझल रहनेवाली फ़्रांसीसी सेना के बारे में यह जिज्ञासा कि उसका क्या हालचाल है, वह निडरता जिससे हमारी अग्रिम सैनिक चौकियों के सैनिक तारूतिनो के निकट पड़ाव डाले फ़्रांसीसी सेना की टोह लेते थे, फ़्रांसीसियों पर किसानों और छापामार दस्तों द्वारा आसानी से हासिल की जानेवाली जीतों की ख़बरें और सैनिकों के दिलों में इससे पैदा होनेवाली ईर्ष्या, फ़्रांसीसी जब तक मास्को पर क़ब्ज़ा किये हुए थे, तब तक हर रूसी के मन में व्याप्त उनसे बदला लेने की भावना और सबसे बड़ी बात तो अस्पष्ट होते हुए भी हर रूसी सैनिक की आत्मा में पैदा होनेवाली यह चेतना थी कि अब शक्ति-सन्तुलन बदल जा चुका है और वह हमारे हक़ में है। शक्ति-सन्तुलन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गया था और आक्रमण करना आवश्यक हो गया था। जिस प्रकार घण्टे की सूई के चक्कर पूरा कर लेने पर घड़ी घरघराने और घण्टे

बजाने लगती है, उसी प्रकार शक्ति-संतुलन के महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के अनुरूप सत्ता के क्षेत्रों की घड़ी अधिक ज़ोर से घरघराने और घण्टे बजाने लगी।

३

कुतूज़ोव और उनका मुख्य सैनिक कार्यालय तथा पीटर्सबर्ग से सम्राट रूसी सेना का संचालन करते थे। मास्को को दुश्मन के हवाले करने की ख़बर के पीटर्सबर्ग पहुंचने के पहले ही वहां से सारे युद्ध की सविस्तार योजना तैयार करके कुतूज़ोव के निर्देशन के लिये भेज दी गयी थी। इस चीज़ के बावजूद कि यह योजना ऐसा मानते हुए तैयार की गई थी कि मास्को अभी हमारे ही हाथ में है, मुख्य सैनिक कार्यालय ने इसका अनुमोदन कर दिया था और इसे व्यावहारिक रूप देने के लिये स्वीकार कर लिया था। इसके बारे में कुतूज़ोव ने केवल इतना ही लिखा था कि दूर से दी जानेवाली हिदायतों को अमली शक्ल देना हमेशा ही मुश्किल होता है। इसलिये सम्भवतः सामने आनेवाली कठिनाइयों पर पार पाने के लिये नये अनुदेश और ऐसे नये लोग भेजे गये जिनका काम कुतूज़ोव के कार्य-कलापों पर नज़र रखना और उनके बारे में सम्राट को सूचित करना था।

इसके अलावा अब पूरे मुख्य रूसी सैनिक कार्यालय का पुनर्गठन किया गया था। वीरगति को प्राप्त हुए बग्रातिओन और नाराज़ होकर अपना पद त्याग देनेवाले बार्कले* के रिक्त स्थानों पर नियुक्तियां करना ज़रूरी था। बहुत ही गम्भीरता से इस चीज़ पर विचार किया गया कि क्या करना ज़्यादा अच्छा होगा – **अ** को **ब** की जगह और **ब** को **द** की जगह या इसके विपरीत **द** को **अ** के स्थान पर नियुक्त किया जाये आदि, आदि मानो इससे **अ** और **ब** के सन्तोष के अतिरिक्त और कुछ भी बनने-बिगड़नेवाला हो।

---

* कुतूज़ोव के आदेशानुसार १८१२ के सितम्बर में प्रथम और द्वितीय सेनाओं के मिला दिये जाने पर बार्कले डे टोल्ली के कार्याधिकार बहुत सीमित हो गये और उसने बीमारी का बहाना करके जल्द ही त्यागपत्र दे दिया। – सं०

कुतूज़ोव और मुख्य सैनिक कार्यालय के संचालक बेनिगसेन के बीच शत्रुता, सम्राट के विश्वसनीय प्रतिनिधियों की उपस्थिति और लोगों के तबादलों के कारण गुटबन्दी का सामान्य से कहीं अधिक जटिल षड्यन्त्र-खिलवाड़ चल रहा था। हर प्रकार के सम्भव जोड़-तोड़ करते हुए **अ ब** की जड़ काट रहा था, **द स** की, आदि, आदि। इन सभी तरह की गुटबन्दियों में अधिकतर षड्यन्त्रों का विषय तो युद्ध-कार्य ही था जिसका ये सभी लोग संचालन करना चाहते थे। किन्तु युद्ध-कार्य तो इन लोगों पर निर्भर न करते हुए स्वतन्त्र ढंग से यानी वैसे चल रहा था, जैसे चलना चाहिये था, अर्थात् वैसे नहीं, जैसे लोग योजनायें बनाते थे, बल्कि जनसाधारण की निहित प्रतिक्रिया के रूप में एक-दूसरी को काटती और गड़बड़ाती हुई ये सारी योजनायें उच्च क्षेत्रों में उस चीज़ का केवल विश्वसनीय सूचक ही प्रतीत होती थीं जो अनिवार्य रूप से होना चाहिये था।

"प्रिंस मिख़ाईल इलारिओनोविच!" सम्राट ने २ अक्तूबर के अपने उस पत्र में लिखा जो तारूतिनो की लड़ाई के बाद पहुंचा था। "२ सितम्बर से मास्को दुश्मन के क़ब्ज़े में है। आपकी आख़िरी रिपोर्टें २० तारीख़ की हैं। इस सारे वक़्त के दौरान न सिर्फ़ दुश्मन के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने और प्राचीन राजधानी को आज़ाद कराने के लिये कोई क़दम ही नहीं उठाया गया, बल्कि आपकी आख़िरी रिपोर्टों के मुताबिक़ आप और भी पीछे हट गये हैं। दुश्मन की फ़ौजी टुकड़ी ने सेर्पुख़ोव पर भी क़ब्ज़ा कर लिया है और तूला, जहां मशहूर और फ़ौज की दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण कारख़ाना है, अब वह भी ख़तरे में है। जनरल विंत्सेनगेरोदे की रिपोर्टों से पता चलता है कि दुश्मन की दस हज़ारी सैनिक कोर पीटर्सबर्ग के मार्ग पर बढ़ रही है। इसी तरह कई हज़ार सैनिकों की एक अन्य कोर द्मीत्रोव की तरफ़ जा रही है। तीसरी कोर व्लादीमिर मार्ग पर काफ़ी आगे बढ़ गयी है। चौथी कोर, जो काफ़ी बड़ी है, रूज़ा और मोजाइस्क के बीच संकेन्द्रित है। ख़ुद नेपोलियन २५ तारीख़ तक मास्को में था। इन सभी सूचनाओं को ध्यान में रखते हुए, अब, जब दुश्मन ने अपनी सेना को बड़ी-बड़ी टुकड़ियों में बांट दिया है, जब अपनी गार्ड-सेना के साथ नेपोलियन मास्को में है, क्या ऐसा सम्भव है कि आपका सामना करनेवाली शत्रु-सेना इतनी शक्तिशाली हो कि आप उसपर आक्रमण न कर सकें?

इसके विपरीत, इसी बात को मानने की कहीं अधिक सम्भावना दिखाई देती है कि शत्रु की सैनिक टुकड़ियां या अधिक से अधिक ऐसी कोरें ही आपका पीछा कर रही हैं जो उस सेना से कहीं कमज़ोर हैं जो आपकी कमान में है। ऐसा लगता है कि इन अनुकूल परिस्थितियों से लाभ उठाते हुए आप अपने से कमज़ोर शत्रु पर आक्रमण और उसे नष्ट कर सकते थे या कम से कम उसे पीछे हटने को विवश करके उन प्रान्तों के बहुत बड़े भाग को अपने हाथ में रख सकते थे जो अब दुश्मन के क़ब्ज़े में हैं और इस तरह तूला तथा हमारे अन्य प्रान्तीय नगरों को ख़तरे से मुक्त कर सकते थे। अगर दुश्मन पीटर्सबर्ग के लिये ख़तरा पैदा करने की ख़ातिर, जहां बहुत बड़ी सेना को रखना सम्भव नहीं था, अपनी बड़ी फ़ौजी कोर भेज पायेगा तो इसके लिये आप ही को पूरी तरह से दोषी माना जायेगा, क्योंकि आपको दी गयी सेना और दृढ़ता तथा सक्रियता से काम लेते हुए आप इस नये दुर्भाग्य को टालने में समर्थ हैं। याद रखिये कि अभी तो आप मास्को को खोने के लिये अपमानित मातृभूमि के सामने जवाबदेह हैं। आपको पुरस्कृत करने की मेरी तत्परता से आप परिचित हैं। मेरी वह तत्परता कम नहीं होगी, किन्तु मुझे और रूस को आपकी ओर से उन सभी प्रयासों, दृढ़ता और सफलताओं की आशा करने का अधिकार है जिनका आपकी बुद्धि, आपकी सैनिक प्रतिभा और आपके अधीन सेना की वीरता पहले से ही विश्वास दिलाती हैं।"

किन्तु यह प्रमाणित करनेवाला पत्र कि शक्ति-सन्तुलन के परिवर्तन को पीटर्सबर्ग में भी अनुभव किया जा रहा है, अभी रास्ते में ही था और इसी बीच कुतूज़ोव अपने अधीन सेना को हमला करने से नहीं रोक पाये थे और एक लड़ाई लड़ी भी जा चुकी थी।

२ अक्तूबर को शत्रु की टोह में जानेवाले शापोवालोव नाम के एक कज़्ज़ाक ने गोली चलाकर एक ख़रगोश को मार डाला और दूसरे को घायल कर दिया। घायल ख़रगोश का पीछा करते हुए यह कज़्ज़ाक जंगल में काफ़ी दूर चला गया और म्युराट की सेना के बायें बाज़ू पर जा निकला जहां किसी तरह का कोई पहरा नहीं था। कज़्ज़ाक ने हंसते हुए अपने साथियों को यह बताया कि वह फ़्रांसीसियों के हाथों में पड़ता-पड़ता बच गया। इस घटना को सुननेवाले एक छोटे कज़्ज़ाक अफ़सर ने यह क़िस्सा अपने कमांडर को जा सुनाया।

इस कज़्ज़ाक को बुलवाया गया, उससे पूछ-ताछ की गई और कज़्ज़ाक अफ़सरों ने इस मौक़े से फ़ायदा उठाकर फ़्रांसीसियों से कुछ घोड़े छीन लेने चाहे। किन्तु एक अफ़सर ने, जिसकी उच्च सेनाधिकारियों से जान-पहचान थी, मुख्य सैनिक कार्यालय के जनरल को इस बात की सूचना दे दी। पिछले कुछ समय से मुख्य सैनिक कार्यालय में आपसी सम्बन्धों का तनाव अपने चरम-बिन्दु पर पहुंच गया था। इस घटना के कुछ दिन पहले येर्मोलोव ने बेनिगसेन के पास जाकर इस चीज़ के लिये उसकी मिन्नत की थी कि वह सेनापति को आक्रमण करने को मनाने के लिये अपना पूरा ज़ोर लगाये।

"अगर मैं आपको अच्छी तरह से जानता न होता तो मैं यही सोचता कि आप जिस चीज़ के लिये मिन्नत कर रहे हैं, वह चाहते नहीं हैं। मेरे कोई सलाह देते ही महामान्य कुतूज़ोव उसके उलट काम करेंगे," बेनिगसेन ने उत्तर दिया।

घुड़सवार टोहियों द्वारा कज़्ज़ाकों की ख़बर की पुष्टि ने निर्णायक रूप से यह सिद्ध कर दिया कि अब कुछ करने का वक़्त आ गया है। कसा हुआ तार फैल गया, घड़ी घरघराने लगी और घण्टे बज उठे। अपनी तथाकथित सत्ता, बुद्धि, अनुभव, लोगों को समझने की क्षमता के बावजूद सीधे सम्राट को रिपोर्टें भेजनेवाले बेनिगसेन के एक रुक़्क़े, सभी जनरलों द्वारा व्यक्त की गयी एक ही इच्छा, सम्राट की सम्भावित चाह और कज़्ज़ाकों द्वारा लायी गयी सूचना को ध्यान में रखते हुए कुतूज़ोव आगे बढ़ने की अनिवार्य प्रक्रिया को रोक नहीं पाये और जिस कार्य को व्यर्थ और हानिकारक मानते थे, उन्होंने उसके लिये आदेश तथा वास्तविकता बन चुके तथ्य के लिये आशीर्वाद दे दिया।

४

आक्रमण करने की आवश्यकता के बारे में बेनिगसेन का रुक़्क़ा और कज़्ज़ाकों की यह सूचना कि फ़्रांसीसियों का बायां बाज़ू अरक्षित है, आक्रमण का आदेश देने की ज़रूरत के अन्तिम सूचक थे और

यह निश्चित किया गया कि ५ अक्तूबर को आक्रमण किया जाये।

४ अक्तूबर की सुबह को कुतूज़ोव ने सेना की तैनाती की योजना पर हस्ताक्षर कर दिये। टोल ने उसे येर्मोलोव को पढ़ सुनाया और कहा कि आगे के सभी प्रबन्ध वह ख़ुद कर ले।

"अच्छी बात है, अच्छी बात है, लेकिन अभी तो मेरे पास इसके लिये वक़्त नहीं है," येर्मोलोव ने कहा और घर से बाहर चला गया। टोल द्वारा तैयार की गयी सेना की तैनाती की योजना बहुत अच्छी थी। आउस्टेरलिट्ज़ की सेना-तैनाती की योजना के समान (यद्यपि जर्मन में नहीं) यह लिखा हुआ था:

"पहला सेना-दल फ़लां-फ़लां दिशा में बढ़े, दूसरा सेना-दल फ़लां-फ़लां दिशा में," आदि, आदि। काग़ज़ी कार्रवाई के रूप में तो ये सभी दल पूर्वनिश्चित समय पर अपने-अपने स्थान पर पहुंच गये और उन्होंने दुश्मन को तहस-नहस कर डाला। सेना-तैनाती की सभी योजनाओं की भांति इस योजना में भी सभी चीज़ों को बहुत अच्छी तरह से सोचा-विचारा गया था, और जैसाकि सभी योजनाओं के मामले में होता है, एक भी सेना-दल न तो निश्चित वक़्त और न निश्चित स्थान पर ही पहुंचा।

फ़ौजी कार्रवाई की इस योजना की जब उतनी प्रतियां तैयार हो गयीं, जितनी ज़रूरी थीं तो एक अफ़सर को बुलवाकर इन्हें येर्मोलोव के पास पहुंचाने को भेजा गया ताकि वह योजना को अमली शक्ल दे। घुड़सेना का यह जवान अफ़सर, जो कुतूज़ोव का अर्दली था, इस बात से ख़ुश होता हुआ कि उसे इतना महत्त्वपूर्ण कार्यभार सौंपा गया है, येर्मोलोव के क्वाटर की तरफ़ चल दिया।

"घोड़े पर सवार होकर कहीं चले गये हैं," येर्मोलोव के अर्दली ने बताया। घुड़सेना का अफ़सर उस जनरल के यहां पहुंचा जहां येर्मोलोव अक्सर जाता था।

"वह यहां नहीं हैं और जनरल भी नहीं हैं।"

घुड़सेना का अफ़सर फिर से घोड़े पर सवार होकर एक अन्य जनरल के यहां गया।

"नहीं हैं, घोड़े पर सवार होकर कहीं गये हैं।"

"देर करने के लिये कहीं मुझे ही दोषी न ठहराया जाये! बुरा हो शैतान का!" इस अफ़सर ने सोचा। उसने सारे शिविर का चक्कर

लगाया। किसी ने कहा कि उसने कई अन्य जनरलों के साथ येर्मोलोव को घोड़े पर कहीं जाते देखा था, किसी ने कहा कि अब तक तो वह ज़रूर घर लौट आया होगा। यह अफ़सर दोपहर का भोजन किये बिना शाम के छः बजे तक येर्मोलोव को ढूंढ़ता रहा। येर्मोलोव कहीं भी नहीं मिला और किसी को भी यह मालूम नहीं था कि वह कहां है। यह अफ़सर अपने एक साथी के यहां जल्दी-जल्दी कुछ खाकर और फिर से घोड़े पर सवार होकर सेना के हरावल में मीलोरादोविच के पास पहुंचा। मीलोरादोविच भी घर पर नहीं मिला, मगर यहां उसे इतना बता दिया गया कि मीलोरादोविच जनरल कीकिन के घर पर आयोजित बॉल-नृत्य में गया है और येर्मोलोव को भी सम्भवतः वहीं होना चाहिये।

"लेकिन यह घर है कहां?"

"वहां, येच्किनो में," एक कज़्ज़ाक अफ़सर ने दूरी पर किसी ज़मींदार के घर की तरफ़ इशारा करते हुए जवाब दिया।

"वहां, हमारी मोरचा-रेखा से आगे?"

"हमारी दो रेजिमेंटें अग्रिम रेखा पर भेज दी गयी हैं। आज तो वहां ऐसी ज़बर्दस्त पिलाई हो रही है कि तोबा! दो बैंड हैं और तीन समूह गायन-मंडलियां।"

यह अफ़सर अपने घोड़े को हमारी मोरचा-रेखा से आगे येच्किनो की तरफ़ बढ़ा ले चला। घर के नज़दीक पहुंचने के बहुत पहले ही उसे सैनिकों के नृत्य-गान की ऊंची-ऊंची और ख़ुशी भरी ध्वनियां सुनायी दीं।

"चरा-गाहों में... चरा-गाहों में!.." उसे सीटी और तोर्बान बाजे के साथ रूसी लोक-गीत के शब्द सुनायी दिये जो कभी-कभी आवाज़ों के शोर में दब जाते थे। इन आवाज़ों से अफ़सर का मन खिल उठा, मगर साथ ही उसे इस कारण डर भी महसूस हुआ कि उसने इतनी देर तक उसे सौंपा गया इतना महत्त्वपूर्ण आदेश नहीं पहुंचाया था। रात के आठ बजने के बाद का वक़्त था। वह घोड़े से उतरा और रूसी तथा फ़्रांसीसी सेना के बीच पूरी तरह से सही-सलामत रह जानेवाले किसी ज़मींदार के इस बहुत बड़े घर के पोर्च में गया। प्रवेश-कक्ष और भोजन-कक्ष में नौकर-चाकर शराब तथा तरह-तरह के पकवान लिये हुए दौड़-धूप कर रहे थे। खिड़कियों के क़रीब गायक खड़े थे। इस

सन्देशवाहक अफ़सर को भीतर जाने दिया गया और दरवाज़े के नजदीक पहुंचने पर उसे अचानक वहां सभी महत्त्वपूर्ण जनरल दिखाई दिये और उनमें भारी-भरकम, लम्बा-तड़ंगा और प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व-वाला येर्मोलोव भी था। सभी जनरलों के फ्रॉक-कोटों के बटन खुले थे, उनके चेहरे लाल तथा खिले हुए थे, वे अर्धचक्र में खड़े थे और ख़ूब खिलखिलाकर हंस रहे थे। हॉल के बीचोंबीच एक सुन्दर और नाटा जनरल, जिसका चेहरा लाल था, बड़े जोश तथा फुर्ती से ख़ूब थाप देते हुए त्रेपाक लोक-नृत्य कर रहा था।

"बहुत ख़ूब, बहुत ख़ूब! अरे वाह, निकोलाई इवानोविच! वाह, वाह, वाह! .."

इस अफ़सर ने महसूस किया कि ऐसा महत्त्वपूर्ण आदेश लेकर भीतर जाने पर उसे दुगुना दोषी माना जायेगा और इसलिये उसने इन्त-ज़ार करना चाहा। लेकिन एक जनरल ने उसे देख लिया और यह जान लेने पर कि वह किसलिये आया है, उसने येर्मोलोव को सूचित कर दिया। येर्मोलोव नाक-भौंह सिकोड़े हुए अफ़सर के पास बाहर आया और उसकी बात सुनने के बाद कुछ भी कहे बिना उससे काग़ज़ ले लिया।

"तुम क्या यह समझते हो कि वह संयोग से ही वहां चला गया था?" एक घुड़सैनिक दोस्त ने, जो मुख्य सैनिक कार्यालय में काम करता था, इसी रात को येर्मोलोव के बारे में उससे कहा। "यह सब तिकड़मबाज़ी है, यह सब जान-बूझकर किया गया है। कोनोव्नीत्सिन* की टांग खींची जा रही है। देखना कि कल कैसा घुटाला होता है!"

५

जराग्रस्त कुतूज़ोव अगले दिन तड़के ही उठे, उन्होंने प्रार्थना की, कपड़े पहने और इस कटु चेतना के साथ कि उन्हें उस लड़ाई का संचालन

---

* प्योत्र कोनोव्नीत्सिन (१७६४–१८२२) – काउंट, रूसी जनरल। १८१२ की लड़ाई में डिवीज़न-कमांडर, कुतूज़ोव के मुख्य सैनिक कार्यालय का एक कार्यकर्त्ता। – सं०

करना होगा जिसका अनुमोदन नहीं करते थे, बग्घी में बैठे और तारूतिनो से पांच वेर्स्ता की दूरी पर लेताशेव्का नामक उस जगह की तरफ़ रवाना हो गये जहां आक्रमण करनेवाले सेना-दलों को एकत्रित होना था। बग्घी में जाते हुए कुतूज़ोव कभी ऊंघ जाते, कभी जाग जाते और फिर कान लगाकर सुनते कि दायीं ओर से गोलियां चलने की आवाज़ तो नहीं आ रही, कि लड़ाई शुरू हुई या नहीं? किन्तु अभी तक बिल्कुल ख़ामोशी छाई थी। पतझर के बुरे मौसम और नमी-वाली पौ फटने लगी थी। तारूतिनो के क़रीब पहुंचने पर कुतूज़ोव को उसी सड़क पर, जिसपर से उनकी बग्घी जा रही थी, घुड़सैनिक अपने घोड़ों को पानी पिलाने के लिये जाते दिखाई दिये। कुतूज़ोव ने उन्हें बहुत ग़ौर से देखा, बग्घी रोकने को कहा और घुड़सैनिकों से पूछा कि वे किस रेजिमेंट के हैं। ये घुड़सैनिक उसी सेना-दल के थे जिसे मोरचे पर बहुत आगे जाकर दुश्मन की घात में होना चाहिये था। "शायद कोई ग़लती हो गयी हो," बूढ़े सेनापति ने सोचा। किन्तु कुछ और आगे जाने पर कुतूज़ोव को पैदल रेजिमेंटें दिखाई दीं। इन रेजिमेंटों के सैनिकों की बन्दूक़ों के एक जगह पर ढेर लगे हुए थे, अंडरवियर पहने सैनिक लकड़ियां ला रहे थे और दलिया पका रहे थे। कुतूज़ोव ने इनके अफ़सर को बुलवा भेजा। अफ़सर ने रिपोर्ट दी कि उसे आगे बढ़ने का कोई हुक्म नहीं मिला था।

"कैसे हुक्म नहीं..." कुतूज़ोव ने कहना शुरू किया, मगर उसी वक़्त चुप हो गये और उन्होंने बड़े अफ़सर को अपने पास बुला लाने का आदेश दिया। वह बग्घी से बाहर आ गये, सिर झुकाये, हांफते तथा चुपचाप प्रतीक्षा करते हुए इधर-उधर आने-जाने लगे। जब मुख्य सैनिक कार्यालय का अफ़सर एइख़ेन, जिसे उन्होंने बुलवाया था, उनके सामने आया तो कुतूज़ोव इस कारण गुस्से से लाल-पीले नहीं हुए कि इस अफ़सर से कोई भूल हुई थी, बल्कि इसलिये कि पद की दृष्टि से वह इस योग्य था कि वह उसपर अपना गुस्सा निकाल सकते थे। कांपते और हांफते हुए बूढ़े सेनापति गुस्से की वैसी ही हालत में हो गये जिसमें वह कभी-कभी जमीन पर लोटने लगते थे और घूंसा दिखाते, चीखते-चिल्लाते और गन्दी से गन्दी गालियां देते हुए एइख़ेन पर बुरी तरह से बरस पड़े। संयोग से इसी वक़्त यहां आ जानेवाले कप्तान ब्रोज़िन का भी, जो बिल्कुल बेक़ुसूर था, यही हाल हुआ।

"यह भी कैसी गुंडागर्दी है? गोली मार दी जानी चाहिये! कमीने कहीं के!" हाथों को लहराते और लड़खड़ाते हुए कुतूज़ोव फटी-फटी आवाज़ में चिल्ला रहे थे। वह शारीरिक पीड़ा अनुभव कर रहे थे। उन्हें, सेनापति को, महामान्य को, जिन्हें सभी यह विश्वास दिलाते थे कि आज तक रूस में कभी किसी के हाथ में उनके समान सत्ता नहीं रही थी, ऐसी बेहूदा स्थिति में डाल दिया गया था, सारी सेना का उपहास-पात्र बना दिया गया था। "व्यर्थ ही आज के दिन के लिये भगवान के सामने प्रार्थना करता रहा, व्यर्थ ही रात को सोया नहीं और सब चीज़ों पर सोच-विचार करता रहा!" उन्होंने ख़ुद अपने बारे में सोचा। "जब मैं छोकरा और छोटा-सा अफ़सर था, तब किसी को मेरा ऐसे उल्लू बनाने की हिम्मत न होती... लेकिन अब!" वह कुछ ऐसी ही शारीरिक पीड़ा महसूस कर रहे थे मानो उनकी कसकर पिटाई की गयी हो और इसलिये गुस्से तथा दर्द से भरी चीख़-चिल्लाहट में उसे ज़ाहिर किये बिना नहीं रह सकते थे। किन्तु शीघ्र ही उनकी ताक़त जवाब दे गयी और अपने इर्द-गिर्द देखते तथा यह महसूस करते हुए कि उन्होंने बहुत-सी बेहुदा बातें कह दी हैं, बग्घी में बैठकर चुपचाप वापस चले गये।

एक बार ख़ूब ज़ोर से निकल जानेवाला गुस्सा फिर नहीं लौटा और कुतूज़ोव धीरे-धीरे आंखें झपकाते हुए सभी तरह के बहाने और सफ़ाई के शब्द (येर्मोलोव अगले दिन तक उनके सामने नहीं आया) और बेनिगसेन, कोनोव्नीत्सिन तथा टोल का यह आग्रह सुनते रहे कि सेना के आगे बढ़ने का जो काम आज नहीं हुआ था, उसे कल किया जाये। और कुतूज़ोव को फिर से इनकी बात माननी पड़ी।

६

अगले दिन की शाम को सेनायें पूर्वनिश्चित स्थानों पर एकत्रित हो गयीं और रात को चल पड़ीं। काले-बैंगनी बादलों से ढके आकाश-वाली पतझर की रात थी, किन्तु बारिश नहीं हो रही थी। ज़मीन नम थी, मगर कीचड़ नहीं था और सेनायें किसी तरह की आवाज़

किये बिना बढ़ती चली जा रही थीं। सिर्फ़ कभी-कभी तोपों के हिलने-डुलने से उनकी हल्की खनक सुनायी दे जाती थी। सैनिकों को ऊंची आवाज़ में बातचीत करना, पाइप पीना, आग जलाना मना कर दिया गया था और यह कोशिश की जाती थी कि घोड़े भी न हिनहिनायें। इस सारे मामले की रहस्यमयता ने इसका आकर्षण और भी बढ़ा दिया था। सैनिक प्रसन्नतापूर्वक बढ़ते जा रहे थे। कुछ सेना-दल रुक गये, उन्होंने अपनी बन्दूक़ों को उलटाकर उनके ढेर लगा दिये और यह मानते हुए कि उन्हें जहां पहुंचना था, वहां पहुंच गये हैं, ठण्डी ज़मीन पर ही लेट गये। अन्य (अधिकांश) सेना-दल रात भर चलते रहे और स्पष्टतः वहां नहीं पहुंचे जहां उन्हें पहुंचना चाहिये था।

अपने कज़्ज़ाकों के साथ (सभी सेना-दलों में सबसे महत्त्वहीन) काउंट ओर्लोव-देनीसोव ही ठीक समय और ठीक जगह पर पहुंचा। यह सेना-दल स्त्रोमीलोवो गांव से द्मीत्रोव्स्कोये गांव की ओर जाने-वाले रास्ते के क़रीब वन-छोर पर रुका।

पौ फटने के पहले काउंट ओर्लोव को जगा दिया गया। फ़्रांसीसी शिविर के एक भगोड़े को उसके सामने पेश किया गया। यह पोन्यातोव्स्की कोर का एक पोलैंडी सार्जेंट था। इस सार्जेंट ने पोलिश ज़बान में स्पष्ट किया कि वह इसलिये भाग आया है कि तरक़्क़ी के मामले में उसके साथ बेइन्साफ़ी हुई है, कि उसे बहुत पहले ही अफ़सर बन जाना चाहिये था, कि वह बाक़ी सभी से ज़्यादा बहादुर है, यही वजह है कि वह उन्हें छोड़कर भाग आया है और उनसे इसका बदला लेना चाहता है। उसने बताया कि म्युराट इस जगह से केवल एक वेर्स्ता की दूरी पर रात बिता रहा है और अगर एक सौ सैनिकों का दल उसके साथ भेज दिया जाये तो वह उसे ज़िन्दा ही गिरफ़्तार कर लेगा। काउंट ओर्लोव-देनीसोव ने अपने साथियों के साथ सलाह-मशविरा किया। यह प्रस्ताव इतना आकर्षक था कि इससे इन्कार करना सम्भव नहीं था। सभी जाने का समर्थन करते थे, सभी कोशिश करने की सलाह देते थे। बहुत सोच-विचार और तर्क-वितर्क के बाद मेजर-जनरल ग्रेकोव ने दो कज़्ज़ाक रेजिमेंटें अपने साथ लेकर सार्जेंट के साथ जाने का निर्णय किया।

"इतना याद रखना," काउंट ओर्लोव-देनीसोव ने जाते वक़्त पोलैंडी सार्जेंट से कहा, "अगर तुमने झूठ बोला है तो मैं तुम्हें सूली

दिलवाकर कुत्ते की तरह तुम्हारी जान ले लूंगा और अगर तुम्हारी बात सच निकली तो तुम्हें सोने की सौ मुद्रायें इनाम में मिलेंगी।"

पोलैंडी सार्जेंट ने अपने चेहरे पर दृढ़ता का भाव लाते हुए कोः जवाब नहीं दिया, घोड़े पर सवार हो गया और जल्दी से तैयार हो जानेवाले ग्रेकोव के साथ चल दिया। दो कज़्ज़ाक रेजिमेंटों सहित ये दोनों जंगल में ग़ायब हो गये। पौ फटने के वक़्त की ठण्डक से कांपता और इस बात के कारण घबराहट महसूस करता हुआ कि उसने अपनी ज़िम्मेदारी पर ऐसा क़दम उठाया है, काउंट ओर्लोव ग्रेकोव को भेजकर जंगल से बाहर आया और शत्रु-शिविर की ओर देखने लगा जो बुझते अलावों और पौ फटने के समय के कपटपूर्ण प्रकाश में अब कुछ-कुछ दिखाई देने लगा था। इस वक़्त तक हमारे सेना-दलों को काउंट ओर्लोव-देनीसोव के दायीं ओर खुली ढलान पर नज़र आ जाना चाहिये था। काउंट ओर्लोव उसी तरफ़ देख रहा था। यद्यपि उन दलों को बहुत दूर से ही नज़र आ जाना चाहिये था, तथापि ये दिखाई नहीं दिये। जैसाकि काउंट ओर्लोव-देनीसोव को प्रतीत हुआ और तेज़ नज़रवाले उसके एडजुटेंट ने भी जिसकी पुष्टि की, फ़्रांसीसियों के शिविर में कुछ हल-चल होने लगी थी।

"ओह, सचमुच देर हो गयी है," शत्रु-शिविर को ध्यान से देखते हुए काउंट ओर्लोव ने कहा। जैसाकि अक्सर होता है, उस आदमी के नज़र से ओझल हो जाने के बाद, जिसपर हम भरोसा करते हैं, काउंट ओर्लोव को भी अचानक यह स्पष्ट और पूरी तरह साफ़ हो गया था कि पोलैंडी सार्जेंट धोखाबाज़ है, कि उसने झूठ बोला है और उन दो रेजिमेंटों की अनुपस्थिति में, जिन्हें वह भगवान ही जानें कि कहां ले जायेगा, सारे आक्रमण को गड़बड़ा देगा, नष्ट कर डालेगा। क्या इतनी बड़ी फ़्रांसीसी सेना के बीच से उसके सेनापति को बन्दी बनाया जा सकता है?

"उस बदमाश ने तो सचमुच झूठ बोला है," काउंट ने कहा।

"तो रेजिमेंटों को वापस बुला लिया जाये," काउंट के अमले के अफ़सर ने कहा। काउंट ओर्लोव-देनीसोव की तरह उसे भी फ़्रांसीसी शिविर पर नज़र डालने के बाद यह विश्वास नहीं हो रहा था कि ऐसी जोखिम उठाना ठीक होगा।

"वापस बुला लिया जाये? सच?.. आपका क्या ख्याल है, म ऐसा करें या न करें?"

"तो क्या आप वापस बुलाने का हुक्म दे रहे हैं?"

"बुला लीजिये, वापस बुला लीजिये!" काउंट ओर्लोव ने घड़ी पर नज़र डालते हुए अचानक दृढ़ता से कहा। "बहुत देर हो जायेगी, बिल्कुल उजाला हो गया है।"

एडजुटेंट सरपट घोड़ा दौड़ाता हुआ ग्रेकोव के पीछे जंगल में गया। ग्रेकोव के वापस आ जाने पर काउंट ओर्लोव-देनीसोव ने, जो आक्रमण के इस प्रयास को छोड़ने और प्यादा सेना-दलों के बेकार इन्तज़ार (वे अभी तक नज़र नहीं आये थे) तथा शत्रु की निकटता के कारण विह्वलता अनुभव कर रहा था (उसकी सेना के बाक़ी लोग भी ऐसा ही महसूस कर रहे थे) आगे बढ़ने का निर्णय किया।

"घोड़ों पर सवार हो जाओ!" उसने फुसफुसाकर आदेश दिया। सभी घुड़सैनिक अपने घोड़ों पर सवार हो गये और उन्होंने अपने ऊपर सलीब का निशान बनाया।

"भगवान का नाम लेकर बढ़ चलो!"

"हुर्रा!" जंगल में यह नारा गूंज उठा और घुड़सवार सैनिकों के दस्ते अपने भालों को पीठों पर लटकाये और मानो किसी बोरी में से एक के बाद एक बाहर निकलते और ख़ुशी की तरंग में नदी को लांघते हुए शत्रु-शिविर की ओर बढ़ने लगा।

कज़्ज़ाकों को सबसे पहले देखनेवाले फ़ांसीसी की एक भयानक चीख़ ने ही सारे शिविर में खलबली मचा दी और अधनंगे तथा अर्द्धजागृत फ़ांसीसी सैनिक तोपें, बन्दूक़ें और घोड़े छोड़कर भाग चले।

अगर कज़्ज़ाक अपने पीछे और इर्द-गिर्द की सभी चीज़ों की तरफ़ ध्यान न देकर फ़ांसीसियों का ही पीछा करते तो उन्होंने म्युराट को भी बन्दी बना लिया होता और यहां की सारी चीज़ें भी क़ब्ज़े में ले ली होतीं। सेना-संचालक यही चाहते भी थे। किन्तु जब उन्हें माल लूटने और युद्ध-बन्दी बनाने की सम्भावना मिल गयी तो उन्हें आगे बढ़ाना असम्भव हो गया। आदेशों पर कोई कान ही नहीं देता था। इसी जगह पर डेढ़ हज़ार युद्ध-बन्दी बना लिये गये, अड़तीस तोपों, झण्डों और कज़्ज़ाकों के लिये जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था, घोड़ों, ज़ीनों, कम्बलों और अनेक अन्य चीज़ों पर क़ब्ज़ा कर लिया गया।

इन सभी चीज़ों की चिन्ता करना, बन्दियों और तोपों के बारे म नि-श्चिंत होना, लूट का माल बांटना, एक-दूसरे के साथ तू-तू, भ· और हाथापाई तक करना ज़रूरी था। कज़्ज़ाक इन सभी बातों में उलझ गये।

फ़ांसीसी यह देखकर कि उनका पीछा नहीं किया जा रहा है, सम्भलने लगे, अपनी कम्पनियों में जमा होकर गोलियां चलाने लगे। प्यादा सेना-दलों की प्रतीक्षा करता हुआ काउंट ओर्लोव-देनीसोव आगे नहीं बढ़ा।

इसी बीच सेना-तैनाती की योजना के मुताबिक़ कि "पहला सेना-दल फ़लां-फ़लां दिशा में बढ़े", आदि, आदि, वक़्त पर यहां न पहुंचने-वाले प्यादा सेना-दल, जिनकी कमान बेनिगसेन सम्भाले था और जिनका निर्देशन टोल कर रहा था, यथासमय रवाना हो गये थे और, जैसाकि हमेशा होता है, कहीं पहुंच गये, मगर वहां नहीं जहां इन्हें पहुंचना चाहिये था। जैसाकि हमेशा होता है, हंसी-ख़ुशी के मूड में रवाना होनेवाले लोग रुकने लगे, बड़बड़ाहट सुनायी देने लगी, इस बात की चेतना हो गयी कि कहीं गड़बड़ हो गयी है और वे पीछे की तरफ़ चल दिये। इधर से उधर सरपट घोड़े दौड़ाते हुए एडजुटेंट और जनरल चीख़ते-चिल्लाते, एक-दूसरे पर बिगड़ते और झगड़ते रहे, यह कहते रहे कि बिल्कुल ठीक जगह पर नहीं पहुंचे, कि देर हो गयी है, किसी को गालियां देते रहे, आदि, आदि, और आख़िर सभी निराश होकर सिर्फ़ इसीलिये चल पड़े कि उन्हें कहीं तो जाना था। "हम कहीं तो पहुंचेंगे!" और वास्तव में ही पहुंच तो गये, लेकिन वहां नहीं, जहां पहुंचना चाहिये था, कुछ ठीक जगह पर भी पहुंच गये, मगर इतनी देर से कि उनके पहुंचने से न सिर्फ़ कोई फ़ायदा नहीं हुआ, बल्कि वे ख़ुद गोलियों के शिकार बन गये। टोल, जो इस लड़ाई में आउस्टेरलिट्ज़ की लड़ाई के वैरोटेर जैसी भूमिका अदा कर रहा था, अपने घोड़े को एक जगह से दूसरी जगह तक सरपट दौड़ाता रहा और हर जगह पर ही उसे मामला चौपट हुआ नज़र आया। इसी तरह घोड़ा दौड़ाते हुए वह उस समय जंगल में बाग्गोवुट* की फ़ौजी-कोर के क़रीब जा पहुंचा, जब पूरी तरह

---

* रूसी सेना का जनरल। –सं०

से उजाला हो चुका था और इस फ़ौजी-कोर को बहुत पहले ही ओर्लोव-देनीसोव के साथ जा मिलना चाहिये था। गड़बड़ी से बेहद परेशान और बूरी तरह से उत्तेजित टोल यह मानते हुए कि इस गड़बड़-झाले के लिये किसी को तो दोषी होना ही चाहिये, अपने घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ कोर-कमांडर के पास पहुंचा, यह कहते हुए बहुत कड़ाई से उसे डांटने-डपटने लगा कि ऐसी चीज़ के लिये उसे गोली से उड़ा दिया जाना चाहिये। जगह-जगह पर रुकने, गड़बड़-झाले और पारस्परिक विरोधी आदेशों के कारण भी बेहद दुखी बूढ़ा, बहादुर और शान्त स्वभाववाला यह जनरल बाग्गोवुट अपने मिज़ाज के बिल्कुल विपरीत, सभी को हैरान करता हुआ आपे से बाहर हो गया और उसने टोल को कुछ जली-कटी बातें सुना दीं।

"मैं किसी से अक़्ल के पाठ सीखने को तैयार नहीं हूं और अपने सैनिकों के साथ जान देने के मामले में किसी से उन्नीस नहीं हूं," उसने कहा और एक डिवीज़न लेकर आगे बढ़ गया।

गुस्से से उबलता बहादुर बाग्गोवुट यह न समझ पाते हुए कि केवल एक डिवीज़न के साथ अब लड़ाई में कूदना उपयोगी होगा या नहीं, सीधा युद्ध-क्षेत्र में बढ़ गया और उसने अपनी सेना को फ़्रांसीसियों की गोलाबारी के सामने कर दिया। ख़तरा, गोले और गोलियां – गुस्से के इस मूड में उसे इन्हीं चीज़ों की ज़रूरत थी। एक पहली ही गोली ने उसकी जान ले ली और गोलियों की अगली बौछार ने उसके बहुत-से सैनिकों को मार डाला। और उसका डिवीज़न किसी भी तरह के लाभ के बिना कुछ समय तक गोलियों का सामना करता रहा।

७

इसी बीच एक अन्य सेना-दल को सामने की ओर से फ़्रांसीसियों पर हमला करना था। किन्तु इस सेना-दल के साथ कुतूज़ोव थे। वह अच्छी तरह से यह जानते थे कि उनकी इच्छा के विरुद्ध लड़ी जानेवाली इस लड़ाई में गड़बड़-झाले के सिवा और कुछ नहीं होगा। इसलिये जहां तक उनका बस चला, उन्होंने इस सेना को रोके रखा। वह आगे नहीं बढ़े।

शत्रु पर आक्रमण करने के प्रस्तावों के बुझे-बुझे से उत्तर देते हुए कुतूज़ोव अपने छोटे-से भूरे घोड़े को चुपचाप बढ़ाते जा रहे थे।

"आप हमेशा हमला करने की रट लगाये रहते हैं, किन्तु आप यह नहीं देखते कि हमें जटिल सैनिक गति-विधियों को पूरा करने का ढंग नहीं आता," उन्होंने मीलोरादोविच को जवाब दिया जिसने आक्रमण करने के लिये आगे बढ़ने का अनुरोध किया था।

"आज सुबह म्युराट को बन्दी नहीं बना सके और वक़्त पर ठीक जगह नहीं पहुंच सके। अब वहां कौन-से तीर मारे जा सकते हैं," उन्होंने किसी दूसरे व्यक्ति को जवाब दिया।

जब कुतूज़ोव को यह सूचना दी गयी कि फ़्रांसीसियों के चंडावल में अब पोलैंडियों की दो बटालियनें थीं, जहां कज़्ज़ाकों द्वारा पहले लायी गयी ख़बर के मुताबिक़ कोई भी नहीं था, तो उन्होंने अपने पीछे खड़े येर्मोलोव की तरफ़ कनखियों से देखा (पिछले दिन से वह उससे बोले ही नहीं थे)।

"देखिये, आक्रमण करने की अनुमति मांगी जा रही है, तरह-तरह की योजनायें पेश की जा रही हैं, लेकिन जैसे ही कुछ शुरू किया जाता है तो पता चलता है कि कुछ भी तैयारी नहीं की गयी और पूर्वसूचित दुश्मन ज़रूरी क़दम उठा लेता है।"

येर्मोलोव ने आंखें सिकोड़ीं और इन शब्दों को सुनकर ज़रा मुस्करा दिया। वह समझ गया कि उसके मामले में कुतूज़ोव के गुस्से का तूफ़ान शान्त हो गया है और यह व्यंग्य-बाण चलाकर ही वह सन्तुष्ट हो जायेंगे।

"यह तो मुझपर फबती कसकर वह अपना मन ख़ुश कर रहे हैं," येर्मोलोव ने अपने क़रीब खड़े रायेव्स्की को घुटना मारकर धीरे से कहा।

इसके कुछ देर बाद येर्मोलोव कुतूज़ोव के पास गया और उसने सादर यह निवेदन किया :

"महामान्य जी, वक़्त अभी हाथ से नहीं निकला है, दुश्मन वहां से गया नहीं है। शायद आप हमला करने का हुक्म देंगे? नहीं तो गार्ड-सेनावाले धुआं ही नहीं देख पायेंगे।"

कुतूज़ोव ने कोई जवाब नहीं दिया, मगर जब उन्हें यह सूचना दी गयी कि म्युराट की फ़ौजें पीछे हट रही हैं तो उन्होंने आगे बढ़ने

का हुक्म दिया। किन्तु हर सौ क़दम के बाद वह पैंतालीस मिनट तक रुके रहते।

काउंट ओर्लोव-देनीसोव के कज़्ज़ाकों ने जो कुछ किया था, वही इस लड़ाई का सार था। बाक़ी फ़ौजों ने तो व्यर्थ कई सौ सैनिकों को सिर्फ़ मौत के मुंह में ही धकेल दिया था।

इस लड़ाई के परिणामस्वरूप कुतूज़ोव को हीरों से जड़ी हुई सोने की तलवार तथा विजय-मुकुट भेंट किया गया, बेनिगसेन को भी हीरों से जड़ा पदक और एक लाख रूबल मिले और बाक़ी अफ़सरों को भी उनके पदों के अनुसार अनेक पुरस्कार दिये गये। इस लड़ाई के बाद मुख्य सैनिक कार्यालय में नये परिवर्तन किये गये।

"**हमारे यहां हमेशा** ऐसा ही होता है – हमेशा उलटी गंगा बहायी जाती है!" तारूतिनो की लड़ाई के बाद रूसी अफ़सरों और जनरलों ने कहा – ठीक वैसे ही, जैसे कि अब भी यह संकेत करते हुए कहा जाता है कि कोई उल्लू वहां सब कुछ उलटे ढंग से कर रहा है, मगर हमने ऐसा न किया होता। किन्तु ऐसा कहनेवाले लोग या तो उस मामले को जानते नहीं जिसकी चर्चा करते हैं या फिर जान-बूझकर अपने को धोखा देते हैं। कोई भी लड़ाई – बेशक तारूतिनो, बोरोदिनो या आउस्टेरलिट्ज़ की या कोई अन्य लड़ाई हो, उसी तरह से नहीं लड़ी जाती जैसे कि उसकी योजना बनानेवाले उसकी पूर्वकल्पना करते हैं। इसे तो पत्थर की लकीर ही मानना चाहिये।

असंख्य स्वतन्त्र शक्तियां (क्योंकि आदमी कहीं भी इतना आज़ाद नहीं होता जितना कि लड़ाई के वक़्त, जहां ज़िन्दगी और मौत का मामला होता है) लड़ाई की दिशा को प्रभावित करती हैं, इस दिशा का कभी भी पहले से पता नहीं चलता और वह कभी किसी एक शक्ति के अनुरूप नहीं होती।

यदि विभिन्न दिशाओंवाली अनेक शक्तियां किसी पिंड पर एकसाथ ही अपना प्रभाव डालती हैं तो इस पिंड की गति की दिशा किसी एक शक्ति के अनुरूप नहीं हो सकती, बल्कि हमेशा मध्यवर्ती, सबसे छोटी दिशा के अनुरूप होगी।

यदि इतिहासकारों, विशेषकर फ़्रांसीसी इतिहासकारों के वर्णन में हमें यह पढ़ने को मिलता है कि उनके यहां पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार लड़ाइयां और युद्ध होते हैं तो इससे हम केवल यही निष्कर्ष

निकाल सकते हैं कि इनके वर्णन विश्वास के योग्य नहीं हैं।

तारूतिनो की लड़ाई ने स्पष्टतः वह लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जो टोल ने अपने सामने रखा था यानी पहले से तैयार की गयी योजना के अनुसार सेना को क्रमानुसार युद्ध-क्षेत्र में ले जाने का लक्ष्य। इस कारण काउंट ओर्लोव का यह लक्ष्य पूरा नहीं हुआ कि म्युराट को बन्दी बना लिया जाये या बेनिगसेन और अन्य लोगों का यह लक्ष्य भी कि दुश्मन की सारी फ़ौजी कोर को आनन-फ़ानन तबाह कर डालें या किसी फ़ौजी अफ़सर का यह लक्ष्य कि वह इस लड़ाई में नाम कमा ले अथवा किसी कज़्ज़ाक का यह लक्ष्य भी कि उसने लूट का जितना माल हासिल किया, वह उससे ज़्यादा हासिल कर सकता, आदि, आदि। किन्तु अगर इसका लक्ष्य वही था जो वास्तव में प्राप्त किया गया और जो सारे रूसियों की इस सामान्य इच्छा को व्यक्त करता था यानी फ़्रांसीसियों को रूस से खदेड़ दिया जाये और उनकी सेना को नष्ट कर डाला जाये तो बिल्कुल स्पष्ट है कि तारूतिनो की लड़ाई, इस लड़ाई का घपला ही वह चीज़ थी जिसकी इस युद्धभियान में इस वक़्त ज़रूरत थी। इस लड़ाई का जो नतीजा निकला, उससे ज़्यादा उपयुक्त किसी और नतीजे की कल्पना करना कठिन, यहां तक कि असम्भव है। बहुत ही थोड़ा ज़ोर लगाकर, बहुत ही बड़ा घपला तथा बहुत ही मामूली नुक़सान उठाकर इस अभियान के सबसे बड़े परिणाम प्राप्त किये गये – पीछे हटने के बजाय आगे बढ़ने की ओर संक्रमण हुआ, फ़्रांसीसियों की कमज़ोरी का परदाफ़ाश हो गया और वह ज़ोरदार झटका दे दिया गया जिसकी इसलिये ज़रूरत थी कि नेपोलियन की सेनायें रूस से भागने लगें।

८

मास्को पर शानदार विजय के बाद नेपोलियन ने मास्को में प्रवेश किया। विजय के बारे में सन्देह का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था, क्योंकि जंग का मैदान फ़्रांसीसियों के हाथ में रहा था। रूसी पीछे हट गये और उन्होंने प्राचीन राजधानी दुश्मन के हवाले कर दी। रसद,

शस्त्रास्त्रों, गोलों और अपार धन-दौलत से भरा हुआ मास्को नेपोलियन के क़ब्ज़े में था। रूसी सेना ने, जो फ़्रांसीसियों की तुलना में आधी थी, महीने भर के दौरान एक भी हमला करने की कोशिश नहीं की। नेपोलियन के लिये अनुकूलतम स्थिति थी। रूसी सेना की तुलना में दुगुनी शक्तिवाली सेना के साथ वह बची-बचायी रूसी सेना पर हमला करके उसे नष्ट कर सकता था, अपने लिये लाभदायक शान्ति-सन्धि कर सकता था और इसके लिये इन्कार होने पर पीटर्सबर्ग की तरफ़ धमकी देनेवाली चढ़ाई कर सकता था, अगर ऐसी चढ़ाई में असफलता भी हाथ लगती तो स्मोलेन्स्क या वील्ना की तरफ़ लौट सकता था अथवा मास्को में ही रुका रह सकता – संक्षेप में यह कि फ़्रांसीसी सेना उस समय जिस बढ़िया स्थिति में थी, उसे बनाये रखने के लिये किसी ख़ास प्रतिभा की ज़रूरत नहीं थी। इसके लिये बहुत सीधे-सादे और मामूली से इन उपायों की ही आवश्यकता थी – सैनिकों को लूटमार करने की इजाज़त न देना, जाड़े के कपड़े बनवाना, जो मास्को में पूरी फ़ौज के लिये काफ़ी हो सकते थे और मास्को में सारी सेना के लिये उपलब्ध छः महीने से अधिक समय तक (फ़्रांसीसी इतिहासकारों के साक्ष्य के अनुसार) काफ़ी रहनेवाली रसद को ढंग से एकत्रित करना। किन्तु महानतम सैनिक प्रतिभा और, जैसाकि इतिहासकार दावा करते हैं, असीम सत्ता के धनी नेपोलियन ने ऐसा कुछ भी नहीं किया।

उसने न केवल ऐसा कुछ नहीं किया, बल्कि, इसके विपरीत, विभिन्न गति-विधियों के लिये उसके सम्मुख प्रस्तुत सभी मार्गों में से ऐसा मार्ग चुनने के लिये उसने अपनी सत्ता का उपयोग किया जो सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण और घातक था। उन विभिन्न उपायों में से जो वह चुन सकता था – जैसे कि मास्को में जाड़ा बिताना, पीटर्सबर्ग की तरफ़ बढ़ना, नीज्नी नोव्गोरोद की ओर जाना, उत्तर या दक्षिण की दिशा में कुछ हटते हुए पीछे लौटना यानी उसी रास्ते पर जाना जिसे बाद में कुतूज़ोव ने अपनाया, उसने वास्तव में जो कुछ किया, उससे अधिक मूर्खतापूर्ण और नाशकारी चीज़ की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वह अक्तूबर तक मास्को में रुका रहा और उसने अपनी सेनाओं को नगर लूटने दिया, इसके बाद इस दुविधा में पड़ते हुए कि रक्षक-सेना पीछे छोड़े या न छोड़े, मास्को से रवाना हो गया, कुतूज़ोव के क़रीब पहुंचकर भी उसने लड़ाई नहीं लड़ी, दायीं ओर

मुड़ गया तथा मालोयारोस्लावेत्स तक जाकर भी अपने लिये रास्ता बनाने के संयोग को आज़माने की कोशिश नहीं की, उस रास्ते मे नहीं गया जिससे कुतूज़ोव बढ़े, बल्कि तबाहहाल स्मोलेन्स्क सड़क से मोजाइस्क की तरफ़ पीछे लौटा। फ़्रांसीसी सेना के लिये इससे ज़्यादा मूर्खतापूर्ण और विनाशकारी चीज़ की कल्पना ही नहीं जा सकती थी, जैसाकि बाद की घटनाओं ने प्रमाणित कर दिया। अगर ऐसा मान लिया जाये कि नेपोलियन का लक्ष्य अपनी सेना को नष्ट करना था तो भी रणनीति का कोई बड़े से बड़ा माहिर भी ऐसे अनेक कार्य-कलापों की कल्पना नहीं कर सकता था जो रूसी सेना की गति-विधियों से सर्वथा स्वतन्त्र रूप में फ़्रांसीसी सेना को ऐसे नष्ट करवा सकता जैसे नेपोलियन ने उसे नष्ट करवाया।

प्रतिभाशाली नेपोलियन ने यह किया। किन्तु यह कहना कि नेपोलियन ने अपनी सेना को नष्ट कर डाला, क्योंकि वह ऐसा चाहता था या इसलिये कि वह बहुत मूर्ख था, उतना ही अनुचित होगा जितना यह कहना कि नेपोलियन अपनी सेना को इसलिये मास्को लाया कि ऐसा चाहता था और इसलिये कि वह बहुत बुद्धिमान तथा प्रतिभावान था।

दोनों स्थितियों में उसका व्यक्तिगत कार्य-कलाप, जो प्रत्येक साधारण सैनिक से किसी प्रकार भी अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं था, उन नियमों के केवल अनुरूप ही हो गया था जिनके अनुसार घटना घटी।

इतिहासकार बिल्कुल झूठे रंग में (सिर्फ़ इसलिये कि बाद की घटनाओं ने नेपोलियन की गति-विधियों को सही सिद्ध नहीं किया) हमारे सामने यह पेश करते हैं कि मास्को में नेपोलियन की कार्य-शक्ति क्षीण हो गयी थी। उसने ठीक वैसे ही, जैसे कि पहले और बाद में, सन् १८१३ में, अपनी सारी शक्ति तथा योग्यता का खुद अपनी तथा अपनी सेना की भलाई के लिये भरसक उपयोग किया। इस अवधि में नेपोलियन की क्रियाशीलता मिस्र, इटली, आस्ट्रिया और प्रशा की तुलना में कुछ कम आश्चर्यजनक नहीं थी। हम सही तौर पर यह नहीं जानते कि वास्तव में ही नेपोलियन ने मिस्र में किस हद तक अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था, जहां चालीस शताब्दियों ने उसकी महानता के दर्शन किये, क्योंकि केवल फ़्रांसीसियों ने ही उसके महान कार्यों का वर्णन किया है। आस्ट्रिया और प्रशा में उसकी

प्रतिभा का भी हम सही मूल्यांकन नहीं कर सकते, क्योंकि वहां उसके कार्य-कलापों के सूचना-स्रोत फ़ांसीसी और जर्मन ही हैं। किन्तु लड़ाई लड़े बिना पूरी की पूरी फ़ौजी-कोरों के बन्दी बन जाने और घेरों के बिना क़िलों के सौंप दिये जाने की समझ में न आनेवाली हरकतें जर्मनों को इसी चीज़ का यक़ीन दिलाती हैं कि वे जर्मनी में हुई लड़ाई में नेपोलियन की प्रतिभा की स्वीकृति को ही इनका एकमात्र स्पष्टीकरण मान लें। लेकिन शुक्र है भगवान का कि हमारे लिये अपनी शर्म पर परदा डालने की ख़ातिर नेपोलियन की प्रतिभा को स्वीकार करने का कोई कारण नहीं है। हमने तो इस मामले को साफ़ और सीधे-सादे ढंग से देखने का अधिकार पाने के लिये क़ीमत चुकायी है और हम अपने इस अधिकार को नहीं छोड़ेंगे।

अन्य सभी जगहों की तरह मास्को में भी उसकी क्रियाशीलता आश्चर्यजनक और प्रतिभापूर्ण थी। मास्को में उसके आने और मास्को से जाने के पूरे समय में वह एक के बाद एक आदेश जारी करता रहा, एक के बाद एक योजना पेश करता रहा। मास्कोवासियों और प्रतिनिधिमण्डल की अनुपस्थिति और मास्को में आग लगने से भी उसे कोई परेशानी नहीं हुई। उसने न तो अपनी सेना की भलाई, न शत्रु की गति-विधियों, न रूस के जनगण के कल्याण, न पेरिस में काम-काज के संचालन और न प्रत्याशित शान्ति की शर्तों पर सोच-विचार करने के मामले की ही अवहेलना की।

९

नेपोलियन ने मास्को में दाख़िल होते ही सैनिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए जनरल सेबास्तिआनी को रूसी सेना की गति-विधि पर कड़ी नज़र रखने का कठोर आदेश दिया, विभिन्न मार्गों पर फ़ौजी कोरें भेजीं और म्यूराट को यह मालूम करने का हुक्म जारी किया कि कुतूज़ोव कहां है। इसके बाद उसने क्रेमलिन की बहुत अच्छी तरह से मोर्चेबन्दी करने की हिदायतें दीं और इसके पश्चात रूस के पूरे नक़्शे पर भावी युद्धाभियान की शानदार योजना बनायी। कूटनीतिक

पक्ष की दृष्टि से नेपोलियन ने यह क़दम उठाया कि कप्तान याकोव्लेव* को, जिसे लूट लिया गया था, जो फटेहाल था और नहीं जानता था कि मास्को से कैसे जाये, अपने पास बुलवाया, उसे अपनी सारी नीति और दरियादिली स्पष्ट करके तथा सम्राट अलेक्सान्द्र के नाम एक पत्र देकर पीटर्सबर्ग भेज दिया। इस पत्र में उसने सम्राट अलेक्सान्द्र को लिखा कि वह अपने दोस्त और भाई को यह सूचित करना ज़रूरी समझता है कि रस्तोपचिन ने मास्को में बहुत बुरी तरह प्रबन्ध और व्यवस्था की थी। इसी तरह अपने विचारों तथा दरियादिली की तुतोलमिन** से चर्चा करके उसने सुलह की बातचीत शुरू करने के लिये उसे भी पीटर्सबर्ग रवाना कर दिया।

जगह-जगह आग लगने के फ़ौरन बाद उसने क़ानूनी दृष्टि से फ़ौरन यह हुक्म दे दिया कि आग लगानेवालों को पकड़ा जाये और उन्हें मौत की सज़ा दी जाये। सज़ा के रूप में दुष्ट रस्तोपचिन का घर जला दिया गया।

प्रशासकीय दृष्टि से उसने यह किया कि मास्को को संविधान दिया, नगरपालिका बना दी और यह अपील घोषित करवायी :

"मास्कोवासियो !

"आप बहुत क्रूर दुर्भाग्य के शिकार हैं, किन्तु महाप्रतापी सम्राट और महाराज उसका अन्त करना चाहते हैं। भयानक उदाहरणों से आप जान गये हैं कि आज्ञोलंघन और अपराध के लिये वह कितनी सख़्त सज़ा देते हैं। अव्यवस्था को दूर करने और सामान्य सुरक्षा का वातावरण लौटाने के लिये कड़े क़दम उठाये गये हैं। आपमें से ही चुने गये लोग आपकी नगरपालिका अथवा नगर-शासन-व्यवस्था का संचालन करेंगे। वही आपकी , आपकी ज़रूरतों और आपके हितों की चिन्ता करेगी। इसके सदस्य अपने कंधे पर लाल फ़ीता बांधे रहेंगे

---

* कप्तान इवान याकोव्लेव (१७६७–१८४६) – प्रसिद्ध रूसी लेखक और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, हेर्ज़न के पिता जो फ़्रांसीसियों के क़ब्ज़े में आये मास्को में वास्तव में ही बहुत बुरी हालत में रह गये थे। – सं०

** जनरल-मेजर इवान तुतोलमिन (१७५१–१८१५) के साथ नेपोलियन ने सितम्बर १८१२ में क्रेमलिन में भेंट की। तुतोलमिन उस समय मास्को के यतीमख़ाने का डायरेक्टर था। नेपोलियन ने उसे सम्राट अलेक्सान्द्र प्रथम को यह लिखने को कहा कि वह यानी नेपोलियन शान्ति चाहता है। – सं०

और इसका मुखिया या मेयर लाल फ़ीते के अलावा सफ़ेद पेटी भी बांधे रहेगा। किन्तु अपनी ड्यूटी पर न होने के वक़्त वे अपनी बायीं बांह के गिर्द केवल लाल फ़ीता बांधे रहेंगे।

"शहर की पुलिस को पहले की तरह ही संगठित कर दिया गया है और उसकी सक्रियता की बदौलत अब पहले से बेहतर व्यवस्था है। सरकार ने दो कमिश्नर-जनरल यानी पुलिस के दो बड़े अफ़सर और शहर के विभिन्न भागों के लिये बीस कमिसार यानी इन्स्पेक्टर नियुक्त कर दिये हैं। आप उन्हें उस सफ़ेद फ़ीते से पहचान सकेंगे जो वे अपनी बायीं बांह पर बांधे रहेंगे। छोटे-बड़े कई गिरजाघर खुले हुए हैं और उनमें किसी प्रकार की बाधा के बिना प्रार्थना होती रहती है। आपके नगरवासी हर दिन अपने घरों को लौट रहे हैं और इस बात के आदेश दिये गये हैं कि उन्हें दुर्भाग्य के मारे लोगों के अनुरूप हर तरह की सहायता और संरक्षण दिया जाये। फिर से व्यवस्था क़ायम करने और आप लोगों की स्थिति को अच्छा बनाने के लिये सरकार ने जो उपाय किये हैं, उनका यही सार है। किन्तु इन उपायों को सफल बनाने के लिये यह ज़रूरी है कि आप भी अपने प्रयासों द्वारा इनमें योग दें, कि यदि सम्भव हो, तो अपने उस दुर्भाग्य को भूल जायें जिसके शिकार हुए हैं, कम क्रूर भाग्य की आशा और इस बात का पूरा यक़ीन करें कि जो कोई भी आपकी जान या आपकी बची-बचायी सम्पत्ति को हानि पहुंचाने का साहस करेगा, उसे अनिवार्य और लज्जाजनक मृत्यु का सामना करना पड़ेगा तथा आपको इस बात का ज़रा भी सन्देह नहीं होना चाहिये कि आपकी जान और माल की रक्षा की जायेगी, क्योंकि महानतम तथा सर्वाधिक न्यायशील महाराजा ऐसा ही चाहते हैं। सभी जातियों के सैनिको और नागरिको! जनसाधारण में फिर से विश्वास पैदा कीजिये जो राज्य के सुख-सौभाग्य का स्रोत है, भाइयों की तरह हेल-मेल से रहें, एक-दूसरे को सहायता और संरक्षण दें, दुष्टों के बुरे इरादों को नाकाम बनाने के लिये एकजुट हो जायें, सैनिक और नागरिक सत्ता-प्रतिनिधियों की आज्ञा का पालन करें और शीघ्र ही आपके आंसू बहने बन्द हो जायेंगे।"

सेना के लिये रसद के प्रश्न को ध्यान में रखते हुए नेपोलियन ने अपनी सारी सेनाओं को आदेश दिया कि वे बारी-बारी से मास्को को लूटें और इस तरह भविष्य के लिये अपनी रसद सुनिश्चित कर लें।

धर्म के मामले में नेपोलियन ने सभी पादरियों को वापस लाने और गिरजों में प्रार्थनायें शुरू करवाने का हुक्म जारी किया।

व्यापार और सेना की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये जगह-जगह पर एक घोषणापत्र लगवा दिया गया।

घोषणापत्र

"मास्को के शान्तिप्रिय नागरिको, कारीगरो और मज़दूरो, जिन्हें दुर्भाग्य ने नगर छोड़ने को विवश किया, और जहां-तहां बिखरे हुए किसानो, जो निराधार भय के कारण अभी तक खेतों-मैदानों में रह रहे हैं, आप सभी जान लें! पूरी राजधानी में अमन-चैन क़ायम होता जा रहा है और उसमें व्यवस्था लौटायी जा रही है। आपके नगरवासी यह देखकर कि उनका आदर-सम्मान किया जाता है, अपने छिपने की जगहों से साहसपूर्वक बाहर आ रहे हैं। उन्हें या उनकी सम्पत्ति को किसी तरह की हानि पहुंचानेवालों को तुरन्त दण्ड दिया जाता है। महामहिम सम्राट और महाराजा उनकी रक्षा करते हैं और उनकी आज्ञा का उल्लंघन करनेवालों को छोड़कर आपमें से किसी को भी अपना शत्रु नहीं मानते हैं। वह आपके दुख-दर्दों का अन्त और आपको आपके घरों तथा परिवारों में लौटाना चाहते हैं। उनके नेक इरादों में अपना योग दें और किसी तरह के भय के बिना हमारे पास आयें। नागरिको! विश्वास के साथ अपने घरों को लौटें और जल्द ही आपको अपनी आवश्यकतायें पूरी करने के साधन मिल जायेंगे! कारीगरो और मेहनती शिल्पियो! फिर से अपने कामों में जुटने के लिये लौट आयें – आपके घर, आपकी दुकानें और उनकी रक्षा करनेवाले रक्षक आपकी राह देख रहे हैं। आपको आपके काम का उचित परिश्रमिक मिलेगा! और किसानो, आप भी जंगलों से, जहां डर के कारण छिपे हुए हैं, निकल आयें। आप इस बात का पूरा विश्वास करते हुए कि आपकी रक्षा की जायेगी, निर्भय होकर अपने घरों में लौट आयें। शहर में ऐसी मंडियां बना दी गयी हैं जहां किसान अपने फ़ालतू अन्न-भण्डार और कृषि-उत्पाद ला सकते हैं। माल की बाधाहीन बिक्री के लिये सरकार ने

ये क़दम उठाये हैं–१. आज के दिन से किसान, कृषिकर्मी और मास्को के इर्द-गिर्द रहनेवाले लोग किसी भी तरह के ख़तरे के बिना अपने किसी तरह के उत्पाद दो निर्धारित मंडियों यानी मोख़ोवाया और ओख़ोत्नी र्याद सड़क पर ला सकते हैं। २. उनके ये उत्पाद उन क़ीमतों पर ख़रीदे जायेंगे जो बेचनेवाला और गाहक आपस में तय करेंगे। अगर बेचनेवाले को अपने माल की उचित क़ीमत न मिले तो उसे उस माल को अपने गांव वापस ले जाने का अधिकार होगा और कोई भी इसमें किसी तरह की बाधा नहीं डालेगा। ३. हर इतवार और बुधवार बड़ी मंडी या पैंठ के दिन होंगे। इसके लिये मंगल और शनिवार को नगर से इतने फ़ासले पर तथा इतनी संख्या में सेना तैनात की जायेगी कि माल लानेवाली घोड़ा-गाड़ियां सुरक्षित ढंग से पैंठ में पहुंच सकें। ४. इस हेतु भी इसी तरह के उपाय किये जायेंगे कि लौटते समय किसानों, उनकी घोड़ा-गाड़ियों और घोड़ों को किसी तरह की बाधा का सामना न करना पड़े। ५. बहुत जल्द ही सामान्य व्यापार को बहाल करने के लिये क़दम उठाये जायेंगे। नगर और गांव के वासियो, कामगारो और कारीगरो, आप चाहे किसी भी जाति के क्यों न हों, आप सब से महामहिम सम्राट और महाराजा की पितातुल्य इच्छा पूरी करने तथा सभी के कल्याणार्थ उन्हें सहयोग देने की अपील की जाती है। उनके चरणों में अपना आदर और विश्वास प्रकट करें तथा हमारे साथ **एकजुट होने में** देर न लगायें!"

सेना और नागरिकों की हिम्मत बढ़ाने के लिये लगातार परेडों के मुआयने किये जाते और इनाम किये जाते। सम्राट घोड़े पर सवार होकर शहर की सड़कों का चक्कर लगाता और लोगों को तसल्ली देता। राज-काज की व्यस्तता के बावजूद वह उसके आदेशानुसार स्थापित किये गये थियेटर देखने जाता।

परोपकार की दृष्टि से भी, जिसे किसी भी बादशाह के ताज का सबसे चमकता हुआ हीरा माना जाता है, नेपोलियन ने यथासम्भव सभी कुछ किया। उसने सभी ख़ैराती संस्थाओं के ऊपर 'मेरी मां का घर' शब्द लिखवा दिये और इस तरह पुत्र की कोमल भावनाओं और महाराजा की दयालुता की गरिमा को एकसाथ जोड़ दिया। वह ख़ुद यतीमख़ाने में गया और अपने द्वारा बचाये गये यतीमों को अपने गोरे हाथों को चूमने की अनुमति देकर उसने यतीमख़ाने के डायरेक्टर

तुतोलमिन के साथ बहुत प्यार से बातें कीं। इसके बाद, त्येर के सुन्दर, सविस्तार वर्णन के अनुसार, उसने अपनी सेनाओं को पहले से तैयार करवायी गयी जाली रूसी मुद्राओं में वेतन देने का आदेश दिया। इन सभी उपायों को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिये उसने अपनी तथा फ़्रांसीसी सेना की गरिमा के अनुरूप एक और क़दम उठाया – उन लोगों को मदद देने का हुक्म दिया जिन्हें आग से हानि पहुंची थी। किन्तु चूंकि परायी धरती के लोगों को, जो अधिकतर शत्रुभाव रखते थे, ख़ुराक देना महंगा मामला था, इसलिये उसने धन के रूप में ही ऐसी सहायता देने का निर्णय किया ताकि वे किसी दूसरी जगह से खाने-पीने की चीज़ें ख़रीद सकें और उसने उन्हें रूबलों के नोट देने का हुक्म दिया।

सेना के अनुशासन के सम्बन्ध में कर्त्तव्यपूर्त्ति की अवहेलना और लूट-मार को रोकने के लिये लगातार कड़े आदेश दिये जा रहे थे।

१०

किन्तु बड़ी अजीब बात है कि इन सभी आदेशों-अनुदेशों, सारे प्रयासों और मनसूबों ने, जो ऐसी ही परिस्थितियों के अन्य आदेशों-अनुदेशों, प्रयासों और मनसूबों से किसी प्रकार भी उन्नीस नहीं थे, मामले की तह को छुआ तक नहीं। इन्होंने तो घड़ी के डायल के पीछे कलपुर्ज़ों से कोई सम्बन्ध न रखने और दन्त-चक्र को न छूनेवाली उन सूइयों जैसा रूप लिया जो मनमाने और उद्देश्यहीन ढंग से घूमती रहती हैं।

सैनिक दृष्टि से अभियान की वह प्रतिभापूर्ण योजना, जिसके बारे में त्येर ने यह लिखा है कि "उसकी प्रतिभा ने इससे अधिक गहन दक्षतापूर्ण और अद्भुत कभी किसी चीज़ का आविष्कार नहीं किया था" तथा जिसके सम्बन्ध में त्येर ने श्रीमान फ़ेन से* तर्क-वितर्क करके

---

* फ़ेन अगातोन जॉन फ़्रांसुआ (१७७८–१८३७) – बैरन, नेपोलियन प्रथम का सेक्रेटरी जिसने नेपोलियन के १८१२ के रूसी अभियान का वर्णन किया। – सं०

प्रमाणित किया कि यह प्रतिभापूर्ण योजना ४ अक्तूबर को नहीं, बल्कि १५ अक्तूबर को बनायी गयी थी, यह योजना न तो कभी पूरी हुई और न हो ही सकती थी, क्योंकि इसका वास्तविकता से ज़रा भी सम्बन्ध नहीं था। क्रेमलिन की मोरचाबन्दी, जिसके लिये मसजिद (नेपोलियन ने वसीली ब्लाजेन्नी के गिरजे को यही संज्ञा दी थी) का गिराया जाना ज़रूरी था, बिल्कुल व्यर्थ सिद्ध हुई। क्रेमलिन में बनायी जानेवाली सुरंग ने नेपोलियन की केवल इस इच्छा की पूर्त्ति में ही योग दिया कि उसके मास्को से जाते वक़्त क्रेमलिन को नष्ट कर दिया जाये यानी उस फ़र्श को पीट दिया जाये जिसपर गिरने से बालक को चोट लग गयी थी। रूसी सेना का पीछा करने का मामला, जिसपर नेपोलियन ने इतना ज़ोर दिया था, एक अनसुना-सा क़िस्सा बनकर रह गया। फ़्रांसीसी सेना-संचालक साठ हज़ार सैनिकोंवाली रूसी सेना को नज़र से खो बैठे और त्येर के शब्दों में, केवल म्युराट की कार्य-कुशलता तथा लगता है, कि उसकी भी प्रतिभा की बदौलत सूखी घास के ढेर में खोयी गयी एक सूई की तरह वे इस साठ हज़ार सैनिकोंवाली रूसी सेना को ढूंढ़ पाये।

कूटनीतिक दृष्टि से तुतोलमिन और याकोव्लेव के सामने, जिसका मुख्य उद्देश्य फ़ौजी ओवरकोट और मास्को से जाने के लिये घोड़ा-गाड़ी हासिल करना था, अपनी उदारता और न्यायशीलता को प्रमाणित करने के लिये प्रस्तुत किये गये सभी तर्क व्यर्थ सिद्ध हुए – सम्राट अलेक्सान्द्र न तो इन दूतों से मिले और न उन्होंने उनके सन्देशों का कोई जवाब ही दिया।

क़ानूनी दृष्टि से यह नतीजा सामने आया कि तथाकथित आग लगानेवालों को मृत्यु-दण्ड देने के बाद मास्को का दूसरा आधा भाग जल गया।

प्रशासकीय दृष्टि से नगरपालिका की स्थापना से लूट-मार ख़त्म नहीं हुई और इसके परिणामस्वरूप केवल इसके कुछ सदस्यों को ही लाभ हुआ जो व्यवस्था बनाये रखने की ओट में मास्को को लूटते रहे या अपनी सम्पत्ति को लूटे जाने से बचा सके।

धार्मिक मामले की दृष्टि से, जो मिस्र में नेपोलियन के मसजिद में जाने के फलस्वरूप इतनी आसानी से ठीक-ठाक हो गया था, यहां ऐसी कोशिश का कोई नतीजा नहीं निकला। मास्को में किसी तरह से

ढूंढ़े गये दो या तीन पादरियों ने नेपोलियन की इच्छा पूरी करने का प्रयास किया, किन्तु एक के मुंह पर तो किसी फ़्रांसीसी सैनिक ने प्रार्थना के समय तमाचे लगा दिये और दूसरे के बारे में फ़्रांसीसी कर्मचारी ने यह सूचना भेजी – "मैंने जिस पादरी को ढूंढ़ा और गिरजे में प्रार्थना करने के लिये आमन्त्रित किया था, उसने गिरजाघर को झाड़-बुहारकर वहां ताला लगा दिया था। किन्तु उसी रात को गिरजे का दरवाज़ा और ताला तोड़ दिया गया, किताबें फाड़ डाली गयीं और वहां कई तरह की दूसरी गड़बड़ कर दी गयी।"

व्यापार की दृष्टि से मेहनती कारीगरों और सभी किसानों के नाम नेपोलियन के घोषणापत्र का कोई फल नहीं निकला। मेहनती कारीगरों का तो कहीं नाम-निशान ही नहीं था और किसानों ने गांवों में कुछ ज़्यादा ही दूर पहुंच जानेवाले कमिसारों को पकड़कर मौत के घाट उतार दिया।

आम लोगों और सैनिकों का थियेटरों से मनोरंजन करने का विचार भी सफल नहीं हुआ। क्रेमलिन और पोज़्न्याकोव के घर में बनाये गये थियेटर उसी वक़्त बन्द हो गये, क्योंकि अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को लूट लिया गया था।

नेपोलियन की दानशीलता के भी वांछित परिणाम नहीं निकले। मास्को में जाली और असली नोटों की बाढ़-सी आ गयी थी और इस-लिये उनकी कोई क़ीमत नहीं रही थी। लूट के फेर में पड़े हुए फ़्रांसीसियों की तो सिर्फ़ सोने में ही दिलचस्पी थी। न केवल जाली नोटों का ही, जिन्हें नेपोलियन दुख-मुसीबतों के शिकार हुए लोगों में इतनी उदारता से बांटता था, कोई मूल्य नहीं रहा था, बल्कि सोने की तुलना में चांदी की क़ीमत भी बहुत नीचे गिर गयी थी।

किन्तु उपर्युक्त सभी आदेशों-अनुदेशों की असफलता का सबसे अधिक उल्लेखनीय उदाहरण तो यह था कि लूट-मार रोकने और अनु-शासन स्थापित करने के नेपोलियन के सभी प्रयासों का भी उस समय कोई नतीजा नहीं निकला।

इस सम्बन्ध में सेना के अफ़सरों द्वारा भेजी गयी कुछ रिपोर्टें यहां प्रस्तुत हैं:

"लूट-मार को ख़त्म करने के हुक्म के बावजूद शहर में लूट-मार जारी है। व्यवस्था अभी तक क़ायम नहीं हो सकी। एक भी व्यापारी

क़ानूनी ढंग से व्यापार नहीं कर रहा। सिर्फ़ कैंटीनोंवाले ही कुछ चीज़ें बेचते हैं और सो भी चोरी की।"

"मेरे इलाक़े के कुछ हिस्सों में तीसरी फ़ौजी कोर के सैनिक अभी तक लूट जारी रख रहे हैं। ये सैनिक क़िस्मत के मारे यहां के लोगों की कुछ बची-बचायी चीज़ों को ही, जिन्हें वे तहख़ानों में छिपा देते हैं, लूटकर सन्तुष्ट नहीं हो जाते हैं, बल्कि बड़ी क्रूरता से तलवारों से उन्हें घायल भी करते हैं, जैसाकि मैंने अपनी आंखों से कई बार देखा है।"

"इस चीज़ के सिवा और कुछ भी सूचित करने को नहीं है कि सैनिक लूटते और चोरी करते हैं। ९ अक्तूबर।"

"चोरी और लूट जारी है। हमारे हलक़े में चोरों का एक गिरोह है जिसे कड़े उपायों द्वारा क़ाबू करना पड़ेगा। ११ अक्तूबर।"

"सम्राट इस बात से बहुत दुखी हैं कि लूट को रोकने की कड़ी मनाही के बावजूद गार्ड-सैनिकों के लुटेरे-दल लगातार क्रेमलिन को लौटते दिखाई देते हैं। पुरानी गार्ड-सेना में पहले किसी भी समय की तुलना में पिछले दिन, कल रात और आज कहीं ज़्यादा अव्यवस्था तथा लूट-मार रही है। सम्राट को यह देखकर बड़ा अफ़सोस होता है कि उनकी रक्षा के लिये चुने गये सैनिक, जिन्हें सैनिक अनुशासन का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिये, इस हद तक आज्ञा का उल्लंघन करते हैं कि सेना की सप्लाई के तहख़ानों और स्टोरों के ताले तोड़कर उनमें घुस जाते हैं। दूसरों का तो इस हद तक पतन हो गया है कि उन्होंने सन्तरियों और पहरे के अफ़सरों की बात नहीं मानी, उन्होंने उन्हें गालियां दीं और पीटा भी।"

"महल का मुख्य पदाधिकारी इस चीज़ की ज़ोरदार शिकायत करता है कि सख़्त मनाही के बावजूद सैनिक सभी अहातों-आंगनों और यहां तक कि सम्राट के कमरों की खिड़कियों के नीचे भी गन्दगी फैलाते रहते हैं।"

क़ाबू से बाहर हो गये पशुओं के झुण्ड की तरह, जो उसी चारे को पैरों तले रौंदता जाता है जिससे उसकी जान बच सकती है, फ़्रांसीसी सेनायें भी मास्को में बीतनेवाले प्रत्येक दिन के साथ विघटित और नष्ट होती जा रही थीं।

किन्तु ये सेनायें मास्को से हिली नहीं।

ये तो उसी समय यहां से भागीं, जब स्मोलेन्स्क की सड़क पर रसद की घोड़ा-गाड़ियों पर रूसियों के क़ब्ज़ा कर लेने और तारूतिनो की लड़ाई की ख़बरों से ये अचानक बुरी तरह भयभीत हो उठीं। तारूतिनो की लड़ाई के समाचार ने ही, जो सेना का निरीक्षण करते समय नेपोलियन को अप्रत्याशित ही मिला, उसके दिल में रूसियों को मज़ा चखाने की तीव्र इच्छा पैदा की, (जैसाकि त्येर ने लिखा है) और उसने सेना को आगे बढ़ने का आदेश दे दिया। उसकी सारी सेना यही चाह रही थी।

मास्को से भागते वक़्त इस सेना ने लूट का अपना सारा माल भी साथ ले लिया। ख़ुद नेपोलियन भी अपना ख़ज़ाना ले जा रहा था। सेना को भारग्रस्त बनानेवाली घोड़ा-गाड़ियों को देखकर नेपोलियन स्तम्भित रह गया (जैसाकि त्येर ने लिखा है)। किन्तु युद्ध का इतना बड़ा अनुभव होने के बावजूद उसने इन फ़ालतू घोड़ा-गाड़ियों को जला डालने का हुक्म नहीं दिया, जैसाकि मास्को के क़रीब पहुंचते हुए उसने किसी मार्शल की घोड़ा-गाड़ियों के मामले में किया था। उसने ऐसी छोटी-बड़ी घोड़ा-गाड़ियों पर नज़र डाली, जिनमें सैनिक सवार थे, और कहा कि यह तो बहुत बढ़िया बात है, कि इन बग्घियों का रसद, बीमार और घायल सैनिकों को ले जाने के लिये इस्तेमाल किया जायेगा।

पूरी फ़्रांसीसी सेना की हालत उस घायल दरिन्दे जैसी थी जो अपने अन्त को निकट आता अनुभव करता है और यह नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है। फ़्रांसीसी सेनाओं के मास्को में आने और उनके नष्ट होने तक की नेपोलियन की बड़ी दक्षतापूर्ण युक्तियों-चालों और लक्ष्यों का अध्ययन भयानक रूप से घायल दरिन्दे की मौत के पहले उसकी उछल-कूद और ऐंठनों का अध्ययन करने के समान ही है। घायल दरिन्दा कोई सरसराहट सुनकर अक्सर ख़ुद ही शिकारी की बन्दूक़ के सामने चला जाता है, आगे और फिर पीछे को दौड़ता है तथा अपनी मौत को ख़ुद ही जल्दी से बुलावा देता है। अपनी सेनाओं के दबाव के कारण नेपोलियन ने भी ऐसा ही किया। तारूतिनो की लड़ाई की सरसराहट ने दरिन्दे को डरा दिया, वह शिकारी की बन्दूक़ की तरफ़ लपका, भागकर शिकारी तक गया, वापस लौटा, फिर से आगे बढ़ा, फिर से वापस लौटा और आख़िर किसी भी दरिन्दे की तरह सबसे

ज़्यादा अहितकर और ख़तरनाक, किन्तु जाने-पहचाने, अपने पुराने पद-चिह्नोंवाले रास्ते पर पीछे को भाग चला।

नेपोलियन, जो हमें इस अभियान की सारी गति-विधि का संचालक प्रतीत होता है (जैसे कि किसी जंगली आदमी को जहाज़ के अग्रभाग में बनी आकृति ही उसकी संचालन-शक्ति लगती है) अपने इस सारे कार्य-कलाप के दौरान उस बालक के समान था जो बग्घी के भीतर लगे पट्टे को हाथों में थामे हुए यह कल्पना करता है कि वही बग्घी को चला रहा है।

११

६ अक्तूबर को प्येर तड़के ही बैरक से बाहर निकला, वापस लौटा और छोटी-छोटी टेढ़ी-मेढ़ी टांगों, लम्बे बदन तथा बैंगनी-से रंगवाले कुत्ते के साथ खेलने लगा जो उसके इर्द-गिर्द घूम रहा था। यह कुत्ता इनके साथ जेल की इसी बैरक में रहता था, रात को करातायेव के क़रीब सोता था, कभी-कभी शहर में कहीं जाता और फिर लौट आता था। सम्भवत: उसका कभी कोई मालिक नहीं रहा था, अब भी उसका कोई स्वामी नहीं था और उसका कोई नाम भी नहीं था। फ़्रांसीसी इसे अज़ोर के नाम से पुकारते थे, क़िस्सागो इसे डोमकौआ कहता था और करातायेव तथा दूसरे लोग इसे सलेटिया तथा कभी-कभी लद्धड़ कहकर बुलाते थे। स्वामीहीन होने, नाम, किसी ख़ास नसल, यहां तक कि किसी ख़ास रंग की अनुपस्थिति से भी उसके लिये किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं पैदा होती थी। फूले-फूले बालोंवाली उसकी सख़्त और गोल पूंछ कलगी की तरह ऊपर को उठी रहती, टेढ़ी-मेढ़ी टांगें इतनी अच्छी तरह से उसकी सेवा करती थीं कि वह अक्सर चारों टांगों से काम न लेकर बड़े सजीले ढंग से पिछली एक टांग ऊपर उठा लेता और बड़ी फुर्ती तथा तेज़ी से तीन टांगों पर ही भागता चला जाता। उसे हर चीज़ से ख़ुशी हासिल होती। कभी वह ख़ुशी से किकियाता हुआ पीठ के बल लोटता, कभी विचारमग्न और महत्त्वपूर्ण-सी मुद्रा बनाकर धूप सेंकता और फिर कभी लकड़ी के

टुकड़े या तिनके के साथ खेलता हुआ उछलता-कूदता।

प्येर की पोशाक अब ऐसी थी – उसके पहले के कपड़ों में से बच रहनेवाली एकमात्र गन्दी, फटी हुई क़मीज़, सैनिकों का पतलून जिसे वह करातायेव की सलाह के मुताबिक़ गर्माहट के लिये टखनों पर रस्सियों से बांधे रहता था, किसानों के समान लम्बा कोट और उन्हीं के जैसी टोपी। इस अवधि में प्येर शारीरिक दृष्टि से बहुत बदल गया था। अब वह मोटा नहीं लगता था, यद्यपि उसकी लम्बी-चौड़ी काठी और ताक़त, जो उसे विरासत में मिली थी, पहले जैसी ही नज़र आती थी। उसकी दाढ़ी और मूंछें बढ़ गयी थीं। बढ़े हुए तथा उलझे-उलझाये बालों ने, जिनमें जूएं पड़ गयी थीं, अब उसके सिर के गिर्द टोपी की सी शक्ल ले ली थी। आंखों में दृढ़ता, शान्ति, सजीवता और उत्साह का ऐसा भाव था, जैसा पहले कभी नहीं रहा था। पहले-वाली शिथिलता की जगह, जो उसकी दृष्टि में भी झलकती थी, अब उसमें स्फूर्त्ति, क्रियाशीलता और विरोध करने की तत्परता आ गयी थी। उसके पांव नंगे थे।

प्येर कभी तो उस मैदान की तरफ़ नीचे देखता जहां से इस सुबह को घोड़ा-गाड़ियां और घुड़सवार जा रहे थे, कभी नदी के पार दूरी पर नज़र दौड़ाता, कभी कुत्ते पर दृष्टि डालता जो यह ढोंग करता था कि सचमुच ही उसे काटनेवाला है और कभी अपने नंगे पांवों को देखने लगता, जिनकी गन्दी, मोटी-मोटी और बड़ी-बड़ी उंगलियों को हिलाते-डुलाते हुए ख़ुशी से इधर-उधर बदलता रहता था। नंगे पांवों की ओर देखने पर हर बार ही उसके चेहरे पर सजीवता और आत्म-सन्तोष की मुस्कान आ जाती। नंगे पांवों पर नज़र पड़ते ही उसे वह सब कुछ याद आ जाता जो उसने इस अवधि में अनुभव किया था, जाना-समझा था और यह स्मृति अब उसे मधुर लगती थी।

पिछले कुछ दिनों से मौसम बड़ा शान्त, निर्मल-सुहावना था, सुबह के वक़्त हल्का-सा पाला पड़ता था – पतझर के आरम्भकाल का ऐसा मौसम था जिसे रूस में "बुढ़ियों की गर्मी" कहा जाता है।

बाहर धूप में हल्की गर्माहट थी और यह गर्माहट अभी तक विद्यमान सुबह की मामूली-सी ठण्डक की स्फूर्त्तिदायिनी ताज़गी के साथ मिलकर बेहद प्यारी लगती थी।

दूर और क़रीब की सभी चीज़ों पर वह जादुई-बिल्लौरी चमक

छाई हुई थी जो शरद ऋतु के इसी समय में होती है। दूरी पर गांव, गिरजे और एक बड़े सफ़ेद घर के साथ वोरोब्योव पहाड़ी दिखाई दे रही थी। पातहीन पेड़, बालू, ईंटें, मकानों की छतें, गिरजाघर की हरी लाट, दूरवर्ती सफ़ेद मकान के कोण – पारदर्शी हवा में यह सभी कुछ असाधारण रूप से स्पष्ट और सूक्ष्म ब्योरों के साथ दिखाई दे रहा था। क़रीब ही बाड़ के साथ उगी हुई तथा अभी तक गहरे हरे रंग की बकायन की झाड़ियोंवाली एक अधजली इमारत के जाने-पहचाने खण्डहर नज़र आ रहे थे। इस इमारत में अब फ़्रांसीसियों ने डेरा डाल रखा था। बुरे मौसम में आंखों में खटकनेवाली यह टूटी-फूटी और भद्दी इमारत भी अब इस प्रखर और शान्त दीप्ति में मन को चैन देनेवाली तथा सुन्दर लग रही थी।

एक फ़्रांसीसी कॉरपोरल रात की टोपी पहने, लापरवाही से कोट के बटन खोले और मुंह में छोटा-सा पाइप दबाये हुए बैरक के पीछे से सामने आया और मैत्रीपूर्ण ढंग से प्येर को आंख मारकर उसके पास गया।

"बड़ी प्यारी धूप है न, श्रीमान किरील्ल? (फ़्रांसीसी सैनिक प्येर को ऐसे ही सम्बोधित करते थे)। बिल्कुल वसन्त जैसा मौसम है।" इतना कहकर कॉरपोरल दरवाज़े के साथ टेक लगाकर खड़ा हो गया और उसने अपना पाइप प्येर की तरफ़ बढ़ा दिया, यद्यपि वह हमेशा ऐसा ही करता था और प्येर हमेशा ही पाइप लेने से इन्कार कर देता था।

"ऐसे ही मौसम में कूच करना चाहिये..." कॉरपोरल ने कहना शुरू किया।

प्येर ने उससे पूछा कि सेना के कूच के बारे में क्या ख़बर है। कॉरपोरल ने बताया कि लगभग सभी सेनायें आगे बढ़ रही हैं और आज ही क़ैदियों के बारे में भी हुक्म जारी हो जायेगा। प्येर क़ैदियों की जिस बैरक में था, उसी में सोकोलोव नाम का एक सैनिक लगभग मृत्यु-शय्या पर पड़ा था। प्येर ने कॉरपोरल से उसकी चिन्ता करने को कहा। कॉरपोरल ने जवाब दिया कि प्येर निश्चिंत रह सकता है, कि इसके लिये स्थायी और चलते-फिरते अस्पताल हैं, कि बीमारों के लिये ज़रूरी व्यवस्था कर दी जायेगी, कि कुल मिलाकर उच्चाधिकारियों ने सभी तरह की सम्भव कठिनाइयों को ध्यान में रखा है।

"इसके अलावा, श्रीमान किरील्ल, आप जानते हैं कि आपके लिये हमारे कप्तान से एक शब्द कह देना ही काफ़ी है... वह तो ऐसे लोगों में से हैं... जो कभी कुछ नहीं भूलते। जब वह यहां निरीक्षण के लिये आयें तो आप उनसे कह दीजिये। वह आपको किसी भी चीज़ के लिये इन्कार नहीं करेंगे..."

कॉरपोरल ने जिस कप्तान का उल्लेख किया था, वह अक्सर तथा बड़ी देर तक प्येर से बातें करता रहता था और उसके प्रति सभी तरह का कृपाभाव दिखाता था।

"सेंट थोमस की क़सम खाता हूं, उसने कुछ दिन पहले मुझसे कहा – 'किरील्ल पढ़ा-लिखा आदमी है, फ़्रांसीसी बोलता है, रूसी रईस है जो मुसीबत का शिकार हो गया है, लेकिन वह ढंग का आदमी है। बहुत कुछ जानता-समझता है... अगर उसे किसी चीज़ की ज़रूरत महसूस हो तो इन्कार नहीं किया जा सकता।' जब कोई आदमी ख़ुद पढ़ा-लिखा हो तो उसे पढ़े-लिखे और तौर-तरीक़ेवाले आदमी ही अच्छे लगते हैं। यह मैं आपके बारे में ही कह रहा हूं, श्रीमान किरील्ल। अगर आप न होते तो कुछ दिन पहले मामला बड़ा ही बुरा रुख़ ले लेता।"

थोड़ी देर तक कुछ और बातें करने के बाद कॉरपोरल चला गया। (उसने कुछ दिन पहले हुए जिस मामले का ज़िक्र किया था, वह क़ैदियों और फ़्रांसीसियों के बीच हुई मारपीट से सम्बन्धित था। प्येर उस वक़्त अपने साथियों को शान्त करने में सफल रहा था।) कुछ क़ैदियों ने प्येर को कॉरपोरल से बातचीत करते देखा था और वे फ़ौरन उससे यह पूछने लगे कि उसने क्या कहा था। प्येर अपने साथियों को जब यह बता रहा था कि कॉरपोरल ने फ़्रांसीसी सेना के कूच के बारे में क्या कहा था, उसी वक़्त पीले चेहरेवाला, दुबला-पतला और फटेहाल एक फ़्रांसीसी सैनिक बैरक के दरवाज़े के क़रीब आया। उसने झटपट और कुछ झेंपते हुए मानो सलामी के रूप में अपनी उंगलियों को माथे तक ऊपर उठाया और प्येर को सम्बोधित करते हुए पूछा कि प्लातोन नाम का बन्दी, जिसे उसने अपनी क़मीज़ सिलने को दी थी, यहीं है या नहीं।

एक सप्ताह पहले फ़्रांसीसी सैनिकों को चमड़ा और कपड़ा मिला था जिसे उन्होंने बन्दी सैनिकों को उनके लिये बूट और क़मीज़ें बनाने को दे दिया था।

"तैयार है, बिल्कुल तैयार है, मेरे प्यारे!" ढंग से तह की हुई क़मीज़ हाथ में लिये कारातायेव ने बाहर आते हुए कहा।

मौसम गर्म होने के कारण और इसलिये कि सुविधापूर्वक काम कर सके, कारातायेव केवल पतलून और कालिख जैसी काली और फटी हुई क़मीज़ पहने था। कारीगरों की तरह उसने छाल के टुकड़े से अपने बाल बांध रखे थे और उसका गोल चेहरा हमेशा की तुलना में ज़्यादा गोल और प्यारा लग रहा था।

"वचन दिया है तो उसे पूरा करो, मेरे भाई। कहा था कि शुक्रवार को बन जायेगी और बना दी," कारातायेव ने मुस्कराते और सिली क़मीज़ की तह खोलते हुए कहा।

फ़्रांसीसी सैनिक ने बेचैनी से अपने इर्द-गिर्द देखा और मानो अपनी दुविधा पर क़ाबू पाते हुए जल्दी से वर्दी उतारकर क़मीज़ पहन ली। फ़्रांसीसी की वर्दी के नीचे क़मीज़ नहीं थी। क़मीज़ की जगह वह अपने नंगे, पीले और दुबले-पतले शरीर पर फूलों के छापेवाली रेशमी, लम्बी और मैल से चिक्कट वॉस्कट पहने था। फ़्रांसीसी को सम्भवतः इस बात की शंका थी कि उसे देखनेवाले क़ैदी हंस न पड़ें और इसलिये उसने जल्दी से अपना सिर क़मीज़ में घुसेड़ लिया। बन्दियों में से किसी ने एक भी शब्द नहीं कहा।

"देखो तो, बिल्कुल ठीक आई है," क़मीज़ को ठीक करते हुए प्लातोन कारातायेव ने कहा। फ़्रांसीसी सिर और बांहों को क़मीज़ में घुसेड़कर तथा नज़र ऊपर उठाये बिना क़मीज़ तथा उसकी सिलाई को देखता जा रहा था।

"बात यह है, मेरे प्यारे, न तो यहां सिलाई करने के लिये ढंग की जगह है और न असली औज़ार ही। ठीक ही कहा जाता है कि औज़ार के बिना तो जूं भी नहीं मारी जा सकती," प्लातोन कारातायेव गोल-गोल मुंह से मुस्कराता और सम्भवतः अपने काम से ख़ुश होता हुआ कहता जा रहा था।

"ठीक है, ठीक है, धन्यवाद, किन्तु बचा हुआ कपड़ा कहां है?" फ़्रांसीसी ने पूछा।

"जब तुम इसे ढंग से बदन पर पहन लोगे तो यह और भी ज़्यादा अच्छी लगेगी," प्लातोन कारातायेव अपने हाथ के इस काम से ख़ुश

होते हुए पहले की तरह कहता गया। "बहुत अच्छी और बहुत प्यारी लगेगी ..."

"धन्यवाद, धन्यवाद, किन्तु बचा हुआ कपड़ा कहां है?" फ़्रांसीसी ने एक नोट निकालकर कारातायेव को देते और मुस्कराते हुए दोहराया। "बचा हुआ कपड़ा तो दे दो।"

प्येर ने देखा कि प्लातोन जान-बूझकर फ़्रांसीसी की बात समझना नहीं चाहता था और दख़ल दिये बिना उन्हें देखता रहा। कारातायेव ने पैसों के लिये फ़्रांसीसी सैनिक को धन्यवाद दिया और मुग्ध भाव से अपने हाथ के काम को देखता रहा। फ़्रांसीसी बचे हुए कपड़े को वापस लेने का आग्रह करता रहा और उसने प्येर से अनुरोध किया कि वह उसकी बात का अनुवाद करके कारातायेव को समझा दे।

"बचे हुए टुकड़ों का यह क्या करेगा?" कारातायेव ने जवाब दिया। "हमारे लिये इनसे टांगों पर लपेटने की बढ़िया पट्टियां बन सकती हैं। पर ख़ैर, भाड़ में जायें ये।" और कारातायेव ने अचानक बदले तथा उदास हो गये चेहरे के साथ अपनी क़मीज़ के भीतर से कपड़े के टुकड़ों का छोटा-सा बंडल निकाला और फ़्रांसीसी की तरफ़ देखे बिना उसे दे दिया। "अफ़सोस!" कारातायेव कह उठा और भीतर चल दिया। फ़्रांसीसी ने इस कपड़े को देखा, कुछ सोचा और प्रश्नसूचक दृष्टि से प्येर की तरफ़ देखा। प्येर की दृष्टि ने मानो उससे कुछ कह दिया।

"प्लातोन, ओ प्लातोन," फ़्रांसीसी सैनिक अचानक शर्म से लाल होते हुए किकियाती-सी आवाज़ में ज़ोर से कह उठा। "इसे तुम रख सकते हो," कपड़ों के टुकड़ों की छोटी-सी पोटली उसे देते हुए उसने कहा, मुड़ा और चला गया।

"देखा तुम लोगों ने," कारातायेव सिर हिलाते हुए बोला। "कहते हैं कि इनका कोई धर्म-ईमान नहीं, लेकिन इनके पास भी आत्मा है। बड़े-बूढ़ों ने ठीक ही कहा है – मेहनत के पसीने से भीगा हाथ उदार, मगर सूखा कंजूस होता है। ख़ुद चिथड़े पहने है, लेकिन मुझे यह पोटली दे दी।" कारातायेव कुछ सोचते और इन टुकड़ों को देख-देखकर मुस्कराते हुए थोड़ी देर तक ख़ामोश रहा। "इनसे टांगों पर लपेटने की पट्टियां बहुत बढ़िया बनेंगी, मेरे दोस्त," उसने कहा और बैरक में चला गया।

१२

प्येर को बन्दी बने हुए चार सप्ताह बीत चुके थे। फ़्रांसीसियों ने तो उसे बेशक सैनिकों की बैरक से रूसी बन्दी-अफ़सरों की जेल में भेजना चाहा, किन्तु वह इसी बैरक में बना रहा जिसमें पहले दिन आया था।

जल चुके और तबाहहाल मास्को में प्येर ने वे अधिकतम अभाव सहे जो कोई आदमी सह सकता है। किन्तु अपनी मज़बूत काठी और बहुत ही अच्छी सेहत की बदौलत, जिसका उसे अब तक कोई एहसास नहीं हुआ था, और ख़ास तौर पर इस चीज़ के फलस्वरूप कि ये अभाव ऐसे धीरे-धीरे आये कि यह कहना भी कठिन था कि वे कब आरम्भ हुए, उसने अपनी स्थिति को न केवल आसानी से, बल्कि ख़ुशी-ख़ुशी बर्दाश्त किया। इसी वक़्त तो उसे वह चैन और आत्म-सन्तोष मिला जिसके लिये पहले व्यर्थ ही कोशिश करता रहा था। वह विभिन्न उपायों से तथा लम्बे अरसे तक अपने जीवन में इस चैन, इस आन्तरिक सामंजस्य और उस चीज़ को ढूंढ़ता रहा था जिसे बोरोदिनो की लड़ाई के समय सैनिकों में देखकर चकित रह गया था। उसने इसे परोपकार के रूप में ढूंढ़ा, फ़्री मेसनरी में ढूंढ़ा, सोसाइटी के दुराचारों और शराब के नशे में, आत्म-बलिदान के वीरतापूर्ण कारनामे, नताशा के प्रति रोमांटिक प्रेम, बौद्धिक चिन्तन और तर्क-वितर्क में ढूंढ़ा, किन्तु उसकी यह सारी खोज और सभी कोशिशें नाकाम रही थीं। परन्तु इस चीज़ की चेतना के बिना ही वह मौत के भय, अभावों और कारा-तायेव के रूप में जो कुछ जान-समझ गया था, उसके परिणामस्वरूप उसने यह चैन और मानसिक सामंजस्य प्राप्त कर लिया था। मृत्यु-दण्ड के समय उसने यातना के जो भयानक क्षण अनुभव किये, उन्होंने मानो बेचैन करनेवाले उन विचारों तथा भावनाओं को उसके कल्पना और स्मृति-पट से धो डाला जो उसे पहले इतने महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते थे। रूस, युद्ध, राजनीति और नेपोलियन – इनमें से किसी के बारे में भी अब उसके दिमाग़ में कोई ख़्याल नहीं आता था। उसे यह स्पष्ट हो गया था कि इस सबका उससे कोई सरोकार नहीं था, कि इनके बारे में कोई राय देना उसका काम नहीं था और इसलिये वह इनके सम्बन्ध में कोई निर्णय भी नहीं कर सकता

था। "गर्मी और रूस जैसा, नहीं कुछ भी ऐसा" – वह कारातायेव के इन शब्दों को दोहराता और इन शब्दों से उसे एक ख़ास क़िस्म का चैन मिलता। नेपोलियन की हत्या करने का अपना इरादा और तालिका के उन अंकों की खोज भी, जिसके अनुसार उसके नाम में इतने अंक बनते थे कि उसी को नेपोलियन की हत्या करनी चाहिये थी, उसे अब यह सभी कुछ न केवल समझ में न आनेवाला, बल्कि हास्यास्पद भी लगता था। पत्नी के विरुद्ध उसका क्रोध और यह चिन्ता भी कि उसके नाम को बट्टा न लग जाये, उसे न केवल तुच्छ, बल्कि मनो-रंजक-सी बात लगती थी। उसे भला इससे क्या लेना-देना था कि यह औरत किसी जगह पर अपने मन को अच्छी लगनेवाली ज़िन्दगी बिताती थी? किसी को, ख़ास तौर पर उसे तो लोगों के यह जान जाने से क्या फ़र्क़ पड़ सकता था कि उनका बन्दी काउंट बेज़ूख़ोव था।

प्रिंस अन्द्रेई के साथ अपनी बातों को अब वह अक्सर याद करता और उसके साथ पूरी तरह सहमत होता, किन्तु प्रिंस अन्द्रेई के विचार को कुछ दूसरे ही ढंग से समझते हुए। प्रिंस अन्द्रेई ऐसा सोचता और कहता भी था कि सुख केवल नकारात्मक होता है, लेकिन वह कुछ कटुता और व्यंग्य से ही ऐसा कहता था। ऐसा कहते हुए वह मानो कोई दूसरा, यह विचार व्यक्त करता था कि सकारात्मक सुख के लिये हमारी सारी इच्छायें हमारे दिल में केवल इसीलिये जन्म लेती हैं कि कभी भी पूरी न होकर वे हमें व्यथित करती रहें। किन्तु प्येर ने किसी प्रकार के गुप्त विचार के बिना इसकी न्यायसंगतता को स्वीकार कर लिया। व्यथा-वेदना की अनुपस्थिति, इच्छाओं की पूर्त्ति और इसके परिणामस्वरूप मनपसन्द काम करने अर्थात् जीवन-ढंग की स्वतन्त्रता अब प्येर को मानव का असंदिग्ध और उच्चतम सुख प्रतीत होती थी। केवल अब, यहां पर ही प्येर ने जीवन में पहली बार भूख लगने पर खाने, प्यास लगने पर पीने, नींद आने पर सोने, ठण्ड महसूस होने पर गर्माहट पाने, किसी से कुछ कहने और किसी की आवाज़ सुनने की इच्छा होने पर मानव के साथ बातचीत करने के आनन्द के महत्त्व को पूरी तरह से समझा। न्यूनतम इच्छाओं की पूर्त्ति – अच्छा भोजन, सफ़ाई, आज़ादी – जब वह इन सब से वंचित था, प्येर को सुख का पूर्णतम रूप लगती थी और काम यानी जीवन-ढंग का चुनाव, जब यह चुनाव इतना सीमित था, उसे इतना आसान-सा मामला लगता था

कि वह भूल जाता था कि जीवन की सुविधाओं का बाहुल्य इच्छाओं की पूर्त्ति के सुख को नष्ट कर देता है तथा काम के चुनाव की अधिकतम स्वतन्त्रता, वह स्वतन्त्रता, जो उसे अपने जीवन में अपनी शिक्षा, दौलत और सोसाइटी में ऊंचे स्थान की बदौलत मिली थी – यही स्वतन्त्रता को काम के चुनाव को असम्भव की सीमा तक कठिन बना देती है तथा काम की इच्छा और सम्भावना को ही नष्ट कर डालती है।

प्येर अब केवल उसी समय के सपने देखता था, जब आज़ाद हो जायेगा। वैसे यह सही है कि बाद में और जीवन भर वह अपने बन्दी-जीवन के इस एक महीने, इसके दौरान अनुभूत फिर कभी न लौटने-वाली, बड़ी प्रभावपूर्ण और उन सुखद अनुभूतियों तथा सबसे बढ़कर तो उस पूर्ण मानसिक शान्ति, पूरी आन्तरिक स्वतन्त्रता के बारे में बड़े उल्लास से सोचता तथा उसकी चर्चा करता रहा जिसे उसने केवल इस समय में ही अनुभव किया था।

बन्दी बनाये जाने के बाद प्येर जब पहले दिन पौ फटने के वक़्त बैरक से बाहर निकला और उसने नोवोदेविची मठ के गुम्बद और क्रास देखे, जो शुरू में अंधेरे में लिपटे होने के कारण काले-काले लगते थे, धूल भरी घास पर पाले की वजह से जमे हुए ओसकण देखे, वोरोब्योव पहाड़ी के ऊंचे-नीचे शिखर, बल खाती नदी के ऊपर वनों से ढका तट देखा जो कहीं बैंगनी दूरी में जाकर लुप्त हो जाता था, जब उसने ताज़ा हवा का स्पर्श अनुभव किया और मास्को की ओर से आते तथा खेतों-मैदानों के ऊपर से उड़े जाते डोमकौओं की कांय-कांय सुनी और कुछ देर बाद जब पूरब की ओर से अचानक कुछ प्रकाश फैल गया तथा बादल के पीछे से अपनी विजय-पताका फहराता हुआ सूरज बाहर आ गया तथा गुम्बद, क्रास, ओसकण, दूरस्थ क्षितिज और नदी ख़ुशी भरी चमक से चमचमा उठे – तो प्येर ने जीवन की एक नयी, पहले अनजानी प्रसन्नता तथा दृढ़ता-स्फूर्त्ति अनुभव की।

उसके पूरे बन्दी-जीवन में यह भावना न केवल बनी ही नहीं रही, बल्कि इसके विपरीत, उसकी स्थिति की बढ़ती कठिनाइयों के साथ-साथ अधिक बलवती होती चली गयी।

प्येर के बैरक में आने के फ़ौरन बाद उसके साथी-बन्दियों में उसके बारे में जो ऊंची राय बन गयी थी, उससे सभी कुछ के लिये उसकी तत्परता तथा नैतिक सुसंयतता की यह भावना और भी तीव्र

हो गयी थी। प्येर का भाषाओं का ज्ञान, वह आदर जो फ़्रांसीसी उसके प्रति दिखाते थे, वह सरलता जिससे वह सभी कुछ, जो उससे मांगा जाता था, दे देता था (उसे क़ैदी फ़ौजी अफ़सरों के समान तीन रूबल का साप्ताहिक भत्ता मिलता था), उसकी वह शक्ति जिससे वह बैरक की दीवारों में हाथ से कीलें ठोंकता था, उसकी वह नम्रता जिससे अपने साथियों के साथ पेश आता था, उनकी समझ में न आनेवाली उसकी वह क्षमता जिससे वह कुछ न करते हुए बुत बना-सा बैठा तथा सोचता रहता था – इन सभी चीज़ों के कारण वह सैनिकों को कुछ रहस्यपूर्ण और श्रेष्ठ व्यक्ति प्रतीत होता था। उसकी शक्ति, जीवन की सुविधाओं के प्रति उसका उपेक्षा भाव, बेख़्याली और सादगी जैसे जिन गुणों ने उस सोसाइटी में, जिसमें वह पहले रहता था, यदि उसे हानि नहीं पहुंचाई थी तो उसके लिये झेंप अवश्य पैदा की थी, यहां, इन लोगों के बीच उन्होंने उसे लगभग हीरो बना दिया था। प्येर अनुभव करता था कि उसके बारे में इन लोगों की ऐसी ऊंची राय उसकी ज़िम्मेदारी भी बढ़ाती थी।

१३

६ अक्तूबर की रात और ७ अक्तूबर की सुबह को फ़्रांसीसियों का कूच आरम्भ हुआ – रसोईघरों और बैरकों को तोड़ा जा रहा था, घोड़ा-गाड़ियों पर सामान लादा जा रहा था और सेनायें तथा घोड़ा-गाड़ियां रवाना हो रही थीं।

सुबह के सात बजे कूच की वर्दियां और फ़ौजी टोपियां पहने, बन्दूक़ें, थैले तथा बड़ी-बड़ी बोरियां लिये फ़्रांसीसियों का एक बड़ा लशकर बैरकों के सामने खड़ा था और सभी दिशाओं में सजीव फ़्रांसीसी बात-चीत, जिसमें कभी-कभी गालियां भी शामिल हो जाती थीं, सुनाई दे रही थी।

क़ैदियों की बैरक में सभी अपने कपड़े तथा जूते पहने, पेटियां बांधे तैयार थे और बाहर निकलने के हुक्म का इन्तज़ार कर रहे थे। पीले चेहरेवाला, दुबला-पतला बीमार क़ैदी सोकोलोव, जिसकी आंखों

के नीचे काले घेरे पड़े हुए थे, अभी तक कपड़े और जूते पहने बिना अपनी जगह पर अकेला बैठा था तथा चेहरे की क्षीणता के कारण बाहर को निकली-निकली आंखों से अपनी तरफ़ कोई भी ध्यान न देनेवाले साथियों को प्रश्नसूचक दृष्टि से देखता और लयबद्ध ढंग से धीरे-धीरे कराहता जा रहा था। वह पेचिश से पीड़ित था और सम्भवतः बीमारी की यातना के कारण तो इतना नहीं, जितना कि अकेले रह जाने के भय और दुख के कारण कराहने को मजबूर हो रहा था।

प्येर वे जूते पहने, जो कारातायेव ने एक फ्रांसीसी द्वारा अपने जूतों के तले ठीक करवाने के लिये दिये गये चमड़े के बचे टुकड़ों से बनाये थे तथा पेटी के रूप में कमर पर रस्सी बांधे हुए रोगी के पास गया और उसके सामने उकड़ूं बैठ गया।

"घबराने की कोई बात नहीं है, सोकोलोव। ये लोग पूरी तरह तो यहां से जा नहीं रहे हैं! उनका यहां अस्पताल भी है। मुमकिन है कि तुम हम लोगों से अच्छे ही रहो," प्येर ने कहा।

"हे भगवान! ओह, मैं मर जाऊंगा! हे भगवान!" वह ज़्यादा ज़ोर से कराह उठा।

"मैं अभी जाकर उनसे कुछ और पूछ-ताछ कर लेता हूं," प्येर ने कहा और उठकर बैरक के दरवाज़े की तरफ़ चल दिया। प्येर जिस वक़्त दरवाज़े के क़रीब पहुंचा, उसी वक़्त दो सैनिकों के साथ वह कॉरपोरल भी यहां आ गया जिसने पिछले दिन प्येर को तम्बाकू के कश लगाने के लिये अपना पाइप पेश किया था। कॉरपोरल और दोनों सैनिक भी कूच की वर्दी में थे, पीठ पर थैले लादे थे, फ़ौजी टोपी पहने थे जिसकी तनियां उन्होंने ठोड़ी पर बांध रखी थीं और जिसके कारण उनके जाने-पहचाने चेहरे कुछ बदल गये थे।

कॉरपोरल इसलिये बैरक के दरवाज़े की तरफ़ जा रहा था कि अपने ऊंचे अफ़सरों के हुक्म के मुताबिक़ उसे ताला लगा दें। कूच के पहले क़ैदियों को गिनना ज़रूरी था।

"कॉरपोरल, रोगी का क्या होगा?.." प्येर ने कहना शुरू किया, किन्तु उसी क्षण, जब उसने यह कहा तो उसे अपने मन में इस सन्देह की अनुभूति हुई कि यह उसका परिचित कॉरपोरल ही है या कोई दूसरा, अपरिचित व्यक्ति है: यह कॉरपोरल इस वक़्त इतना अधिक बदला हुआ लग रहा था। इसके अलावा, इसी वक़्त, जब प्येर यह कह

रहा था, दोनों ओर से अचानक ढोलों की ढमढम सुनायी देने लगी। कॉरपोरल ने प्येर के शब्दों पर नाक-भौंह सिकोड़ी और बेमानी-सी गालियां बककर फटाक से दरवाजा बन्द कर दिया। बैरक में अध-अंधेरा हो गया। दोनों ओर से ढोलों की ज़ोरदार ढमढम सुनायी दे रही थी जिसमें रोगी का कराहना दबकर रह गया।

"यह लो!.. फिर से वही!" प्येर ने अपने आपसे कहा और हठात् उसे अपनी पीठ पर फुरफुरी महसूस हुई। कॉरपोरल के चेहरे के बदले भाव, उसकी आवाज़, ढोल की उत्तेजित करने तथा कानों के परदे फाड़नेवाली ढमढम में प्येर ने उस रहस्यपूर्ण और क्रूर शक्ति को पहचान लिया जो लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध अपने जैसों को मारने को विवश करती थी, वह शक्ति जिसकी गति-विधि को उसने मृत्यु-दण्ड के दृश्य के समय देखा था। इस शक्ति से डरना, इसमें बचने की कोशिश करना, इसके साधन बननेवाले लोगों से अनुनय-विनय करना या उन्हें समझाना-बुझाना व्यर्थ था। प्येर अब तो यह जानता था। इन्तज़ार करना और सब्र से काम लेना ज़रूरी था। प्येर अब फिर से रोगी के पास नहीं गया और उसने उसकी तरफ़ देखा भी नहीं। वह नाक-भौंह सिकोड़े हुए बैरक के दरवाज़े के पास खड़ा था।

बैरक का दरवाज़ा जब खोला गया और भेड़ों के रेवड़ की तरह एक-दूसरे से रेल-पेल करते हुए युद्ध-बन्दी दरवाज़े के क़रीब जमा हो गये तो प्येर दूसरों को धकियाते-कोहनियाते हुए आगे निकलकर उसी कप्तान के पास गया जो, जैसाकि कॉरपोरल ने यक़ीन दिलाया था, उसके लिये कुछ भी करने को तैयार था। कप्तान भी कूच की वर्दी पहने था और उसके कठोर चेहरे पर भी "वही" नज़र आ रहा था जिसे प्येर ने कॉरपोरल के शब्दों और ढोलों की ढमढम में पहचान लिया था।

"चलते जाइये, चलते जाइये," कठोरता से त्योरी चढ़ाये और रेल-पेल करते हुए अपने क़रीब से गुज़र रहे क़ैदियों को देखते हुए वह कह रहा था। प्येर जानता था कि उसकी कोशिश नाकाम रहेगी, फिर भी वह कप्तान के पास गया।

"क्या बात है?" रुखाई से प्येर की ओर देखकर तथा मानो उसे न पहचानते हुए कप्तान ने पूछा। प्येर ने रोगी के बारे में बताया।

"वह चल सकता है, भाड़ में जाये वह!" कप्तान ने जवाब दिया।

"चलते जाइये, चलते जाइये," प्येर की ओर देखे बिना वह कहता गया।

"नहीं, वह तो मर रहा है..." प्येर ने कहना शुरू किया।

"तुम जहन्नुम में..." कप्तान ग़ुस्से से त्योरी चढ़ाकर चिल्ला उठा।

ढम ढमाढम, ढम ढमाढम, ढोल बहुत ज़ोर से बज रहे थे। प्येर समझ गया कि रहस्यमयी शक्ति इन लोगों पर पूरी तरह से हावी हो गयी है और इनसे अब और कुछ भी कहना बेकार है।

बन्दी-अफ़सरों को सैनिकों से अलग करके आगे-आगे चलने का हुक्म दिया गया। अफ़सर, जिनमें प्येर भी शामिल था, कोई तीस थे, जबकि सैनिकों की संख्या लगभग तीन सौ थी।

बन्दी-अफ़सर से, जो दूसरी बैरकों से बाहर आये थे, प्येर की जान-पहचान नहीं थी। प्येर की तुलना में वे बेहतर कपड़े पहने थे और प्येर को, उसके जूतों को सन्देह तथा परायेपन की दृष्टि से देखते थे। एक मोटा मेजर ड्रेसिंग-गाउन पहने, जिसपर उसने पेटी के रूप में तौलिया बांध रखा था, प्येर के क़रीब ही चल रहा था। फूले-फूले, पीले और झल्लाये चेहरेवाले इस मेजर को स्पष्टतः अपने सभी साथियों का आदर-सत्कार प्राप्त था। उसने अपना एक हाथ, जिसमें तम्बाकू की थैली थी ड्रेसिंग-गाउन के भीतर खोंस रखा था और दूसरे हाथ में मज़बूती से पाइप थामे था। हांफता और पाइप से तम्बाकू के कश खींचता हुआ यह मेजर सभी पर इसलिये बड़बड़ाता और बिगड़ता था कि उसे लगता था कि सभी उसे धकिया रहे हैं, सभी उतावली कर रहे हैं, जबकि उतावली करने की कोई वजह नहीं थी, कि सभी किसी चीज़ से हैरान हो रहे थे, जबकि हैरान करनेवाला कुछ भी नहीं था। दूसरा, नाटा और दुबला-पतला अफ़सर यह अनुमान लगाते हुए सभी से बातें कर रहा था कि इस वक़्त उन्हें कहां ले जाया जा रहा है और आज वे कितना फ़ासला तय कर लेंगे। सेना के रसद-विभाग का एक कर्मचारी, जो नमदे के बूट और रसद-विभाग की वर्दी पहने था, यह देखने के लिये कभी एक तो कभी दूसरी दिशा में भाग रहा था कि मास्को का कौन-कौन-सा हिस्सा जल गया था। वह ऊंची आवाज़ में अपने निरीक्षण की सूचना देता और यह बताता था कि इस वक़्त उन्हें मास्को का कौन-कौन-सा भाग नज़र आ रहा है। तीसरा अफ़सर,

जो, बातचीत के लहजे के मुताबिक़ पोलैंडी था, यह प्रमाणित करते हुए रसद-विभाग के कर्मचारी से बहस कर रहा था कि वह मास्को के मुहल्लों को पहचानने के मामले में ग़लती कर रहा है।

"किसलिये बहस कर रहे हैं?" मेजर ने खीझते हुए कहा। "सन्त निकोलाई है या सन्त व्लास, इससे फ़र्क़ ही क्या पड़ता है? देख रहे हैं कि सब कुछ जल गया है, बस क़िस्सा ख़त्म... धकिया क्यों रहे हैं, क्या सड़क पर थोड़ी जगह है," वह अपने पीछे आनेवाले क़ैदी पर बिगड़ उठा जो वास्तव में उसे ज़रा भी नहीं धकिया रहा था।

"हाय, हाय, हाय, कैसा बुरा हाल कर डाला है!" भस्म हो गये मास्को को देखनेवाले बन्दियों की कभी एक तो कभी दूसरी दिशा से आवाज़ सुनायी देती। "मास्को नदी के पार का इलाक़ा, ज़ूबोवो और क्रेमलिन भी... देखिये तो, आधा शहर नहीं रहा। मैंने तो आप लोगों से कहा था न कि मास्को नदी के पार का सारा इलाक़ा जल गया है। ऐसा ही है।"

"आप जानते हैं कि जल गया है, तो अब इसकी चर्चा करने में क्या तुक है!" मेजर ने कहा।

ख़ामोव्नीकी (मास्को के उन हलक़ों में से एक जो जला नहीं था) के गिरजाघर के क़रीब से गुज़रते हुए क़ैदियों की सारी भीड़ अचानक एक तरफ़ को जमा हो गयी और भय तथा घृणा की ऊंची अभिव्यक्तियां सुनायी दीं।

"ओह, कमीने कहीं के! काफ़िर हैं, काफ़िर! अरे, मुरदा ही है... उसके मुंह को किसी चीज़ से पोत दिया गया है।"

प्येर भी गिरजे की तरफ़ बढ़ गया, जहां वह चीज़ थी जिसके कारण क्षोभ व्यक्त किया जा रहा था। उसे गिरजे की घेराबन्दी के साथ टेक लगाये हुए कुछ दिखाई दिया। अपने से ज़्यादा तेज़ नज़रवाले अपने साथियों से उसे पता चला कि यह किसी आदमी की लाश थी जिसे बाड़ के सहारे खड़ा करके उसके चेहरे पर कालिख पोत दी गयी थी।

"चलो, आगे चलो... शैतानो!.. बदमाशो!.." क़ैदियों को ले जानेवाले फ़्रांसीसी सैनिकों की गालियां सुनायी दीं और वे पहले से ज़्यादा गुस्से में आकर लाश को देखनेवाली बन्दियों की भीड़ को अपनी तलवारों से आगे खदेड़ने लगे।

अपने सन्तरियों की निगरानी में ये बन्दी ख़ामोव्नीकी हल्क़े के गली-कूचों को लांघते रहे और इनको ले जानेवाले फ़्रांसीसियों के सामान से लदे छकड़े तथा घोड़ा-गाड़ियां पीछे-पीछे आती रहीं। किन्तु रसद की दुकानों के क़रीब पहुंचकर इन्होंने अपने को निजी घोड़ा-गाड़ियों के साथ गड्ड-मड्ड हो गयी तोपख़ाने की घोड़ा-गाड़ियों की एक लम्बी और आपस में सटी हुई क़तार के बीच पाया।

पुल के क़रीब सभी इस बात का इन्तज़ार करते हुए रुक गये कि जो आगे थे, वे बढ़ जायें। पुल पर से क़ैदियों को अपने आगे और पीछे चल रही दूसरी घोड़ा-गाड़ियों की अन्तहीन क़तारें दिखाई दीं। दायीं ओर, जहां कालूगा का रास्ता नेस्कूच्नी बाग़ के गिर्द घूमता हुआ जाता था, बहुत दूर तक सेनाओं और घोड़ा-गाड़ियों की अन्तहीन क़तारें फैली हुई थीं। ये सबसे पहले चलनेवाली बोगारने की फ़ौजी कोर की सेनायें थीं। पीछे, तटबन्ध और कामेन्नी पुल पर नेय की सेनायें तथा सामान से लदी घोड़ा-गाड़ियां फैली हुई थीं।

दावू की सेनायें, जिनके साथ युद्ध-बन्दी भी थे, क्रीम्स्की ब्रोद को लांघ रही थीं और उनका एक भाग कालूगा के मार्ग पर पहुंचा भी चुका था। किन्तु छकड़ों की क़तार इतनी लम्बी थी कि बोगारने के अन्तिम छकड़े मास्को से अभी कालूगा के मार्ग पर नहीं पहुंचे थे, जबकि नेय की सेनाओं का अग्रभाग बोल्शाया ओर्दीन्का सड़क पर बढ़ने भी लगा था।

क्रीम्स्की ब्रोद को लांघने के बाद बन्दी कुछ क़दम चलते और रुक जाते, फिर से चलते और सभी ओर से लोगों तथा घोड़ा-गाड़ियों की भीड़ बढ़ती जाती थी। एक घंटे से अधिक समय में पुल को कालूगा के मार्ग से अलग करनेवाले कुछ सौ क़दम चलने और उस चौक तक पहुंचने पर, जहां मास्को नदी के पार की सड़कें कालूगा के मार्ग से मिलती हैं, एक-दूसरे के साथ बेहद सटे हुए बन्दी रुक गये और कई घण्टों तक इसी चौराहे पर खड़े रहे। सभी दिशाओं से सागर के शोर की तरह पहियों की खड़खड़, पांवों की धपधप, क्रोधपूर्ण, अविराम चीख़-चिल्लाहट और गालियों की आवाज़ सुनायी दे रही थी। प्येर एक जले हुए मकान की दीवार के साथ सटकर खड़ा था, इस आवाज़

को सुन रहा था जो उसकी कल्पना में ढोल की आवाज़ों के साथ घुल-मिल जाती थी।

कुछ बन्दी-अफ़सर इस उद्देश्य से कि ज़्यादा अच्छी तरह से सब कुछ देख सकें, जले हुए घर की उस दीवार पर चढ़ गये जिसके क़रीब प्येर खड़ा था।

"ओह, कितने अधिक लोग हैं! कितनी बड़ी भीड़ है!.. तोपों तक पर चीज़ें लदी हुई हैं! देखो तो – हां, हां, समूर ही हैं..." वे कह उठे। "देखते हो, बदमाशों ने कैसे लूट मचाई है... वहां, घोड़ा-गाड़ी में पीछे की तरफ़ क्या है... क़सम भगवान की, यह तो देव-प्रतिमा का चौखटा है!.. इन लोगों को तो जर्मन होना चाहिये। और क़सम भगवान की, वह तो हमारा किसान है!.. ओह, ये कमीने कहीं के!.. देखो तो उसने अपने ऊपर इतना कुछ लाद लिया है कि मुश्किल से चल पा रहा है! अरे, उन्होंने तो टमटमें भी हथिया लीं!.. देखो तो वह सन्दूक़ों पर बैठ गया है। हे भगवान!.. मार-पीट करने लगे हैं!.."

"हां, हां, मारो उसके तोबड़े पर, उसके तोबड़े पर! ऐसे तो शाम तक यहीं खड़े रहेंगे। देखो, देखिये तो... वे घोड़ा-गाड़ियों तो ज़रूर नेपोलियन की हैं। देखते हो, कैसे बांके घोड़े हैं! और ज़ीन पर गुम्फाक्षरवाले ताज की सज्जा। अरे, यह तो ऐसा घर है जो किसी भी जगह ले जाया जा सकता है। उस आदमी ने अपनी बोरी गिरा दी है और उसकी तरफ़ उसका ध्यान ही नहीं गया। फिर से मार-पीट होने लगी है... बच्चे के साथ औरत, सो भी देखने में कुछ बुरी नहीं। वह समझती है कि उसे आसानी से आगे जाने देंगे... देखो तो, लोगों का तो कहीं अन्त ही नज़र नहीं आता। रूसी छोकरियां, क़सम भगवान की, वे तो रूसी छोकरियां हैं! कैसे इतमीनान से बग्घियों में बैठ गयी हैं!"

जैसे कि ख़ामोव्नीकी के गिरजाघर के क़रीब हुआ था, वैसे ही एक सामान्य जिज्ञासा की लहर सभी बन्दियों को सड़क की तरफ़ खींच ले गयी और अपने ऊंचे क़द की बदौलत प्येर ने दूसरों के सिरों के ऊपर से वह देख लिया जिसने सभी बन्दियों में जिज्ञासा पैदा की थी। गोला-बारूद की गाड़ियों के बीच फंसी हुई तीन बग्घियों में चटकीली पोशाकें पहने और अपने चेहरों को रंगे-चुने तथा एक-दूसरी के साथ

सटकर बैठी और पतली-सी आवाज़ में कुछ चिल्लाती हुई कई औरतें जा रही थीं।

प्येर को जिस क्षण से रहस्यमयी शक्ति के प्रकट होने की चेतना हुई थी, उसे कुछ भी अजीब और भयानक नहीं लगता था – न तो लाश, जिसके चेहरे पर मनोरंजन के लिये कालिख पोत दी गयी थी, न कहीं जाने की उतावली करनेवाली ये औरतें और न जले हुए मास्को के खण्डहर। प्येर अब जो कुछ भी देखता था, उसके दिल पर उसका लगभग कोई प्रभाव नहीं पड़ता था – मानो उसकी आत्मा किसी कठिन संघर्ष की तैयारी करते हुए उन प्रभावों को स्वीकार करने से इन्कार करती थी जो उसे कमज़ोर बना सकते थे।

वे तीनों बग्घियां, जिनमें औरतें बैठी थीं, आगे निकल गयीं। उनके पीछे फिर से घोड़ा-गाड़ियां, सैनिक, सामान की गाड़ियां, छकड़े, बग्घियां, सैनिक, गोला बारूद से लदी गाड़ियां, सैनिक और कभी-कभी आगे जाती औरतें दिखाई देने लगीं।

प्येर अलग-अलग लोगों को नहीं, बल्कि सामान्य रूप से उन्हें हिलते-डुलते ही देख रहा था।

कोई अदृश्य शक्ति मानो इन लोगों और घोड़ों को भी दौड़ाती ले जा रही थी। एक घण्टे के दौरान, जब प्येर इन लोगों को देखता रहा, ये सभी विभिन्न सड़कों से केवल एक ही इच्छा लिये उमड़ते चले आ रहे थे कि जल्दी से जल्दी आगे बढ़ जायें; एक-दूसरे से टकराने पर ये सब एक समान ही ग़ुस्से में आने और हाथापाई करने लगते थे, सफ़ेद दांतों को किटकिटाते थे, त्योरियां चढ़ाते थे, एक जैसी ही गालियां देते थे और सभी के चेहरों पर दुस्साहसपूर्ण दृढ़ता और क्रूरता-कठोरता को वही भाव होता था जिसे उस सुबह को ढोलों की ढमढम शुरू होते ही प्येर कॉरपोरल के चेहरे पर देखकर चकित रह गया था।

शाम होने के कुछ पहले ही सन्तरियों का अफ़सर अपने सैनिकों को एकत्रित कर पाया, चीख़-चिल्लाकर तथा झगड़-झगड़ाकर उसने घोड़ा-गाड़ियों के बीच से रास्ता बनाया तथा बन्दियों को पहरे के घेरे में लेकर कालूगा के मार्ग पर बढ़ चला।

ये लोग कहीं आराम किये बिना तेज़ी से चलते रहे और सूर्यास्त होने के समय ही रुके। घोड़ा-गाड़ियां एक-दूसरी के क़रीब आ गयीं

और लोग सोने की तैयारी करने लगे। सभी खीझे-खीझे और नाराज़-नाराज़ से लगते थे। देर तक विभिन्न दिशाओं से गाली-गलौज, क्रोध-पूर्ण चीख़-चिल्लाहट और मार-पीट की आवाज़ें सुनायी देती रहीं। बन्दियों की निगरानी करनेवाले सन्तरियों के पीछे आनेवाली एक बग्घी इस दल की एक घोड़ा-गाड़ी से आ टकरायी और उसने अपना एक बम उसमें मार दिया। विभिन्न दिशाओं से कई सैनिक भागकर घोड़ा-गाड़ी के पास गये, उनमें से कुछ बग्घी में जुते घोड़ों को दूसरी ओर मोड़ते हुए उनके सिरों को पीटने लगे, कुछ अन्य आपस में गुत्थमगुत्था हो गये और प्येर ने देखा कि एक जर्मन तलवार के वार से बुरी तरह घायल भी हो गया था।

ऐसे लगता था कि पतझर की ठण्डी शाम के झुटपुटे में मैदान में रुकने पर ये सभी लोग कूच के आरम्भ में जल्दी और तेज़ी से कहीं बढ़ते जाने की जिस इच्छा के वशीभूत हो गये थे, अब उसी के विरुद्ध एक कटु भावना अनुभव कर रहे थे। रुकने पर मानो सभी समझ गये थे कि भगवान ही जानें कि वे कहां जा रहे हैं और इस रास्ते में अभी बहुत-सी मुसीबतें तथा मुश्किलें सामने आयेंगी।

इस पड़ाव के वक़्त बन्दियों की निगरानी करनेवाले सन्तरी रवानगी के समय की तुलना में भी इनके साथ बुरे ढंग से पेश आये। इसी पड़ाव के वक़्त क़ैदियों को पहली बार घोड़े का मांस खाने को दिया गया।

अफ़सरों से लेकर मामूली सैनिक तक बन्दियों के प्रति मानो व्यक्तिगत रूप से खार खाये थे। उनके पहलेवाले मैत्रीपूर्ण व्यवहार में अचानक ऐसा परिवर्तन हो गया था।

फ़्रांसीसियों का यह ग़ुस्सा उस समय तो और भी बढ़ गया जब बन्दियों की गिनती करने पर यह पता चला कि मास्को से रवाना होने की दौड़-धूप में एक रूसी सैनिक पेट दर्द का बहाना करके भाग गया था। प्येर ने फ़्रांसीसी सैनिक को एक रूसी बन्दी की इसी कारण बड़ी निर्दयता से पिटाई करते देखा कि वह सड़क से दूर हट गया था। उसने अपने दोस्त, फ़्रांसीसी कप्तान को रूसी बन्दी के भाग जाने के लिये एक सार्जेंट को बुरी तरह डांटते-डपटते और यह कहते सुना कि वह उसे फ़ौजी अदालत के हवाले कर देगा। सार्जेंट के यह सफ़ाई पेश करने पर कि सैनिक बीमार था, चलने में असमर्थ था, अफ़सर ने कहा कि

पिछड़नेवालों को गोली मार देने का हुक्म दिया गया है। प्येर ने अनुभव किया कि वह घातक शक्ति, जिसने मृत्यु-दण्ड के समय उसे कुचल डाला था और जेल में रहने के दिनों में उसे जिसका एहसास नहीं हुआ था, वह अब फिर से उसके सारे व्यक्तित्व पर हावी हो गयी है। वह भयभीत हो उठा, किन्तु उसने यह भी अनुभव किया कि यह घातक शक्ति उसे कुचल डालने का जितना अधिक प्रयास करती थी, उसकी आत्मा में उसकी अपनी जीवन-शक्ति उतनी ही अधिक बढ़ती और बलवती होती जाती थी।

प्येर ने कूटू के आटे तथा घोड़े के मांस का शोरबा खाया और साथियों से बातें करने लगा।

न तो प्येर और न उसके किसी साथी ने उसकी चर्चा की जो उन्होंने मास्को में देखा था, न फ़्रांसीसियों के बुरे सलूक और न पिछड़नेवालों को गोली मार देने के हुक्म का ही ज़िक्र किया जो उन्हें सुना दिया गया था। वे सभी मानो अपनी पहले से ख़राब हो जानेवाली स्थिति का मुंह चिढ़ाते हुए ख़ास तौर पर बहुत ख़ुश और बड़े रंग में थे। वे अपने व्यक्तिगत संस्मरण, कूच के समय नज़र आनेवाले हास्यजनक दृश्यों-झांकियों का वर्णन करते रहे और अपनी वर्तमान स्थिति के बारे में एक भी शब्द ज़बान पर नहीं लाये।

सूरज कभी का डूब चुका था। आकाश में कहीं-कहीं पर तेज़ प्रकाश फैलाते हुए सितारे चमक रहे थे। क्षितिज पर उदय होते पूर्णेन्दु की आग के समान लाल-लाल रोशनी फैल गयी थी और भूरी-भूरी धुंध में चांद का विराट लाल गोला अजीब ढंग से हिल-डुल रहा था। आकाश प्रकाशमान हो गया था। शाम ख़त्म हो चुकी थी, मगर रात अभी शुरू नहीं हुई थी। प्येर अपने नये बन्दी-अफ़सर साथियों के पास से उठा और अलावों के बीच से सड़क के दूसरी ओर चल दिया, जहां, जैसाकि उसे बताया गया था, बन्दी-सैनिक ठहरे हुए थे। उसका मन हुआ कि उनसे बातचीत करे। फ़्रांसीसी सन्तरियों ने उसे रास्ते में रोक लिया और वापस जाने का आदेश दिया।

प्येर लौट आया, लेकिन अलाव के क़रीब बैठे अपने साथियों के पास नहीं, बल्कि एक ऐसी घोड़ा-गाड़ी के पास जिसमें घोड़े नहीं जुते हुए थे और जहां कोई नहीं था। वह टांगों को अपने नीचे दबाकर तथा सिर झुकाकर घोड़ा-गाड़ी के पहिये के नज़दीक ठण्डी ज़मीन

पर बैठ गया और बहुत देर तक कुछ सोचते हुए बुत बना बैठा रहा। एक घण्टे से ज़्यादा वक़्त बीत गया। किसी ने भी प्येर की इस चिन्तन-मुद्रा को भंग नहीं किया। वह अचानक अपनी भारी और प्रफुल्ल आवाज़ में इतने ज़ोर से ठठाकर हंस पड़ा कि लोगों ने इस अजीब और स्पष्टतः एकाकी ठहाके की ओर विभिन्न दिशाओं से ध्यान दिया।

"हा-हा-हा!" प्येर हंस रहा था। उसने ऊंची आवाज़ में अपने आपसे कहा – "सैनिक ने मुझे जाने नहीं दिया। मुझे पकड़ लिया, जेल में बन्द कर दिया। वे मुझे बन्दी बनाये हुए हैं। किसे 'मुझे'? मुझे? मुझे – मेरी अमर आत्मा को! हा, हा, हा!.. हा, हा, हा!.." वह हंस रहा था और उसकी आंखें आंसुओं से तर होने लगी थीं।

एक आदमी उठा और यह देखने के लिये कि यह अजीब तथा लम्बा-तड़ंगा आदमी किसलिये हंस रहा है, उसके क़रीब आ गया। प्येर ने हंसना बन्द कर दिया, अपनी जगह से उठा, इस जिज्ञासु से दूर हट गया और उसने अपने इर्द-गिर्द देखा।

बहुत ही विशाल और सीमाहीन पड़ाव, जिसमें पहले अलावों की लकड़ियों के चटकने और लोगों के बातें करने का शोर सुनायी दे रहा था, अब शान्त होने लगा था। अलावों की लाल-लाल लपटें पीली पड़ने तथा बुझने लगी थीं। उजले आकाश में बहुत ऊंचाई पर पूर्णिमा का चांद चमक रहा था। पड़ाव की सीमाओं से आगे वे वन और मैदान, जो पहले नज़र नहीं आ रहे थे, अब दिखाई देने लगे थे। इन वनों तथा मैदानों से और भी आगे उजली, हिलती-डुलती तथा अन्तहीन दूरी अपनी ओर पुकारती-सी प्रतीत हो रही थी। प्येर ने आकाश, उसकी गहराई में बहुत दूर झिलमिलाते सितारों पर नज़र डाली। "यह सब कुछ मेरा है, यह सब कुछ मेरे भीतर है और मैं ही यह सब कुछ हूं!" प्येर ने सोचा। "और उन्होंने इस सभी कुछ को पकड़ लिया तथा तख़्तों की बैरक में बन्द कर दिया!" वह मुस्कराया और सोने के लिये अपने साथियों की तरफ़ चला गया।

अक्तूबर के शुरू में नेपोलियन का एक अन्य दूत शान्ति के प्रस्ताव का पत्र लेकर कुतूज़ोव के पास आया। धोखा देने के लिये ऐसा ज़ाहिर किया गया था मानो यह पत्र मास्को से भेजा गया हो, जबकि वास्तव में नेपोलियन कालूगा के पुराने मार्ग पर कुतूज़ोव के क़रीब ही पड़ाव डाले था। कुतूज़ोव ने लोरिस्टन के हाथ भेजे गये पहले पत्र की भांति इसका भी यही जवाब दिया कि शान्ति का तो सवाल ही पैदा नहीं होता।

इसके कुछ समय बाद तारूतिनो के बायीं ओर क्रियाशील दोरो-ख़ोव के छापेमार दस्ते से यह ख़बर आई कि फ़ोमीन्स्कोये में फ़्रांसीसी सेना दिखाई दी है, कि यह जनरल ब्रुस्ये के अधीन एक डिवीज़न ही है जो बाक़ी फ़ौज से अलग है और इसे आसानी से तबाह किया जा सकता है। सैनिकों और अफ़सरों ने फिर से इस बात पर ज़ोर दिया कि हमें ज़रूर कुछ करना चाहिये। तारूतिनो के क़रीब आसानी से हासिल होनेवाली जीत से उत्तेजित मुख्य सैनिक कार्यालय के जनरल कुतूज़ोव से आग्रह करने लगे कि दोरोख़ोव के प्रस्ताव को व्यावहारिक रूप दिया जाना चाहिये। कुतूज़ोव ऐसा कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं समझते थे। आख़िर वही हुआ जो होना चाहिये था – यानी बीच का रास्ता अपनाया गया। ब्रुस्ये पर हमला करने के लिये एक सैनिक टुकड़ी फ़ोमीन्स्कोये की तरफ़ भेजी गयी।

यह भी एक अजीब संयोग था कि यह कार्यभार – जो बाद में कठिनतम और सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ – दोख़्तुरोव को सौंपा गया। उसी विनम्र-विनीत, नाटे-से दोख़्तुरोव को जिसका किसी ने भी हमारे सामने ऐसा वर्णन नहीं किया है कि वह लड़ाई की योज-नायें बनाता था, रेजिमेंटों के आगे-आगे सरपट घोड़ा दौड़ाता हुआ जाता था, तोपख़ाने के तोपचियों की हिम्मत बढ़ाने के लिये पुरस्कार के रूप में सलीबों की बारिश करता था, आदि, आदि, तथा जिसे ढुलमुल इरादे तथा चीज़ों की गहराई में न जा सकनेवाले व्यक्ति के रूप में पेश किया जाता था। किन्तु इसी दोख़्तुरोव को हम फ़्रांसीसियों के विरुद्ध रूसियों की आउस्टेरलिट्ज़ से लेकर सन् १८१३ तक की सभी लड़ाइयों में वहीं सेना-संचालन करते देखते थे जहां स्थिति विकट

होती थी। आउस्टेरलिट्ज़ की लड़ाई में औगेस्त बांध के क़रीब यही आख़िर तक डटा रहा था, उस समय रेजिमेंटों को जमा करता और जो कुछ सम्भव था, उसे बचाता रहा था, जब सभी भाग रहे थे और सभी कुछ नष्ट हो रहा था तथा चंडावल में एक भी जनरल नहीं था। बीमार, तेज़ बुख़ार से तपता हुआ दोख़्तुरोव बीस हज़ार की सेना लेकर नेपोलियन की सारी फ़ौज का सामना और स्मोलेन्स्क की रक्षा करने के लिये गया था। स्मोलेन्स्क में तेज़ बुख़ार के दौरे में वह मोलोख़ोव्स्की फाटक के क़रीब ऊंघा ही था कि स्मोलेन्स्क पर फ़्रांसीसियों की धुआंधार गोलाबारी से उसकी आंख खुल गयी थी और स्मोलेन्स्क दिन भर दुश्मन से लोहा लेता रहा था। बोरोदिनो की लड़ाई में, जब बग्रातिओन मारा गया और मोरचे के बायें पहलू पर हमारी सेना का दस में से नौवां भाग नष्ट हो चुका था तथा फ़्रांसीसी तोपों की सारी गोला-बारी उसी पर केन्द्रित थी, तो अन्य किसी को नहीं, बल्कि ढुलमुल इरादे और चीज़ों की गहराई में न जा सकनेवाले इसी दोख़्तुरोव को भेजा गया था और कुतूज़ोव ने किसी दूसरे को भेजने की अपनी भूल को जल्दी से जल्दी सुधारने की कोशिश की थी। यही नाटा-सा और ख़ामोश रहनेवाला दोख़्तुरोव वहां गया तथा बोरोदिनो रूसी सेना का सर्वश्रेष्ठ कीर्ति-स्तम्भ बन गया। हमने पद्य और गद्य में अनेक वीरों का गुणगान किया है, लेकिन दोख़्तुरोव के बारे में लगभग एक शब्द भी नहीं लिखा गया।

फिर इसी दोख़्तुरोव को फ़ोमीन्स्कोये और वहां से मालोयारोस्लावेत्स यानी उस जगह भेजा गया जहां फ़्रांसीसियों के साथ आख़िरी लड़ाई लड़ी गयी और सम्भवतः वहीं से फ़्रांसीसियों का नाश आरम्भ हुआ। युद्ध के इस समय के बारे में भी वही पहलेवाली बात हुई। हमने वीरों का वर्णन किया है, किन्तु दोख़्तुरोव के सम्बन्ध में एक भी शब्द नहीं, या फिर बहुत कम अथवा बड़ी झिझक के साथ कुछ लिखा गया है। दोख़्तुरोव के बारे में यही ख़ामोशी तो उसके गुण, उसकी गरिमा को स्पष्टतम रूप में प्रमाणित करती है।

ज़ाहिर है कि किसी की कार्य-विधि को न समझनेवाले व्यक्ति को ऐसा प्रतीत होता है कि इस यन्त्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग वह छिपटी है जो संयोग से उसमें जा गिरी है और यन्त्र के काम में बाधा डालती हुई इधर-उधर घूमती है। यन्त्र-रचना को न जाननेवाला व्यक्ति

यह नहीं समझ सकता कि यन्त्र के काम को हानि पहुंचाने और उसमें बाधा डालनेवाली छिपटी नहीं, बल्कि ख़ामोशी से घूमनेवाला छोटा-सा गियर या दन्त-चक्र ही यन्त्र का एक सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है।

१० अक्तूबर को यानी उसी दिन जब दोख़्तुरोव फ़ोमीन्स्कोये तक का आधा रास्ता तय करके अरिस्तोवो गांव में रुका और उस आदेश को, जो उसे दिया गया था, बहुत अच्छी तरह से पूरा करने की तैयारी में जुट गया, बड़ी हड़बड़ी और तीव्र गति से म्युराट की सेना से मिलने तथा जैसाकि लगता था, लड़ाई लड़ने के इरादे से बढ़नेवाली सारी फ़्रांसीसी सेना किसी कारण के बिना अचानक कालूगा के नये मार्ग की तरफ़ मुड़ गयी और फ़ोमीन्स्कोये की ओर जाने लगी जहां पहले अपने एक डिवीज़न के साथ केवल ब्रुस्ये ही था। दोरोख़ोव के अतिरिक्त फ़ीग्नेर और सेस्लाविन की छोटी-छोटी दो सैनिक टुकड़ियां ही इस वक़्त दोख़्तुरोव के संचालन में थीं।

११ अक्तूबर की शाम को सेस्लाविन बन्दी बनाये गये एक फ़्रांसीसी गार्ड-सैनिक को अपने साथ लेकर अरिस्तोवो में अपने संचालक दोख़्तुरोव के पास आया। फ़्रांसीसी बन्दी ने बताया कि आज फ़ोमीन्स्कोये में प्रवेश करनेवाली सेना पूरी बड़ी सेना का हरावल थी, कि ख़ुद नेपोलियन भी यहीं था और पूरी सेना चार दिन पहले ही मास्को से चल पड़ी थी। इसी शाम को बोरोव्स्क से आनेवाले एक घरेलू भूदास नौकर ने यह सूचना दी कि उसने बहुत बड़ी सेना को शहर में दाख़िल होते देखा है। दोरोख़ोव के कज़्ज़ाक यह ख़बर लाये कि उन्होंने फ़्रांसीसी गार्ड-सेना को बोरोव्स्क की तरफ़ सड़क पर जाते देखा है। इन सारे समाचारों से यह स्पष्ट हो गया कि जहां पहले सिर्फ़ एक ही डिवीज़न के होने की सम्भावना थी, वहां अब मास्को से पुरानी कालूगा सड़क पर एक अप्रत्याशित दिशा में बढ़नेवाली पूरी फ़्रांसीसी सेना जमा हो गयी है। दोख़्तुरोव कोई भी क़दम उठाने को तैयार नहीं था, क्योंकि अब उसे यह स्पष्ट नहीं था कि उसे क्या करना चाहिये। उसे फ़ोमीन्स्कोये पर हमला करने का हुक्म दिया गया था, लेकिन वहां एक डिवीज़न के साथ पहले सिर्फ़ ब्रुस्ये था और अब पूरी फ़्रांसीसी सेना थी। येर्मोलोव अपनी इच्छा के अनुसार आक्रमण करना चाहता था, मगर दोख़्तुरोव ने इस बात के लिये आग्रह किया कि वह अवश्य ही महामान्य कुतूज़ोव का आदेश पाना चाहता है। इसलिये यह तय किया

गया कि मुख्य सैनिक कार्यालय में सन्देश भेजा जाये।

इसके लिये एक समझदार अफ़सर – बोल्खोवीतिनोव – को चुना गया जिसे लिखित रिपोर्ट के अलावा ज़बानी भी सारी स्थिति को बयान करना था। बोल्खोवीतिनोव पत्र और ज़बानी हिदायतें तथा एक कज़्ज़ाक तथा कुछ अतिरिक्त घोड़े अपने साथ लेकर रात के ग्यारह बजने के बाद सरपट घोड़ा दौड़ाता हुआ मुख्य सैनिक कार्यालय की ओर रवाना हो गया।

१६

पतझर की रात अन्धेरी और गुनगुनी थी। पिछले चार दिनों से बारिश हो रही थी। दो बार घोड़े बदलकर तथा पंकिल और चिपचिपी सड़क पर डेढ़ घण्टे में तीस वेर्स्ता की मंज़िल मारकर बोल्खोवीतिनोव रात के दो बजने से पहले लेताशेव्का पहुंच गया। उस घर के सामने, जिसकी बेतवाली बाड़ पर 'मुख्य सैनिक कार्यालय' का बोर्ड लगा था, घोड़े से नीचे उतरकर और लगामें फेंककर वह अन्धेरी ड्योढ़ी में दाखिल हुआ।

"ड्यूटीवाले जनरल को फ़ौरन बुलाइये! बहुत ज़रूरी काम है!" उसने ड्योढ़ी के अन्धेरे में उठने और खरखराती आवाज़ के साथ नाक से सांस लेनेवाले किसी व्यक्ति से कहा।...

"शाम से उनकी तबीयत बहुत ज़्यादा ख़राब है, पिछली दो रातें तो सोये ही नहीं," अर्दली ने सफ़ाई पेश करते हुए कहा। "पहले कप्तान को जगा लेना ही ज़्यादा अच्छा होगा।"

"बहुत ज़रूरी मामला है, जनरल दोख़्तुरोव का सन्देश है," बोल्खोवीतिनोव ने खुले दरवाज़े में अर्दली के पीछे-पीछे रास्ता टटोलकर बढ़ते हुए कहा। अर्दली आगे-आगे जाकर किसी को जगाने लगा।

"हुज़ूर, हुज़ूर – सन्देशवाहक!"

"क्या? क्या? किसने भेजा है?" किसी की उनींदी आवाज़ सुनायी दी।

"दोख़्तुरोव और अलेक्सेई पेत्रोविच येर्मोलोव ने। नेपोलियन

फ़ोमीन्स्कोये में है," अंधेरे में पूछनेवाले को देखते हुए, मगर आवाज़ के अन्दाज़ से यह अनुमान लगाते हुए कि यह कोनोव्नीत्सिन नहीं था, बोल्ख़ोवीतिनोव ने जवाब दिया।

जागनेवाले व्यक्ति ने जम्हाई और अंगड़ाई ली।

"मेरा उन्हें जगाने को मन नहीं हो रहा," किसी चीज़ को टटोलते हुए उसने कहा। "बहुत बीमार हैं! हो सकता है कि योंही झूठी अफ़वाहें हों।"

"यह पत्र है," बोल्ख़ोवीतिनोव ने कहा, "मुझे फ़ौरन ड्यूटी-वाले जनरल को देने का हुक्म दिया गया है।"

"ज़रा रुकिये, मैं रोशनी कर लूं। अरे, कमबख़्त तुम हमेशा चीज़ों को कहां इधर-उधर रख देते हो?" अंगड़ाई लेनेवाले व्यक्ति ने अर्दली को डांटते हुए कहा। यह जनरल कोनोव्नीत्सिन का एडजुटेंट श्चेरबीनिन था। "मिल गया, मिल गया," उसने इतना और कह दिया।

अर्दली ने चक़मक़ पत्थर को रगड़कर रोशनी की। श्चेरबीनिन ने शमादान को छुआ।

"ओह, ये कमीने," वह घृणा से कह उठा।

चिंगारी की रोशनी में बोल्ख़ोवीतिनोव को हाथ में मोमबत्ती लिये श्चेरबीनिन के जवान चेहरे और कमरे के अगले कोने में सो रहे एक अन्य व्यक्ति की झलक मिली। यह जनरल कोनोव्नीत्सिन था।

जब गन्धक के घोल में भिगोई हुई छिपटी पहले नीली और फिर लाल लपट के साथ जल उठी तो श्चेरबीनिन ने चर्बी की मोमबत्ती जलायी जिसको खानेवाले तिलचटे झटपट शमादान पर से भाग गये और उसने सन्देशवाहक पर नज़र डाली। बोल्ख़ोवीतिनोव कीचड़ से लथपथ था और आस्तीन से मुंह को पोंछते हुए उसने उसे भी गन्दा कर लिया था।

"सूचना कौन लाया है?" श्चेरबीनिन ने पत्र लेते हुए पूछा।

"सूचना बिल्कुल विश्वसनीय है," बोल्ख़ोवीतिनोव ने जवाब दिया। "कैदी, कज़्ज़ाक और टोहिये – सबने यही सूचना दी है।"

"लगता है कि कोई चारा नहीं, उन्हें जगाना ही होगा," श्चेरबी-निन ने उठते और रात की टोपी पहने तथा फ़ौजी ओवरकोट से अपने

को ढंककर सो रहे व्यक्ति के क़रीब जाते हुए कहा। "प्योत्र पेत्रोविच!" उसने जनरल को जगाने की कोशिश करते हुए कहा। कोनोव्नीत्सिन हिला-डुला ही नहीं। "मुख्य सैनिक कार्यालय से बुलावा आया है!" उसने यह जानते हुए कि इन शब्दों से जनरल ज़रूर जाग जायेगा, मुस्कराकर कहा। वास्तव में ऐसा ही हुआ, रात की टोपी पहने हुए सिर फ़ौरन ऊपर को उठ गया। बुख़ार के कारण कोनोव्नीत्सिन के दहकते गालोंवाले सुन्दर और संकल्प-दृढ़ता के द्योतक चेहरे पर एक क्षण को वास्तविक स्थिति से बहुत दूर निद्रा का स्वप्निल-सा भाव बना रहा, किन्तु इसके बाद वह अचानक सिहरा और उसके चेहरे पर सामान्य शान्ति तथा दृढ़ता आ गयी।

"तो क्या मामला है? किसने भेजा है?" उसने रोशनी के कारण आंखें मिचमिचाते हुए इतमीनान से, मगर तुरन्त पूछा। बोल्खोवीतिनोव की रिपोर्ट सुनते हुए वह पत्र खोलकर उसे भी पढ़ने लगा। पत्र पढ़ना समाप्त करते ही उसने ऊनी मोज़े पहने, कच्चे फ़र्श पर अपने पांव टिका दिये और बूट पहनने लगा। इसके बाद सोने के वक़्त की टोपी उतारकर उसने कनपटियों पर अपने बाल संवारे और फ़ौजी टोपी पहन ली।

"तुमने यहां पहुंचने में देर तो नहीं की न? आओ, महामान्य के पास चलें।"

कोनोव्नीत्सिन फ़ौरन ही यह समझ गया कि उसके पास जो समाचार लाया गया है, वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और इस मामले में ज़रा भी देर नहीं की जानी चाहिये। यह समाचार अच्छा है या बुरा है, उसने इस बारे में नहीं सोचा और अपने से यह पूछा तक नहीं। उसे इसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी। युद्ध के सारे मामले को वह बुद्धि की कसौटी पर नहीं परखता था, तर्क-वितर्क भी नहीं करता था, बल्कि किसी दूसरे ही ढंग से देखता था। उसकी आत्मा में एक गहन और अव्यक्त विश्वास बना हुआ था कि सब कुछ ठीक-ठाक ही होगा, किन्तु इसपर भरोसा नहीं करना चाहिये, इसकी चर्चा तो और भी कम करनी चाहिये और सिर्फ़ अपना काम करते जाना चाहिये। और वह अपना यह काम करता था, इसमें अपनी पूरी शक्ति लगाता था।

दोख़्तुरोव की भांति प्योत्र पेत्रोविच कोनोव्नीत्सिन का नाम भी

मानो शिष्टतावश ही सन् १८१२ के वीरों – बार्कले, रायेव्स्की, येर्मोलोव, प्लातोव, मीलोरादोविच, आदि की सूची में जोड़ दिया गया है। दोख़्तुरोव की तरह कोनोव्नीत्सिन को भी बहुत ही सीमित योग्यता और ज्ञानवाला व्यक्ति माना जाता था। दोख़्तुरोव के समान उसने भी कभी लड़ाइयों की योजनायें नहीं बनायी थीं, किन्तु वह हमेशा वहीं होता था जहां सबसे ज़्यादा विकट स्थिति होती थी। जब से उसे ड्यूटी पर रहनेवाला जनरल बनाया गया था, वह सोते वक़्त दरवाज़ा खुला रखता था, इस बात का आग्रह करता था कि किसी भी सन्देशवाहक के आने पर उसे ज़रूर जगा दिया जाये, लड़ाई के वक़्त हमेशा गोलाबारी के सामने रहता था, जिसके लिये कुतूज़ोव उसकी लानत-मलामत भी करते थे और उसे मोरचे पर भेजते हुए डरते थे। दोख़्तुरोव की तरह वह भी यन्त्र के उन अदृश्य दन्त-चक्रों में से एक था जो किसी प्रकार की आवाज़ और शोर के बिना यन्त्र का एक सबसे महत्त्वपूर्ण और अभिन्न अंग होते हैं।

नम और अन्धेरी रात में घर से बाहर आने पर कोनोव्नीत्सिन कुछ हद तक तो इस कारण नाक-भौंह सिकोड़ रहा था कि उसका सिर-दर्द बढ़ गया था और कुछ हद तक दिमाग़ में यह विचार आने पर भी कि इस ख़बर से मुख्य सैनिक कार्यालय के सबसे अधिक प्रभावशाली लोग, ख़ास तौर पर बेनिगसेन कैसे उत्तेजित हो उठेगा जिसकी तारूतिनो की लड़ाई के बाद कुतूज़ोव के साथ ख़ूब ज़ोर की खींचातानी चल रही थी। ये लोग कैसे-कैसे सुझाव देंगे, आपस में बहस करेंगे, हुक्म जारी करेंगे और फिर उन्हें रद्द करेंगे। यह पूर्वबोध उसे खल रहा था, यद्यपि वह जानता था कि ऐसा तो होगा ही।

वास्तव में ही जब वह टोल को यह नयी ख़बर बताने के लिये गया तो वह उसी वक़्त एक जनरल को, जो उसके साथ एक ही घर में रह रहा था, इसके बारे में अपने विचार बताने लगा। कोनोव्नीत्सिन चुपचाप तथा ऊब महसूस करता हुआ सुनता रहा और आख़िर उसने टोल को यह याद दिलाया कि उन्हें महामान्य कुतूज़ोव के पास जाना चाहिये।

१७

सभी बूढ़े लोगों की तरह कुतूज़ोव भी रातों को कम सोते थे। वह दिन के वक़्त अचानक ही झपकी ले लेते, लेकिन रात को कपड़े उतारे बिना बिस्तर पर लेटे हुए जागते तथा सोचते रहते।

इस वक़्त भी वह अपने भारी, बड़े और विकृत सिर को मांसल हाथ पर टिकाये हुए बिस्तर पर लेटे-लेटे सोच रहे थे और उनकी एकमात्र खुली हुई आंख अंधेरे को घूर रही थी।

जब से बेनिगसेन, जो सम्राट के साथ पत्र-व्यवहार करता था और मुख्य सैनिक कार्यालय में सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति था, उनसे कन्नी काटने लगा था, तब से कुतूज़ोव इस दृष्टि से तो अपने को शान्त अनुभव करने लगे थे कि उनकी सेना को व्यर्थ की आक्रमणकारी कार्रवाइयों में फिर से भाग लेने को बाध्य नहीं किया जायेगा। तारूतिनो की लड़ाई का सबक़ और उसके एक दिन पहले जो कुछ हुआ था तथा जिसकी कुतूज़ोव के मन में बड़ी कटु स्मृति रह गयी थी, उसे भी दूसरों के दिलों पर कुछ असर छोड़ना चाहिये, वह सोच रहे थे।

"उन्हें इस बात को समझना चाहिये कि आक्रमणकारी कार्रवाइयां करके हम केवल बाज़ी हार ही सकते हैं। सब्र और समय — ये हैं मेरे सबसे बड़े सूरमा साथी!" कुतूज़ोव विचार कर रहे थे। वह जानते थे कि कच्चे सेब को नहीं तोड़ना चाहिये। पक जाने पर वह ख़ुद ही नीचे गिर जायेगा। लेकिन अगर कच्चा ही तोड़ लिया जाये तो सेब भी ख़राब हो जायेगा और ऐसा करने से पेड़ तथा दांतों को भी हानि पहुंचेगी। एक अनुभवी शिकारी की तरह वह जानते थे कि दरिन्दा घायल हो गया है, उतना घायल हो गया है जितना कि सारी रूसी शक्ति के लिये उसे घायल करना सम्भव था, लेकिन घाव जानलेवा है या नहीं, यह प्रश्न तय नहीं हुआ था। नेपोलियन के दूतों के रूप में लोरिस्टन और बेर्तेलेमी के आने तथा छापेमारों के समाचारों के आधार पर कुतूज़ोव अब लगभग यह जानते थे कि घाव जानलेवा है। किन्तु इसके लिये अभी और प्रमाण की आवश्यकता थी, इन्तज़ार करना ज़रूरी था।

"वे यह देखने के लिये भागकर उसके पास जाना चाहते हैं कि

उन्होंने कैसे उसकी जान ले ली है। थोड़ा सब्र कीजिये, देख लेंगे। वे हमेशा रणनीतिक चालों, हमेशा आक्रमण की बातें करते हैं!" वह सोच रहे थे। "भला किसलिये? इसलिये कि नाम कमा सकें। जैसे कि मार-काट करना कोई ख़ुशी देनेवाली चीज़ हो। वे तो बिल्कुल उन बच्चों जैसे हैं जिनसे सिर्फ़ इसीलिये यह मालूम नहीं किया जा सकता कि असली मामला क्या है, क्योंकि वे यही साबित करना चाहते हैं कि कितने अच्छे ढंग से लड़-भिड़ सकते हैं। लेकिन अब तो यही मुख्य बात नहीं है।

"और कैसी दक्षतापूर्ण रणनीतिक चालें सुझाते हैं मुझे वे सभी! वे समझते हैं कि अगर उन्होंने दो-तीन संयोगों-सम्भावनाओं की कल्पना कर ली है (उन्हें पीटर्सबर्ग से आनेवाली सामान्य योजना याद आ गयी) तो उन्होंने सभी कुछ की पूर्वकल्पना कर ली है। किन्तु ऐसे संयोगों-सम्भावनाओं का तो कोई अन्त ही नहीं!"

बोरोदिनो में की गई चोट का घाव घातक था या नहीं, यह हल न होनेवाला सवाल पूरे एक महीने से कुतूज़ोव के दिमाग़ को परेशान कर रहा था। एक तरफ़ तो फ़्रांसीसियों ने मास्को पर क़ब्ज़ा कर लिया था और दूसरी ओर, किसी भी तरह के सन्देह के बिना कुतूज़ोव अपने पूरे तन-मन से यह अनुभव करते थे कि वह भयंकर चोट, जिसमें सभी रूसी लोगों के साथ उन्होंने अपनी ताक़त लगा दी थी, घातक होनी चाहिये थी। लेकिन जो भी हो, इसके लिये प्रमाण तो ज़रूरी थे। वह महीने भर से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे और जितना अधिक समय बीतता जाता था, वह उतने ही अधिक अधीर होते जाते थे। अपनी उनींदी रातों में बिस्तर पर लेटे हुए वह ख़ुद भी वही कुछ करते थे जो जवान जनरल करते थे और जिसके लिये वह उनको भला-बुरा कहते थे। वह उन सभी सम्भव संयोगों की कल्पना करते थे जो नेपोलियन के अब तक हो चुके निश्चित नाश की अभिव्यक्ति देंगे। जवान जनरलों की भांति वह भी सभी सम्भव संयोगों की कल्पना करते थे, लेकिन सिर्फ़ इसी फ़र्क़ के साथ कि वह इन अनुमानों को किसी भी चीज़ का आधार नहीं बनाते थे और उन्हें दो-तीन नहीं, बल्कि हज़ारों की संख्या में देखते थे। वह जितना अधिक सोचते, ऐसे अनुमानों की संख्या उतनी ही अधिक होती जाती थी। उन्होंने नेपोलियन की पूरी सेना या उसके भागों की सभी तरह की गति-विधियों की कल्पना

की – शायद वे पीटर्सबर्ग की तरफ़ बढ़ जायें, उनकी तरफ़ भी बढ़ सकती हैं, बाज़ू से होकर आगे जा सकती हैं और इस सम्भावना (जिससे वह सबसे ज़्यादा डरते थे) की भी कल्पना की कि नेपोलियन उन्हीं के हथियार से उनके ख़िलाफ़ संघर्ष कर सकता है यानी मास्को में ही रुका रहकर उनके वहां आने का इन्तज़ार कर सकता है। कुतूज़ोव ने तो नेपोलियन की सेना के मेदीन और यूख़नोव * से गुज़रते हुए पीछे जाने की भी बात सोची। किन्तु जिस एक बात की वह कल्पना नहीं कर पाये, वही बात हो गयी यानी मास्को से कूच करने के पहले ग्यारह दिनों में नेपोलियन की सेना की पागलों जैसी भयानक उतावली और भगदड़, उस रेल-पेल ने ही वह सम्भव बना दिया जिसकी कुतूज़ोव उस समय किसी भी तरह कल्पना करने की हिम्मत नहीं कर सकते थे, यानी यह कि फ़्रांसीसी पूरी तरह से नष्ट हो जायेंगे। ब्रूस्ये के डिवीज़न के बारे में दोरोख़ोव की सूचना, छापेमारों द्वारा लाये गये नेपोलियन की सेना की मुसीबतों के समाचार, फ़्रांसीसी सेना के मास्को से कूच करने की तैयारी की अफ़वाहें – ये सभी चीज़ें इस अनुमान की पुष्टि करती थीं कि फ़्रांसीसी सेना की हालत ख़राब है और वह भागनेवाली है। किन्तु ये सब तो अनुमान ही थे जो जवान लोगों को महत्त्वपूर्ण लग सकते थे, किन्तु कुतूज़ोव को नहीं। अपने साठ वर्ष के अनुभव से वह जानते थे कि अफ़वाहों को कितना महत्त्व दिया जाना चाहिये, जानते थे कि लोग जब कुछ चाहते हैं तो कितनी होशियारी से सारी सूचनाओं को वही रूप दे देते हैं जो मानो उनके मन की बात की ही पुष्टि करती हैं, वह यह भी जानते थे कि ऐसी स्थिति में किस तरह बड़ी ख़ुशी से उन सभी चीज़ों को अनदेखा कर दिया जाता है जो उनके मन की चाह के प्रतिकूल जाती हैं। कुतूज़ोव जितना अधिक ऐसा चाहते थे, अपने मन को ऐसी सम्भावना पर उतना ही कम विश्वास करने देते थे। उनकी सारी मानसिक शक्ति इसी प्रश्न का उत्तर पाने में लगी रहती थी। बाक़ी सभी चीज़ें तो उनके जीवन की सामान्य दिनचर्या थीं। ऐसी अभ्यस्त और सामान्य दिनचर्या में शामिल था – मुख्य सैनिक कार्यालय के अफ़सरों से बातचीत करना, मदाम स्ताल **

---

* मेदीन और यूख़नोव – कालूगा गुबेर्निया के छोटे-छोटे नगर। – सं०

** जेर्मेन दे स्ताल (१७६६–१८१७) – फ़्रांसीसी लेखिका जो नेपोलियन का विरोध करने के कारण सन् १८०२ से निर्वासन और १८१२ से रूस में रही। कुतूज़ोव के साथ

को पत्र लिखना जिन्हें वह तारूतिनो से लिखते रहे थे, उपन्यास पढ़ना, पुरस्कार बांटना, पीटर्सबर्ग से पत्र-व्यवहार करना, आदि, आदि। किन्तु फ़्रांसीसियों का नाश, जिसका केवल वही पूर्वानुमान लगा पा रहे थे, उनकी एकमात्र हार्दिक कामना थी।

११ अक्तूबर की रात को वह कोहनी पर सिर टिकाकर लेटे हुए इसी चीज़ के बारे में सोच रहे थे।

बग़ल के कमरे में कुछ आहट हुई और टोल, कोनोव्नीत्सिन तथा बोल्ख़ोवीतिनोव के क़दमों की आवाज़ सुनायी दी।

"अरे, कौन है वहां? भीतर आ जाइये, आ जाइये! कोई नयी ख़बर है क्या?" फ़ील्ड-मार्शल ने पुकारकर पूछा।

जब तक नौकर ने मोमबत्ती जलायी, टोल ने समाचार का सारांश बता दिया।

"कौन यह समाचार लाया है?" कुतूज़ोव ने यह जानना चाहा और उनके चेहरे पर कठोरता का ऐसा निर्मम भाव आ गया था कि जब मोमबत्ती की रोशनी हुई तो टोल उनके चेहरे के इस भाव को देखकर चकित रह गया।

"महामान्य जी, इस समाचार में सन्देह की गुंजाइश नहीं है।"

"उसे बुलाओ, उसे यहां बुलाओ!"

कुतूज़ोव एक टांग पलंग से नीचे लटकाये और दूसरी टांग अपने नीचे दबाये तथा उसपर अपनी बड़ी तोंद टिकाये बैठे थे। उन्होंने अपनी एकमात्र सही-सलामत आंख को सिकोड़ लिया था ताकि सन्देश-वाहक को अच्छी तरह से देख सकें और मानो उसके चेहरे पर उस प्रश्न का उत्तर पढ़ना चाहते हों जो उनके मन पर छाया हुआ था।

"बताओ, मुझे बताओ, मेरे दोस्त," कुतूज़ोव ने बोल्ख़ोवीतिनोव को बुढ़ापे के अनुरूप आवाज़ में सम्बोधित करते और उघाड़ी छाती को क़मीज़ से ढकते हुए कहा। "यहां, मेरे नज़दीक आ जाओ। क्या ख़बर लाये हो तुम? बोलो? नेपोलियन मास्को से चला गया? क्या सचमुच ऐसा ही है? यह सच है?"

बोल्ख़ोवीतिनोव ने पहले तो सविस्तार वह सब कुछ बताया जो उससे बताने को कहा गया था।

अपने पत्र-व्यवहार में उसने उनके सेनापति नियुक्त किये जाने पर प्रसन्नता प्रकट की थी। – सं०

"जल्दी करो, जल्दी-जल्दी बताओ, असमंजस में रखते हुए मुझे ऐसे परेशान नहीं करो," कुतूज़ोव ने उसे टोक दिया।

बोल्खोवीतिनोव ने सब कुछ बता दिया और आदेश की प्रतीक्षा करते हुए चुप हो गया। टोल ने कुछ कहना चाहा, मगर कुतूज़ोव ने उसे टोक दिया। कुतूज़ोव ने खुद कुछ कहना चाहा, मगर उनका चेहरा अचानक सिकुड़ गया, उसपर बल पड़ गये, उन्होंने टोल की तरफ़ हाथ झटक दिया, घर के उस कोने की तरफ़ मुंह फेर लिया जो वहां लटकी हुई देव-प्रतिमाओं के कारण अन्धकारमय था।

"हे प्रभु, हे मेरे जन्मदाता! आपने हमारी विनती सुन ली! .." उन्होंने हाथ जोड़ते हुए कांपती आवाज़ में कहा। "रूस बच गया। बहुत-बहुत धन्यवाद, प्रभु!" और वह रो पड़े।

१८

फ़्रांसीसियों के मास्को से रवाना हो जाने के समाचार से लेकर इस पूरे युद्धाभियान के अन्त तक कुतूज़ोव इसी बात के लिये पूरा ज़ोर लगाते और अपनी सत्ता, चालाकी और विनय-अनुनय का उपयोग करते रहे कि अपनी सेना को व्यर्थ के आक्रमणों, रणनीतिक गति-विधियों और नाश की ओर बढ़ रहे शत्रु के साथ टकरावों-मुठभेड़ों से बचाये रहें। दोख़्तुरोव तो मालोयारोस्लावेत्स चल गया, किन्तु कुतूज़ोव अपनी मुख्य सेना के साथ उधर बढ़ने में देर करते रहे तथा उन्होंने कालूगा को ख़ाली करवा देने का आदेश दे दिया, क्योंकि इस नगर से पीछे हटने की सम्भावना उन्हें बिल्कुल वास्तविक प्रतीत हो रही थी।

कुतूज़ोव सभी जगह पीछे हटते जा रहे थे, किन्तु शत्रु उनके पीछे हटने की प्रतीक्षा किये बिना उलटी दिशा में पीछे भागता जा रहा था।

नेपोलियन के इतिहासकारों ने तारूतिनो और मालोयारोस्लावेत्स में उसकी बड़ी दक्षतापूर्ण रणनीतिक पैंतरेबाज़ी का वर्णन किया है और यह अनुमान लगाने का प्रयास किया है कि अगर नेपोलियन दक्षिण के समृद्ध प्रान्तों में घुसने में सफल हो जाता तो क्या होता।

किन्तु इसकी तो चर्चा ही क्या की जाये कि नेपोलियन बड़ी आसानी से दक्षिणी प्रान्तों में जा सकता था (रूसी सेना उसे हर जगह पर आगे बढ़ने का रास्ता दे रही थी), इतिहासकार यह भूल जाते हैं कि नेपोलियन की सेना किसी तरह से भी नहीं बच सकती थी, क्योंकि उस समय ही उसमें उसके अनिवार्य नाश के तत्त्व निहित थे। किसलिये इस सेना ने मास्को में खाद्य-सामग्री के ढेरों-ढेर भण्डार मिलने पर रसद जमा करने के बजाय उन्हें पांवों तले रौंदा, किसलिये इसी सेना ने स्मोलेन्स्क में घुसने पर रसद जुटाने के बजाय उसे लूटा और किसलिये भला कालूगा प्रान्त में जाने पर इस सेना की स्थिति सुधर सकती थी, जबकि वहां भी मास्कोवासियों जैसे ही रूसी लोग रहते थे और आग का उस सभी कुछ को, जिसे आग लगायी जाती थी, भस्म कर डालने का गुण ज्यों का त्यों क़ायम था?

इस सेना की स्थिति कहीं भी बेहतर नहीं हो सकती थी। बोरोदिनो की लड़ाई और मास्को की लूट के बाद इसमें मानो रासायनिक विघटन के तत्त्व पैदा हो गये थे।

इस भूतपूर्व सेना के लोग यह न जानते हुए कि किधर भाग रहे हैं, अपने नेताओं के साथ भागे जा रहे थे और नेपोलियन तथा हर सैनिक यही चाह रहा था कि जितनी भी जल्दी हो सके, अपने को इस विकट स्थिति से, जिसकी बेशक अस्पष्ट होते हुए भी हर किसी को चेतना थी, अपने को मुक्त कर ले।

इसीलिये मालोयारोस्लावेत्स में फ़्रांसीसी युद्ध-परिषद की बैठक में, जब सभी जनरल तरह-तरह के मत व्यक्त करते हुए विचार-विमर्श करने का ढोंग करते रहे थे और अन्त में निष्कपट सैनिक मुतोन* ने सभी के मन की यह बात कह दी थी कि जल्दी से जल्दी रूस से भाग जाना चाहिये तो सब के मुंह पर ताला पड़ गया था। यहां तक कि नेपोलियन भी इस सचाई के विरुद्ध, जिसे मन ही मन सब स्वीकार कर रहे थे, एक भी शब्द नहीं कह पाया था।

बेशक सभी फ़्रांसीसी यह जानते थे कि रूस से जाना होगा, फिर

---

* यहां तोलस्तोय ने नेपोलियन के एक साथी बैरन, जनरल मुतोन (१७७६–१८१६) का उल्लेख किया है जिसने १३ अक्तूबर, १८१२ को फ़्रांसीसी युद्ध-परिषद की बैठक में बेधड़क और साफ़-साफ़ ही कह दिया था कि रूस से शीघ्रतम निकल जाना चाहिये। – सं०

भी इस चेतना की शर्म बाक़ी थी कि भागना चाहिये। इसके लिये किसी ऐसे बाहरी झटके या चोट की ज़रूरत थी कि इस शर्म से मुक्ति पायी जा सके। ऐसी चोट ठीक वक़्त पर ही आ पड़ी। यह वह चोट थी जिसे फ़्रांसीसियों के यहां "सम्राट का हुर्रा" कहा जाता है।

युद्ध-परिषद की बैठक के अगले दिन नेपोलियन यह दिखावा करते हुए कि वह सेना तथा भूत और भविष्य के लड़ाई के मैदान का निरीक्षण करना चाहता है, मार्शलों के अमले तथा रक्षा-दल को साथ लेकर तड़के ही अपनी सेनाओं के बीच से घोड़े पर जा रहा था। लूट की खोज में घूमनेवाले कज़्ज़ाक सम्राट के सामने आ निकले और उसे लगभग बन्दी बनाते-बनाते रह गये। अगर कज़्ज़ाकों ने इस बार नेपोलियन को नहीं पकड़ा तो उसे उसी चीज़ यानी लूट के चक्कर ने ही बचा लिया जिसने फ़्रांसीसियों को तबाह कर डाला। कज़्ज़ाक तारूतिनो में और यहां भी लोगों की अवहेलना करके लूट के माल पर ही टूट पड़े। उन्होंने नेपोलियन की तरफ़ ध्यान न देकर लूट के माल की तरफ़ ही ध्यान दिया और नेपोलियन बच निकला।

जब "दोन के बेटे"* ख़ुद सम्राट को उसकी सेना के बीच में ही पकड़ सकते थे तो स्पष्ट हो गया कि इसके सिवा कोई चारा नहीं रह गया था कि जितनी भी जल्दी हो सके, निकटवर्ती परिचित मार्ग से वापस भाग चलना चाहिये। चालीस वर्षीय तोंदल नेपोलियन, जो अब अपने को पहले की तरह फुरतीला और साहसी नहीं अनुभव करता था, इस इशारे को समझ गया। उस भय के प्रभाव से, जो उसने कज़्ज़ाकों के कारण अनुभव किया था, वह फ़ौरन मुतोन के साथ सहमत हो गया और, जैसाकि इतिहासकार हमें बताते हैं, उसने स्मोलेन्स्क सड़क पर वापस जाने का हुक्म दे दिया।

अगर नेपोलियन मुतोन के साथ सहमत हो गया और फ़्रांसीसी सेनायें वापस चल दीं तो इससे यह सर्वथा प्रमाणित नहीं होता कि ऐसा नेपोलियन के आदेश के फलस्वरूप हुआ, बल्कि यह कि पूरी फ़्रांसीसी सेना को स्मोलेन्स्क सड़क पर पीछे लौटने को विवश करनेवाली शक्तियां नेपोलियन को भी प्रभावित कर रही थीं।

---

* कज़्ज़ाक दोन नदी के तट पर रहते थे। – सं०

कोई आदमी जब चलने लगता है तो अपनी गतिशीलता के लिये वह हमेशा किसी लक्ष्य की कल्पना कर लेता है। एक हज़ार वेर्स्ता तक चलने के लिये यह ज़रूरी है कि आदमी ऐसा सोचे कि इन एक हज़ार वेर्स्ता के बाद कोई अच्छी चीज़ उसकी राह देख रही है। चलने की शक्ति जुटाने के लिये किसी प्यारी मंज़िल पर पहुंचने की कल्पना आवश्यक है।

आक्रमण करने के समय मास्को ही फ़्रांसीसियों की यह प्यारी मंज़िल था और वापस लौटते वक़्त मातृभूमि। किन्तु मातृभूमि तो बहुत दूर थी और एक हज़ार वेर्स्ता का सफ़र तय करनेवाले आदमी के लिये आवश्यक है कि वह अपनी आख़िरी मंज़िल को भूलकर अपने आपसे यह कहे कि "आज मैं चालीस वेर्स्ता तक चलकर आराम करने और सोने की जगह पर पहुंच जाऊंगा।" सफ़र के पहले चरण में उसकी सारी इच्छायें और आशायें आख़िरी मंज़िल को भूलकर आराम के इसी स्थान पर संकेन्द्रित हो जाती हैं। किसी एक व्यक्ति के मन में पैदा होनेवाली ऐसी इच्छायें-भावनायें भीड़ में हमेशा और भी बढ़ जाती हैं।

पुरानी स्मोलेन्स्क सड़क पर वापस जानेवाली फ़्रांसीसी सेना के लिये आख़िरी मंज़िल – उसकी मातृभूमि – बहुत दूर थी और उसका निकटतम गन्तव्य स्थान स्मोलेन्स्क था। उसी पर इस भीड़ की सारी इच्छायें और आशायें, जिनका सामूहिक रूप बहुत बड़ा था, टिकी हुई थीं। इस कारण नहीं कि ये लोग सोचते थे कि वहां बड़ी मात्रा में रसद तथा नयी फ़ौजें हैं, इसलिये भी नहीं कि उनसे ऐसा कहा जाता था (इसके विपरीत सभी उच्च पदाधिकारी और स्वयं नेपोलियन भी यह जानता था कि वहां रसद बहुत कम है), बल्कि इसलिये कि सिर्फ़ यही चीज उन्हें चलते जाने और इस वक़्त की मुश्किलें-मुसीबतें सहने की शक्ति प्रदान कर सकती थी। इस तरह जो जानते थे और जो नहीं जानते थे, सभी अपने को धोखा देते और स्मोलेन्स्क को अपनी प्यारी मंज़िल मानते हुए उसकी ओर बढ़ते जाते थे।

बड़ी सड़क पर आने के बाद फ़्रांसीसी आश्चर्यजनक उत्साह और अनजानी-अनसुनी तेज़ी से अपने कल्पित लक्ष्य की ओर भाग चले। इस साझी इच्छा के अतिरिक्त, जो फ़्रांसीसियों की भीड़ को एक अखण्ड

इकाई का रूप और कुछ प्रेरणा देती थी, इन सबको एक सूत्र में बांधनेवाला एक अन्य कारण भी था। यह कारण उनकी संख्या में निहित था। भौतिकी के गुरुत्वाकर्षण के नियम की भांति इनकी इतनी बड़ी संख्या ही अलग-अलग जन-कणों को अपनी ओर खींचती थी। एक लाख लोगों की यह भीड़ एक पूरे राज्य की भांति चल रही थी।

इन फ़्रांसीसियों में से हर कोई यही चाहता था – बन्दी बन जाये और इस तरह सभी तरह के आतंकों और दुख-दर्दों से निजात हासिल कर ले। किन्तु एक ओर तो मंज़िल यानी स्मोलेन्स्क पहुंचने की साझी चाह हर किसी को एक ही दिशा में खींचती थी और दूसरी ओर, एक फ़ौजी कोर किसी फ़ौजी कम्पनी के सामने तो हथियार नहीं डाल सकती थी। इसलिये इस चीज़ के बावजूद कि फ़्रांसीसियों ने एक-दूसरे से अलग होने के हर सम्भव संयोग तथा बन्दी बनने के हर अच्छे बहाने का उपयोग किया, उन्हें इस तरह के बहाने हमेशा तो नहीं मिलते थे। उनकी इतनी बड़ी संख्या और तीव्र गतिशीलता उन्हें ऐसी सम्भावना से वंचित करती थीं और इस कारण रूसियों के लिये इस गतिशीलता को रोकना, जिसपर फ़्रांसीसियों की इस बड़ी भीड़ की सारी शक्ति संकेन्द्रित थी, न केवल कठिन, बल्कि असम्भव हो जाता था। शरीर का यान्त्रिक विच्छेदन उस समय चल रही विघटन-प्रक्रिया को एक निश्चित सीमा के बाद तीव्र नहीं कर सकता था।

बर्फ़ के गोले को आन की आन में पिघलाना सम्भव नहीं। इसके लिये एक निश्चित समय ज़रूरी है और ताप चाहे कितनी भी कोशिश क्यों न करे, उस निश्चित अवधि के पहले बर्फ़ नहीं पिघलेगी। इसके विपरीत, ताप जितना अधिक बढ़ेगा, बाक़ी बची हुई बर्फ़ उतनी ही अधिक ठोस होती चली जायेगी।

कुतूज़ोव के सिवा रूसी सेना-संचालकों में से कोई भी इस बात को नहीं समझता था। जब फ़्रांसीसी सेना के स्मोलेन्स्क सड़क से वापस भागने की दिशा स्पष्ट हो गयी, तभी वह होने लगा जिसकी कोनोव्नी-त्सिन ने ११ अक्तूबर की रात को पूर्वकल्पना की थी। रूसी सेना के सभी उच्च सेनाधिकारी नाम कमाने को लालायित हो उठे, सभी फ़्रांसीसी सेनाओं को एक-दूसरी से काट देना, पकड़ना, बन्दी बनाना और उसे नष्ट कर डालना चाहते थे तथा सभी आक्रमण करने की मांग करते थे।

सिर्फ़ कुतूज़ोव ही आक्रमण को रोकने के लिये अपने सारे सत्ताधिकार (किसी भी सेनापति का ऐसा सत्ताधिकार बहुत नहीं होता) का उपयोग कर रहे थे।

कुतूज़ोव उनसे वह बात नहीं कह सकते थे जो हम अब कहते हैं – लड़ने और रास्ता रोकने, अपने लोगों को मरवाने तथा क़िस्मत के मारे फ़्रांसीसियों को दरिन्दों की तरह मौत के घाट उतारने की क्या ज़रूरत है? इस सबकी क्या आवश्यकता है, जब किसी लड़ाई के बिना ही मास्को से व्याज़्मा पहुंचने तक उनकी एक-तिहाई सेना नष्ट हो गयी है? किन्तु वह अपने बुढ़ापे की बुद्धिमत्ता के अनुरूप उनसे वह कहते थे जिसे वे लोग समझ सकते थे – वह उनसे स्वर्ण-सेतु, अर्थात् शत्रु के पीछे हटने का मार्ग आसान बनाने की बात कहते थे। किन्तु वे लोग उनका मज़ाक़ उड़ाते थे, उन्हें बदनाम करते थे, शत्रु की ओर लपकते, उसपर झपटते थे तथा मरे हुए जानवर के सामने अपनी मर्दानगी दिखाते थे।

व्याज़्मा के क़रीब फ़्रांसीसियों के निकट होने पर येर्मोलोव, मीलोरादोविच, प्लातोव और अन्य रूसी जनरल दो फ़्रांसीसी फ़ौजी कोरों को अलग करके उन्हें नष्ट कर डालने की अपनी इच्छा को वश में नहीं रख पाये। कुतूज़ोव को अपने इस इरादे की सूचना देने के लिये उन्होंने रिपोर्ट भेजने के बजाय लिफ़ाफ़े में एक कोरा काग़ज़ रखकर उनके पास भेज दिया।*

कुतूज़ोव ने रूसी सेनाओं को रोकने की चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न की, हमारी सेनाओं ने फ़्रांसीसियों का रास्ता रोकने का प्रयास करते हुए उनपर आक्रमण किया। जैसाकि बताया जाता है, प्यादा रेजिमेंटों ने बाजों-गाजों और ढोल-ढमक्कों के साथ फ़्रांसीसियों पर हमला किया, हज़ारों फ़्रांसीसियों की जानें लीं और अपने हज़ारों लोगों को मरवा डाला।

किन्तु जहां तक फ़्रांसीसी सेनाओं को एक-दूसरी से अलग करने का सवाल है तो ऐसा नहीं हुआ और उन्होंने अपना मार्ग भी नहीं बदला। ख़तरे के कारण वे और भी ज़्यादा सटकर स्मोलेन्स्क की ओर अपने घातक पथ पर बढ़ती तथा रास्ते में धीरे-धीरे नष्ट होती गयीं।

* इस घटना को एक अन्य रूप भी प्रस्तुत किया जाता है। मीलोरादोविच ने फ़्रांसीसियों पर हमला करने के इरादे की पूरी रिपोर्ट कुतूज़ोव के नाम लिखी, लेकिन ग़लती से इस रिपोर्ट के बजाय उसने लिफ़ाफ़े में कोरा काग़ज़ रख दिया। – सं०

भाग 3

बोरोदिनो की लड़ाई, उसके बाद मास्को पर फ़्रांसीसियों का क़ब्ज़ा और फिर लड़ाइयों के बिना उनका पलायन – यह इतिहास की एक सबसे अधिक शिक्षाप्रद घटना है।

इस बात पर सभी इतिहासकार सहमत हैं कि राज्यों और राष्ट्रों की वैदेशिक गति-विधियां और उनके आपसी टकराव युद्धों के रूप में व्यक्त होते हैं, कि इन युद्धों में बड़ी या छोटी विजय-पराजय के अनुपात में ही इन राज्यों और राष्ट्रों की राजनीतिक शक्ति में वृद्धि या कमी होती है।

ऐसे ऐतिहासिक वर्णन हमें बेशक कितने ही अजीब-से क्यों न लगें कि कैसे एक सम्राट या महाराजा ने दूसरे सम्राट या महाराजा के साथ झगड़ा हो जाने पर फ़ौजें जमा कीं, शत्रु की फ़ौजों के साथ लड़ाई लड़ी, जीत हासिल की, तीन, पांच या दस हज़ार लोगों को मौत के घाट उतार दिया और इसके परिणामस्वरूप कई करोड़ लोगों की आबादीवाले एक पूरे राज्य को अपने अधीन कर लिया; हम यह भी समझने में चाहे कितने ही असमर्थ क्यों न हों कि क्यों एक राष्ट्र की कुल शक्ति के सौवें भाग, अर्थात् उसकी सेना की पराजय ने सारे राष्ट्र को ही अधीन होने के लिये विवश कर दिया – इतिहास के सारे तथ्य (जहां तक हम उन्हें जानते हैं) इस चीज़ की न्यायसंगतता की पुष्टि करते हैं कि एक राष्ट्र की सेना की दूसरे राष्ट्र की सेना के विरुद्ध बड़ी या छोटी विजय-पराजय ही राष्ट्रों की शक्ति की वृद्धि या कमी का मुख्य कारण या कम से कम महत्त्वपूर्ण लक्षण है। एक सेना के जीत हासिल करते ही पराजित राष्ट्र पर विजयी राष्ट्र के अधिकार बढ़ जाते हैं। एक सेना के पराजित होते ही पराजय के अनुपात में उस राष्ट्र के अधिकार कम हो जाते हैं और यदि वह सेना पूरी तरह से कुचल दी जाती है तो उसका राष्ट्र पूरी तरह से विजयी सेना के राष्ट्र के अधीन हो जाता है।

इतिहास के अनुसार प्राचीन समय से हमारे समय तक ऐसा ही

होता आ रहा है। नेपोलियन के तमाम युद्ध इसी नियम की पुष्टि करते हैं। आस्ट्रिया की सेनाओं की पराजय के अनुपात में आस्ट्रिया अपने अधिकारों से वंचित हो गया और फ़्रांस के अधिकारों और शक्ति में वृद्धि हो गयी। जेना और आउएरस्ताद के नज़दीक फ़्रांसीसियों की विजय ने प्रशा का स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त कर दिया।

किन्तु अचानक यह हुआ कि १८१२ में फ़्रांसीसियों ने मास्को के निकट जीत हासिल की, उन्होंने मास्को पर क़ब्ज़ा कर लिया और उसके बाद नई लड़ाइयों के बिना रूस का नहीं, बल्कि छः लाख की फ़्रांसीसी सेना और फिर नेपोलियन के फ़्रांस का अस्तित्व समाप्त हो गया। तथ्यों को खींच-तानकर इतिहास के नियमों के अनुरूप बनाते हुए यह कहना सम्भव नहीं कि बोरोदिनो की लड़ाई में रूसियों ने जीत हासिल की थी, कि मास्को के बाद ऐसी लड़ाइयां हुई थीं जिनमें नेपोलियन की सेना कुचल दी गयी थी।

बोरोदिनो में फ़्रांसीसियों की जीत के बाद न केवल कोई बहुत बड़ी लड़ाई ही नहीं, बल्कि कोई उल्लेखनीय मुठभेड़ भी नहीं हुई, फिर भी फ़्रांसीसी सेना नष्ट हो गयी। इससे क्या नतीजा निकलता है? यदि यह चीन के इतिहास का कोई उदाहरण होता तो हम कह सकते थे कि यह ऐतिहासिक घटना नहीं है (जब कोई चीज़ इतिहासकारों की कसौटी पर खरी नहीं उतरती तो वे कुछ ऐसा ही कहकर बच निकलते हैं), अगर यह थोड़े ही समय का कोई मामूली सैनिक टकराव होता, जिसमें बहुत थोड़ी संख्या में सेनाओं ने भाग लिया होता, तो हम इस घटना को सामान्य नियम का अपवाद मान सकते थे, किन्तु यह सब कुछ तो हमारे पिताओं की आंखों के सामने हुआ जिनके लिये यह उनकी मातृभूमि की ज़िन्दगी और मौत का सवाल था और यह लड़ाई उन सभी लड़ाइयों से बढ़-चढ़कर थी जिनसे हम अब तक परिचित हैं...

१८१२ में बोरोदिनो की लड़ाई से लेकर फ़्रांसीसियों के रूस से खदेड़ जाने की अवधि ने यह प्रमाणित कर दिया कि लड़ाई जीत लेना न केवल किसी राष्ट्र पर विजय का कारण नहीं है, बल्कि ऐसी विजय का विश्वास दिलानेवाला स्थायी लक्षण भी नहीं है। इसने सिद्ध कर दिया कि राष्ट्रों के भाग्यों का निर्णय करनेवाली शक्ति विजेताओं, सेनाओं और लड़ाइयों में नहीं, बल्कि किसी अन्य चीज़ में निहित है।

मास्को से रवाना होने के पहले फ़्रांसीसी सेनाओं की स्थिति का

वर्णन करनेवाले इतिहासकारों ने इस बात की पुष्टि की है कि घुड़सेना, तोपख़ाने और घोड़ा-गाड़ियों को छोड़कर महान फ़्रांसीसी सेना में बाक़ी सब कुछ ठीक-ठाक था, और हां, घोड़ों तथा पशुओं के लिये चारा नहीं था। इस मुसीबत से बचने का कोई उपाय नहीं था, क्योंकि इर्द-गिर्द के इलाक़ों के किसान फ़्रांसीसियों को देने के बजाय चारे को जला देते थे।

लड़ाई जीत लेने के सामान्य परिणाम सामने नहीं आये, क्योंकि वे कुछ आम किसान जो फ़्रांसीसियों के मास्को छोड़ने के बाद इस शहर को लूटने के लिये छकड़े लेकर यहां आते थे और किसी प्रकार भी अपनी देशभक्तिपूर्ण भावनाओं का प्रदर्शन नहीं करते थे, ऐसे किसान तथा अन्य अनगिनत किसान बहुत ऊंची क़ीमतें पाने के प्रलोभन के बावजूद मास्को में चारा नहीं लाते थे, बल्कि उसे जला देते थे।

आइये, हम ऐसे दो व्यक्तियों की कल्पना करें जो पटेबाज़ी के सभी नियमों के अनुसार तलवारें लेकर द्वन्द्व-युद्ध लड़ने के लिये सामने आते हैं। द्वन्द्व-युद्ध काफ़ी देर तक जारी रहता है – तभी एक प्रतिद्वन्द्वी यह महसूस करता है कि वह घायल हो गया है। यह समझकर कि मामला मज़ाक़ नहीं है, कि उसकी ज़िन्दगी ख़तरे में है, वह तलवार फेंककर उस डंडे को उठा लेता है जो सबसे पहले उसके सामने आ जाता है और उसे घुमाने लगता है। किन्तु कल्पना कीजिये कि अपने लक्ष्य की पूर्त्ति के लिये तलवार से ज़्यादा कारगर डंडे जैसे मामूली हथियार का उपयोग करनेवाला यह व्यक्ति वीर-गाथाओं की भावनाओं से भी अणुप्रेरित है और वास्तविक स्थिति पर परदा डालते हुए इस चीज़ का भी हठ करता है कि उसने पटेबाज़ी के सभी नियमों के अनुसार जीत हासिल की है। आप कल्पना कर सकते हैं कि इस द्वन्द्व-युद्ध के ऐसे वर्णन से कितनी गड़बड़ और अस्पष्टता पैदा हो सकती है।

पटेबाज़ी के नियमों के अनुसार लड़ाई की मांग करनेवाला पटेबाज़ तो फ़्रांसीसियों के समान है, तलवार फेंककर डंडा उठा लेनेवाला उसका प्रतिद्वन्द्वी रूसियों के समान और जिन्होंने इस मामले को पटेबाज़ी के नियमों के अनुसार स्पष्ट करने का प्रयास किया है, वे इस घटना का ऐसा वर्णन करनेवाले इतिहासकार हैं।

स्मोलेन्स्क के जलने के समय से ऐसा युद्ध शुरू हुआ जो युद्ध की

सभी भूतपूर्व परम्पराओं से भिन्न था। नगरों और गांवों का जलाया जाना, लड़ाई के बाद पीछे हटना, बोरोदिनो में शत्रु पर ज़ोरदार चोट करना और फिर पीछे हटना, मास्को का जलाया जाना और उसका दुश्मन के हवाले किया जाना, लूट-मार करनेवालों को पकड़ना तथा घोड़ा-गाड़ियों पर क़ब्ज़ा करना, छापेमारों की लड़ाई लड़ना – यह सभी कुछ युद्ध के परम्परागत नियमों का उल्लंघन था।

नेपोलियन को इस चीज़ की चेतना थी और उस समय से, जब वह पटेबाज़ की सही मुद्रा में मास्को में रुका और उसने तलवार की जगह अपने सिर के ऊपर उठा हुआ प्रतिद्वन्द्वी का डंडा देखा, तो वह कुतूज़ोव और सम्राट अलेक्सान्द्र से लगातार यह शिकायत करता रहा कि सभी नियमों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी जा रही है (मानो लोगों की हत्या के भी कुछ नियम होते हों)। युद्ध के नियमों की अवहेलना करने के बारे में फ़्रांसीसियों के शिकवे-शिकायतों और इस चीज़ के बावजूद कि कुछ रूसी पदाधिकारियों को डंडे से लड़ना अच्छा नहीं लग रहा था और वे चाहते थे कि सैनिक पंक्तिबद्ध होकर आगे बढ़ें, लोक-युद्ध का डंडा किसी की पसन्दगी और नापसन्दगी तथा नियमों की परवाह किये बिना अपनी भयंकर और अपार शक्ति से ऊपर उठता और नीचे गिरता तथा किसी का भी लिहाज़ न करता हुआ अपनी भोली-भाली सरलता, किन्तु लक्ष्यनिष्ठा से ऊपर उठता एवं तब तक फ़्रांसीसियों की कसकर पिटाई करता रहा, जब तक कि पूरी आक्रमण-कारी सेना नष्ट नहीं हो गयी।

भला हो ऐसी जनता का जिसने सन् १८१३ में फ़्रांसीसियों की तरह व्यवहार करते हुए सभी नियमों के अनुसार सलूट मारकर बड़े सजीलेपन तथा शिष्टता से तलवार की मूठ अपने उदारमना विजेता को भेंट नहीं की। भला हो ऐसी जनता का जिसने परीक्षा की कठिन घड़ी में यह न पूछकर कि ऐसी परिस्थितियों में दूसरों ने नियम के अनुसार कैसा व्यवहार किया था, सरलता और स्फूर्ति से सामने आ जानेवाला पहला डंडा उठा लिया और तब तक शत्रु की धुनाई करती रही, जब तक कि उसकी आत्मा में घृणा और दया ने अपमान तथा प्रतिशोध की भावना का स्थान नहीं ले लिया।

एक बड़े समूह के रूप में संकेन्द्रित सेना के विरुद्ध लोगों के बिखरे हुए छोटे-छोटे दलों की फ़ौजी कार्रवाई को युद्ध के तथाकथित नियमों का एक सबसे ठोस और लाभदायक उल्लंघन कहा जा सकता है। लोक-युद्ध का रूप लेनेवाली लड़ाई में हमेशा इस तरह की कार्रवाई की जाती है। इस तरह की कार्रवाई का अर्थ यह है कि एक समूह के विरुद्ध समूह के रूप में सामना करने के बजाय लोग बंट जाते हैं, अलग-अलग से आक्रमण करते हैं, जब विरोधी द्वारा उनपर कहीं अधिक शक्ति से आक्रमण किया जाता है तो भाग जाते हैं और उचित अवसर आने पर फिर से हमला करते हैं। स्पेन के गुरिल्लों ने भी ऐसा ही किया, काकेशिया के पहाड़ी लोगों ने भी यही किया और १८१२ में रूसियों ने भी यही तरीक़ा अपनाया।

इस तरह के युद्ध को गुरिल्ला या छापेमारों के युद्ध का नाम दिया गया और ऐसा मान लिया गया कि इसे ऐसी संज्ञा देकर इसके सार को स्पष्ट कर दिया गया है। किन्तु इस तरह का युद्ध न केवल किसी भी तरह के नियमों के अन्तर्गत नहीं आता, बल्कि अचूक माने जानेवाले सुज्ञात और सर्वस्वीकृत रणनीतिक नियम के सर्वथा प्रतिकूल भी है। इस नियम के अनुसार आक्रमणकारी को इसलिये अपनी सेना को संकेन्द्रित करना चाहिये कि लड़ाई के वक़्त वह अपने शत्रु से अधिक शक्तिशाली हो।

गुरिल्ला या छापेमारों के ढंग की लड़ाई (जो, जैसाकि इतिहास साक्षी है, हमेशा अधिक सफल रहती है) उपर्युक्त नियम के एकदम प्रतिकूल है।

यह विरोधाभास इसलिये पैदा होता है कि युद्धशास्त्र सैनिक-शक्ति को उसकी सैनिक-संख्या के समरूप मानता है। युद्धशास्त्र का कहना है कि जितनी अधिक सेना होगी, उसकी उतनी ही अधिक शक्ति होगी। बड़ी संख्यावाली सेना हमेशा विजयी होती है।

ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए युद्धशास्त्र उस यन्त्र-विद्या के समान ही हो जाता है जो मात्राओं और शक्तियों के आधार पर ही ऐसा निष्कर्ष पेश कर सकती है कि इनकी पारस्परिक शक्ति इसलिये समान या असमान है कि इनकी मात्रायें समान हैं या असमान हैं।

शक्ति (गति का परिमाण) मात्रा और गति की उपज होती है।

इसी प्रकार युद्ध में किसी सेना की शक्ति इसकी मात्राओं और किसी अन्य, अज्ञात तत्त्व, जिसे x कहा जा सकता है, की उपज होती है।

इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण मिलने पर कि सेना के आकार या संख्या और उसकी शक्ति में अनुरूपता नहीं होती, कि छोटी सेना बड़ी सेना पर विजयी हो जाती है, युद्धशास्त्र अस्पष्ट रूप से ही इस अज्ञात तत्त्व के अस्तित्व को स्वीकार करता है और कभी तो सेना की ज्यामितिक तैनाती, कभी शस्त्रास्त्र की श्रेष्ठता तथा आम तौर पर तो सेनापतियों की प्रतिभा में इस तत्त्व को खोजने का प्रयास करता है। किन्तु इस अज्ञात तत्त्व के इन अनुमानित रूपों में से कोई भी इतिहास के तथ्यों से मेल नहीं खाता।

इसके लिये सिर्फ़ इतना ही करने की ज़रूरत है कि हम युद्ध के समय उच्चाधिकारियों द्वारा दिये जानेवाले आदेशों-अनुदेशों की कारगरता के झूठ दृष्टिकोण से, जो युद्ध-नायकों की प्रशंसा करने के लिये सर्वस्वीकृत है, इन्कार कर दें और तब हम इस अज्ञात x को खोज लेंगे।

यह x सेना का उत्साह या जोश अथवा सेना के सभी सैनिकों की लड़ने और ख़तरे का सामना करने की अधिक या कम इच्छा है। इस सम्बन्ध में इस चीज़ से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा कि ये सैनिक किसी प्रतिभाशाली अथवा प्रतिभाहीन कमांडर के नेतृत्व में लड़ रहे हैं, तीन-तीन या दो-दो की क़तारों में लड़ रहे हैं, डंडों या ऐसी बन्दूक़ों से लड़ रहे हैं जो एक मिनट में तीस बार गोलियां चलाती हैं। लड़ने के इच्छुक सैनिक लड़ने के लिये हमेशा अनुकूलतम परिस्थितियां ढूंढ़ लेंगे।

सेना का जोश ही वह तत्त्व है जो मात्रा के साथ गुना होकर सेना-शक्ति के रूप में सामने आता है। सेना के जोश, इस अज्ञात तत्त्व को सुनिश्चित और अभिव्यक्त करना युद्धशास्त्र की समस्या है।

इस समस्या का समाधान ढूंढ़ना तभी सम्भव है, जब हम अज्ञात x के स्थान पर उन परिस्थितियों को, जिनमें सेना-शक्ति क्रियाशील होती है, मनमाने ढंग से ऐसी चीज़ों को, उदाहरण के लिये सेना-संचालक के आदेश-अनुदेश, शस्त्रास्त्र आदि को पेश न करके इस अज्ञात तत्त्व

को इसी के पूर्ण रूप में स्वीकार कर लें यानी यह कि सैनिकों में लड़ने और खतरे का सामना करने की कितनी ज़्यादा या कम इच्छा है। केवल तभी, ज्ञात ऐतिहासिक तथ्यों को समीकरणों के रूप में व्यक्त करके हम इस अज्ञात तत्त्व का तुलनात्मक महत्त्व जान सकेंगे, इस अज्ञात तत्त्व को निश्चित करने की आशा कर सकेंगे।

यदि दस व्यक्ति, बटालियनें या डिवीजन पन्द्रह व्यक्तियों, बटालियनों या डिवीजनों से लड़ते हुए पन्द्रह को पराजित कर देते हैं यानी उन सबको मार डालते हैं या बन्दी बना लेते हैं और अपने केवल चार आदमियों की क्षति उठाते हैं तो एक पक्ष की क्षति केवल चार और दूसरे की पन्द्रह होगी। इस तरह चार व्यक्ति पन्द्रह के बराबर होंगे और हम लिख सकते हैं: ४ x=१५ y। दूसरे शब्दों में x y के लिये वैसे ही है, जैसे १५ ४ के लिये। यद्यपि यह समीकरण अज्ञात तत्त्व का पूरा महत्त्व स्पष्ट नहीं करता, तथापि यह इन दोनों अज्ञात तत्त्वों का अनुपात बता देता है। विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों (लड़ाइयों, अभियानों, युद्ध की अवधियों) को ऐसे समीकरणों का रूप देने से ऐसे आंकड़े सामने आ जायेंगे जिनमें नियम निहित होंगे और वे स्पष्ट हो जायेंगे।

रणनीति का यह नियम कि आक्रमण करते समय सेनाओं को समूह के रूप में और पीछे हटते वक़्त छोटी-छोटी टुकड़ियों के रूप में क्रियाशील होना चाहिये, अनजाने ही इस सचाई की पुष्टि करता है कि सेना की शक्ति उसके उत्साह पर निर्भर करती है। आक्रमणकारियों से अपनी रक्षा करने की तुलना में आक्रमण करने के लिये सैनिकों को आगे ले जाने के हेतु अनुशासन की कहीं अधिक आवश्यकता होती है जिसे समूह के रूप में आगे बढ़ने पर ही प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु यह नियम, जिसमें सेना के उत्साह या जोश की अवहेलना की जाती है, निरन्तर गलत सिद्ध होता है और विशेष रूप से तब तो वास्तविकता के बिल्कुल विपरीत ही दिखाई देता है, जब सेना के उत्साह में महत्त्वपूर्ण वृद्धि या कमी हो जाती है, जैसाकि सभी लोक-युद्धों के समय होता है।

यद्यपि रणनीति के अनुसार सन् १८१२ में पीछे हटते समय फ़्रांसीसियों को छोटी-छोटी टुकड़ियों में ऐसा करना चाहिये था, तथापि उन्होंने एक बड़े समूह के रूप में ही ऐसा किया, क्योंकि सेनाओं का हौसला इतना कम हो गया था कि केवल यही रूप उन्हें एकसाथ बनाये

रख सका। इसके विपरीत, रणनीति के अनुसार रूसियों को समूह के रूप में उनपर आक्रमण करना चाहिये था, किन्तु वास्तव में उन्होंने छोटी-छोटी टुकड़ियों के रूप में ऐसा किया, क्योंकि उनके हौसले इतने बढ़े हुए थे कि अलग-थलग सैनिक किसी आदेश के बिना फ़्रांसीसियों पर टूट पड़ते थे और मुसीबतों तथा ख़तरों का सामना करने के लिये उनपर किसी तरह का दबाव डालने की भी ज़रूरत नहीं होती थी।

३

फ़्रांसीसियों के स्मोलेन्स्क में प्रवेश करने के बाद से तथाकथित पार्टीज़न या छापामार युद्ध आरम्भ हुआ।

हमारी सरकार द्वारा छापेमार युद्ध के अधिकृत रूप से स्वीकार कर लिये जाने के पहले शत्रु-सेना के हज़ारों लोगों – पिछड़ जानेवाले लुटेरों, चारे की तलाश में जानेवाले दलों को कज़्ज़ाकों तथा किसानों ने उसी तरह सहजवृत्ति और सचेतन प्रयास के बिना मार डाला था जैसे कुत्ते किसी पागल हुए कुत्ते के अनजाने ही टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। देनीस दावीदोव ने* ही रूसी सहजवृत्ति से सर्वप्रथम इस भयानक हथियार के महत्त्व को समझा जो युद्धशास्त्र के नियमों की परवाह किये बिना फ़्रांसीसियों को नष्ट करता जा रहा था और उसी को युद्ध के इस ढंग को क़ानूनी रूप देने की दिशा में पहला क़दम उठाने का श्रेय दिया जाता है।

२४ अगस्त को दावीदोव का पहला छापामार दल बनाया गया और उसके बाद दूसरे दल बनाये गये। यह अभियान जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे इस तरह के दलों की संख्या भी बढ़ती चली गयी।

छापेमार इस महान या शानदार सेना को थोड़ा-थोड़ा करके नष्ट कर रहे थे। वे सेनारूपी सूखे फ़्रांसीसी पेड़ के अपने आप झड़

---

* देनीस दावीदोव (१७८४–१८३९) – १८१२ में युद्ध का वीर-नायक, हुस्सार, लेफ़्टिनेंट-जनरल, हुस्सार रेजिमेंट और छापेमार दस्ते का कमांडर, कवि, इस उपन्यास के एक पात्र वसीली देनीसोव का मूल रूप। – सं०

जानेवाले पत्तों को समेट लेते थे और कभी-कभार पेड़ को भी झकझोर डालते थे। अक्तूबर के महीने में, जब फ़्रांसीसी स्मोलेन्स्क की तरफ़ भाग रहे थे, भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के ऐसे सैकड़ों ही दल थे। इनमें से कुछ बाक़ायदा फ़ौज की शक्ल में गठित थे – उनकी प्यादा फ़ौज थी, तोपख़ाना था, मुख्य सैनिक कार्यालय थे, जीवन की सभी सुविधाओं की भी व्यवस्था थी। कज़्ज़ाक घुड़-सैनिकों के दल थे, प्यादा और घुड़सेना के मिले-जुले छोटे दल थे तथा किसानों और ज़मींदारों के दल भी थे जो अज्ञात रहे। किसी गिरजे का भजनीक एक ऐसे दल का संचालक था जिसने एक महीने में कई सौ फ़्रांसीसियों का क़ैदी बनाया। एक गांव-मुखिया की बीवी वासिलीसा ने सैकड़ों फ़्रांसीसियों को मौत के घाट उतारा।

अक्तूबर के अन्त में छापामार युद्ध अपनी चरम-सीमा पर पहुंच गया था। इस युद्ध का वह पहला समय, जब छापेमार अपने साहस पर ख़ुद ही हैरान होते हुए इस बात से डरते रहते थे कि फ़्रांसीसी किसी भी क्षण उन्हें पकड़ तथा घेर सकते हैं, किसी भी क्षण पीछा किया जाने की शंका के कारण अपने घोड़ों से लगभग न उतरकर वनों में छिपे रहते थे – वह समय अब बीत चुका था। अब इस युद्ध ने एक निश्चित रूप ले लिया था, सबको यह स्पष्ट हो गया था कि फ़्रांसीसियों के मामले में किस हद तक और क्या कुछ किया जा सकता था और किस हद ऐसा नहीं किया जा सकता। अब तो केवल उन्हीं दलों के मुखिया, जिनके अपने स्टॉफ़ थे और जो नियमों के अनुसार फ़्रांसीसियों से दूर रहते थे, वही बहुत कुछ असम्भव मानते थे। बहुत पहले ही अपनी गति-विधियां शुरू करनेवाले और फ़्रांसीसियों को बहुत नज़दीक से देख-समझ चुके छोटे-छोटे छापेमार दल वह सब कुछ करना सम्भव मानते थे जिसके बारे में बड़े दलों के संचालक सोच भी नहीं सकते थे। फ़्रांसीसियों के बीच घुसने और बाहर निकल आनेवाले कज़्ज़ाक तथा किसान तो अब सभी कुछ सम्भव मानते थे।

२२ अक्तूबर को देनीसोव, जो अब एक छापेमार था, अपने दल के साथ पूरे जोश-ख़रोश से छापेमारों की कार्रवाइयां कर रहा था। अपने दल के साथ वह सुबह से ही गतिशील था। वह बड़ी सड़क के साथ-साथ फैले जंगल में ही रहते हुए फ़्रांसीसियों की घुड़सेना की मालवाही घोड़ा-गाड़ियों तथा रूसी बन्दियों पर नज़र टिकाये था जो

बाक़ी सेना से अलग होकर और बड़े रक्षा-दल की देख-रेख में, जैसाकि टोहियों और बन्दियों से पता चला, स्मोलेन्स्क की ओर बढ़ रहे थे। दल के बारे में न केवल देनीसोव और दोलोख़ोव ही, जो अपने छापेमार दल के साथ देनीसोव के क़रीब ही था, बल्कि स्टॉफ़वाले बड़े-बड़े दलों के संचालक भी जानते थे और देनीसोव के शब्दों में, उनपर अपनी नज़र गड़ाये थे। ऐसे दो बड़े दलों के संचालकों ने, जिनमें एक पोलैंडी और दूसरा जर्मन था, लगभग एक ही वक़्त देनीसोव को इस उद्देश्य से अपने साथ मिलने को आमन्त्रित किया कि वे मिलकर फ़्रांसीसियों के दल पर हमला करें।

"नहीं, मेरे भाई, मैंने कच्ची गोलियां नहीं खेली हैं," देनीसोव ने ये सन्देश पढ़ने के बाद कहा और जर्मन को यह लिख भेजा कि इतने शानदार तथा मशहूर जनरल की कमान में काम करने की दिली इच्छा होने के बावजूद उसे इस ख़ुशी से वंचित होना पड़ेगा, क्योंकि पोलैंडी जनरल के अधीन काम करने भी लगा हूं। पोलैंडी जनरल को भी उसने यह बताते हुए इसी तरह का उत्तर लिख भेजा कि वह जर्मन जनरल का संचालन स्वीकार कर चुका है।

इस मामले को इस तरह निपटाने के बाद देनीसोव ने यह इरादा बनाया था कि उच्चाधिकारियों को सूचित किये बिना दोलोख़ोव के साथ मिलकर फ़्रांसीसियों के सेना-दल पर हमला करे और अपने छोटे-से दल के बल-बूते पर ही सामान से लदी फ़्रांसीसी घोड़ा-गाड़ियों पर क़ब्ज़ा कर ले। २२ अक्तूबर को यह फ़्रांसीसी काफ़ला मिकूलिनो गांव से शमशेवो गांव की ओर जा रहा था। मिकूलिनो से शमशेवो की ओर जानेवाली सड़क के बायीं तरफ़ बहुत बड़े जंगल थे जो कहीं-कहीं तो सड़क के बिल्कुल क़रीब तक फैले हुए थे और कहीं-कहीं एक वेर्स्ता और उससे भी ज़्यादा दूर थे। इन्हीं जंगलों के कभी तो मध्य में रहता और कभी इनके छोर पर आता तथा फ़्रांसीसियों के चलते जा रहे काफ़ले पर नज़र रखता हुआ देनीसोव दिनभर अपने छापेमार दल के साथ आगे बढ़ता रहा। इसी सुबह को मिकूलिनो के नज़दीक, जहां जंगल सड़क के क़रीब आ जाता था, देनीसोव के कज़्ज़ाकों ने घोड़ों के ज़ीनों से लदी हुई तथा कीचड़ में फंस जानेवाली दो घोड़ा-गाड़ियों पर क़ब्ज़ा कर लिया था और वे उन्हें जंगल में खींच ले गये थे। उस वक़्त से शाम होने तक देनीसोव का यह दल फ़्रांसीसियों पर हमला

किये बिना उनकी गति-विधि पर नज़र टिकाये रहा। योजना यह थी कि फ़्रांसीसियों में दहशत पैदा किये बिना इन्हें शमशेवो तक जाने दिया जाये और फिर दोलोख़ोव के साथ मिलकर, जिसे शाम को शमशेवो से एक वेर्स्ता इधर स्थित वन-रक्षक के घर में सलाह-मशविरे के लिये आना था, पौ फटने के समय उनपर दो ओर से बिजली टूटने के समान अचानक हमला किया जाये, उन्हें पीटा जाये और सभी को एकसाथ बन्दी लिया जाये।

मिकूलिनो से दो वेर्स्ता इधर, उस जगह पर, जहां जंगल सड़क के बिल्कुल क़रीब आ जाता था, छः कज़्ज़ाकों को छोड़ दिया गया था जिन्हें फ़्रांसीसियों के नये सेना-दलों के प्रकट होते ही सूचना देनी थी।

शमशेवो से आगे दोलोख़ोव को भी ठीक इसी तरह से यह जानने के लिये सड़क का जायज़ा लेना था कि अन्य फ़्रांसीसी सेनायें कितने फ़ासले पर हैं। ऐसा अनुमान था कि फ़्रांसीसियों के इस काफ़ले के अन्तर्गत कोई डेढ़ हज़ार सैनिक थे। देनीसोव के दल में दो सौ आदमी थे और दोलोख़ोव के दल में भी लगभग इतने ही। किन्तु फ़्रांसीसियों की संख्यागत श्रेष्ठता से देनीसोव को कोई परेशानी नहीं हो रही थी। हां, अभी यह मालूम करना ज़रूरी था कि ये सेनायें किस तरह की थीं और इसके लिये शत्रु-दल से एक क़ैदी को पकड़कर लाना आवश्यक था। सुबह के वक़्त कीचड़ में फंस जानेवाली दो घोड़ा-गाड़ियों पर ऐसी हड़बड़ी में हमला किया गया था कि उनके सभी फ़्रांसीसी रक्षक मारे गये थे और पीछे रह जानेवाला एक ढोल-वादक छोकरा ही ज़िन्दा पकड़ा गया था। किन्तु वह इस चीज़ का कोई निश्चित उत्तर नहीं दे पाया कि फ़्रांसीसियों के दल में कौन-सी सेनायें थीं।

दूसरी बार हमला करना देनीसोव ख़तरनाक समझता था, क्योंकि ऐसा करने पर पूरा फ़्रांसीसी सैनिक-दल चौकन्ना हो सकता था। इसलिये उसने अपने दल में शामिल एक किसान तीख़ोन श्चेरबाती को आगे-आगे शमशेवो भेजा, ताकि अगर मुमकिन हो सके तो फ़्रांसीसियों के हरावल में से कम से कम एक क्वार्टर-मास्टर को पकड़ लाये।

पतझर के मौसम का गुनगुना और बरखा-बूंदी का दिन था। आकाश और क्षितिज – दोनों ही गंदले पानी के रंग जैसे थे। कभी तो मानो धुंध-सी गिरती लगती और कभी अचानक ज़ोरदार बारिश की टेढ़ी-तिरछी धारायें नीचे आने लगतीं।

नमदे का लबादा और समूर की ऊंची टोपी पहने देनीसोव बढ़िया नसल के दुबले-पतले, कसी हुई बग़लोंवाले घोड़े पर सवारी कर रहा था। सिर झुकाये और पीछे की ओर कान दबाये घोड़े की भांति वह भी बारिश की तिरछी-टेढ़ी धाराओं के कारण सिकुड़-सिमट रहा था और बेचैनी से अपने सामने की तरफ़ देख रहा था। उसका दुबलाया चेहरा, जिसपर छोटी-छोटी, घनी काली दाढ़ी उगी हुई थी, झुंझलाया-सा प्रतीत होता था।

देनीसोव की तरह ही नमदे का लबादा और समूर की ऊंची टोपी पहने उसका सहयोगी, कज़्ज़ाक-सेना के कप्तान के पदवाला एक अफ़सर दोन नसल के हृष्ट-पुष्ट तथा मज़बूत घोड़े पर उसकी बग़ल में जा रहा था।

नमदे का लबादा और समूर की ऊंची टोपी पहने लोवाइस्की नाम का तीसरा कज़्ज़ाक-अफ़सर लम्बा, तख़्ते की तरह सीधा-सपाट, पीले चेहरे, सुनहरे बालों तथा छोटी-छोटी, चमकीली आंखोंवाला व्यक्ति था। उसके चेहरे पर और सवारी करने के अन्दाज़ में शान्ति तथा आत्मविश्वास का भाव था। यद्यपि यह कहना कठिन था कि इस घोड़े और घुड़सवार में कौन-सी ख़ास बात थी, तथापि इस कज़्ज़ाक-अफ़सर और देनीसोव पर एक नज़र डालते ही यह स्पष्ट हो जाता था कि देनीसोव अपने को भीगा-भीगा तथा बेचैन-सा महसूस कर रहा है, कि वह मन मारकर घोड़े पर बैठा हुआ है, जबकि कज़्ज़ाक-अफ़सर हमेशा की तरह आराम और चैन अनुभव कर रहा है, कि वह घोड़े पर योंही बैठा नहीं है, बल्कि उसके साथ एकाकार होकर दुगुनी शक्तिवाला व्यक्ति बना हुआ है।

इनके थोड़ा आगे-आगे भूरा किसानी कोट और सफ़ेद ऊनी टोपी पहने बारिश से पूरी तरह तर-ब-तर एक किसान पथ-प्रदर्शक चल रहा था।

कुछ पीछे हटकर फ़्रांसीसी नीला ओवरकोट पहने एक जवान अफ़सर दुबले-पतले तथा बहुत बड़ी पूंछ तथा अयालवाले किर्गिज़ घोड़े पर जा रहा था। इस घोड़े के होंठ फटे हुए और लहू-लुहान थे।

इस अफ़सर की बग़ल में एक हुस्सार घुड़सवार था जिसने फटी हुई फ़्रांसीसी वर्दी तथा नीली, ऊनी टोपी पहने एक छोकरे को अपने घोड़े के पुट्ठे पर बिठा रखा था। यह छोकरा ठण्ड के कारण लाल हुए हाथों से हुस्सार को पकड़े था, अपने नंगे पांवों को गर्माने के लिये हिलाता-डुलाता था और भौंहों को ऊपर चढ़ाकर हैरानी से अपने इर्द-गिर्द देखता था। यह वही फ़्रांसीसी ढोल-वादक छोकरा था जिसे उस सुबह को बन्दी बनाया गया था।

इनके पीछे बारिश से भीगे, कीचड़ से लथपथ संकरे वन-मार्ग पर तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में हुस्सार और कज़्ज़ाक आ रहे थे जिनमें से कोई नमदे का लबादा और कोई फ़्रांसीसी फ़ौजी ओवरकोट पहने था तथा किसी ने अपने सिर को ज़ीनपोश से ढंक रखा था। क्या लाखी और क्या कुम्मैती, सभी घोड़े उनके बदन से चू रही बारिश की धाराओं के कारण काले-काले लग रहे थे। अयालों के भीग जाने की वजह से उनकी गरदनें अजीब ढंग से पतली-पतली प्रतीत हो रही थीं। कपड़े, ज़ीन और लगामें – सभी कुछ उसी तरह से गीला, चिप-चिपा तथा फिसलता-सा था, जैसे कि धरती और रास्ते को ढंकनेवाले गिरे हुए पत्ते थे। लोग हिले-डुले बिना यह कोशिश करते हुए सिमटे-सिमटाये बैठे थे कि बदन तक पहुंच जानेवाले पानी को कुछ गर्मा सकें और सीटों, घुटनों और गरदन के पीछे ठण्डे पानी को और अधिक रिसने से रोक सकें। कज़्ज़ाकों की लम्बी क़तार के बीच दो घोड़ा-गाड़ियां, जिनमें फ़्रांसीसी घोड़े और ज़ीनों सहित कज़्ज़ाकी घोड़े जुते थे, ठूंठों और टहनियों पर खड़खड़ाती तथा पानी से भरी मार्ग की लीकों पर छपछपाती चली जा रही थीं।

देनीसोव का घोड़ा रास्ते में आ जानेवाले पानी के डबरे से बचता हुआ एक तरफ़ को हट गया और घोड़े के ऐसा करने पर उसका घुटना एक पेड़ से टकरा गया।

"ओह, शैतान कहीं का!" देनीसोव ज़ोर से चिल्ला उठा और उसने दांत पीसते हुए घोड़े पर तीन बार चाबुक बरसाया और इस तरह ख़ुद पर तथा अपने साथियों पर भी कीचड़ के छींटे गिरा दिये।

बारिश और भूख के कारण (सुबह से किसी ने कुछ भी नहीं खाया था) तथा मुख्यतः तो इसलिये उसका मूड बहुत ख़राब था कि दोलोख़ोव से अभी तक कोई ख़बर नहीं आई थी और वह आदमी भी, जिसे किसी फ़्रांसीसी को पकड़ लाने को भेजा था, अभी तक नहीं लौटा था।

"फ़्रांसीसियों के काफ़ले पर हमला करने का कोई दूसरा ऐसा अच्छा मौक़ा तो शायद ही फिर कभी हाथ आये। अकेले ही इसपर धावा बोलना ख़ासा ख़तरनाक है और अगले दिन तक स्थगित करने से कोई बड़ा छापामार दल हमारे देखते-देखते ही शिकार को झपट ले जायेगा," देनीसोव दोलोख़ोव के प्रतीक्षित सन्देशवाहक के आने की आशा में लगातार सामने की तरफ़ देखता हुआ सोच रहा था।

जंगल के बीच एक खुले रास्ते पर पहुंचकर, जहां से दायीं ओर बहुत दूर तक देखा जा सकता था, देनीसोव ने अपना घोड़ा रोक लिया।

"घोड़े पर कोई आ रहा है," उसने कहा।

कज़्ज़ाक-अफ़सर ने देनीसोव द्वारा इंगित दिशा में देखा।

"दो व्यक्ति आ रहे हैं – एक अफ़सर और एक कज़्ज़ाक। लेकिन ऐसा मानना ठीक नहीं होगा कि ख़ुद लेफ़्टिनेंट-कर्नल आ रहा है," कज़्ज़ाक-अफ़सर ने कहा जिसे ऐसे शब्दों का प्रयोग अच्छा लगता था जिनसे आम कज़्ज़ाक अपरिचित थे।

दोनों घुड़सवार टीले से नीचे उतरते हुए आंखों से ओझल हो गये और कुछ मिनट बाद फिर से दिखाई दिये। आगे-आगे अफ़सर था जो थके-हारे घोड़े को चाबुक की मदद से किसी तरह सरपट दौड़ा रहा था। इस अफ़सर के बाल अस्त-व्यस्त थे, वह बारिश से तर-ब-तर था और उसने अपने पतलून को घुटनों के ऊपर चढ़ा रखा था। उसके पीछे रकाबों में खड़ा हुआ कज़्ज़ाक अपने घोड़े को दुलकी चाल से दौड़ाता आ रहा था। चौड़े, लाल चेहरे और चंचल, प्रफुल्ल आंखोंवाला यह छोकरे-सा जवान अफ़सर अपने घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ देनी-सोव के क़रीब पहुंचा और एक भीगा लिफ़ाफ़ा उसे देते हुए बोला:

"जनरल साहब ने भेजा है। माफ़ी चाहता हूं कि यह कुछ भीग गया है..."

माथे पर बल डालते हुए देनीसोव ने लिफ़ाफ़ा ले लिया और उसे खोलने लगा।

"हमसे लगातार यही कहा जा रहा था कि रास्ता बड़ा ख़तरनाक

है, बड़ा ख़तरनाक है," अफ़सर ने उस वक़्त कज़्ज़ाक-अफ़सर को सम्बोधित किया, जब देनीसोव ख़त पढ़ रहा था। "लेकिन मैंने और कोमारोव ने," उसने कज़्ज़ाक की तरफ़ इशारा किया, "अच्छी तरह से तैयारी कर ली थी। हमारे पास दो-दो पिस्तौ... ओहो, वह कौन है?" उसने फ़्रांसीसी ढोल-वादक छोकरे को देखकर पूछा। "बन्दी? तो आप लड़ाई लड़ भी चुके हैं? मैं उससे बात कर सकता हूं?"

"अरे तुम, रोस्तोव हो! पेत्या!" ख़त पर जल्दी से नज़र डालने के बाद देनीसोव इसी वक़्त चिल्ला उठा। "तुमने अपने बारे में बताया क्यों नहीं?" और मुस्कराते तथा उसकी ओर घूमते हुए देनीसोव ने अपना हाथ उसकी तरफ़ बढ़ा दिया।

यह अफ़सर पेत्या रोस्तोव था।

पेत्या रास्ते भर मन ही मन अपने को इस चीज़ के लिये तैयार करता रहा था कि कैसे वह एक वयस्क व्यक्ति और अफ़सर के नाते पुरानी जान-पहचान का कोई उल्लेख किये बिना देनीसोव के साथ पेश आयेगा। किन्तु जैसे ही देनीसोव उसकी तरफ़ देखकर मुस्कराया, वैसे ही पेत्या का चेहरा खिल गया, उसपर ख़ुशी की लाली दौड़ गयी और वह पहले से तैयार किये गये औपचारिक अन्दाज़ को भूलकर यह बताने लगा कि किस तरह फ़्रांसीसियों के क़रीब से गुज़रकर आया है, कि वह कितना ख़ुश है कि उसे ऐसा कार्यभार सौंपा गया है, कि वह व्याज़्मा के नज़दीक लड़ाई में हिस्सा ले चुका है जिसमें एक हुस्सार ने बड़ी बहादुरी दिखाई थी।

"मुझे तुम्हारे साथ ऐसे मुलाक़ात होने से बड़ी ख़ुशी हो रही है," देनीसोव ने उसे टोक दिया और उसके चेहरे पर फिर से चिन्ता का भाव आ गया।

"मिख़ाईल फ़ेओक्लीतिच," उसने कज़्ज़ाक-अफ़सर को सम्बोधित किया, "यह ख़त तो फिर से जर्मन जनरल ने भेजा है। यह (पेत्या रोस्तोव) उसी के अधीन काम करता है।" और देनीसोव ने कज़्ज़ाक-अफ़सर को बताया कि अभी-अभी लाये गये पत्र में जर्मन जनरल ने फिर से यही प्रस्ताव किया है कि फ़्रांसीसियों के इस काफ़ले पर हमला करने के लिये हम उसके साथ मिल जायें। "अगर हम कल सामान की इन फ़्रांसीसी घोड़ा-गाड़ियों पर क़ब्ज़ा नहीं कर लेंगे तो वह हमारी आंखों के सामने से ही इन्हें भगा ले जायेगा," उसने निष्कर्ष निकाला।

देनीसोव जिस समय कज़्ज़ाक-अफ़सर से बात कर रहा था, उसी वक़्त पेत्या ने देनीसोव के कुछ रूखे अन्दाज़ से परेशान होते और यह मानते हुए कि उसके ऐसे अन्दाज़ का कारण घुटनों के ऊपर तक चढ़ा हुआ उसका पतलून है, वह फ़ौजी ओवरकोट के नीचे छिपे-छिपे ढंग से और साथ ही यथाशक्ति एक सूरमा की मुद्रा बनाये रखने का प्रयास करते हुए उसे ठीक करता रहा।

"हुज़ूर, आप मुझे कोई हुक्म देना चाहेंगे?" पेत्या ने सलूट के रूप में अपनी फ़ौजी टोपी पर हाथ रखते हुए पूछा और इस तरह फिर से एड्जुटेंट और जनरल का वही खेल खेलने लगा जिसके लिये उसने अपने को तैयार किया था, "या फिर मुझे आपके साथ ही रुके रहना चाहिये?"

"हुक्म?.." देनीसोव ने सोचते हुए कहा। "तुम कल तक यहां रुक सकते हो?"

"हां, हां, रुक सकता हूं... क्या मैं आपके साथ ही रह सकता हूं?" पेत्या ने उत्साहपूर्ण ऊंची आवाज़ में पूछा।

"तुम्हारे जनरल ने तुम्हें क्या हुक्म दिया है—इसी वक़्त लौटने का?" देनीसोव ने जानना चाहा। पेत्या के चेहरे पर लाली दौड़ गयी।

"उन्होंने तो कोई भी हुक्म नहीं दिया। मेरे ख़्याल में तो मैं रुक सकता हूं न?" उसने प्रश्नात्मक ढंग से उत्तर दिया।

"तो ठीक है," देनीसोव ने कहा। इसके बाद उसने अपने लोगों को सम्बोधित करते हुए यह आदेश दिया कि वे सभी पूर्वनिर्धारित विश्राम-स्थल यानी वन-रक्षक के घर की तरफ़ चले जायें, किर्ग़िज़ घोड़े पर सवार अफ़सर (वह एडजुटेंट की ड्यूटी बजाता था) दोलोख़ोव को ढूंढ़ने जाये, यह मालूम करे कि वह कहां है, कि वह शाम को आयेगा या नहीं। कज़्ज़ाक-अफ़सर और पेत्या को साथ लेकर देनीसोव ने ख़ुद शमशेवो से जा मिलनेवाले वन-छोर पर जाने का इरादा बनाया ताकि उस जगह को अच्छी तरह से देख-भाल ले जहां अगले दिन उन्हें फ़्रांसीसियों पर हमला करना था।

"तो दढ़ियल," उसने पथ-प्रदर्शक किसान से कहा, "हमें शमशेवो ले चलो।"

कुछ कज़्ज़ाकों और उस हुस्सार को साथ लेकर, जिसने फ़्रांसीसी

बन्दी-छोकरे को अपने घोड़े के पीछे बिठा रखा था, देनीसोव, पेत्या तथा कज़्ज़ाक-अफ़सर बायीं ओर के खड्ड में से अपने घोड़े बढ़ाते हुए वन-छोर की तरफ़ चल दिये।

५

बारिश बन्द हो गयी थी, सिर्फ़ धुंध और वृक्षों की शाखाओं से पानी की बूंदें नीचे आ रही थीं। देनीसोव, कज़्ज़ाक-अफ़सर और पेत्या ऊनी टोपी पहने किसान के पीछे-पीछे चुपचाप अपने घोड़े बढ़ाते जा रहे थे। टेढ़े-मेढ़े पांवों में छाल के जूते पहने यह किसान वृक्षों की जड़ों और पत्तों पर किसी तरह की आहट किये बिना अपने क़दम बढ़ाता हुआ इन्हें वन-छोर की ओर लिये जा रहा था।

यह किसान एक छोटे-से टीले पर पहुंचकर रुक गया, उसने इधर-उधर नज़र दौड़ाई और उस तरफ़ चल दिया जहां वृक्षों की पांत विरली हो गयी थी। एक बड़े शाहबलूत के क़रीब, जिसने अभी तक अपने पत्ते नहीं गिराये थे, वह रुक गया और उसने हाथ के रहस्यपूर्ण संकेत से इन लोगों को अपने पास बुलाया।

देनीसोव और पेत्या अपने घोड़े बढ़ाकर उसके क़रीब गये। किसान जहां रुका था, वहां से फ़्रांसीसी दिखाई देते थे। जंगल के फ़ौरन बाद ही वसन्त की फ़सल का एक खेत टीले से नीचे की ओर फैला हुआ था। दायीं ओर एक खड़े खड्ड के पार एक छोटे-से गांव तथा किसी ज़मींदार की टूटी छतवाले छोटे-से मकान की झलक मिल रही थी। इस छोटे-से गांव और ज़मींदार के मकान में, पूरे टीले पर, बाग़ में, कुंओं तथा तालाब के क़रीब, पुल से गांव की ओर ऊपर को जाते सारे मार्ग पर, कुल मिलाकर कोई सवा चार सौ मीटर के क्षेत्र में हिलती-डुलती धुंध में लोगों की भीड़ दिखाई दे रही थी। गाड़ियों को टीले के ऊपर खींच रहे घोड़ों पर विदेशी भाषा में उनका चीख़ना-चिल्लाना और एक-दूसरे को पुकारना साफ़ सुनाई दे रहा था।

"बन्दी को यहां लाइये," देनीसोव ने फ़्रांसीसियों पर नज़र टिकाये हुए धीमी आवाज़ में कहा।

एक कज़्ज़ाक अपने घोड़े से उतरा, उसने लड़के को नीचे उतारा और उसे साथ लिये हुए देनीसोव के पास आया। देनीसोव ने फ़्रांसीसियों की तरफ़ संकेत करते हुए उससे पूछा कि वहां कौन-कौन-सी सेनायें हैं। अपने ठिठुरे हुए हाथों को जेबों में डालकर और भौंहें चढ़ाकर यह छोकरा सहमी-सहमी नज़र से देनीसोव की ओर देखते हुए वह सभी कुछ, जो उसे मालूम था, बताने की स्पष्ट उत्कट इच्छा के बावजूद अपने उत्तरों को गड़बड़ाता रहा और देनीसोव की हां में हां मिलाता रहा। देनीसोव ने नाक-भौंह सिकोड़कर उसकी ओर से मुंह फेर लिया और कज़्ज़ाक-अफ़सर को अपने विचार बताने लगा।

पेत्या जल्दी-जल्दी अपना सिर घुमाता हुआ कभी तो ढोल-वादक फ़्रांसीसी छोकरे, कभी देनीसोव, कभी कज़्ज़ाक-अफ़सर और कभी गांव में तथा सड़क पर नज़र आ रहे फ़्रांसीसियों की तरफ़ देखता और कोशिश करता कि कोई भी महत्त्वपूर्ण चीज़ उसकी दृष्टि से चूक न पाये।

"दोलोख़ोव आये या न आये, हमें इनपर क़ब्ज़ा करना ही चाहिये!.. ठीक है न?" देनीसोव ने ख़ुशी से आंखें चमकाते हुए कहा।

"इस काम के लिये यह जगह बहुत उपयुक्त है," कज़्ज़ाक-अफ़सर ने जवाब दिया।

"प्यादों को नीचे, दलदलों में से भेज देंगे," देनीसोव कहता गया, "वे रेंगकर बाग़ तक पहुंच जायेंगे। आप अपने कज़्ज़ाकों के साथ घोड़ों पर वहां से आयेंगे," देनीसोव ने गांव के पीछे जंगल की तरफ़ इशारा किया। "और मैं अपने हुस्सारों के साथ यहां से जाऊंगा। और गोली चलने के संकेत के साथ ही..."

"घाटी में से जाना ठीक नहीं होगा, वहां दलदल है," कज़्ज़ाक-अफ़सर ने राय ज़ाहिर की। "घोड़े डूब जायेंगे, बायीं ओर घूमकर जाना चाहिये।"

जिस समय ये लोग धीमी-धीमी आवाज़ में बातें कर रहे थे, उसी समय तालाब के निकटवाली घाटी में से एक, फिर दूसरी गोली चलने की आवाज़ सुनायी दी, धुआं नज़र आया और टीले पर से फ़्रांसीसियों की ज़ोरदार तथा मानो ख़ुशी भरी सैकड़ों आवाज़ें सुनायी दीं। देनीसोव और कज़्ज़ाक-अफ़सर हठात एकदम पीछे हट गये। वे इतने नज़दीक थे कि उन्हें लगा कि वे ही फ़्रांसीसियों के गोलियां चलाने और चीख़ने-

चिल्लाने का कारण थे। किन्तु गोलियों की आवाज़ों और चीख़-चिल्लाहट का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं था। नीचे, दलदलों में से एक आदमी, जो लाल-सा कोई कपड़ा पहने था, भागता जा रहा था। फ़ांसीसी सम्भवतः उसी पर गोलियां चला रहे थे, चीख़-चिल्ला रहे थे।

"अरे, यह तो हमारा तीख़ोन है," कज़्ज़ाक-अफ़सर ने कहा।

"वही है! हां, वही है!"

"ओह, शैतान," देनीसोव ने कहा।

"बच निकलेगा!" कज़्ज़ाक-अफ़सर ने आंखें सिकोड़ते हुए ख़्याल ज़ाहिर किया।

जिस आदमी को ये लोग तीख़ोन कह रहे थे, वह नदी तक जाकर उसमें ऐसे ज़ोर से कूद गया कि हवा में पानी के छींटे उड़ते दिखाई दिये। वह कुछ देर तक पानी में ग़ायब रहकर हाथों-पैरों के बल रेंगता तथा भीगने के कारण काला-सा प्रतीत होता हुआ तट पर आया और आगे भाग चला। उसका पीछा करनेवाले फ़्रांसीसी रुक गये।

"बड़ा तेज़ आदमी है," कज़्ज़ाक-अफ़सर ने कहा।

"बदमाश कहीं का!" देनीसोव पहले की तरह ही खीझता जा रहा था। "इस वक़्त तक वह क्या झक मारता रहा है?"

"यह कौन है?" पेत्या ने पूछा।

"हमारा टोहिया है। मैंने उसे किसी फ़्रांसीसी को पकड़ लाने के लिये भेजा था।"

"अच्छा, समझ गया," पेत्या ने फ़ौरन सिर झुकाते हुए ऐसे कहा मानो सब कुछ समझ गया हो, यद्यपि वास्तव में वह कुछ भी नहीं समझा था।

इस छापेमार दल में तीख़ोन श्चेरबाती एक सबसे ज़्यादा काम का आदमी था। वह ग्ज़ात नदी के निकटवर्ती पोक्रोव्स्कोये गांव का रहनेवाला था। अपनी गति-विधियों के आरम्भ में देनीसोव जब पोक्रोव्स्कोये गांव में आया और हमेशा की तरह उसने ग्राम-मुखिया को बुलवाकर उससे यह पूछा कि फ़्रांसीसियों के बारे में उन लोगों को क्या मालूम है तो सभी ग्राम-मुखियों की भांति मानो अपना बचाव करते हुए उसने भी यही जवाब दिया कि वे न तो कुछ जानते हैं और न ही उन्होंने अपनी आंखों से कुछ देखा है। किन्तु जब देनीसोव ने स्पष्ट किया कि उसका उद्देश्य फ़्रांसीसियों को मौत के घाट उतारना है और यह पूछा कि उनके

यहां फ़्रांसीसी तो नहीं आये थे तो मुखिया ने बताया कि कुछ लुटेरे तो ज़रूर आये थे, किन्तु उनके गांव में सिर्फ़ तीख़ोन श्चेरबाती ही इन मामलों में दिलचस्पी लेता था। देनीसोव ने तीख़ोन को बुलवा भेजा और उसके कार्य-कलापों की प्रशंसा करके ग्राम-मुखिया के सामने ही ज़ार और मातृभूमि के प्रति निष्ठा तथा फ़्रांसीसियों के प्रति उस घृणा के बारे में कुछ शब्द कहे जो मातृभूमि के सभी सपूतों के दिलों में होनी चाहिये।

"हम फ़्रांसीसियों को कोई हानि नहीं पहुंचाते हैं," देनीसोव के उक्त शब्दों से मानो कुछ सहमकर तीख़ोन ने जवाब दिया। "हम तो बस योंही ज़रा अपना जी ख़ुश करते थे। कोई बीसेक लुटेरों को तो हमने ज़रूर ठिकाने लगा दिया, लेकिन वैसे कोई बुराई नहीं की..." अगले दिन इस किसान के बारे में पूरी तरह से भूलकर देनीसोव जब पोक्रोव्स्कोये गांव से रवाना हुआ तो उसे सूचित किया गया कि तीख़ोन इस दल के साथ चिपक गया है और यह अनुरोध करता है कि उसे इसके साथ ही रहने दिया जाये। देनीसोव ने इसकी अनुमति दे दी।

शुरू में छोटे-मोटे काम – जैसे कि अलाव जलाना, पानी लाना, घोड़ों की खाल उतारना, आदि – करनेवाले तीख़ोन ने बहुत जल्द ही छापेमार युद्ध के लिये अपनी तीव्र इच्छा और क्षमता प्रकट की। वह रातों को शिकार की तलाश में जाता, हर बार ही फ़्रांसीसियों के कपड़े और हथियार लेकर लौटता तथा आदेश मिलने पर क़ैदी भी पकड़ लाता। देनीसोव ने तीख़ोन को छोटे-मोटे कामों से मुक्त कर दिया, मुहिमों में उसे अपने साथ ले जाने लगा और कज़्ज़ाकों में शामिल कर लिया।

तीख़ोन को घुड़सवारी पसन्द नहीं थी, हमेशा पैदल जाता था और घुड़सवारों से कभी पीछे नहीं रहता था। उसके हथियार थे – बन्दूक़, जिसे वह ज़्यादातर तो मज़ाक़ के तौर पर ही अपने साथ ले जाता था, बरछी तथा कुल्हाड़ा जिसका वह वैसे ही अच्छे ढंग से उपयोग करता था जैसे भेड़िया अपने दांतों का जिनसे अपने बालों में से बड़ी आसानी से पिस्सू भी निकालता है और मोटी हड्डी भी चबाता है। तीख़ोन जितनी होशियारी और ज़ोर से कुल्हाड़ा चलाकर लकड़ी का मोटा कुन्दा चीर डालता, इतनी ही आसानी से पतली-पतली डंडियां और उनसे लकड़ी के चमचे बनाता। देनीसोव के छापेमार दल में

तीख़ोन का एक विशेष और दूसरों से बिल्कुल अलग स्थान था। जब कोई ख़ास तौर पर मुश्किल या घिनौना काम – जैसे कि कंधा लगाकर कीचड़ में से गाड़ी या पूंछ से पकड़कर दलदल में से घोड़े को बाहर निकालना होता या उसकी खाल उतारनी होती, फ़्रांसीसियों के बीच घुसना या एक दिन में पचास वेर्स्ता चलना होता तो सभी हंसते हुए तीख़ोन की तरफ़ ही इशारा करते।

"इस कमबख़्त का कुछ नहीं बिगड़ेगा, निरा सांड़ है," उसके बारे में सभी यह कहते।

एक बार एक फ़्रांसीसी ने, जिसे वह बन्दी बनाना चाहता था, उसपर पिस्तौल से गोली चला दी। यह गोली उसके चूतड़ पर आ लगी। यह घाव, जिसका तीख़ोन ने सिर्फ़ वोद्का से, यानी वोद्का पीकर और घाव पर वोद्का की पट्टी बांधकर ही इलाज किया, पूरे दल में सभी तरह के हंसी-मज़ाक़ों और ठिठोलियों-फबतियों का विषय बन गया जिनमें तीख़ोन भी बड़ी ख़ुशी से हिस्सा लेता था।

"कहो, भाई मेरे, तुम्हारी अक़्ल ठिकाने कर दी न उन्होंने? तो वहां तुम्हारे भीतर घाव कर दिया उन्होंने?" कज़्ज़ाक मज़ाक़ करते और तीख़ोन झूठ-मूठ मुंह बनाते हुए ढोंग करता कि बुरा मान रहा है और फ़्रांसीसियों को गन्दी से गन्दी गालियां देता। इस घटना, इस घाव का तीख़ोन पर सिर्फ़ यही असर हुआ कि अब वह कभी-कभार ही कोई बन्दी पकड़कर लाता था।

इस छापेमार दल में तीख़ोन सबसे ज़्यादा दिलेर और काम का आदमी था। दुश्मन पर हमला करने के वही सबसे ज़्यादा मौक़े ढूंढ़ता था, वही सबसे अधिक संख्या में फ़्रांसीसियों को क़ैदी बनाता था और उन्हें मौत के घाट उतारता था। अपनी इन ख़ूबियों के कारण ही वह सभी कज़्ज़ाकों और हुस्सारों के लिये विदूषक-सा बन गया था तथा ख़ुद भी ख़ुशी से यह भूमिका निभाता था। अब देनीसोव ने उसे किसी फ़्रांसीसी को पकड़ लाने के लिये रात को ही शमशेवो भेज दिया था। लेकिन या तो इस कारण कि उसे एक फ़्रांसीसी क़ैदी से सन्तोष नहीं हुआ या फिर इसलिये कि रात को सोता रहा, वह दिन के वक़्त झाड़ियों में घुसकर फ़्रांसीसियों के ठीक बीच में जा पहुंचा और, जैसा-कि देनीसोव ने पहाड़ी से देखा था, फ़्रांसीसियों की उसपर नज़र पड़ गयी थी।

कज़्ज़ाक-अफ़सर के साथ फ़्रांसीसियों पर अगले दिन के हमले के बारे में कुछ देर और बातचीत करने के बाद, जो इस कारण कि वे कितने नज़दीक थे, लगभग पूरी तरह तय ही हो गया लगता था, देनीसोव ने अपना घोड़ा मोड़ा और वापस चल दिया।

"तो भैया, अब चलकर अपने कपड़े सुखाते हैं," उसने पेत्या से कहा।

वन-रक्षक के घर के क़रीब पहुंचने पर देनीसोव ने जंगल की तरफ़ देखते हुए अपना घोड़ा रोक लिया। जंगल में वृक्षों के बीच से जाकेट, छाल के जूते और कज़ानी टोपी पहने, कंधे पर बन्दूक़ रखे तथा पेटी में कुल्हाड़ा खोंसे, लम्बी-लम्बी टांगों से तेज़ तथा बड़े-बड़े डग भरता और लम्बी-लम्बी भुजाओं को ज़ोर से हिलाता-डुलाता हुआ एक आदमी चला आ रहा था। देनीसोव को देखकर इस आदमी ने जल्दी से झाड़ियों में कुछ फेंका, भीगने के कारण झुके हुए किनारोंवाली अपनी टोपी उतारी और अफ़सर के पास आया। यह तीख़ोन था। उसका चेचकरू, झुर्रियों और छोटी-छोटी आंखोंवाला चेहरा आत्मसन्तुष्ट प्रसन्नता से चमक रहा था। उसने अपना सिर ऊपर उठाया और मानो हंसी को दबाते हुए देनीसोव के चेहरे पर नज़रें टिका दीं।

"तो कहां थे तुम अब तक?" देनीसोव ने पूछा।

"कहां था? फ़्रांसीसियों का पीछा कर रहा था," तीख़ोन ने खरखरी, किन्तु गाती-सी भारी आवाज़ में जवाब दिया।

"तुम दिन को वहां क्यों जा घुसे थे? उल्लू कहीं के! तो क्या नहीं पकड़कर लाये?.."

"पकड़ने को तो पकड़ लिया," तीख़ोन ने कहा।

"कहां है वह?"

"पकड़ तो मैंने पौ फटने पर ही लिया था," छाल के जूते पहने तीख़ोन ने अपने टेढ़े-मेढ़े पांवों को एक-दूसरे से परे हटाते हुए कहा, "और मैं उसे जंगल में ले गया। मैंने देखा कि ढंग का आदमी हाथ नहीं आया। सोचा, जाकर किसी दूसरे, ज़्यादा काम के आदमी को पकड़ लेता हूं।"

"ओह, शैतान! वही बात निकली न, जो मैंने कही थी,"

देनीसोव ने कज़्ज़ाक-अफ़सर से कहा। "तुम उसे क्यों नहीं लाये?"

"उसे लाने से क्या फ़ायदा था," तीख़ोन ने खीझते हुए जल्दी से टोक दिया, "किसी काम का नहीं था। क्या मैं यह नहीं जानता कि आपको किस ढंग के आदमी चाहिये?"

"ओह, शैतान कहीं का!.. तो?"

"तो मैं दूसरे को पकड़ने गया," तीख़ोन ने अपनी बात जारी रखी, "मैं इस तरह से रेंगकर जंगल में गया और वहां लेट गया।" तीख़ोन उपस्थित लोगों को यह दिखाते हुए कि उसने यह कैसे किया, अप्रत्याशित और फुरती से पेट के बल लेट गया। "एक दिखाई दिया और मैंने उसे झपट लिया।" तीख़ोन तेज़ी तथा चुस्ती से उछलकर खड़ा हो गया। "मैं बोला, चलो कर्नल के पास। वह तो ऐसे चिल्ला उठा कि तोबा! वहां वे चार थे। अपनी छोटी-छोटी तलवारें लेकर वे मुझपर झपटे। तब मैंने भी उनपर अपना कुल्हाड़ा चलाया – तो लो, तुम भी चखो मज़ा," तीख़ोन हाथों को ज़ोर से हिलाकर, भयानक मुख-मुद्रा बनाकर तथा छाती तानकर चिल्ला उठा।

"वह तो हमने पहाड़ी पर से देखा था कि कैसे तुम सिर पर पांव रखकर डबरों में से भागे थे," कज़्ज़ाक-अफ़सर ने अपनी चमकती आंखों को सिकोड़ते हुए कहा।

पेत्या का हंसने को बहुत मन हो रहा था, किन्तु उसने देखा कि सभी अपनी हंसी को रोके हुए हैं। वह अपनी आंखों को तीख़ोन के चेहरे से हटाकर जल्दी-जल्दी कज़्ज़ाक-अफ़सर तथा देनीसोव की तरफ़ देख रहा था और समझ नहीं पा रहा था कि इस सब का क्या मतलब है।

"तुम बहुत ढोंग करने की कोशिश नहीं करो," देनीसोव ने ग़ुस्से से खांसते हुए कहा। "पहले को क्यों नहीं लाये?"

तीख़ोन एक हाथ से पीठ और दूसरे से सिर खुजलाने लगा तथा अचानक उसके सारे चेहरे पर मूर्खता और ख़ुशी भरी मुस्कान फैल गयी जिससे उसके बीच के दांत की कमी भी प्रकट हो गयी (इसी कारण उसे श्चेरबाती – यानी जिसका एक दांत टूटा हुआ हो – कहा जाता था)। देनीसोव मुस्करा दिया। पेत्या खिलखिलाकर हंस पड़ा और ख़ुद तीख़ोन भी इस हंसी में शामिल हो गया।

"वह तो ज़रा भी काम का नहीं था," तीख़ोन ने जवाब दिया। "कपड़े भी उसके ऐसे-वैसे ही थे, क्या फ़ायदा था उसे लाने में। यों

भी बड़ा गुस्ताख़ था, हुज़ूर। बोला – मैं तो अनरल का बेटा हूं, कहीं नहीं जाऊंगा।"

"बदमाश कहीं का!" देनीसोव कह उठा। "मुझे उससे पूछ-ताछ करनी थी..."

"मैंने पूछ-ताछ की थी," तीख़ोन ने उत्तर दिया। "वह बोला – हम बहुत कम जानता। कहता – हमारे लोग बहुत हैं, लेकिन सब ढीले-ढाले, नाम के फ़ौजी। ज़रा घुड़की दो और सब को बन्दी बना लो," तीख़ोन ने ख़ुशी तथा दृढ़ता से देनीसोव की आंखों में देखते हुए अपनी बात समाप्त की।

"तुम्हें तड़ातड़ सौ कोड़े लगाऊंगा और तब तुम्हारी अक़्ल ठिकाने आ जायेगी," देनीसोव ने कड़ाई से कहा।

"ऐसे गुस्से में क्यों आ रहे हो," तीख़ोन ने जवाब दिया, "क्या मैंने आपके वे फ़्रांसीसी नहीं देखे? ज़रा अन्धेरा हो जाने दो, तब जैसे कहोगे, वैसे ही, चाहोगे तो तीन भी ला दूंगा।"

"ख़ैर, आओ चलें," देनीसोव ने कहा। वन-रक्षक के घर तक वह झल्लाहट से त्योरी चढ़ाये और चुप्पी साधे हुए घोड़ा बढ़ाता रहा।

तीख़ोन पीछे-पीछे आ रहा था और पेत्या को किन्हीं बूटों के बारे में, जिन्हें उसने झाड़ियों में फेंक दिया था, कज़्ज़ाकों का उसके साथ मज़ाक़ करना और उसपर फबतियां कसना सुनायी दे रहा था।

तीख़ोन के शब्दों और उसकी मुस्कान के फलस्वरूप पेत्या को हंसी का जो ज़ोरदार दौरा पड़ गया था, जब वह दूर हो गया तो फ़ौरन समझ गया कि तीख़ोन ने उस आदमी को मार डाला था और इसलिये उसे बेचैनी-सी महसूस हुई। उसने मुड़कर ढोल-वादक फ़्रांसीसी छोकरे की तरफ़ देखा और उसका दिल टीस उठा। किन्तु उसकी यह परेशानी क्षण भर को ही बनी रही। उसने इस चीज़ की ज़रूरत महसूस की कि अपना सिर तान ले, हिम्मत से काम ले और अपनी शान दिखाते हुए कज़्ज़ाक-अफ़सर से अगले दिन की मुहिम के बारे में पूछे ताकि अपने को उन लोगों के अयोग्य न सिद्ध कर दे जिनके साथ था।

देनीसोव ने जिस अफ़सर को दोलोख़ोव के पास भेजा था, वह रास्ते में ही मिल गया और उसने सूचित किया कि थोड़ी देर में दोलोख़ोव ख़ुद यहां आयेगा और उसकी तरफ़ से तो सब कुछ ठीक-ठाक है।

देनीसोव यकायक रंग में आ गया और उसने पेत्या को अपने पास बुलाकर उससे कहा :

"तुम अपना हाल-चाल सुनाओ।"

७

मास्को से रवाना होने के बाद पेत्या घरवालों से अलग होकर अपनी रेजिमेंट में चला गया और जल्द ही छापेमारों के एक बहुत बड़े दल की कमान सम्भालनेवाले जनरल का अर्दली बना दिया गया। फ़ौजी अफ़सर बनाये जाने और ख़ास तौर पर युद्धरत सेना में शामिल होने के बाद, जिसके अन्तर्गत उसने व्याज़्मा की लड़ाई में हिस्सा लिया, पेत्या लगातार इस बात की सुखद चेतना मे बहुत जोश में रहता था कि अब वह वयस्क हो गया है तथा हमेशा ही बहादुरी का कोई असली कारनामा करने का मौक़ा ढूंढ़ा करता था। सेना में उसने जो कुछ देखा और अनुभव किया था, उससे वह बहुत ख़ुश था, किन्तु साथ ही उसे निरन्तर ऐसा लगता था कि जहां वह नहीं है, वहीं वास्तविक वीर-कृत्य हो रहे हैं। इसीलिये वह हमेशा वहां जाने की उतावली में रहता था, जहां वह नहीं था।

२१ अक्तूबर को जब उसके जनरल ने किसी को देनीसोव के छापेमार दल में भेजने की इच्छा व्यक्त की तो पेत्या ने जाने के लिये ऐसे गिड़गिड़ाकर मिन्नत की कि जनरल इन्कार नहीं कर सका। किन्तु उसे विदा करते हुए जनरल को व्याज़्मा की लड़ाई के वक़्त पेत्या की पागलपन की एक हरकत याद हो आई। उस वक़्त उसने यह किया था कि जिस जगह उसे भेजा गया था, वहां पहुंचने के लिये सड़क पर ही अपना घोड़ा बढ़ाने के बजाय वह उसे सरपट दौड़ाता हुआ फ़्रांसीसियों की गोलाबारी के क्षेत्र में ले गया था और वहां उसने पिस्तौल से दो बार गोलियां चलायी थीं। इसीलिये अब उसे भेजते वक़्त जनरल ने उसके लिये देनीसोव के किसी भी तरह के कार्य-कलाप में हिस्सा लेने की मनाही कर दी थी। यही कारण था कि जब देनीसोव ने उससे यह पूछा था कि वह रुक सकता है या नहीं तो पेत्या झेंप गया था और

उसके चेहरे पर लाली दौड़ गयी थी। वन-छोर पर पहुंचने के पहले पेत्या यही मानता था कि अपने कर्त्तव्य का कड़ाई से पालन करते हुए उसे इसी वक़्त लौट जाना चाहिये। लेकिन जब उसने फ़्रांसीसियों को देखा, तीख़ोन को देखा और यह जान गया कि आज रात को ज़रूर ही फ़्रांसीसियों पर हमला किया जायेगा तो उसने सभी जवान लोगों की तरह, जो आन की आन में अपनी राय बदल लेते हैं, मन ही मन यह तय कर लिया कि उसका जनरल, जिसकी वह अब तक बड़ी इज़्ज़त करता था, एक कमीना जर्मन है, कि देनीसोव हीरो है, कज़्ज़ाक-अफ़सर हीरो है, तीख़ोन भी हीरो है और ऐसे गाढ़े वक़्त में उसके लिये उन्हें छोड़कर जाना शर्म की बात होगी।

देनीसोव, पेत्या और कज़्ज़ाक-अफ़सर जब वन-रक्षक के घर के क़रीब पहुंचे तो झुटपुटा होने लगा था। हल्के अन्धेरे में ज़ीन कसे घोड़े, वन-प्रांगण में काम चलाऊ झोंपड़ियां बनाते और वन के गहरे गड्ढे में आग जलाते (ताकि फ़्रांसीसियों को धुआं नज़र न आये) कज़्ज़ाक और हुस्सार दिखाई दे रहे थे। वन-रक्षक के छोटे-से घर की ड्योढ़ी में आस्तीनें ऊपर चढ़ाये हुए एक कज़्ज़ाक भेड़ को काट रहा था। घर के अन्दर देनीसोव के दल के तीन अफ़सर दरवाज़े को मेज़ की शक्ल दे रहे थे। पेत्या ने अपने गीले कपड़े उतारकर सूखने के लिये दे दिये और उसी वक़्त खाने की मेज़ फ़िट करने में अफ़सरों का हाथ बंटाने लगा।

दस मिनट बाद नेपकिन से ढकी हुई मेज़ तैयार हो गयी। उसपर वोद्का, फ़ौजी बोतल में रम, सफ़ेद डबलरोटी, भेड़ का भुना हुआ गोश्त और नमक रखा था।

अफ़सरों के साथ खाने की मेज़ के सामने बैठा और चिकने हाथों से भेड़ का चर्बीवाला तथा मज़ेदार गोश्त तोड़ता हुआ पेत्या सभी लोगों के प्रति कोमल प्रेम की बाल-सुलभ मनःस्थिति में था और इसके परिणामस्वरूप वह यह भी विश्वास करता था कि उसकी भांति दूसरे लोग उसे भी प्यार करते हैं।

"तो आपका क्या ख़्याल है, वसीली फ़्योदोरोविच," उसने देनीसोव को सम्बोधित किया, "इसमें कोई हर्ज तो नहीं कि मैं एक दिन को आपके साथ रुक जाऊं?" और जवाब का इन्तज़ार किये बिना उसने ख़ुद ही अपने को यह उत्तर दे दिया – "मुझसे सब कुछ मालूम करने

को कहा गया है, सो मैं मालूम कर लूंगा ... सिर्फ़ आप मुझे सबसे ... ज़्यादा महत्त्वपूर्ण जगह पर जाने दीजियेगा ... मुझे इनाम हासिल करने की तमन्ना नहीं है ... लेकिन मैं यह चाहता हूं ..." पेत्या ने दांतों को भींचा और सिर को ऊपर की तरफ़ झटका देते तथा हाथ लहराते हुए अपने इर्द-गिर्द देखा।

"सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण जगह पर ..." देनीसोव ने मुस्कराते हुए पेत्या के शब्द दोहराये।

"मेहरबानी करके आप कुछ सैनिक ज़रूर मेरी कमान में दे दीजियेगा, बेशक कुछ ही लोग," पेत्या कहता गया। "आपको भला इससे क्या फ़र्क़ पड़नेवाला है? ओह, आपको चाकू की ज़रूरत है?" उसने उस अफ़सर को सम्बोधित किया जो भेड़ का मांस काटना चाहता था। और पेत्या ने अपना खटकेदार चाकू उसे दे दिया।

अफ़सर ने चाकू की तारीफ़ की।

"आप इसे अपने पास ही रख लीजिये। मेरे पास ऐसे बहुत-से हैं ..." पेत्या ने झेंप से लाल होते हुए कहा। "हे भगवान! मैं तो बिल्कुल भूल ही गया था," पेत्या अचानक ज़ोर से कह उठा। "मेरे पास तो ग़ज़ब की किशमिश है। जानते हैं, वह बिना बीजोंवाली। हमारे यहां नया दुकानदार आया है – बहुत ही बढ़िया चीज़ें हैं उसकी दुकान में। मैंने दस पौण्ड किशमिश ख़रीद ली। कोई न कोई मीठी चीज़ खाने को मन करता रहता है। आप लोग खाना चाहेंगे न?.." पेत्या भागकर ड्योढ़ी में अपने कज़्ज़ाक के पास गया और कुछ थैले ले आया जिनमें कोई पांचेक पौण्ड किशमिश थी। "खाइये, महानुभावो, खाइये।"

"आपको कॉफ़ीदान की तो ज़रूरत नहीं?" उसने कज़्ज़ाक-अफ़सर से पूछा। "मैंने अपनी रेजिमेंट के दुकानदार से ख़रीदा है, लाजवाब है! बहुत ही बढ़िया चीज़ें हैं उसकी दुकान में। और बड़ा ही ईमानदार आदमी है वह। यही सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। मैं आप लोगों को ज़रूर भेजूंगा कॉफ़ीदान। यह भी मुमकिन है कि आपके यहां चक़मक़ पत्थर ख़त्म हो गये हों – कभी ऐसा भी हो जाता है। मैं उन्हें अपने साथ लाया हूं, यहीं मेरे पास हैं ..." उसने थैलों की तरफ़ इशारा किया, "एक सौ चक़मक़। बहुत ही सस्ते ख़रीदे हैं मैंने। जितने चाहिये, कृपया उतने ले लीजिये, बेशक सारे ही ..." और अचानक इस चीज़ से

घबराकर कि कहीं बहुत बढ़-चढ़कर तो बातें नहीं कर रहा है, वह चुप हो गया और उसके चेहरे पर लाली दौड़ गयी।

वह याद करने लगा कि उसने बेवक़ूफ़ी की कोई और बात तो नहीं कह दी। और आज की सभी बातों को याद करते हुए उसे फ़्रांसीसी ढोल-वादक छोकरे का ध्यान आ गया। "हम तो यहां ख़ूब मज़े हैं, लेकिन वह? कहां है वह? उसे कुछ खिलाया-पिलाया भी गया या नहीं? उसके साथ बुरा बर्ताव तो नहीं किया गया?" उसने सोचा। किन्तु इस चेतना से कि चक़मक़ों के बारे में उसने डींग मार दी है, उसे अब बात करते हुए घबराहट हो रही थी।

"पूछने को बहुत मन हो रहा है," पेत्या सोच रहा था, "लेकिन ये लोग सोचेंगे – ख़ुद छोकरा है और इसलिये छोकरे की ही फ़िक्र कर रहा है। कल मैं इन्हें दिखाऊंगा कि कैसा छोकरा हूं मैं! उसके बारे में पूछना क्या शर्म की बात होगी?" पेत्या दुविधा में था। "बेशक होती रहे शर्म की बात!" पेत्या शर्म से लाल होते और अफ़सरों की ओर इस शंका से देखते हुए कि वे उसपर हंसेंगे तो नहीं, इसी वक़्त कह उठा:

"मैं उस लड़के को यहां बुला लूं जिसे बन्दी बनाया गया है? उसे खाने को कुछ दे दिया जाये... हो सकता है..."

"हां, मुसीबत का मारा लड़का," देनीसोव ने इस विचार में सम्भवत: कुछ भी लज्जाजनक न अनुभव करते हुए जवाब दिया। "उसे यहां बुलवाना चाहिये। उसका नाम विनसेंट बोस्से है। उसे बुलवाना चाहिये।"

"मैं ख़ुद बुला लाता हूं," पेत्या ने कहा।

"हां, बुला लाओ, बुला लाओ। मुसीबत का मारा लड़का," देनीसोव ने दोहराया।

देनीसोव ने जब यह कहा तो पेत्या दरवाज़े के क़रीब खड़ा था। वह अफ़सरों के बीच से गुज़रकर देनीसोव के क़रीब गया।

"मेरे प्यारे, इसके लिये मैं आपको चूमे बिना नहीं रह सकता," उसने कहा। "ओह, कितनी अच्छी बात है यह! कितना अच्छा है यह सब!" और वह देनीसोव को चूमकर बाहर भाग चला।

"बोस्से! विनसेंट!" दरवाज़े के पास रुककर उसने पुकारा।

"हुज़ूर, किसे बुलाना चाहते हैं आप?" अन्धेरे में किसी ने पूछा।

पेत्या ने जवाब दिया कि उस फ़्रांसीसी लड़के को जिसे आज बन्दी बनाया गया है।

"अच्छा! वेसेन्नी को?" कज़्ज़ाक ने कहा।

फ़्रांसीसी लड़के के विनसेंट नाम को कज़्ज़ाकों ने रूसी ढंग से वेसेन्नी बना दिया था और किसानों तथा सैनिकों ने विसेन्या। उसके नाम के ये दोनों ही बदले हुए रूप चूंकि वसन्त के पर्यायवाची है, इसलिये वे जवान होते हुए लड़के के सर्वथा उपयुक्त थे।

"वह अलाव के क़रीब बैठा हुआ आग ताप रहा है। अरे, विसेन्या! विसेन्या! वेसेन्नी!" अन्धेरे में आगे-आगे बढ़ती आवाज़ें और हंसी सुनायी दी।

"लड़का खासा चुस्त है," पेत्या के क़रीब खड़े हुस्सार ने कहा। "हमने अभी-अभी उसे खाना खिलाया है। बहुत ही भूखा था वह!"

अन्धेरे में क़दमों की आहट सुनायी दी और अपने नंगे पांवों को कीचड़ में छपछपाता हुआ फ़्रांसीसी ढोल-वादक छोकरा दरवाज़े के पास आया।

"अरे, आप आ गये!" पेत्या ने फ़्रांसीसी में कहा। "कुछ खाना चाहते हैं? डरें नहीं, आपको कोई भी किसी तरह की हानि नहीं पहुंचायेगा।" पेत्या ने झिझकते हुए और स्नेहपूर्वक उसका हाथ छूते हुए यह भी कह दिया। "भीतर चलिये, भीतर चलिये।"

"धन्यवाद, महानुभाव," ढोल-वादक लड़के ने कांपती, लगभग बच्चों जैसी आवाज़ में जवाब दिया और अपने गन्दे पांवों को दहलीज़ पर रगड़कर साफ़ करने लगा। पेत्या इस ढोल-वादक लड़के से बहुत कुछ कहना चाहता था, मगर उसे ऐसा करने की हिम्मत नहीं हो रही थी। वह दुविधा में पांव बदलते हुए उसके क़रीब ड्योढ़ी में खड़ा था। कुछ क्षण बाद उसने अन्धेरे में उसका हाथ अपने हाथ में लेकर दबाया।

"चलिये, भीतर चलिये," उसने स्नेहपूर्वक फुसफुसाते हुए इतना ही दोहराया।

"ओह, मैं कैसे इसकी मदद करूं!" पेत्या ने अपने आपसे कहा और दरवाज़ा खोलकर इस लड़के को अपने से पहले भीतर जाने दिया।

ढोल-वादक लड़के के भीतर चले जाने पर पेत्या ने यह मानते हुए कि उसकी तरफ़ ध्यान देना उसके लिये अपमानजनक बात होगी,

वह उससे दूर जा बैठा। किन्तु वह अपनी जेब में पैसों को छू रहा था और इस उलझन में पड़ा हुआ था कि ढोल-वादक छोकरे को कुछ पैसे देना शर्मनाक तो नहीं होगा।

८

दोलोख़ोव के आ जाने से पेत्या का ध्यान ढोल-वादक फ़्रांसीसी छोकरे की तरफ़ से हट गया जिसे देनीसोव के आदेश पर पीने को कुछ वोद्का और खाने को भेड़ का मांस दे दिया गया था तथा रूसी पोशाक पहना दी गयी थी ताकि वह इसी दल में बना रहे और उसे अन्य बन्दियों के साथ न भेज दिया जाये। दोलोख़ोव की असाधारण वीरता और फ़्रांसीसियों के प्रति उसकी क्रूरता के बारे में पेत्या ने फ़ौज में ही बहुत-से क़िस्से-कहानियां सुने थे और इसलिये दोलोख़ोव के यहां आते ही पेत्या उसे टकटकी बांधकर देखता हुआ अधिकाधिक अकड़-शान दिखा रहा था, सिर को ख़ूब ताने था, ताकि अपने को दोलोख़ोव जैसे आदमी की संगत के भी लायक़ ज़ाहिर कर सके।

दोलोख़ोव के रंग-ढंग की सरलता से पेत्या दंग रह गया।

देनीसोव काकेशिया के पहाड़ी लोगों के ढंग का कोट पहनता था, उसने दाढ़ी बढ़ा रखी थी, उसकी छाती पर चमत्कारी सन्त निकोलाई की प्रतिमा लटक रही थी और उसका हर अन्दाज़, उसका पूरा रंग-ढंग उसके ख़ास ओहदे या पद को ज़ाहिर करता था। दोलोख़ोव, जो पहले, मास्को में ईरानी ढंग का सूट पहना करता था, अब पूरी तरह से गार्ड-सेना का अफ़सर लगता था। उसने सफ़ाचट दाढ़ी बना रखी थी, वह गार्ड-सेना का पैडदार कोट पहने था, जिसपर सेंट जार्ज का पदक लगा हुआ था और उसके सिर पर सीधी, साधारण फ़ौजी टोपी थी। गीले लबादे को एक कोने में उतारकर और किसी से भी सलाम-दुआ किये बिना वह सीधा देनीसोव के पास जाकर स्थिति के बारे में पूछ-ताछ करने लगा। देनीसोव ने उसे बताया कि बड़े छापामार दल फ़्रांसीसियों के इस काफ़ले पर हमला करने के कैसे इरादे रखते थे, पेत्या क्या सन्देश लेकर आया था और उसने दोनों जनरलों को क्या जवाब दिया था। इसके बाद देनीसोव ने उसे वह सब कह सुनाया जो उसे

फ़ांसीसी सेना-दल के बारे में मालूम था।

"यह सब तो ठीक है, लेकिन यह मालूम करना ज़रूरी है कि फ़्रांसीसी सेना किस तरह की है और उसकी सैनिक-संख्या कितनी है," दोलोख़ोव ने उत्तर दिया, "वहां जाकर देखना होगा। यह जाने बिना कि उनकी संख्या कितनी है, हमें हरगिज़ कोई क़दम नहीं उठाना चाहिये। मुझे तो हर चीज़ क़ायदे से करना पसन्द है। आप महानुभावों में से क्या कोई उनके शिविर में मेरे साथ नहीं चलना चाहेगा? मेरे पास उनकी वर्दी भी है।"

"मैं, मैं ... मैं चलूंगा आपके साथ!" पेत्या ने चिल्लाकर कहा।

"तुम्हारे वहां जाने की कोई ज़रूरत नहीं है," देनीसोव ने दोलोख़ोव को सम्बोधित करते हुए कहा, "और इसे तो मैं किसी भी हालत में नहीं जाने दूंगा।"

"यह भी ख़ूब रही!" पेत्या ज़ोर से कह उठा। "किस कारण नहीं जाऊंगा मैं?.."

"इस कारण कि ऐसा करने की कोई ज़रूरत नहीं है।"

"आप मुझे क्षमा करें, क्योंकि, क्योंकि ... मैं जाऊंगा और क़िस्सा ख़त्म। आप मुझे अपने साथ ले चलेंगे न?" उसने दोलोख़ोव से पूछा।

"क्यों नहीं ..." दोलोख़ोव ने फ़्रांसीसी ढोल-वादक छोकरे को ग़ौर से देखते हुए बेख़्याली से जवाब दिया।

"बहुत समय से यह छोकरा है तुम्हारे पास?" उसने देनीसोव से पूछा।

"आज ही बन्दी बनाया गया है, मगर उसे कुछ भी मालूम नहीं। मैंने उसे अपने दल में ही रख लिया है।"

"और बाक़ी क़ैदियों का तुम क्या करते हो?" दोलोख़ोव ने जानना चाहा।

"क्या करता हूं? रसीद लेकर भेज देता हूं!" देनीसोव अचानक झेंप से लाल होते हुए चिल्ला उठा। "मैं तो बेधड़क यह कह सकता हूं कि मेरी आत्मा पर एक भी आदमी की हत्या का पाप नहीं है। मैं दो टूक ही कहना चाहता हूं कि सैनिक की इज़्ज़त पर बट्टा लगाने के बजाय तीस या तीन सौ क़ैदियों को भी पहरेदारों की देख-रेख में शहर भेजना भला कौन-सा मुश्किल काम है?"

"सोलह साल के इस जवान काउंट को इस तरह की भावुक

बातें करना शोभा दे सकता है," दोलोख़ोव ने रुखाई से व्यंग्य-बाण छोड़ा, "लेकिन तुम्हें तो यह सब छोड़ देना चाहिये।"

"मैं, मैं तो कुछ भी नहीं कह रहा हूं, सिर्फ़ इतना ही कह रहा हूं कि ज़रूर आपके साथ जाऊंगा," पेत्या ने घबराते-घबराते कहा।

"लेकिन मेरे भाई, हमें तो ऐसी नज़ाकतों से हाथ धो लेना चाहिये," दोलोख़ोव कहता गया मानो उसे देनीसोव को चिढ़ानेवाले इस विषय की चर्चा करते हुए खास खुशी हासिल हो रही हो। "इसको तुमने किसलिये अपने दल में रख लिया है?" उसने भर्त्सना से सिर हिलाते हुए पूछा। "इसलिये कि तुम्हें इसपर दया आ रही है? हम-तुम तो जानते हैं कि इन रसीदों का क्या महत्त्व है। तुम सौ आदमी भेजोगे और पहुंचेंगे तीस। बाक़ी या तो भूख से मर जायेंगे या मार डाले जायेंगे। हर हालत में नतीजा तो एक ही निकलेगा। तो क्या यही ज़्यादा अच्छा नहीं होगा कि उन्हें फ़ौरन ही दूसरी दुनिया में पहुंचा दिया जाये?"

कज़्ज़ाक-अफ़सर भूरे रंग की अपनी आंखों को सिकोड़े हुए अनुमोदन के अन्दाज़ में सिर हिला रहा था।

"यह तो ठीक है, इसमें तर्क-वितर्क करने की कोई बात नहीं है। मैं अपनी आत्मा को कलंकित नहीं करना चाहता। तुम कहते हो कि वे मर जायेंगे। ठीक है, मर जायें। लेकिन मेरे कारण नहीं।"

दोलोख़ोव हंस पड़ा।

"तुम क्या सोचते हो कि उन्होंने मुझे पकड़ लेने का बीसियों बार हुक्म नहीं दिया है? अगर वे मुझे या तुम्हें पकड़ लेंगे तो सूरमाओं जैसे तुम्हारे इन आदर्शों के बावजूद नज़दीक के किसी पेड़ पर सूली के फंदे में लटका देंगे।" वह कुछ क्षण को चुप हो गया। "ख़ैर, अपने काम में जुटना चाहिये। मेरे कज़्ज़ाक से मेरा थैला लाने को कहिये! मेरे पास उसमें दो फ़्रांसीसी वर्दियां हैं। तो चल रहे हो मेरे साथ?" उसने पेत्या से पूछा।

"मैं? हां, हां, ज़रूर चल रहा हूं," उत्साह से लगभग रोने की हद तक लाल होते और देनीसोव की ओर देखते हुए पेत्या ने चिल्लाकर कहा।

दोलोख़ोव और देनीसोव जिस वक़्त इस चीज़ पर बहस कर रहे थे कि क़ैदियों के साथ क्या सलूक किया जाये, पेत्या को फिर से बेचैनी और

अप्रीतिकर-सी भावना की अनुभूति हुई, लेकिन इस बार भी वह इनकी बात को स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाया। "अगर उम्र में बड़े और मशहूर लोगों का ऐसा ख़्याल है तो इसका मतलब है कि ऐसा ही होना चाहिये, कि ऐसा करना ही ठीक है," वह सोच रहा था। "और सबसे बड़ी बात तो यह है कि देनीसोव को यह सोचने की जुर्रत नहीं होनी चाहिये कि मैं उसका हुक्म बजाता हूं, कि वह मुझे अपने इशारों पर नचा सकता है। मैं अवश्य ही दोलोख़ोव के साथ फ़्रांसीसियों के शिविर में जाऊंगा। अगर वह जा सकता है तो मैं भी जा सकता हूं!"

पेत्या को रोकने की देनीसोव की सारी कोशिशों के जवाब में उसने यही कहा कि उसे भी ऐसे-वैसे नहीं, बल्कि हर चीज़ ढंग से करना पसन्द है और अपनी जान के लिये ख़तरे के बारे में तो वह कभी सोचता ही नहीं।

"क्योंकि, आप ख़ुद ही सोचिये, अगर हमें यक़ीनी तौर पर यह मालूम नहीं होगा कि उनकी संख्या कितनी है तो हम दोनों के बजाय सैकड़ों की जान संकट में पड़ सकती है। इसके अलावा, मैं बेहद चाहता हूं कि वहां जाऊं और इसलिये ज़रूर, ज़रूर ही जाऊंगा, आप मुझे नहीं रोक सकेंगे," उसने कहा, "आपके ऐसा करने का तो और भी बुरा नतीजा निकलेगा..."

९

दोलोख़ोव और पेत्या फ़्रांसीसी फ़ौजी ओवरकोट और टोपी पहनकर तथा घोड़ों पर सवार होकर जंगल के उस रास्ते पर चले गये, जहां से देनीसोव ने फ़्रांसीसियों के शिविर को देखा था और घुप अन्धेरे में जंगल से निकलकर अपने घोड़ों को नीचे, घाटी की तरफ़ बढ़ा ले चले। दोलोख़ोव ने अपने कज़्ज़ाकों को यहीं रुककर इन्तज़ार करने को कहा और पुल की तरफ़ जानेवाले रास्ते पर तेज़ दुलकी चाल से घोड़ा दौड़ाने लगा। उत्तेजना के कारण बेहद धड़कते दिल के साथ पेत्या भी उसकी बग़ल में अपना घोड़ा दौड़ा रहा था।

"अगर हम फंस जायेंगे तो मैं ज़िन्दा तो उनके हाथ नहीं आऊंगा।

मेरे पास पिस्तौल है," पेत्या ने फुसफुसाकर कहा।

"रूसी नहीं बोलो," दोलोख़ोव ने जल्दी-जल्दी फुसफुसाते हुए उसे चेतावनी दी। इसी वक़्त अन्धेरे में "कौन जा रहा है?" फ़्रांसीसी सन्तरी की ऊंची आवाज़ और बन्दूक़ की खटक सुनायी दी।

पेत्या का चेहरा उत्तेजना से तपतमा उठा और उसने पिस्तौल पर हाथ रख लिया।

"छठी रेजिमेंट के उलान," दोलोख़ोव ने घोड़े की चाल धीमी या तेज़ किये बिना जवाब दिया। अन्धेरे में सन्तरी की काली आकृति की पुल पर झलक मिल रही थी।

"संकेत-शब्द?"

दोलोख़ोव ने घोड़े की चाल धीमी की और उसे क़दम-क़दम बढ़ाने लगा।

"यह बताओ कि कर्नल जेरार यहीं है या नहीं?" उसने सन्तरी से पूछा।

"संकेत-शब्द!" सन्तरी ने जवाब दिये बिना और रास्ता रोकते हुए कहा।

"जब कोई अफ़सर गश्त करता है तो उससे संकेत-शब्द नहीं पूछा जाता..." दोलोख़ोव ने अचानक भड़कते और सन्तरी की तरफ़ सीधे घोड़ा बढ़ाते हुए जवाब दिया। "मैं पूछ रहा हूं कि कर्नल यहां है या नहीं?"

और एक तरफ़ हट जानेवाले सन्तरी के जवाब का इन्तज़ार किये बिना दोलोख़ोव घोड़े को क़दम-क़दम चलाते हुए पहाड़ी की तरफ़ बढ़ा ले चला।

रास्ता लांघते हुए एक अन्य व्यक्ति की काली आकृति देखकर दोलोख़ोव ने उससे पूछा कि कमांडर और अफ़सर लोग कहां पर हैं? कंधे पर बोरी लादे हुए यह व्यक्ति, जो सैनिक था, दोलोख़ोव के घोड़े के क़रीब आ गया, उसे थपथपाया और सीधे-सादे तथा मैत्रीपूर्ण ढंग से यह बताया कि कमांडर और अफ़सर कुछ ऊंचाई पर पहाड़ के दायीं ओर को फ़ार्म के अहाते में हैं (उसने ज़मींदार के घर को फ़ार्म कहा था)।

सड़क को लांघकर, जिसके दोनों ओर अलावों के क़रीब फ़्रांसीसी भाषा सुनायी दे रही थी, दोलोख़ोव ने ज़मींदार के मकान के अहाते

की ओर अपना घोड़ा मोड़ दिया। फाटक के भीतर जाकर वह घोड़े से उतरा और बहुत तेज़ जलते हुए उस बड़े अलाव के क़रीब गया जिसके गिर्द बैठे कुछ लोग ऊंचे-ऊंचे बोल-बतिया रहे थे। अलाव के एक सिरे पर देगचे में कुछ पक रहा था और फ़्रांसीसी फ़ौजी टोपी तथा नीला फ़ौजी ओवरकोट पहने, आग की रोशनी में खूब चमकता तथा घुटनों के बल खड़ा एक सैनिक उसमें गज़ से कुछ हिला रहा था।

"ओह, उस शैतान के साथ पार पाना बड़ा मुश्किल है," अलाव के दूसरी ओर अन्धेरे में बैठे हुए एक अफ़सर ने कहा।

"अरे, वह उनकी अक्ल ठिकाने कर देगा," दूसरे ने हंसते हुए बात आगे बढ़ायी। अपने घोड़ों की लगामें थामे अलाव की तरफ़ आ रहे दोलोख़ोव और पेत्या के क़दमों की आवाज़ सुनकर तथा अन्धेरे में इन्हें ग़ौर से देखते हुए दोनों फ़्रांसीसी चुप हो गये।

"नमस्ते, महानुभावो!" दोलोख़ोव ने बहुत स्पष्ट और ऊंची आवाज़ में फ़्रांसीसी में कहा।

अलाव के क़रीब अफ़सर हिले-डुले और उनमें से ऊंचे क़द तथा लम्बी गरदनवाला एक अफ़सर आग के गिर्द घूमकर दोलोख़ोव के क़रीब आया।

"अरे, यह आप हैं क्लेमान?" वह बोला, "कमबख़्त आप कहां से ..." उसने अपना वाक्य पूरा नहीं किया, क्योंकि समझ गया था कि इस आदमी को पहचानने के मामले में उससे भूल हुई है। ज़रा नाक-भौंह सिकोड़कर एक अपरिचित की तरह उसने दोलोख़ोव का अभिवादन किया और पूछा कि वह उनकी क्या सेवा कर सकता है। दोलोख़ोव ने कहा कि वह और उसका साथी अपनी रेजिमेंट तक पहुंचना चाहते हैं और सभी को सम्बोधित करते हुए उसने जानना चाहा कि छठी रेजिमेंट के बारे में उन्हें कुछ मालूम है या नहीं। किसी को कुछ भी मालूम नहीं था। पेत्या को लगा कि फ़्रांसीसी अफ़सर उसे तथा दोलोख़ोव को शत्रुता तथा सन्देह की दृष्टि से देख रहे हैं। कुछ क्षण तक सभी चुप रहे।

"अगर आप लोग भोजन पाने की आशा कर रहे हैं तो आपको निराश होना पड़ेगा," अलाव के पीछे से किसी ने दबी-दबी हंसी के साथ कहा।

दोलोख़ोव ने जवाब दिया कि वे भूखे नहीं हैं और उन्हें रात को ही आगे जाना है।

दोलोख़ोव ने देगचे में कुछ हिला रहे सैनिक को दोनों घोड़ों की लगामें पकड़ा दीं और लम्बी गरदनवाले अफ़सर की बग़ल में अलाव के पास उकड़ूं बैठ गया। दोलोख़ोव पर नज़रें गड़ाये हुए इस अफ़सर ने पुनः उससे पूछा कि वह किस रेजिमेंट में काम करता है। दोलोख़ोव ने ऐसे ज़ाहिर करते हुए मानो यह सवाल सुना ही न हो, कोई जवाब नहीं दिया, जेब से फ़्रांसीसी पाइप निकालकर उसके कश खींचने लगा और अफ़सरों से यह पूछा कि रास्ता किस हद तक कज़्ज़ाकों के ख़तरे से खाली है।

"ये बदमाश तो सभी जगह पर हैं," अलाव के पीछे से एक अफ़सर ने जवाब दिया।

दोलोख़ोव ने कहा कि कज़्ज़ाक उसके तथा उसके साथी के समान पिछड़ जानेवाले लोगों के लिये ही ख़तरनाक हैं और बड़े सेना-दलों पर हमला करने की तो वे शायद हिम्मत ही नहीं करते होंगे, उसने प्रश्नात्मक ढंग से इतना और जोड़ दिया। किसी ने भी इसका कोई जवाब नहीं दिया।

"अब तो यह यहां से वापस चल देगा," अलाव के सामने खड़ा और दोलोख़ोव की बातचीत सुनते हुए पेत्या सोच रहा था।

किन्तु दोलोख़ोव ने बन्द हो जानेवाली बातचीत फिर से शुरू कर दी और सीधे-सीधे ही यह पूछने लगा कि उनकी बटालियन में कितने सैनिक हैं, कितनी बटालियनें हैं, कितने क़ैदी हैं। इनके सेना-दल के साथ जानेवाले रूसी क़ैदियों के बारे में पूछते हुए दोलोख़ोव ने कहा :

"इन लाशों को अपने साथ-साथ घसीटते रहना बड़ा बेहूदा मामला है। इन बदमाशों को गोलियों से भून डालना ही कहीं अच्छा होगा," और ऐसे अजीब ढंग से अट्टहास कर उठा कि पेत्या को लगा कि फ़्रांसीसियों के सामने अभी इस धोखे की क़लई खुल जायेगी और वह हठात अलाव से एकदम पीछे हट गया। किसी ने भी दोलोख़ोव के शब्दों और अट्टहास के जवाब में कुछ नहीं कहा तथा एक फ़्रांसीसी अफ़सर, जो नज़र नहीं आ रहा था (वह फ़ौजी ओवरकोट में लिपटा-लिपटाया वहां लेटा हुआ था), उठकर बैठ गया और उसने कानाफूसी करते हुए अपने साथी से कुछ कहा। दोलोख़ोव उठा और उसने घोड़ों की लगामें थामे हुए सैनिक को पुकारा।

"घोड़े दे देंगे या नहीं ?" बरबस दोलोख़ोव के साथ सटते हुए पेत्या ने सोचा।

सैनिक घोड़े ले आया।

"नमस्ते, महानुभावो," दोलोख़ोव ने कहा।

पेत्या ने भी नमस्ते कहना चाहा, लेकिन उसकी ज़बान ने उसका साथ नहीं दिया। अफ़सर आपस में कुछ कानाफूसी करते रहे। दोलो-ख़ोव को घोड़े पर सवार होने में काफ़ी देर लगी, क्योंकि उसका घोड़ा बेचैनी से इधर-उधर हिल-डुल रहा था। इसके बाद उसे क़दम-क़दम चलाता हुआ वह फाटक से बाहर चला गया। पेत्या उसकी बग़ल में अपना घोड़ा बढ़ा रहा था, बेहद चाह रहा था कि मुड़कर देखे कि फ़ांसीसी उनके पीछे दौड़ रहे हैं या नहीं, मगर वह ऐसा करने की हिम्मत नहीं कर पा रहा था।

सड़क पर आने के बाद दोलोख़ोव मैदान की तरफ़ वापस जाने के बजाय गांव के साथ-साथ घोड़े को बढ़ाता रहा। एक जगह पर उसने घोड़ा रोका और कान लगाकर कुछ सुनने लगा।

"सुन रहे हो ?" उसने पेत्या से कहा।

पेत्या ने रूसी आवाज़ें पहचान लीं और अलावों के क़रीब उसे रूसी क़ैदियों की काली-सी दिखती आकृतियों की झलक मिली। पुल की ओर नीचे जाकर ये दोनों सन्तरी के पास से आगे निकल गये जो एक भी शब्द कहे बिना मुंह लटकाये हुए पुल पर इधर-उधर आ-जा रहा था। यहां से ये घाटी में चले गये, जहां कज़्ज़ाक इनका इन्तज़ार कर रहे थे।

"तो अब विदा। देनीसोव से कह देना कि पौ फटने पर पहली गोली चलते ही," दोलोख़ोव ने यह कहकर घोड़ा आगे बढ़ाना चाहा, मगर पेत्या ने उसका हाथ पकड़ लिया।

"ओह !" वह ज़ोर से कह उठा। "आप तो एकदम हीरो हैं। अहा, क्या कमाल किया है आपने ! बिल्कुल लाजवाब ! कितना प्यार करता हूं मैं आपको।"

"ठीक है, ठीक है," दोलोख़ोव ने कहा, किन्तु पेत्या ने उसे जाने नहीं दिया। दोलोख़ोव ने अन्धेरे में यह महसूस किया कि पेत्या उसकी ओर झुक रहा है और उसे चूमना चाहता है। दोलोख़ोव ने उसे चूमा, हंस दिया और अपने घोड़े को मोड़कर अन्धेरे में ग़ायब हो गया।

वन-रक्षक के घर में वापस लौटने पर पेत्या ने देनीसोव को ड्योढ़ी में पाया। देनीसोव अत्यधिक विह्वल, बेचैन और इस कारण अपने पर बेहद झल्लाता हुआ कि उसने पेत्या को दोलोख़ोव के साथ जाने दिया, उसकी राह देख रहा था।

"शुक्र है भगवान का!" वह चिल्ला उठा, "हां, शुक्र है भगवान का!" पेत्या की उत्साहपूर्ण कहानी सुनते हुए वह दोहराता रहा। "लेकिन तुमपर शैतान की मार, तुम्हारे कारण मैं सो नहीं सका!" देनीसोव ने कहा। "हां, शुक्र है भगवान का, अब तुम सो जाओ। सुबह होने तक हम अभी कुछ देर सो सकते हैं।"

"हां... मगर नहीं," पेत्या ने जवाब दिया। "मेरा अभी सोने को मन नहीं हो रहा। इसके अलावा मैं अपने को अच्छी तरह से जानता हूं, अगर सो गया तो फिर जल्दी से जागना मेरे बस की बात नहीं। यों भी लड़ाई के पहले मुझे जागते रहने की आदत है।"

पेत्या अपने जोखिम भरे कारनामे की सभी तफ़सीलों को ख़ुशी से याद करते और इस चीज़ का सजीव अनुमान लगाते हुए कि अगले दिन क्या गुल खिलनेवाला है, कुछ देर तक वन-रक्षक के घर में बैठा रहा। इसके बाद यह देखकर कि देनीसोव सो गया है, वह उठा और बाहर अहाते में चला गया।

अहाते में अभी तक बिल्कुल अन्धेरा था। बारिश बन्द हो गयी थी, मगर वृक्षों से पानी की बूंदें अभी भी टपक रही थीं। वन-रक्षक के घर के नज़दीक ही कज़्ज़ाकों की काम चलाऊ झोंपड़ियों और एक ही जगह पर एकसाथ बंधे घोड़ों की काली आकृतियां दिखाई दे रही थीं। घर के पीछे अन्धेरे की चादर में लिपटी दो घोड़ा-गाड़ियों और उनके क़रीब ही उनके घोड़ों की झलक मिल रही थी तथा गहरे खड्ड में बुझते हुए अलाव के लाल अंगारे दिख रहे थे। कुछ कज़्ज़ाक और हुस्सार जाग रहे थे – कहीं-कहीं पर बूंदों के गिरने और निकट ही घोड़ों के चरने की आवाज़ के साथ-साथ धीमी-धीमी, कानाफूसी-सी करती हुई ध्वनियां भी सुनायी दे रही थीं।

पेत्या ने बाहर आकर अन्धेरे में नज़र दौड़ाई और घोड़ा-गाड़ियों के पास गया। घोड़ा-गाड़ियों के नीचे कोई खर्राटे भर रहा था और

उनके गिर्द ज़ीन कसे तथा जई चरते हुए घोड़े खड़े थे। पेत्या ने अन्धेरे में ही अपने घोड़े को पहचान लिया जिसे वह काराबाख़ कहकर पुकारता था, यद्यपि वह आज़रबैजान के काराबाख़ क्षेत्र की मशहूर नसल का नहीं, बल्कि उक्रइनी घोड़ा था। पेत्या उसके क़रीब गया।

"तो काराबाख़, कल हम अपने जौहर दिखायेंगे," उसने घोड़े के थूथन को सूंघते और चूमते हुए कहा।

"साहब, आप सो नहीं रहे हैं?" घोड़ा-गाड़ी के नीचे बैठे एक कज़्ज़ाक ने कहा।

"नहीं। आपका नाम लिख़ाचोव ही है न? बात यह है कि मैं तो अभी वापस आया हूं। हम फ़्रांसीसियों के यहां गये थे।" और पेत्या ने कज़्ज़ाक को न केवल फ़्रांसीसियों के यहां जाने का पूरा हाल सुनाया, बल्कि उसे यह भी बताया कि वह किसलिये वहां गया था और क्यों उलटे-सीधे ढंग से कोई काम करने के बजाय अपनी जान की जोखिम उठाना बेहतर मानता है।

"आप थोड़ा सो लेते," कज़्ज़ाक ने कहा।

"नहीं, मैं जागने का आदी हूं," पेत्या ने जवाब दिया। "आपकी पिस्तौलों के चक़मक़ तो नहीं घिस गये? मैं अपने साथ लाया हूं। आपको ज़रूरत तो नहीं? तुम ले सकते हो।"

पेत्या को अधिक निकट से देखने के लिये कज़्ज़ाक ने घोड़ा-गाड़ी के नीचे से अपना सिर बाहर निकाला।

"बात यह है कि मुझे सभी कुछ ढंग से करने की आदत है," पेत्या ने कहा। "दूसरे कुछ लोग योंही लापरवाही से, तैयारी के बिना काम करते हैं और बाद में पछताते हैं। मुझे यह पसन्द नहीं।"

"आप बिल्कुल सही कह रहे हैं," कज़्ज़ाक ने पुष्टि की।

"और हां, मेरे प्यारे, मेरी इस तलवार की धार को ज़रा तेज़ कर दो, कुन्द हो... (पेत्या को झूठ बोलते हुए घबराहट हुई: यह तलवार कभी तेज़ ही नहीं की गयी थी।) कर सकते हो?"

"ज़रूर कर सकता हूं।"

लिख़ाचोव उठा, उसने अपना थैले में कुछ टटोला और जल्द ही पेत्या को इस्पात और सान धरने की कुछ ऐसी ही आवाज़ सुनायी देने लगी जैसी कि लड़ाई के समय सुनायी देती है। वह घोड़ा-गाड़ी पर

चढ़कर उसके सिरे पर बैठ गया। घोड़ा-गाड़ी के नीचे कज़्ज़ाक तलवार को तेज़ कर रहा था।

"तो हमारे जवान सो रहे हैं?" पेत्या ने कहा।

"कुछ सो रहे हैं और कुछ हमारी तरह जाग रहे हैं।"

"और वह लड़का कहां है?"

"वेसेन्नी? वह वहां ड्योढ़ी में सोया पड़ा है। बुरी तरह डरने के बाद अब गहरी नींद सो रहा है। ओह, कितना ख़ुश था वह।"

इसके पश्चात पेत्या ध्वनियों को सुनता हुआ देर तक चुप रहा। अन्धेरे में क़दमों की आहट सुनायी दी और काली-सी आकृति दिखाई दी।

"क्या तेज़ कर रहे हो?" इस व्यक्ति ने घोड़ा-गाड़ी के क़रीब आकर पूछा।

"साहब की तलवार तेज़ कर रहा हूं।"

"नेक काम है," इस व्यक्ति ने, जो पेत्या को हुस्सार प्रतीत हुआ, जवाब दिया। "तुम लोगों के पास यहां कोई प्याला रह गया है क्या?"

"वह रहा पहिये के क़रीब।"

हुस्सार ने प्याला ले लिया।

"शायद जल्द ही उजाला हो जायेगा," उसने जम्हाई लेते हुए कहा और यहां से चला गया।

पेत्या को इस बात की चेतना होनी चाहिये थी कि वह सड़क से एक वेर्स्ता की दूरी पर जंगल में, देनीसोव के छापेमार दल में है, कि वह फ़्रांसीसियों से छीनी गयी सामान ढोनेवाली घोड़ा-गाड़ी पर बैठा है जिसके घोड़े उसके क़रीब ही बंधे हैं, कि उसके नीचे बैठा हुआ कज़्ज़ाक लिख़ाचोव उसकी तलवार तेज़ कर रहा है, कि दायीं ओर का बड़ा काला धब्बा – वन-रक्षक का घर है और नीचे बायीं ओर चमकता हुआ लाल-लाल धब्बा – बुझता जाता अलाव है, कि प्याला लेने के लिये आनेवाला व्यक्ति – हुस्सार था जिसे प्यास लगी थी। किन्तु वह यह सब कुछ नहीं जानता था और जानना भी नहीं चाहता था। वह ऐसी जादुई दुनिया में था जिसमें कुछ भी वास्तविकता के अनुरूप नहीं था। यह सम्भव था कि बड़ा-सा काला धब्बा सचमुच वन-रक्षक का घर हो, लेकिन वह गुफा भी हो सकता था जो धरती

के तल तक ले जाती थी। मुमकिन है कि लाल धब्बा बुझता अलाव हो, लेकिन यह भी मुमकिन था कि किसी भीमकाय राक्षस की आंख हो। सम्भव है कि इस समय वह घोड़ा-गाड़ी पर बैठा था, किन्तु यह भी सम्भव था कि वह घोड़ा-गाड़ी पर नहीं, बल्कि किसी बहुत ही ऊंची मीनार पर बैठा हो जिससे अगर नीचे गिर जाये तो उसे धरती तक पहुंचने में पूरा दिन, पूरा महीना लग जाये – वह हवा में उड़ता ही रह जाये और कभी धरती तक न पहुंचे। मुमकिन है कि घोड़ा-गाड़ी के नीचे कज़्ज़ाक लिखाचोव ही बैठा हो, लेकिन यह भी मुमकिन हो सकता है कि वह इस दुनिया का सबसे दयालु, सबसे बहादुर, सबसे अद्भुत और लाजवाब आदमी हो, मगर जिसे कोई भी न जानता हो। सम्भव है कि यह हुस्सार ही हो जो पानी लेने आया था और घाटी में चला गया था, किन्तु यह भी सम्भव है कि वह अभी-अभी आंखों के सामने से ओझल हुआ है, लुप्त हो गया है और यहां आया ही नहीं था।

पेत्या इस वक़्त चाहे कुछ भी क्यों न देखता, उसे किसी भी चीज़ से हैरानी न होती। वह ऐसी जादुई दुनिया में था जिसमें सभी कुछ सम्भव होता है।

उसने आकाश पर नज़र डाली। आकाश भी धरती की भांति जादुई था। वह साफ़ होने लगा था और मानो तारों की झलक देने के लिये वृक्षों की फुनगियों के ऊपर बादल तेज़ी से भागते जा रहे थे। कभी-कभी ऐसा लगता कि आकाश मेघ-मुक्त हो गया है और काला, साफ़ आसमान दिखाई देने लगा है। कभी ऐसा प्रतीत होता कि ये काले धब्बे काले बादल हैं। कभी ऐसा लगता कि आकाश ऊंचा है, सिर के ऊपर ऊंचा उठता जाता है। कभी आकाश एकदम इतना नीचे आ जाता कि उसे हाथ से छूना सम्भव होता।

पेत्या की आंखें झिपने लगीं और उसे नींद के झोंके आने लगे।

पानी की बूंदें टपटप गिर रही थीं। धीमी-धीमी खुसर-फुसर हो रही थी। घोड़े हिनहिना और आपस में रेल-पेल कर रहे थे। कोई ज़ोर से खर्राटे ले रहा था।

"झिन, झन, झिन, झन ..." सान पर तेज़ होती तलवार की आवाज़ सुनायी दे रही थी। अचानक पेत्या को सुरों में सधा हुआ कोई आर्केस्ट्रा सुनायी दिया जो किसी भजन की अज्ञात, समारोही

लड़ाई की पूर्ववेला में पेत्या रोस्तोव।

और मधुर धुन बजा रहा था। पेत्या संगीत के मामले में नताशा की तरह और निकोलाई से कुछ अधिक ही अनुभूतिशील था, किन्तु उसने न तो कभी संगीत सीखा था और न उसके बारे में सोचा ही था। इसलिये उसके दिमाग़ में इस वक़्त अचानक आनेवाली धुनें विशेष रूप से नयी और मनमोहक थीं। संगीत अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा था। धुन ज़्यादा से ज़्यादा ऊंची होती हुई, एक वाद्ययन्त्र से दूसरे पर जा रही थी। धुन एक, साज़ अनेकवाला वादन हो रहा था, यद्यपि पेत्या को ऐसे वाद्य-वादन का ज़रा भी ज्ञान नहीं था। प्रत्येक वाद्ययन्त्र कभी मानो वायलिन तो कभी तुरही – किन्तु वायलिन और तुरही से बेहतर तथा अधिक स्पष्ट स्वरों में अपना अंश बजाता और धुन के अन्त तक बजने के पहले ही उसका सुर दूसरे वाद्ययन्त्र के सुर में मिल जाता, जो धुन के लगभग उसी अंश को आरम्भ करता था और इसी तरह वह तीसरे तथा चौथे वाद्ययन्त्र के सुर में जा मिलता। इसके बाद इन सभी वाद्ययन्त्रों के सुर मिलकर एक हो जाते, वे फिर से अलग होते तथा पुनः मिलकर कभी भजन और कभी भव्य विजय-गान का रूप ले लेते।

"ओह, यह सब तो सपने में हो रहा है," आगे की ओर नींद का झोंका खाने पर पेत्या ने अपने आपसे कहा। "यह तो मेरे कानों में संगीत बज रहा है। शायद यह मेरा अपना ही संगीत है। फिर से सुनायी देने लगा। तो जारी रहो मेरे अपने संगीत! जारी रहो!.."

उसने आंखें मूंद लीं। विभिन्न दिशाओं और मानो बहुत दूर से ध्वनियां उभरने लगीं, एक सधा हुआ रूप लेने, अलग होने, एक-दूसरी से मिलने लगीं और फिर से सभी ने घुल-मिलकर उसी मधुर तथा समारोही धुन का रूप ले लिया। "ओह, कितना लाजवाब है यह! जितना चाहूं, और जैसे चाहूं सुन सकता हूं।" पेत्या ने अपने आपसे कहा। उसने अनेक वाद्ययन्त्रों के इतने बड़े आर्केस्ट्रा के निर्देशन का प्रयास किया।

"अब धीमी होती हुई शान्त हो जाओ।" – और ध्वनियों ने उसका आदेश माना। "अब ज़ोर से हर्षोल्लास से भरकर। और, और ज़्यादा ख़ुशी के रंग में डूबकर।" – और किसी अज्ञात गहराई मे अधिकाधिक तीव्र तथा समारोही ध्वनियां उभरने लगीं। "गायक, अब तुम शुरू करो!" पेत्या ने आदेश दिया। और शुरू में उसे दूर से

मर्दाना तथा फिर ज़नाना आवाज़ें सुनायी दीं। धीरे-धीरे ये आवाज़ें अधिकाधिक तीव्र होती गयीं। पेत्या को इनके अद्भुत सौन्दर्य का रसपान करते हुए भय तथा प्रसन्नता की अनुभूति हो रही थी।

संगीत की धुन ने समारोही, विजय के कूच का रूप ले लिया। बूंदें टप-टप गिर रही थीं, झिन, झिन, झिन ... तलवार की झनक-टनक सुनायी दे रही थी। घोड़े इस स्वर-संगम में विघ्न न डालकर इसी का भाग बनते हुए फिर से आपस में रेल-पेल करने और हिन-हिनाने लगे थे।

पेत्या नहीं जानता था कि यह सब कितनी देर तक चलता रहा – वह आनन्द-विभोर होता रहा, अपनी आनन्द-विभोरता पर चकित तथा इस बात से क्षुब्ध होता रहा कि किसी को इसका भागीदार नहीं बना सकता। लिख़ाचोव की स्नेहपूर्ण आवाज़ ने उसे जगा दिया।

"हुज़ूर, तलवार तैयार हो गयी, फ़्रांसीसी के दो टुकड़े करने को बिल्कुल तैयार।"

पेत्या ने आंखें खोलीं।

"अरे, उजाला होने लगा है, सच उजाला होने लगा है!" वह ज़ोर से कह उठा।

पहले नज़र न आनेवाले घोड़े अब पूंछों तक दिखाई देने लगे थे और पातहीन डालों के बीच से हल्का-हल्का और भीगा-भीगा-सा प्रकाश झलकने लगा था। पेत्या ने अपने को झकझोरा, घोड़ा-गाड़ी से नीचे कूदा, जेब से एक रूबल निकालकर लिख़ाचोव को दिया, तलवार को ज़ोर से घुमाकर उसे आज़माया और म्यान में रख लिया। कज़्ज़ाक अपने घोड़ों को खोलने और उनके ज़ीनों के पट्टे कसने में व्यस्त थे।

"लीजिये, कमांडर साहब भी आ गये," लिख़ाचोव ने कहा।

देनीसोव वन-रक्षक के घर से बाहर आया, उसने पेत्या को पुकारा और तैयार हो जाने को कहा।

११

भोर के झुटपुटे में सैनिकों ने जल्दी-जल्दी अपने घोड़े ले लिये, उनके ज़ीनों के पट्टे कसे और अपनी-अपनी टुकड़ियों में खड़े हो गये।

वन-रक्षक के घर के क़रीब खड़ा हुआ देनीसोव अन्तिम आदेश-अनुदेश दे रहा था। इस छापेमार दल के पैदल सैनिक सैकड़ों पांवों को कीचड़ में छपछपाते हुए आगे चले गये और बहुत जल्द ही पौ फटने के समय की धुंध में वृक्षों के बीच ग़ायब हो गये। कज़्ज़ाक-अफ़सर कज़्ज़ाकों को कुछ आदेश दे रहा था। अपने घोड़े की लगामें थामे हुए पेत्या बड़ी बेचैनी से उसपर सवार होने के हुक्म का इन्तज़ार कर रहा था। ठण्डे पानी से धुला हुआ उसका चेहरा और ख़ास तौर पर उसकी आंखें आग की तरह जल रही थीं, उसे पीठ पर झुरझुरी महसूस हो रही थी और उसका सारा शरीर जल्दी-जल्दी तथा लय में बंधा-सा कांप रहा था।

"तो पूरी तैयारी हो गयी?" देनीसोव ने पूछा। "घोड़े लाओ।"

घोड़े लाये गये। देनीसोव इस कारण कज़्ज़ाक पर बिगड़ उठा कि ज़ीन के पट्टे अच्छी तरह से कसे हुए नहीं थे और उसे भला-बुरा कहकर घोड़े पर सवार हो गया। पेत्या ने अपना पांव रकाब में रखा। घोड़े ने आदत के मुताबिक़ मुंह से उसका पांव पकड़ना चाहा, लेकिन पेत्या मानो अपना वज़न महसूस न करते हुए जल्दी से छलांग मारकर ज़ीन पर सवार हो गया और मुड़कर उन हुस्सारों पर नज़र डालने के बाद, जो अन्धेरे में उसके पीछे-पीछे अपने घोड़े बढ़ाने लगे थे, वह देनीसोव के क़रीब गया।

"वसीली फ़्योदोरोविच, आप मुझे कोई न कोई कार्यभार ज़रूर सौंपेंगे न? कृपया अवश्य ऐसा कीजिये... भगवान के लिये..." उसने कहा। ऐसा प्रतीत हुआ कि देनीसोव को तो पेत्या के अस्तित्व का ध्यान ही नहीं रहा था। उसने मुड़कर उसकी तरफ़ देखा।

"तुमसे एक ही बात का अनुरोध करता हूं," उसने कड़ाई से कहा, "मेरी बात मानना और कहीं भी अपने आप घुसने की कोशिश नहीं करना।"

रास्ते में पेत्या से एक भी शब्द कहे बिना देनीसोव चुपचाप सवारी करता रहा। जब ये वन-छोर पर पहुंचे तो मैदान में ख़ासा उजाला होने लगा था। देनीसोव ने कज़्ज़ाक-अफ़सर से कुछ कानाफूसी की और कज़्ज़ाक पेत्या तथा देनीसोव के क़रीब से अपने घोड़ों को आगे ले जाने लगे। उन सभी के आगे चले जाने पर देनीसोव अपने घोड़े को पहाड़ी से नीचे ले चला। पुट्ठों पर ज़ोर डालते और फिसलते हुए घोड़े

अपने घुड़सवारों के साथ घाटी में उतरने लगे। पेत्या अपने घोड़े को देनीसोव की बग़ल में बढ़ा रहा था। सारे बदन में महसूस होनेवाली उसकी कंपकंपी बढ़ती जाती थी। अधिकाधिक उजाला होता जा रहा था, केवल धुंध ही दूर की चीज़ों को आंखों से ओझल किये थी। नीचे पहुंचने और मुड़कर देखने के बाद देनीसोव ने अपने क़रीब खड़े कज़्ज़ाक की ओर सिर हिलाकर कहा:

"संकेत!"

कज़्ज़ाक ने हाथ ऊपर उठाया, गोली चलने की आवाज़ गूंज उठी। इसी क्षण आगे-आगे सरपट दौड़नेवाले घोड़ों की टापों, विभिन्न दिशाओं से चीख़-चिल्लाहट और गोलियां दग़ने की आवाज़ें सुनायी देने लगीं।

घोड़ों की पहली टापों और चीख़-चिल्लाहट की आवाज़ों के साथ ही पेत्या ने घोड़े पर चाबुक बरसाया, उसकी लगामें ढीली छोड़ दीं और देनीसोव की ओर कोई ध्यान दिये बिना, जो चिल्लाते हुए उसे रोकने की कोशिश कर रहा था, अपने घोड़े को सरपट आगे दौड़ा ले चला। पेत्या को लगा कि गोली चलने की आवाज़ सुनायी देते ही अचानक मानो दोपहर की तरह तेज़ रोशनी हो गयी थी। वह पुल की तरफ़ सरपट घोड़ा दौड़ाने लगा। उसके आगे कज़्ज़ाक बहुत तेज़ी से सड़क पर अपने घोड़े दौड़ाते जा रहे थे। वह पुल पर पीछे रह जानेवाले एक कज़्ज़ाक के साथ टकराया और आगे निकल गया। पेत्या को अपने सामने कुछ लोग, जो सम्भवतः फ़्रांसीसी थे, रास्ते के दायीं ओर से बायीं ओर को भागते दिखाई दिये। उनमें से एक घोड़े की टांगों के नीचे आकर कीचड़ में गिर गया।

एक झोंपड़े के क़रीब कज़्ज़ाकों की भीड़ जमा थी जो वहां कुछ कर रहे थे। भीड़ के बीच से भयानक चीत्कार सुनायी दिया। पेत्या अपने घोड़े को सरपट दौड़ाता हुआ इस भीड़ के पास पहुंचा और सबसे पहले उसे एक फ़्रांसीसी का पीला चेहरा दिखाई दिया, जिसका जबड़ा बुरी तरह से कांप रहा था और जो अपनी छाती की तरफ़ तने हुए भाले का डंडा पकड़े था।

"हुर्रा!.. हमारे जवानो..." पेत्या चिल्लाया और जोश में आये हुए घोड़े की लगामें ढीली छोड़कर उसे द्रुतगति से सड़क पर आगे दौड़ाने लगा।

पेत्या को अपने सामने गोलियां चलने की आवाज़ें सुनायी दे रही

थीं। कज़्ज़ाक, हुस्सार और चिथड़े पहने रूसी बन्दी अधिकाधिक ऊंची और समझ में न आनेवाली आवाज़ों में कुछ चीख़ते-चिल्लाते हुए सड़क के दोनों ओर से भागते आ रहे थे। नंगे सिर, नीला फ़ौजी ओवरकोट पहने, त्योरी चढ़ाये लाल चेहरेवाला बहादुर-सा एक फ़्रांसीसी संगीन के सहारे हुस्सारों से अपनी रक्षा कर रहा था। घोड़े को दौड़ाता हुआ पेत्या जब वहां पहुंचा तो फ़्रांसीसी ढेर हो चुका था। फिर मुझे पहुंचने में देर हो गयी, पेत्या के दिमाग़ में यह विचार कौंध गया और वह अपने घोड़े को उस तरफ़ दौड़ा ले चला जिधर से अक्सर गोलियां चलने की आवाज़ें आ रही थीं। गोलियां उसी ज़मींदार के घर के अहाते में चल रही थीं, जहां पिछली रात को वह दोलोख़ोव के साथ गया था। फ़्रांसीसी बाड़ के पीछे बाग़ की घनी, ऊंची झाड़ियों में छिपकर बैठ गये थे और फाटक के क़रीब भीड़ लगाये हुए कज़्ज़ाकों पर गोलियां चला रहे थे। फाटक के क़रीब पहुंचने पर पेत्या को बारूद के धुएं में से दोलोख़ोव के पीले, हरे-से चेहरे की झलक मिली जो अपने लोगों से चिल्लाकर कुछ कह रहा था। "घूमकर जाओ! प्यादा फ़ौजियों के आने का इन्तज़ार करो!" पेत्या के क़रीब आने के वक़्त वह चिल्ला रहा था।

"इन्तज़ार?.. हुर्रा!" पेत्या चिल्ला उठा और एक क्षण के लिये भी रुके बिना अपने घोड़े को उस स्थान की ओर उड़ा ले चला जहां से गोलियां चल रही थीं और जहां बारूद का धुआं बहुत घना था। गोलियों की बौछार हुई, वे सनसनाती हुई गुज़रीं और बहुत ज़ोर से कहीं जा गिरीं। पेत्या के पीछे-पीछे कज़्ज़ाक और दोलोख़ोव भी अपने घोड़ों को सरपट दौड़ाते हुए मकान के अहाते का फाटक लांघने लगे। बारूद के घने और हिलते-डुलते धुएं में कुछ फ़्रांसीसी अपने हथियार फेंककर तथा झाड़ियों में से निकलकर सीधे कज़्ज़ाकों की तरफ़ और दूसरे तालाब की ओर भाग चले। पेत्या ज़मींदार के घर के अहाते के साथ-साथ अपना घोड़ा दौड़ाता जा रहा था और लगामों को खींचने के बजाय दोनों हाथों को अजीब ढंग से तथा जल्दी-जल्दी हिला रहा था और ज़ीन पर एक तरफ़ को अधिकाधिक खिसकता जाता था। भोर के उजाले में लगभग बुझ चुके एक अलाव पर पांव रखने के बाद उसका घोड़ा रुक गया और पेत्या धम से गीली ज़मीन पर जा गिरा। कज़्ज़ाकों ने देखा कि इस चीज़ के बावजूद कि उसका सिर निश्चेष्ट

था, उसके हाथ-पांव बहुत ज़ोर से हिल-डुल रहे थे। गोली उसके सिर के आर-पार हो गयी थी।

एक बड़े फ़्रांसीसी अफ़सर के साथ बातचीत करने के बाद, जो तलवार पर रूमाल डाले हुए घर से बाहर आया था और जिसने यह घोषणा की थी कि वे अपने हथियार फेंकते हैं, दोलोख़ोव अपने घोड़े से नीचे उतरा और बांहें फैलाकर निश्चल पड़े हुए पेत्या के पास गया।

"इसका तो खेल ख़त्म हो गया," उसने नाक-भौंह सिकोड़ते हुए कहा और घोड़े पर अपनी तरफ़ आ रहे देनीसोव के पास जाने के लिये फाटक की ओर चला गया।

"मारा गया?!" देनीसोव दूर से ही निर्जीवता की जानी-पहचानी उस स्थिति को देखकर, जिसमें पेत्या का शरीर पड़ा हुआ था, चिल्ला उठा।

"इसका तो खेल ख़त्म हो गया," दोलोख़ोव ने इन शब्दों को दोहराया मानो उसे ऐसा करने में आनन्द प्राप्त हो रहा हो और तेज़ी से फ़्रांसीसी बन्दियों की ओर बढ़ चला जिन्हें अपने घोड़ों से उतरे हुए कज़्ज़ाकों ने घेर लिया था। "हम इन्हें अपने साथ घसीटते नहीं फिरेंगे!" उसने ऊंची आवाज में देनीसोव से कहा।

देनीसोव ने कोई जवाब नहीं दिया; पेत्या के क़रीब जाकर वह घोड़े से नीचे उतरा और कांपते हाथों से उसने ख़ून तथा कीचड़ से लथपथ तथा अब तक पीला पड़ चुका पेत्या का चेहरा अपनी ओर किया।

"मुझे कोई न कोई मीठी चीज़ खाना अच्छा लगता है। बहुत बढ़िया किशमिश है, सारी ले लीजिये," देनीसोव को पेत्या के ये शब्द याद हो आये। उसने फ़ौरन मुंह फेर लिया और बाड़ के पास जाकर उसका सहारा ले लिया। और कज़्ज़ाकों ने कुत्ते की भूंक से मिलती-जुलती देनीसोव के मुंह से निकलती ध्वनियों के कारण हैरान होते हुए मुड़कर उसकी तरफ़ देखा।

देनीसोव और दोलोख़ोव द्वारा बचाये गये रूसी बन्दियों में प्येर बेज़ूख़ोव भी था।

१२

क़ैदियों के उस दल के बारे में, जिसमें प्येर शामिल था, मास्को के बाद के सारे कूच के दौरान फ़्रांसीसी सेना-संचालकों ने कोई भी नया आदेश जारी नहीं किया था। क़ैदियों का यह दल २२ अक्तूबर को उस सेना और सामान की उन घोड़ा-गाड़ियों के साथ नहीं था जिनके साथ मास्को से रवाना हुआ था। कूच की पहली मंज़िलों में रस्कों से लदी हुई जो घोड़ा-गाड़ियां उनके पीछे आ रही थीं, उनमें से आधी कज़्ज़ाकों ने लूट ली थीं और बाक़ी आधी आगे चली गयी थीं। घुड़सेना के प्यादा सैनिकों में से, जो बन्दियों के आगे-आगे चल रहे थे, अब एक भी नहीं रहा था। वे सभी ग़ायब हो गये थे। मार्शल जूनो * के ढेरों सामान से लदी घोड़ा-गाड़ियों ने अब उस तोपख़ाने की जगह ले ली थी जो पहले आगे-आगे जाता दिखाई देता था। वेस्टफ़ाली सैनिक-दल इन घोड़ा-गाड़ियों की रक्षा करता था। बन्दियों के पीछे घुड़सेना के सामान से लदी घोड़ा-गाड़ी चल रही थी।

व्याज़्मा से फ़्रांसीसी सेनायें, जो पहले तीन लशकरों में बंटकर बढ़ रही थीं, अब एक ही समूह के रूप में आगे जा रही थीं। अव्यवस्था के वे लक्षण, जिनकी ओर प्येर ने मास्को से रवाना होने के बाद पहले ही पड़ाव के समय ध्यान दिया था, अब अपनी चरम सीमा पर पहुंच गये थे।

जिस सड़क पर ये जा रहे थे, उसके दोनों ओर घोड़ों की लाशों के ढेर लगे थे। विभिन्न रेजिमेंटों के पिछड़ जानेवाले चिथड़े पहने सैनिक लगातार बदलते रहते थे, कभी वे बढ़ते हुए लशकर के साथ हो जाते और कभी फिर पीछे रह जाते।

कूच के दौरान ख़तरे के झूठे संकेत दिये जाते, रक्षा-दल के सैनिक अपनी बन्दूक़ें तानकर तथा एक-दूसरे को रौंदते हुए सिर पर पांव रखकर भागते, बाद में फिर से जमा हो जाते और व्यर्थ ही भय का वातावरण पैदा करने के लिये एक-दूसरे को भला-बुरा कहते।

घुड़सेना के सामानवाली घोड़ा-गाड़ियां, बन्दी और वे घोड़ा-

---

* जूनो (१७७१–१८१३) – फ़्रांसीसी मार्शल जो १८१२ में वेस्टफ़ाली फ़ौजी-कोर का कमांडर था। – सं०

गाड़ियां, जिनपर मार्शल जूनो का सामान लदा हुआ था, – ये तीनों भाग तो अभी तक एक अलग और अभिन्न रूप धारण किये हुए थे, यद्यपि इनमें से प्रत्येक भाग बहुत जल्दी-जल्दी कम होता जा रहा था।

जिस भाग में शुरू में एक सौ बीस घोड़ा-गाड़ियां थीं, अब उसमें साठ से अधिक नहीं रह गयी थीं, बाक़ी या तो छीन ली गयी थीं या छोड़ दी गयी थीं। जूनो की घोड़ा-गाड़ियों में से भी कुछ छोड़ दी गयी थीं और छीन ली गयी थीं। दावू की फ़ौजी-कोर के पिछड़ जानेवाले सैनिकों ने हमला करके तीन घोड़ा-गाड़ियां लूट ली थीं। जर्मन सैनिकों की बातचीत से प्येर को यह पता चला कि जूनो के सामानवाली घोड़ा-गाड़ियों की कैदियों से भी ज़्यादा कड़ी निगरानी की जाती थी, कि उनके एक जर्मन सैनिक-साथी को इस कारण ख़ुद मार्शल के हुक्म से ही गोली मार दी गयी थी कि उसके पास से चांदी का वह एक चम्मच मिल गया था जो मार्शल की सम्पत्ति था।

इन तीनों भागों में से बन्दियों का भाग सबसे ज़्यादा तेज़ी से कम हुआ था। मास्को से रवाना होनेवाले तीन सौ तीस बन्दियों में से अब एक सौ से कम रह गये थे। रक्षा-दल के लिये घोड़ों के ज़ीनों से लदी घोड़ा-गाड़ियों और जूनो के सामान की घोड़ा-गाड़ियों की तुलना में बन्दी कहीं अधिक मुसीबत बने हुए थे। यह बात उनकी समझ में आती थी कि घोड़ों के ज़ीन और जूनो के चम्मच तो किसी काम आ सकते थे, लेकिन ख़ुद भूखे और ठिठुरते हुए ये लोग अपने ही जैसे ठिठुरते तथा भूखे रूसी बन्दियों की किसलिये निगरानी करें जो रास्ते में ही मर जाते थे या पिछड़ जाते थे और पिछड़ जाने पर जिन्हें गोली से उड़ा देने का आदेश था – यह बात न केवल उनकी समझ में ही नहीं आती थी, बल्कि बहुत बुरी भी लगती थी। रक्षा-दल के सैनिक ख़ुद जिस दुखद स्थिति में थे, उससे मानो इस कारण डरते हुए कि कहीं उनमें बन्दियों के प्रति दया की भावना न पैदा हो जाये और इस तरह वे अपनी हालत को और भी न बिगाड़ लें, उनके साथ ख़ास तौर पर बुरा और कठोर व्यवहार करते थे।

दोरोगोबूज में रक्षा-दल के सैनिक जब बन्दियों को घुड़साल में बन्द करके अपने ही स्टोरों को लूटने चले गये तो कुछ बन्दी दीवार के नीचे से सुरंग खोदकर भाग निकले। किन्तु फ़्रांसीसियों ने उन्हें पकड़ लिया और गोलियों से भून डाला।

मास्को से रवाना होने के समय लागू की गयी यह व्यवस्था कि बन्दी-अफ़सर सैनिकों से अलग चलेंगे, कभी की ख़त्म हो चुकी थी और जो लोग चल सकते थे, साथ-साथ ही चलते थे। कूच की तीसरी मंज़िल के बाद प्येर फिर से कारातायेव और टेढ़ी-मेढ़ी टांगों तथा बैंगनी-से रंगवाले उस कुत्ते के साथ ही चलने लगा था जिसने कारातायेव को अपना मालिक चुना था।

मास्को से रवाना होने के तीसरे दिन कारातायेव को फिर से उस बुख़ार ने घर दबाया जिसके कारण वह मास्को के अस्पताल में पड़ा रहा था। कारातायेव जितना अधिक कमज़ोर होता जाता था, प्येर उससे उतना ही अधिक दूर होता जा रहा था। प्येर इसका कारण तो नहीं जानता था, किन्तु कारातायेव जब से कमज़ोर होने लगा था, उसके क़रीब जाने के लिये उसे बहुत ही यत्न करना पड़ता था। जब वह उसके क़रीब जाकर और उन आहों-कराहों को सुनकर जिनके साथ सामान्यतः वह पड़ावों पर लेटता और उस बदबू को महसूस करके, जो अब उसके बदन से आती थी, प्येर उससे दूर हट जाता और उसके बारे में न सोचता।

उन दिनों जब प्येर को बन्दी बनाकर बैरक में रखा गया था, उसने अपनी बुद्धि से नहीं, बल्कि अपने पूरे अस्तित्व से स्वयं जीवन से यह जान लिया था कि मानव को सुख पाने के लिये ही बनाया गया है, कि सुख उसके अपने भीतर, मानव की स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्त्ति में ही निहित है और उसके सारे दुखों का कारण अभाव नहीं, बाहुल्य है। किन्तु अब, कूच के इन पिछले तीन हफ़्तों में उसने एक नया, सान्त्वना देनेवाला सत्य जान लिया था – वह जान गया था कि दुनिया में कुछ भी ऐसा नहीं है जिससे डरा जाये। वह जान गया था कि जैसे दुनिया में कोई ऐसी स्थिति नहीं है जिनमें आदमी पूरी तरह से सुखी और स्वतन्त्र हो, वैसे ही कोई ऐसी स्थिति भी नहीं है जिसमें वह पूरी तरह से दुखी और बन्धनों में जकड़ा हुआ हो। वह जान गया था कि दुख-दर्दों की एक सीमा है, स्वतन्त्रता की भी सीमा है तथा ये सीमायें दूर नहीं हैं; कि गुलाबों की सेज पर सोनेवाले व्यक्ति ने एक पंखुड़ी के कुचले जाने पर वैसी ही पीड़ा-यातना सही थी जैसी वह अब बिस्तर के बिना गीली ज़मीन पर सोते हुए सहता है, जब उसकी एक बग़ल ठण्ड से अकड़ती तथा दूसरी कुछ गर्माहट अनुभव

करती होती है ; कि अतीत के उन दिनों में, अब वह पांवों को कस लेनेवाले बॉल-नृत्य के जूते पहनता था तो ऐसी ही यातना सहन करता था, जैसी कि अब, जब नंगे पांव चलता था (उसके जूते कभी के फट चुके थे) और उसके पांवों पर ढेरों छाले पड़े हुए थे। वह जान गया था कि जब उसने, जैसाकि उसे प्रतीत होता था, स्वेच्छा से अपनी पत्नी के साथ शादी की थी, तब वह इस समय से अधिक स्वतन्त्र नहीं था जब रात के वक़्त उसे अस्तबल में बन्द कर दिया जाता है। उस सभी कुछ में से, जिसे बाद में उसने यातना की संज्ञा दी और जिसे उस समय लगभग अनुभव नहीं किया था, मुख्य तो थे उसके नंगे, फटे और पपड़ियों से ढके हुए पांव। (घोड़े का मांस स्वादिष्ट और पौष्टिक था, नमक की जगह पर इस्तेमाल किये जानेवाले बारूद की शोरे जैसी गन्ध तो प्यारी भी लगती थी, ठण्ड ज़्यादा नहीं थी और दिन को चलते वक़्त हमेशा गर्मी महसूस होती थी, रातों को अलाव जलते रहते थे और उसके शरीर को नोचनेवाली जुएं बदन गर्माती थीं।) शुरू-शुरू में केवल पांवों ने ही उसे बेहद तकलीफ़ दी।

कूच के दूसरे दिन जब अलाव के पास बैठे हुए प्येर ने अपने पांवों के छालों को देखा तो यह सोचा कि उसके लिये अब एक क़दम भी चलना मुमकिन नहीं होगा। मगर जब सभी क़ैदी उठकर चल दिये तो वह भी कुछ लंगड़ाता हुआ चलने लगा और बाद में पांवों में हरकत आ जाने पर दर्द महसूस किये बिना चलता गया, बेशक रात को उनपर नज़र डालते हुए उसे पहले से भी ज़्यादा घबराहट अनुभव होती थी। किन्तु वह उनकी तरफ़ न देखता और कुछ दूसरी बातें ही सोचता रहता।

प्येर केवल इसी समय मानव की पूरी जीवन-शक्ति और किसी अन्य दिशा में अपना ध्यान ले जाने की उसमें निहित रक्षा-शक्ति को समझ पाया जो बायलर के उस सुरक्षा-कपाट के समान थी जो एक निश्चित सीमा तक भाप के दबाव के बढ़ने पर अतिरिक्त भाप को बाहर निकाल देता है।

पिछड़े जानेवाले बन्दियों को कैसे गोलियों से भूना जाता था, उसने न तो यह देखा और न ही सुना, यद्यपि एक सौ से अधिक इसी तरह से मौत के मुंह में धकेल दिये गये थे। वह कारातायेव के बारे में भी नहीं सोचता था जो हर दिन अधिकाधिक दुर्बल होता जाता था

और जिसके भाग्य में भी सम्भवतः बहुत जल्द इसी तरह से मरना लिखा था। अपने सम्बन्ध में तो प्येर और भी कम सोचता था। उसकी स्थिति जितनी अधिक कठिन होती जाती थी, उसका भविष्य जितना अधिक भयानक बनता जाता था, उसकी वर्तमान स्थिति से उतने ही भिन्न तथा प्रसन्नता और सान्त्वना देनेवाले विचार, स्मृतियां तथा कल्पनायें उसके दिमाग़ में आती थीं।

१३

२२ तारीख़ को दोपहर के वक़्त प्येर अपने पांवों और ऊबड़-खाबड़ रास्ते को देखता हुआ गन्दी और फिसलनवाली सड़क पर जा रहा था। कभी-कभी वह अपने इर्द-गिर्द की परिचित भीड़ पर नज़र डाल लेता और फिर से अपने पांवों की तरफ़ देखने लगता। भीड़ और पांव – दोनों ही बहुत जाने-पहचाने तथा समान रूप से अपने ही अंग थे। टेढ़ी-मेढ़ी टांगों और बैंगनी रंगतवाला सलेटी रंग का कुत्ता बड़ी प्रफुल्लता से सड़क के एक ओर भागता जा रहा था, कभी-कभी वह अपनी फुरती और ख़ुशी के प्रमाण के रूप में पिछली एक टांग को ऊपर उठाकर तीन टांगों पर कूदता जाता और फिर से चार टांगों पर भागता तथा भौंकता हुआ लाशों पर बैठे कौवों पर झपटता। मास्को की तुलना में यह कुत्ता अब ज़्यादा ख़ुश और हृष्ट-पुष्ट था। सभी दिशाओं में इन्सानों से लेकर घोड़ों तक का कम या ज़्यादा सड़ा हुआ तरह-तरह का मांस पड़ा था और चूंकि लगातार चलते रहनेवाले लोगों के कारण भेड़िये सड़क पर नहीं आ सकते थे, इसलिये यह कुत्ता जितना भी चाहता, मांस खा सकता था।

सुबह से बारिश हो रही थी और ऐसे प्रतीत होता था कि वह अभी बन्द हुई कि हुई और आकाश निर्मल हुआ कि हुआ। मगर थोड़ी देर रुकने के बाद वह और भी ज़ोर से अपना रंग दिखाने लगती। पूरी तरह तृप्त हो चुकी सड़क अब और अधिक पानी को जज़्ब नहीं करती थी और वह धारायें बनकर सड़क की लीकों-दरारों में से बह रहा था।

प्येर इधर-उधर देखता और हाथ की उंगलियों को मोड़कर अपने

क़दमों को तीन तक गिनता हुआ जा रहा था। बारिश को सम्बोधित करते हुए वह मन ही मन कहता – बारिश आओ, और ज़ोर से आओ।

प्येर को लग रहा था कि वह किसी भी चीज़ के बारे में नहीं सोच रहा है, किन्तु कहीं बहुत गहराई में उसकी आत्मा किसी महत्त्वपूर्ण और सान्त्वना देनेवाली चीज़ पर विचार कर रही थी। ये पिछले दिन कारातायेव से हुई बातचीत से सम्बन्धित आत्मिक ढंग के सूक्ष्मतम विचार थे।

पिछली रात के पड़ाव के समय बुझे हुए अलाव के कारण ठिठुर जाने पर प्येर अपनी जगह से उठा और अपने निकटवाले, ज़्यादा अच्छी तरह से जल रहे अलाव की तरफ़ चला गया। इस अलाव के क़रीब ओवरकोट से अपने सिर को पादरी के परिधान की तरह ढके हुए प्लातोन कारातायेव बैठा था और सैनिकों को अपने प्रवाहपूर्ण और मधुर, किन्तु अब दुर्बल और रुग्ण स्वर में वह कहानी सुना रहा था जिससे प्येर परिचित था। आधी रात के बाद का वक़्त था। यह वह समय था, जब कारातायेव अपने बुख़ार के दौरे से निजात पाकर विशेष रूप से रंग में आ जाता था। अलाव के क़रीब जाने पर, कारातायेव का दुर्बल, रोगग्रस्त स्वर सुनकर तथा अलाव की ज्वाला के तेज़ प्रकाश में उसका दयनीय चेहरा देखकर प्येर को अपने हृदय में अप्रिय-सी टीस अनुभव हुई। इस व्यक्ति के प्रति अपने दयाभाव से वह भयभीत हो उठा और उसने यहां से जाना चाहा, लेकिन चूंकि कोई दूसरा अलाव नहीं था, इसलिये प्येर प्लातोन कारातायेव की ओर न देखने की कोशिश करते हुए अलाव के पास बैठ गया।

"कहो, तुम्हारी तबीयत कैसी है?" उसने पूछा।

"मेरी तबीयत? बीमारी की शिकायत करने पर भगवान मौत नहीं देंगे," कारातायेव ने उत्तर दिया और अगले ही क्षण शुरू किया हुआ क़िस्सा आगे सुनाने लगा।

"तो मेरे भाई," दुबले और पीले चेहरे पर मुस्कान तथा आंखों में विशेष प्रसन्नतापूर्ण चमक के साथ उसने अपना कथन जारी रखा, "तो मेरे भाई..."

प्येर बहुत पहले से यह क़िस्सा जानता था। कारातायेव छः बार तो उसे ही सुना चुका था और हर बार ख़ास ख़ुशी के अन्दाज़ में। यह क़िस्सा प्येर बेशक बहुत अच्छी तरह से जानता था, फिर भी इस

वक़्त उसे ऐसा लग रहा था मानो कोई नयी बात सुन रहा हो और इसे सुनाते हुए कारातायेव सम्भवतः जो हल्का-हल्का उल्लास अनुभव कर रहा था, प्येर को भी उसकी अनुभूति होने लगी। यह खुदा का डर-खौफ़ जानने तथा घर-गिरस्ती में नेकी की ज़िन्दगी बितानेवाले एक बूढ़े सौदागर का क़िस्सा था जो एक बार अपने एक साथी, एक अमीर सौदागर के साथ मकार्येव शहर के मशहूर तिजारती मेले में गया था।

रात को ये दोनों एक सराय में ठहरे और सो गये। अगले दिन बूढ़े सौदागर का साथी मरा हुआ मिला और उसका धन लूट लिया गया था। खून से लथपथ छुरा बूढ़े सौदागर के तकिये के नीचे से निकला। बूढ़े सौदागर पर मुक़दमा चलाया गया, उसे कोड़े लगाये गये और, जैसाकि होना चाहिये था, उसकी नासों में छेद करके तथा उसे कठोर श्रम का दण्ड देकर साइबेरिया निर्वासित कर दिया गया – कारातायेव ने बताया।

"तो मेरे भाई (प्येर के आने के वक़्त कारातायेव क़िस्से के इसी स्थल पर था), इस मामले को दस या इससे अधिक वर्ष बीत गये। बूढ़ा अपनी सज़ा भुगत रहा था। जैसाकि होना चाहिये था, वह हुक्म बजाता, कोई बुराई न करता। सिर्फ़ भगवान से मौत मांगता रहता। एक रात को क्या हुआ कि ये सभी दंडित लोग ऐसे ही एकत्रित हुए जैसे हम सब यहां जमा हैं। बूढ़ा भी उनके साथ था। यह चर्चा चल पड़ी कि किसने क्या अपराध किया है, किस चीज़ के लिये भगवान के सम्मुख दोषी है। वे बताने लगे – एक ने एक की जान ली, दूसरे ने दो हत्यायें कीं, तीसरे ने आग लगाई, चौथा योंही आवारा था और किसी अपराध के बिना ही सज़ा भुगत रहा था। वे बूढ़े सौदागर से पूछने लगे कि बड़े मियां तुम किस कारण यह दुख भोग रहे हो। बूढ़े ने कहा – 'मेरे प्यारे भाइयो, मैं अपने और लोगों के पापों के लिये दुख भोग रहा हूं। मैंने किसी की हत्या नहीं की, किसी का धन नहीं लिया, मैं तो ग़रीबों और ज़रूरतमन्दों की मदद भी करता था। मेरे प्यारे भाइयो, मैं सौदागर हूं, बहुत दौलत थी मेरे पास। तो ऐसा मामला है।' और उसने आरम्भ से अन्त तक सारा क़िस्सा ढंग से कह सुनाया और बोला – 'मुझे अपने लिये कोई दुख नहीं। भगवान की ऐसी ही इच्छा थी। मुझे अपनी बुढ़िया और बाल-बच्चों के लिये ही अफ़सोस होता है।' और बूढ़ा फूट-फूटकर रोने लगा। अब हुआ यह

कि इन लोगों में वह अपराधी भी था जिसने सौदागर की हत्या की थी। उसने पूछा – 'यह क़िस्सा कहां हुआ था, किस वक़्त, किस महीने में?' उसने सब कुछ पूछ लिया। उसका दिल बुरी तरह से तड़पने लगा। वह सौदागर के पास गया और उसके पांवों पर गिर गया। बोला – 'दादा, तुम मेरे कारण दुख उठा रहे हो। प्यारे भाइयो, यह सब बिल्कुल सच है, यह बूढ़ा तो किसी अपराध के बिना ही दुख-दर्द सह रहा है। मैंने ही यह कुकर्म किया था और दादा, जब तुम सो रहे थे, तो तुम्हारे तकिये के नीचे छुरा रख दिया था। ईसा मसीह के नाम पर मुझे माफ़ कर दो।'"

कारातायेव प्रसन्नतापूर्वक मुस्कराते और आग की तरफ़ देखते हुए चुप हो गया और इसके बाद उसने अलाव में कुन्दों को ठीक किया।

"बूढ़ा बोला – 'भगवान क्षमा करेंगे तुझे, भगवान के सम्मुख हम सब अपराधी हैं, मैं तो अपने पापों के लिये दुख उठा रहा हूं।' और ख़ुद बिलख-बिलखकर रोने लगा। तुम क्या सोचते हो, मेरे प्यारे," उल्लासपूर्ण मुस्कान से अधिकाधिक चमकते चेहरे के साथ कारातायेव ने ऐसे कहा मानो जो कुछ वह अब कहने जा रहा था, उसकी पूरी कहानी का सारा सौन्दर्य और सार उसी में निहित हो, "तो मेरे प्यारे भाई, उस हत्यारे ने अधिकारियों के सामने जाकर सब कुछ स्वीकार कर लिया। उसने कहा – 'मैंने छः लोगों की जानें ली हैं (बहुत ही बुरा आदमी था वह), किन्तु इस बूढ़े के लिये मुझे सबसे अधिक दुख हो रहा है। मेरी करनी के लिये इसे और अधिक मुसीबत नहीं झेलनी चाहिये।' उसने सब कुछ स्पष्ट कर दिया, ढंग से सब कुछ लिख-लिखाकर काग़ज़ दे दिया। जगह बहुत दूर थी, जब तक दौड़-धूप हुई, जब तक अधिकारियों-संचालकों को सब कुछ लिखा-लिखाया गया – काफ़ी वक़्त बीत गया। मामला ज़ार तक पहुंचा। कुछ और समय बीत गया – ज़ार का हुक्म जारी हुआ – सौदागर को रिहा किया जाये, जितना उचित था, उसे इसका हर्जाना दिया जाये। हुक्म जारी हो गया और बूढ़े की खोज की जाने लगी। कहां है वह बूढ़ा जो किसी अपराध के बिना इतने समय से यातना सह रहा है? ज़ार का आदेश आया है। वे उसे खोजने लगे," कारातायेव का निचला जबड़ा कांप उठा। "लेकिन उसे तो भगवान ने ही माफ़ कर दिया था – वह चल बसा था। तो ऐसी बात है, मेरे प्यारो," कारातायेव ने अपनी कहानी

समाप्त की और मुस्कराते हुए देर तक अपने सामने देखता रहा।

यह क़िस्सा नहीं, बल्कि इसका रहस्यपूर्ण भाव, वह उल्लासपूर्ण प्रसन्नता जो इसे सुनाते वक़्त कारातायेव के चेहरे पर चमकती रही थी, इस प्रसन्नता का रहस्यपूर्ण महत्त्व ही इस समय प्येर की आत्मा को अस्पष्ट प्रसन्नता से ओत-प्रोत कर रहा था।

१४

"सब अपनी-अपनी जगहों पर चले जायें!" अचानक किसी ने चिल्लाकर कहा।

बन्दियों और रक्षा-दल के सैनिकों में किसी सुखद तथा समारोही चीज़ की प्रत्याशा की प्रसन्नतापूर्ण उत्तेजना फैल गयी। सभी दिशाओं से ऊंची-ऊंची आवाज़ों में आदेश सुनायी दिये और बायीं ओर से अच्छी पोशाकें पहने तथा दुलकी चाल से बढ़िया घोड़े दौड़ाते घुड़सवार आते दिखाई दिये। सभी के चेहरों पर ऐसा तनाव था जो उच्च सत्ताधारियों की निकटता के समय होता है। एक ही जगह पर एकत्रित हो गये बन्दियों को रास्ते से हटा दिया गया और रक्षा-दल के सैनिक क़तार में खड़े हो गये।

"सम्राट! सम्राट! मार्शल! ड्यूक!" और रक्षा-दल के हृष्ट-पुष्ट घुड़सवारों के आगे जाते ही एक बग्घी के पहियों की खड़खड़ाहट सुनायी दी जिसमें भूरे घोड़े जुते हुए थे। प्येर को तिकोना टोप पहने एक शान्त, सुन्दर, चौड़े और गोरे चेहरेवाले व्यक्ति की झलक मिली। यह एक मार्शल था। मार्शल ने प्येर की लम्बी-चौड़ी और प्रभावपूर्ण आकृति पर नज़र डाली और मार्शल ने अपने चेहरे पर जो भाव लाते हुए नाक-भौंह सिकोड़ी और अपना मुंह फेर लिया, प्येर को उसमें सहानुभूति और उसे छिपाने की इच्छा का आभास मिला।

वह जनरल, जो इस सैनिक-दल का कमांडर था, लाल-लाल और डरे-सहमे चेहरे के साथ अपने दुबले-पतले घोड़े को चाबुक मारता हुआ उसे बग्घी के पीछे-पीछे सरपट दौड़ाता जा रहा था। एक जगह पर कुछ फ़ौजी अफ़सर और उनके गिर्द सैनिक जमा हो गये थे। सभी के चेहरे बहुत तनावपूर्ण तथा विह्वल थे।

"क्या कहा था उसने? क्या कहा था उसने? .." प्येर को सुनाई दिया।

मार्शल की बग्घी के गुज़रने के समय क़ैदी एक ही जगह पर एकत्रित हो गये थे। प्येर का इसी वक़्त कारातायेव की ओर ध्यान गया जिसे इस सुबह को उसने अब तक नहीं देखा था। कारातायेव अपना छोटा-सा फ़ौजी ओवरकोट पहने एक भोज-वृक्ष के साथ टेक लगाये बैठा था। उसके चेहरे पर उस प्रसन्नतापूर्ण कोमल भावना के अतिरिक्त, जो निर्दोष सौदागर के दुख भोगने का क़िस्सा सुनाते वक़्त नज़र आती रही थी, अब शान्त गम्भीरता के भाव की कान्ति भी दिखाई दे रही थी।

कारातायेव अपनी गोल-गोल दयालु आंखों से, जिनमें अब आंसू भरे हुए थे, प्येर की तरफ़ देख रहा था और सम्भवतः उसे अपने पास बुलाना तथा उससे कुछ कहना चाहता था। किन्तु प्येर को ख़ुद अपने लिये बहुत डर महसूस हो रहा था। उसने ऐसा दिखावा किया मानो उसने उसकी तरफ़ देखा ही न हो और झटपट दूर हट गया।

बन्दी जब फिर से आगे बढ़ने लगे तो प्येर ने मुड़कर देखा। कारातायेव भोज-वृक्ष के पास सड़क-किनारे बैठा था और दो फ़्रांसीसी उसपर झुके हुए उससे कुछ बातचीत कर रहे थे। प्येर ने इसके बाद फिर मुड़कर नहीं देखा। वह लंगड़ाता हुआ पहाड़ी पर चढ़ता रहा।

पीछे से, उस जगह से, जहां कारातायेव बैठा था, गोली चलने की आवाज़ सुनायी दी। प्येर ने बहुत स्पष्ट रूप से यह आवाज़ सुनी, किन्तु उसी क्षण, जब उसे यह आवाज़ सुनायी दी, उसे याद हो आया कि मार्शल की बग्घी के गुज़रने के पहले उसने इस चीज़ की जो गिनती शुरू की थी कि स्मोलेन्स्क तक पहुंचने की कितनी मंज़िलें बाक़ी रह गयी हैं, वह अभी पूरी नहीं हुई है। और वह गिनती करने लगा। दो फ़्रांसीसी सैनिक, जिनमें से एक धुआं छोड़ती हुई बन्दूक़ अपने हाथ में लिये था, प्येर के पास से भागते हुए गुज़रे। उन दोनों के चेहरों का रंग उड़ा हुआ था और उनपर – उनमें से एक ने सहमी-सहमी नज़र से प्येर की तरफ़ देखा – लगभग उसी से मिलता-जुलता भाव था जैसा उसने आग लगानेवालों को मृत्यु-दण्ड देने के समय जवान सैनिक के चेहरे पर देखा था। प्येर ने इस सैनिक पर नज़र डाली और उसे याद हो आया कि दो दिन पहले अलाव पर अपनी क़मीज़ सुखाते हुए कैसे

उसने उसे जला लिया था और किस तरह उसका मज़ाक़ उड़ाया गया था।

पीछे, उसी जगह पर कुत्ता रोने लगा, जहां कारातायेव बैठा था। "ओह, कैसा बुद्धू है, किसलिये रो रहा है?" प्येर ने सोचा।

प्येर की तरह उसके साथ-साथ चलनेवाले रूसी बन्दियों, सैनिक-साथियों ने भी उस स्थान की तरफ़ मुड़कर नहीं देखा जहां से गोली चलने और कुछ देर बाद कुत्ते के रोने की आवाज़ सुनायी दी थी। किन्तु उन सभी के चेहरे कठोर बने हुए थे।

१५

फ़्रांसीसी सेना-दल, बन्दी और मार्शल के सामान से लदी हुई घोड़ा-गाड़ियां – ये सभी शमशेवो गांव में जाकर रुके। अलावों के गिर्द सभी ने जमघट-सा बना लिया। प्येर अलाव के क़रीब गया, उसने घोड़े का भुना हुआ मांस खाया, आग की ओर पीठ करके लेट गया और फ़ौरन ही सो गया। इस समय उसे पुनः कुछ उसी तरह की नींद आई जिस तरह की बोरोदिनो की लड़ाई के बाद मोजाइस्क में आई थी।

फिर से वास्तविक जीवन की घटनायें सपनों से घुल-मिल गयीं और फिर से या तो वह स्वयं ही अथवा कोई अन्य व्यक्ति उससे कुछ विचारों, यहां तक कि उन्हीं विचारों की चर्चा करने लगा जिनकी मोजाइस्क में चर्चा की गयी थी।

"जीवन ही सब कुछ है। जीवन ही भगवान है। सभी कुछ बदलता और गतिशील रहता है और यह गतिशीलता ही भगवान है। जब तक जीवन है, तब तक ईश्वरत्व की चेतना में आनन्द है। जीवन को प्यार करना, भगवान को प्यार करना है। अपने दुख-दर्दों को सहते, निरपराध होने पर भी दुख झेलते हुए इस जीवन को प्यार करना कहीं अधिक कठिन और आनन्दप्रद है।"

"कारातायेव!" प्येर को याद हो आया।

और प्येर को अचानक कभी का भूला-बिसरा एक विनम्र बूढ़ा अध्यापक, जो स्विट्ज़रलैंड में उसे भूगोल पढ़ाया करता था, एक जीते-जागते व्यक्ति के रूप में दिखाई दिया। "ज़रा रुको," बूढ़े ने कहा। उसने प्येर को एक ग्लोब यानी पृथ्वी का गोलक दिखाया। यह गोलक निश्चित लम्बाई-चौड़ाई के बिना सजीव और हिलता-डुलता-सा था। इस गोलक की पूरी की पूरी ऊपरी सतह आपस में ख़ूब सटी हुई बूंदों का रूप धारण किये थी। ये सभी बूंदें हिलती-डुलती थीं, एक जगह से दूसरी जगह जाती थीं, कभी कई बूंदें एक बूंद में मिल जातीं तो कभी एक बूंद से अनेक बन जातीं। प्रत्येक बूंद अधिक से अधिक स्थान पर अधिकार करते हुए अधिकाधिक फैलने का प्रयास करती, किन्तु दूसरी बूंदें भी ऐसी ही कोशिश करते हुए उसे दबातीं, कभी तो उसे अपने में जज़्ब करके उसका अस्तित्व समाप्त कर देतीं और कभी स्वयं उसमें घुल-मिल जातीं।

"यह है जीवन," बूढ़े अध्यापक ने कहा।

"यह कितनी सीधी-सादी और स्पष्ट बात है," प्येर ने सोचा। "भला मुझे इसका पहले ज्ञान क्यों नहीं था।"

"गोलक के मध्य में भगवान हैं और हर बूंद उन्हीं को प्रतिबिम्बित करने के लिये अधिकतम फैलती है। वह बढ़ती है, जज़्ब होती है, बाहर निकलती है, सतह पर नष्ट हो जाती है, तल में पहुंच जाती है और फिर से ऊपर आ जाती है। कारातायेव के साथ भी ऐसा ही हुआ, जलमग्न होकर लुप्त हो गया। तुम समझते हो, मेरे बच्चे," अध्यापक ने कहा।

"तुम समझते हो, तुमपर शैतान की मार?" कोई चीख़ उठा और प्येर की आंख खुल गयी।

उसने सिर ऊपर उठाया और उठकर बैठ गया। एक रूसी सैनिक को अभी-अभी एक तरफ़ धकियाकर अलाव के पास उकड़ूं बैठा हुआ एक फ़्रांसीसी लोहे की छड़ पर मांस चढ़ाकर उसे भून रहा था। उसने अपनी आस्तीनें ऊपर चढ़ा रखी थीं और वह बालों से ढके, छोटी-छोटी उंगलियों तथा उभरी नसोंवाले लाल-लाल हाथों से बहुत कुशलतापूर्वक छड़ को घुमा रहा था। दहकते अंगारों की रोशनी में उसका भृकुटि चढ़ा सांवला उदास चेहरा बिल्कुल साफ़ नज़र आ रहा था।

"इसे क्या फ़र्क़ पड़ता है," वह अपने पीछे खड़े सैनिक को जल्दी से सम्बोधित करते हुए बड़बड़ाया, "बदमाश कहीं का!"

सैनिक ने लोहे की छड़ घुमाते हुए उदासी से प्येर की तरफ़ देखा। प्येर मुंह फेरकर अन्धेरे को देखने लगा। एक रूसी बन्दी-सैनिक, वही, जिसे फ़्रांसीसी ने धकेलकर एक तरफ़ हटा दिया था, अलाव के क़रीब बैठा हुआ किसी चीज़ को हाथ से थपथपा रहा था। निकट से देखने पर प्येर ने बैंगनी झलकवाले सलेटी रंग के कुत्ते को पहचान लिया जो दुम हिलाता हुआ उस सैनिक के क़रीब बैठा था।

"अरे, आ गया?" प्येर कह उठा। "लेकिन प्ला ..." उसने कहना शुरू किया, किन्तु अपना वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया। अचानक उसकी कल्पना में एक-दूसरी से गड्डमड्ड होती हुई कई चीज़ें एकसाथ उभर आईं – पेड़ के नीचे बैठे प्लातोन करातायेव की वह दृष्टि याद आई जिससे उसने उसकी तरफ़ देखा था, उसी जगह पर गोली चलने की आवाज़ और कुत्ते का रोना सुनायी दिया, अपने क़रीब से भागकर जानेवाले दो फ़्रांसीसियों के अपराधपूर्ण चेहरे तथा धुआं उगलती बन्दूक़ नज़र आयी, इस पड़ाव पर करातायेव की अनुपस्थिति का ध्यान आया और वह यह मानने ही वाला था कि करातायेव मारा जा चुका है। किन्तु इसी क्षण, न जाने कैसे, उसकी स्मृति में गर्मी के दिनों में कीयेव नगर के अपने घर के छज्जे पर एक सुन्दर पोलैंडी महिला के साथ बितायी गयी शाम सजीव हो उठी। प्येर ने आज की स्मृतियों को सूत्रबद्ध किये बिना तथा उनसे कोई निष्कर्ष निकाले बिना आंखें मूंद लीं तथा ग्रीष्मकालीन प्रकृति का चित्र नदी-स्नान, तरल तथा हिलते-डुलते गोले की स्मृतियों के साथ घुल-मिल गया, वह पानी में कहीं नीचे ही नीचे डूबता चला गया और उसका सिर जलमग्न हो गया।

बहुत ऊंची और अक्सर गोलियां चलने की आवाज़ों और चीख़ों ने प्येर को सूर्योदय से पहले जगा दिया। फ़्रांसीसी सैनिक उसके क़रीब से भागते हुए जा रहे थे।

"कज़्ज़ाक!" एक फ़्रांसीसी सैनिक चिल्ला उठा और एक मिनट के बाद रूसियों की भीड़ ने प्येर को घेर लिया।

प्येर देर तक नहीं समझ पाया कि यह सब क्या हो रहा है।

सभी ओर से साथियों की ख़ुशी भरी चीख़ें और सिसकियां सुनायी दे रही थीं।

"भाइयो! हमारे प्यारे, साथियो!" बूढ़े सैनिक कज़्ज़ाकों और हुस्सारों को गले लगाते और रोते हुए चिल्ला रहे थे। हुस्सारों और कज़्ज़ाकों ने रूसी बन्दियों को घेर लिया और उनमें कोई तो उन्हें कपड़े, कोई बूट और कोई रोटी पेश करने की उतावली कर रहा था। प्येर इनके बीच बैठा हुआ रो रहा था और मुंह से एक भी शब्द नहीं निकाल पा रहा था। अपने क़रीब आनेवाले पहले ही सैनिक को उसने गले लगा लिया और रोते हुए उसको चूम लिया।

ज़मींदार के टूटे हुए मकान के फाटक के पास खड़ा हुआ दोलोख़ोव निहत्थे फ़्रांसीसियों की भीड़ को अपने क़रीब से आगे भेजता जा रहा था। जो कुछ हुआ था, उसके कारण उत्तेजित फ़्रांसीसी आपस में बहुत ऊंचे-ऊंचे बातचीत कर रहे थे; किन्तु जब वे दोलोख़ोव के सामने से गुज़रते, जो अपने बूटों पर धीरे-धीरे चाबुक मारते हुए उन्हें ऐसी कठोर और भावशून्य आंखों से देखता जो किसी भी अच्छी चीज़ की आशा नहीं बंधवाती थीं, तो चुप हो जाते। दूसरी तरफ़ खड़ा हुआ दोलोख़ोव का एक कज़्ज़ाक बन्दियों की गिनती कर रहा था। सौ की संख्या पूरी होते ही वह फाटक पर खड़िया के एक टुकड़े से उसे लिख देता था।

"कितने हो गये?" दोलोख़ोव ने फ़्रांसीसी क़ैदियों को गिननेवाले कज़्ज़ाक से पूछा।

"एक सौ से कहीं ऊपर," कज़्ज़ाक ने जवाब दिया।

"चलते जाओ, चलते जाओ," दोलोख़ोव फ़्रांसीसी में ये शब्द कहता जा रहा था जो उसने फ़्रांसीसियों से ही सीखे थे और अपने क़रीब से गुज़रते बन्दियों के साथ नज़रें मिलने पर उसकी आंखों में क्रूरता की चिंगारी-सी चमक उठती थी।

टोपी उतारे हुए और बहुत ही उदास चेहरे के साथ देनीसोव उन कज़्ज़ाकों के पीछे-पीछे चल रहा था जो पेत्या रोस्तोव के शव को बाग़ में खोदी गयी क़ब्र में दफ़नाने के लिये ले जा रहे थे।

२८ अक्तूबर से, जब ज़ोर की ठण्ड और पाला पड़ने लगा था, फ़्रांसीसियों के पलायन ने अधिक दुखद रूप धारण कर लिया था – आम सैनिक बहुत बुरी तरह से ठिठुरते थे और अलावों के क़रीब बैठकर अपने को जला डालने की हद तक आग तापते थे, जबकि सम्राट, बादशाह और ड्यूक, आदि समूरों के कोटों से अपने को ढंके तथा लूटी हुई दौलत को साथ लिये हुए बग्घियों में वापस सफ़र करते जा रहे थे। किन्तु कुल मिलाकर मास्को से रवाना होने के बाद के समय से फ़्रांसीसी सेना के भागने और विघटित होने की प्रक्रिया में कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हुआ था।

गार्ड-सेना की गणना न करते हुए (जिसने सारे युद्धकाल के दौरान लूटने के सिवा और कोई भी काम नहीं किया था) मास्को से व्याज़्मा पहुंचने तक तिहत्तर हज़ार में से केवल छत्तीस हज़ार सैनिक बाक़ी रह गये थे (इनमें से पांच हज़ार से अधिक लड़ाइयों में नहीं मारे गये थे)। अगर शुरू में ही ऐसा हाल हुआ तो आगे क्या हुआ होगा, इसका सही अनुमान लगाया जा सकता है।

इस बात पर न निर्भर करते हुए कि कम या ज़्यादा ठण्ड पड़ी, फ़्रांसीसी सेना का कम या अधिक पीछा किया गया, उसका कम या ज़्यादा रास्ता रोका गया तथा अलग-थलग रूप से ऐसी अन्य परिस्थितियां सामने आईं – फ़्रांसीसी सेनायें इसी अनुपात में मास्को से व्याज़्मा तक, व्याज़्मा से स्मोलेन्स्क तक, स्मोलेन्स्क से बेरेज़िना तक, बेरेज़िना से वील्ना तक कम और नष्ट होती चली गयीं। व्याज़्मा के बाद फ़्रांसीसी सेनाओं ने तीन दलों के बजाय एक ही समूह का रूप ले लिया और इसी रूप में अन्त तक चलती रहीं। बेरथियर ने अपने सम्राट को यह लिखा (हम जानते हैं कि सेना-संचालक सेना की वास्तविक स्थिति से कितना भिन्न उसका वर्णन करते हैं) –

"आप हुज़ूर को फ़ौजी-कोरों की स्थिति के बारे में, जैसी कि पिछले तीन दिनों में मैंने देखी है, सूचित करना मैं अपना कर्त्तव्य मानता हूं। वे लगभग पूर्ण विघटन की हालत में हैं। सैनिकों का केवल चौथाई भाग झण्डों तले रहता है, बाक़ी ख़ुराक की खोज और सैनिक-अनुशासन से बचने की कोशिश करते हुए अपनी मर्ज़ी से अलग-अलग दिशाओं

में जाते रहते हैं। सभी स्मोलेन्स्क के सम्बन्ध में सोचते हैं जहां कुछ आराम करने की आशा करते हैं। पिछले दिनों में अनेक सैनिकों ने अपने कारतूस और बन्दूकें फेंक दी हैं। हुजूर की भावी योजनायें बेशक कुछ भी क्यों न हों, किन्तु आपकी सेना के हित इस बात की मांग करते हैं कि स्मोलेन्स्क में सैनिक कोरें एकत्रित की जायें और अश्वहीन घुड़सैनिकों, शस्त्रहीन सैनिकों, अनावश्यक घोड़ा-गाड़ियों और तोपखानों के कुछ भागों को इनसे अलग कर दिया जाये, क्योंकि अब वे सैनिक-संख्या से मेल नहीं खाते। रसद और कुछ दिनों का आराम आवश्यक है। भूख और थकान से सैनिकों का बहुत बुरा हाल है। पिछले दिनों में अनेक सैनिक रास्ते में और पड़ावों में मर गये हैं। यह हालत लगातार बिगड़ती जा रही है और शंका पैदा करती है कि अगर इस मुसीबत को दूर करने के लिये फ़ौरन क़दम नहीं उठाये जायेंगे तो लड़ाई होने की स्थिति में हमारे पास अपनी सेनायें ही नहीं होंगी। ९ नवम्बर, स्मोलेन्स्क से ३० वेर्स्ता दूर।"

किसी तरह अपने मनवांछित स्मोलेन्स्क नगर पहुंचने पर फ़्रांसीसियों ने ख़ुराक के लिये एक-दूसरे की हत्या की, अपने ही स्टोरों को लूटा और जब सब कुछ लूट लिया गया तो आगे भाग चले।

यह न जानते हुए कि किधर और किसलिये जा रहे हैं, ये लोग चलते जा रहे थे। दूसरों की तुलना में प्रतिभाशाली नेपोलियन तो इस चीज़ को और भी कम जानता था, क्योंकि उसे आदेश देनेवाला कोई नहीं था। किन्तु इसके बावजूद नेपोलियन और उसके निकटवर्ती लोग अपने पुराने आचार-व्यवहार का अनुकरण करते जा रहे थे – वे आदेश, पत्र और रिपोर्टें लिखते थे, हर दिन के हुक्म जारी करते थे, एक-दूसरे को – "महामहिम, भाई जान, एकम्यूल का प्रिंस और नेपल्ज़ का बादशाह, आदि के रूप में सम्बोधित करते थे। किन्तु सभी रिपोर्टें और आदेश काग़ज़ी कार्रवाइयां ही होते थे, उन्हें ज़रा भी अमली शक्ल नहीं दी जाती थी, क्योंकि ऐसा करना सम्भव नहीं था और एक-दूसरे को महामहिम, महामान्य तथा भाई जान के रूप में सम्बोधित करने के बावजूद ये सभी इस बात को अनुभव करते थे कि वे बहुत बुरे और तुच्छ लोग हैं जिन्होंने बहुत-से कुकर्म किये हैं, जिनका अब उन्हें भुगतान करना पड़ रहा है। यद्यपि ये सभी ऐसा दिखावा करते थे कि

सेना की चिन्ता करते हैं, तथापि वास्तव में हर कोई अपने ही बारे में तथा यह सोचता था कि कैसे जल्दी से जल्दी यहां से भागे और ख़ुद को बचाये।

१७

मास्को से नाइमन तक वापस जाने के समय रूसी और फ़्रांसीसी सेनाओं की गति-विधियां आंख-मिचौनी के खेल के समान थीं। इस खेल के अनुसार इसमें हिस्सा लेनेवाले दो व्यक्तियों की आंखों पर पट्टी बांध दी जाती है और उनमें से एक जब-तब घण्टी बजाकर अपने को पकड़नेवाले को इस बात की सूचना देता रहता है कि वह किस जगह पर है। शुरू में तो वह व्यक्ति, जिसे पकड़ा जाना होता है, अपने विरोधी से डरे बिना घण्टी बजाता रहता है, किन्तु जब वह अपने को कठिन परिस्थिति में पाता है तो दबे पांव खिसकने, विरोधी से बच निकलने की कोशिश करते तथा भाग जाने की सोचते हुए अक्सर सीधे उसी के हाथों में जा पड़ता है।

नेपोलियन की सेनायें शुरू में तो अपने बारे में सूचना देती रहीं – ऐसा कालूगा के मार्ग पर बढ़ने के आरम्भिक काल में हुआ, किन्तु बाद में, स्मोलेन्स्क सड़क पर आने के पश्चात वे घण्टी को हाथ में दबा-कर, ताकि वह बजे नहीं, भागने लगीं और अक्सर ऐसा सोचते हुए कि वे बच निकली हैं, सीधी रूसियों के सामने आ जातीं।

फ़्रांसीसियों के बहुत तेज़ी से भागने और रूसियों के उनका पीछा करने तथा इसके परिणामस्वरूप घोड़ों के बेहद थक जाने के कारण शत्रु की स्थिति की मोटे तौर पर जानकारी पाने के मुख्य साधन यानी घुड़सवारों द्वारा टोह लेने की सुविधा का उपयोग नहीं किया जाता था। इसके अतिरिक्त जो थोड़ी-बहुत सूचना मिलती भी थी, वह दोनों सेनाओं के बहुधा और ज़ल्दी-जल्दी स्थिति बदलने के कारण वक़्त पर पहुंच नहीं पाती थी। अगर आज यह ख़बर आती कि शत्रु-सेना कल फ़लां जगह थी तो अगले दिन जब कोई क़दम उठाना सम्भव होता, वह सेना दो मंज़िल मारती हुई किसी दूसरी जगह पहुंच जाती और भिन्न स्थिति में होती।

एक सेना भाग रही थी और दूसरी उसका पीछा कर रही थी। स्मोलेन्स्क से आगे फ़्रांसीसियों के लिये आगे बढ़ने के कई मार्ग थे और ऐसा प्रतीत हो सकता था कि चार दिनों तक यहां रुके रहनेवाले फ़्रांसीसी यह मालूम कर सकते थे कि शत्रु कहां हैं, अपने लिये अधिक लाभदायक कोई योजना बना सकते थे, कोई नयी कार्रवाई कर सकते थे। किन्तु चार दिन के पड़ाव के बाद वे दायें, बायें नहीं, बल्कि किसी योजना और सोच-विचार के बिना क्रास्नोये और ओर्शा शहर से होकर जानेवाले सबसे बुरे और अपने जाने-पहचाने पुराने मार्ग पर ही फिर से भाग चले।

यह मानते हुए कि शत्रु पीछे से आ रहा है, सामने से नहीं, फ़्रांसीसी एक-दूसरे से चौबीस घण्टों के कूच के फ़ासले तक फैले हुए भाग रहे थे। सबसे आगे-आगे सम्राट, उसके पीछे बादशाह और फिर ड्यूक भागे जा रहे थे। रूसी सेना यह मानते हुए कि नेपोलियन द्नेप्र नदी को पार करके दायें को मुड़ जायेगा, जो एकमात्र समझदारी का काम होता, ख़ुद भी दायें को मुड़ गयी और क्रास्नोये की ओर जानेवाली बड़ी सड़क पर पहुंच गयी। और जिस तरह आंख-मिचौनी के खेल में होता है फ़्रांसीसी हमारी सेना के हरावल के सामने आ गये। शत्रु को अचानक अपने सामने देखकर फ़्रांसीसी चकरा गये, अप्रत्याशित भय के कारण रुक गये और पीछे आ रहे अपने साथियों को उनके हाल पर छोड़कर फिर से आगे भाग चले। यहां, तीन दिन तक फ़्रांसीसी सेना के अलग-अलग भाग – पहले वायसराय म्युराट, फिर दावू और फिर नेय मानो रूसी सेनाओं के व्यूह के बीच से गुज़रे। इन्होंने एक-दूसरे को त्याग दिया, अपना सारा सामान और तोपें फेंक दीं, अपने आधे लोगों को छोड़ दिया और रातों के अंधेरे में ही रूसियों के गिर्द अर्धचक्रों में घूमते हुए भाग निकले।

नेय, जो सबसे बाद में आया, क्योंकि वह किसी के भी आड़े न आनेवाली स्मोलेन्स्क की दीवारों को तोड़ने के लिये रुक गया था (अपनी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के बावजूद या इसके परिणामस्वरूप फ़्रांसीसियों ने उस फ़र्श को पीटना चाहा जिसपर गिरने से उन्हें चोट लग गयी थी), सबसे बाद में आनेवाला यह नेय अपनी दस हज़ार की सेना में से केवल एक हज़ार सैनिकों को साथ लेकर, बाक़ी सभी को छोड़कर, तोपों को फेंककर और रात के वक़्त चोरी-छिपे जंगल में से गुज़रकर

तथा द्नेप्र को लांघकर ओर्शा में नेपोलियन के पास पहुंच गया।

पीछा करनेवाली सेना के साथ मानो वही आंख-मिचौनी खेलते हुए फ़्रांसीसी ओर्शा से वील्ना की ओर जानेवाली सड़क पर आगे भाग चले। बेरेज़िना के तट पर फिर से इनमें खलबली मच गयी, बहुत-से सैनिक डूब गये, बहुतों ने हथियार फेंक दिये, किन्तु जो नदी पार करने में सफल रहे, आगे भाग गये। इनके सबसे बड़े कमांडर ने समूर का कोट पहना, स्लेज में बैठा और अपने साथियों को छोड़कर हवा हो गया। जिसके लिये सम्भव हुआ, वह भाग निकला, जिसके लिये सम्भव नहीं हो सका, वह बन्दी बन गया या मौत के मुंह में चला गया।

१८

ऐसा प्रतीत हो सकता है कि वे इतिहासकार जो जनसाधारण के व्यवहार को एक व्यक्ति की इच्छा का परिणाम मानते हैं वे फ़्रांसीसियों के इस पलायन को, जब उन्होंने अपने नाश के लिये स्वयं वह सब कुछ किया जो करना सम्भव था; जब इस भीड़ के कालूगा मार्ग की ओर मुड़ने से लेकर और इसके नेता के सेना से भागने तक की किसी गति-विधि में कोई भी तुक नहीं थी, अपने दृष्टिकोण के चौखटे में फ़िट नहीं कर पायेंगे। किन्तु नहीं, इतिहासकारों ने इस पलायन के बारे में ढेरों-ढेर पुस्तकें लिख डाली हैं और उनमें हर जगह सेनाओं के संचालन के लिये नेपोलियन के बहुत ही अच्छे अनुदेशों, पैंतरेबाज़ी और गहन चिन्तनपूर्ण योजनाओं तथा उसके मार्शलों के प्रतिभापूर्ण आदेशों का वर्णन किया गया है।

मालोयारोस्लावेत्स से नेपोलियन के उस समय पीछे हटने की, जब उसके लिये अनाज के समृद्ध क्षेत्रों की ओर बढ़ने का रास्ता खुला था, जब उस समानान्तर सड़क पर जाने के मामले में भी उसके सामने कोई बाधा नहीं थी जिसपर बाद में कुतूज़ोव ने उसका पीछा किया, और पीछे हटने के लिये टूटी-फूटी सड़क को चुनने की भी (जिसकी बिल्कुल ज़रूरत नहीं थी) – उसकी गहरी सूझ-बूझ और सोची-विचारी गयी योजनाओं के रूप में व्याख्या की गयी है। स्मोलेन्स्क से उसके

ओर्शा की तरफ़ पीछे हटने को भी ऐसे ही गहन विचारों का परिणाम बताया गया है। इसके बाद क्रास्नोये के क़रीब उसकी वीरता का बखान है जहां वह मानो लड़ाई लड़ने और फ़ौज की कमान अपने हाथ में लेने को तैयार हो गया था तथा भूर्ज की छड़ी हाथ में लिये इधर-उधर आता-जाता हुआ यह कहता रहा था –

"मैं सम्राट तो बहुत बन चुका, लेकिन अब मेरे जनरल बनने का वक़्त आ गया है," – और इसके तुरन्त बाद अपनी सेना के पीछे आनेवाले बिखरे भागों को उनके रहम पर छोड़कर आगे भाग जाता है।

इसके पश्चात मार्शलों की आत्माओं की महानता, विशेषकर नेय की आत्मा की महानता का वर्णन किया गया है। उसकी महानता इसी चीज़ में निहित है कि वह अपने झण्डे और तोपें फेंककर तथा अपनी सेना के दस में से नौ भागों को पीछे छोड़कर रात के वक़्त जंगल में से चक्कर काटता हुआ द्नेप्र नदी को लांघकर ओर्शा भाग जाता है।

और अन्त में महान सम्राट का अपनी वीरतापूर्ण सेना से विदा लेना भी इतिहासकारों द्वारा एक भव्य और प्रतिभापूर्ण कृत्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भगोड़ेपन की यह आख़िरी हरकत भी, जिसे साधारण भाषा में नीचता की चरम सीमा कहा जाती है और जिसके लिये हर बालक को लज्जित होने की शिक्षा दी जाती है, इतिहासकारों ने इसकी भी सफ़ाई पेश कर दी है।

ऐतिहासिक तर्क-वितर्क के इतने लचीले धागे को जब और अधिक आगे खींचना सम्भव नहीं रहता, जब स्पष्टतः उसके बिल्कुल प्रतिकूल कार्य होने लगता है जिसे सारी मानवजाति भलाई, यहां तक कि न्याय भी कहती है तो इतिहासकार अपने बचाव की "महानता" सम्बन्धी धारणा को आगे बढ़ा देते हैं। महानता तो मानो भले और बुरे को परखने की कसौटी ही समाप्त कर देती है। महान व्यक्ति तो कोई बुराई कर ही नहीं सकता। कोई भी ऐसा अपराध नहीं है जिसके लिये महान व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है।

"यह तो महानता है!" इतिहासकार कह उठते हैं और तब भले और बुरे का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है और केवल "महानता" और "अमहानता" ही शेष रह जाती है। महानता – अच्छाई है, अमहानता – बुराई है। इतिहासकारों की धारणा के अनुसार महानता

कुछ ऐसे विशेष प्राणियों का लक्षण है जिन्हें वे "हीरो" कहते हैं। और नेपोलियन समूर का गर्म ओवरकोट पहनकर न केवल अपने साथियों को, बल्कि उन लोगों को भी उनके भाग्य की दया पर पीछे छोड़कर, जिन्हें वही यहां लाया था, खुद घर भाग जाता है, अपने को महान अनुभव करता है और उसकी आत्मा चैन की सांस लेती रहती है।

"महानता (नेपोलियन अपने में कुछ महान अनुभव करता था) और हास्यास्पदता में केवल एक ही क़दम का फ़ासला है," उसका कहना था। और पचास वर्षों तक सारी दुनिया यही रट लगाये रही – "महान! लाजवाब! नेपोलियन महान! महानता और हास्यास्पदता में केवल एक ही क़दम का फ़ासला है।"

किसी के दिमाग़ में यह विचार तक नहीं आया कि भलाई और बुराई की कसौटी पर खरी न उतरनेवाली महानता को मान्यता देना अपनी तुच्छता और असीम छोटेपन को स्वीकार करना ही है।

हमारे लिये, जिन्हें ईसा मसीह ने भलाई और बुराई का मापदण्ड प्रदान किया है, सभी कुछ को इस मापदण्ड पर जांचना सम्भव है। और जहां सरलता, भलाई और सचाई नहीं है, वहां महानता नहीं हो सकती।

१९

सन् १८१२ के युद्ध के अन्तिम काल का वर्णन पढ़ते हुए किस रूसी व्यक्ति ने खीझ, असन्तोष और अस्पष्टता की अप्रिय भावना अनुभव नहीं की होगी? किसने अपने से ये प्रश्न नहीं पूछे होंगे – जब हमारी तीनों सेनाओं ने संख्यागत श्रेष्ठता रखते हुए फ़्रांसीसियों को अपने घेरे में ले लिया था तो उन्होंने उन सभी को बन्दी क्यों नहीं बना लिया, नष्ट क्यों नहीं कर दिया, जब अस्त-व्यस्त, भूखी और ठिठुरी हुई फ़्रांसीसी सेनायें ढेरों की संख्या में हथियार फेंक रही थीं और जब (जैसाकि हमें इतिहास बताता है) रूसियों का लक्ष्य यही था कि फ़्रांसीसियों को रोका जाये, उनका रास्ता काट दिया जाये, उन सबको बन्दी बना लिया जाये?

भला यह कैसे हुआ कि वे रूसी सेनायें, जो फ़्रांसीसियों की तुलना में कहीं कम संख्या में होते हुए भी बोरोदिनो के मैदान में डटकर लड़ीं, वही सेनायें जो तीन ओर से फ़्रांसीसियों को घेरे में लिये हुए और उन्हें बन्दी बनाने का लक्ष्य सामने रखते हुए ऐसा नहीं कर पायीं? क्या फ़्रांसीसी हमसे इतने ही अधिक श्रेष्ठ थे कि कहीं अधिक सैनिक-शक्ति से उन्हें अपने घेरे में लेने पर भी हम उन्हें पराजित नहीं कर पाये? यह कैसे हुआ?

इतिहास (वही, जो इस नाम से जाना जाता है) इन प्रश्नों का यह उत्तर देता है कि कुतूज़ोव, तोर्मासोव, चिचागोव तथा फ़लां-फ़लां ने फ़लां-फ़लां दांव-पेंच और चालें नहीं चलीं।

किन्तु उन्होंने ये सारी चालें क्यों नहीं चलीं? अगर वे इस चीज़ के लिये दोषी थे कि सामने रखा गया लक्ष्य प्राप्त नहीं किया गया तो क्यों उन्हें अपराधी नहीं ठहराया गया और दण्ड नहीं दिया गया? किन्तु यदि यह भी मान लिया जाये कि कुतूज़ोव और चिचागोव, आदि, आदि ही रूसियों की **असफलता** के लिये ज़िम्मेदार थे, तब भी यह समझ पाना सम्भव नहीं कि क्रास्नोये और बेरेज़िना के निकट रूसी सेनाओं की जो स्थिति थी (दोनों ही स्थितियों में रूसियों की सैनिक-शक्ति अधिक थी) तो रूसियों ने, यदि उनका यही लक्ष्य था, क्यों फ़्रांसीसी सेनाओं को उनके मार्शलों, बादशाहों और सम्राट के साथ बन्दी नहीं बना लिया?

इस अजीब घटना का यह स्पष्टीकरण (जैसाकि रूसी सैनिक इतिहासकार प्रस्तुत करते हैं) कि कुतूज़ोव ने ऐसे आक्रमण में बाधा डाली, इस कारण निराधार है कि हमें मालूम है कि बहुत चाहने पर भी व्याज़्मा और तारूतिनो के निकट कुतूज़ोव अपनी सेनाओं को आक्रमण करने से नहीं रोक पाये थे।

किस कारण कम सैनिक-शक्ति होने पर भी रूसी सेनायें बोरोदिनो की लड़ाई में कहीं अधिक शक्तिशाली शत्रु को पराजित करने में सफल रही थीं और सैनिक-शक्ति की श्रेष्ठता होने पर भी क्रास्नोये और बेरे-ज़िना के निकट अस्त-व्यस्त फ़्रांसीसी सेना की भीड़ से पिट गयीं?

यदि रूसियों का लक्ष्य फ़्रांसीसी सेना का रास्ता काटना और नेपोलियन तथा मार्शलों को बन्दी बनाना था और यह लक्ष्य न केवल पूरा ही नहीं हुआ, बल्कि बहुत ही शर्मनाक ढंग से नाकाम बना दिया

गया तो इस अभियान के अन्तिम काल को फ़्रांसीसियों द्वारा बहुत ही न्यायपूर्ण ढंग से विजयक्रम माना जाता है और रूसी इतिहासकारों का इसे अपनी जीतों के रूप में प्रस्तुत करना बिल्कुल ग़लत होगा।

रूसी सैनिक इतिहासकार जिस सीमा तक तर्कसंगत हो सकते हैं, उस सीमा तक बरबस इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं और रूसी सेना की वीरता और निष्ठा आदि के कीर्तिगान के बावजूद उन्हें हठात यह स्वीकार करना पड़ता है कि फ़्रांसीसियों का मास्को से पीछे हटने का काल नेपोलियन की लगातार कई जीतों और कुतूज़ोव की हारों का द्योतक है।

किन्तु राष्ट्रीय अभिमान को एक तरफ़ रखते हुए हम अनुभव करते हैं कि ऐसा निष्कर्ष असंगत है, क्योंकि फ़्रांसीसियों की अनेक जीतें उन्हें पूर्ण नाश की ओर ले गयीं और रूसियों की अनेक हारों से शत्रु पूरी तरह से नष्ट हो गया और रूसी धरती उससे मुक्त हो गयी।

इस असंगति का स्रोत इस चीज़ में निहित है कि सम्राटों और जनरलों के पत्रों, संस्मरणों, रिपोर्टों, योजनाओं आदि के आधार पर घटनाओं का अध्ययन करनेवाले इतिहासकारों ने १८१२ के युद्ध के अन्तिम काल के लिये एक ऐसे ग़लत लक्ष्य की कल्पना की जो कभी था ही नहीं – उन्होंने ऐसा मान लिया है मानो रूसियों का यह लक्ष्य था कि फ़्रांसीसी सेना का रास्ता काटकर नेपोलियन तथा मार्शलों के साथ पूरी सेना को बन्दी बना लिया जाये।

ऐसा लक्ष्य न तो कभी था और न हो ही सकता था, क्योंकि इसमें कोई तुक नहीं थी और इस लक्ष्य की प्राप्ति सर्वथा असम्भव थी।

ऐसा लक्ष्य सर्वप्रथम तो इसलिये बेतुका था कि नेपोलियन की अस्त-व्यस्त सेना अपनी पूरी शक्ति से सिर पर पांव रखकर रूस से भाग रही थी, अर्थात् वही कर रही थी जो हर रूसी चाहता था। फ़्रांसीसियों के ख़िलाफ़ तरह-तरह की फ़ौजी कार्रवाइयां करने की भला ज़रूरत ही क्या थी जो यथासम्भव तेज़ी से भागते जा रहे थे?

दूसरे, ऐसे लोगों के रास्ते में बाधा बनकर खड़े होना बेमानी होता जो भागने पर ही अपनी सारी शक्ति केन्द्रित किये हुए थे।

तीसरे, फ़्रांसीसी सेना को नष्ट करने के लिये अपने सैनिकों को मरवाना बेतुका होता, जबकि किसी प्रकार के हस्तक्षेप के बिना ही

वे इतनी तेज़ी से मर रहे थे कि सभी रास्ते खुले होने के बावजूद उससे अधिक लोग वापस नहीं ले जा सकते थे जितने दिसम्बर महीने में ले गये यानी अपनी कुल सेना का एक सौवां भाग।

चौथे, सम्राट, बादशाहों और ड्यूकों को बन्दी बनाने की इच्छा में भी कोई तुक नहीं थी, क्योंकि ऐसे लोगों को बन्दी बनाने से रूसियों के कार्य-कलाप बहुत ही कठिन हो जाते, जैसाकि उस ज़माने के सर्वाधिक योग्य राजनयिक (ज० मेस्त्रे तथा अन्य) ने स्वीकार किया है। फ़्रांसीसियों की फ़ौजी-कोरों को बन्दी बनाना तो और भी बेमानी था, जबकि क्रास्नोये पहुंचने तक हमारी अपनी सेना आधी रह गयी थी और बन्दियों की कोरों के लिये रक्षा-दल के रूप में पूरे एक डिवीज़न को अलग करना पड़ता तथा जबकि अपने सैनिकों को ही सदैव भर पेट खाने को नहीं मिलता था और बन्दी बनाये गये फ़्रांसीसी भूख से दम तोड़ते थे।

फ़्रांसीसियों का रास्ता काटने और नेपोलियन को उसकी सेना के साथ बन्दी बनाने की बहुत सोच-समझकर बनायी जानेवाली योजना साग-सब्ज़ियों के बगीचे के उस मालिक के समान होती जो बगीचे की क्यारियों को रौंद डालनेवाले पशुओं को वहां से बाहर निकालते हुए खुद भागकर फाटक के क़रीब खड़ा हो जाये और इन पशुओं के सिरों पर डंडे मारने लगे। इस स्थिति में बगीचे के मालिक की सफ़ाई देने के लिये केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वह बहुत ग़ुस्से में था। किन्तु फ़्रांसीसियों के विरुद्ध योजना बनानेवालों के बारे में तो यह भी नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि उन्हें रौंदी गयी क्यारियों का दुख नहीं सहना पड़ा था।

किन्तु इस चीज़ के अलावा कि सेना सहित नेपोलियन का रास्ता काटने में कोई तुक नहीं थी, ऐसा करना सम्भव भी नहीं था।

ऐसा सर्वप्रथम तो इसलिये असम्भव था कि (जैसा अनुभव ने दिखाया था) पांच वेर्स्ता के युद्ध-क्षेत्र में विभिन्न सैनिक-दलों की गतिविधि कभी भी पहले से बनायी गयी योजनाओं के अनुसार नहीं होती, कि चिचागोव, कुतूज़ोव और विटगेन्श्टेन के नियत समय और नियत स्थान पर मिलने की इतनी कम सम्भावना थी कि इसे लगभग असम्भव ही माना जा सकता था। पीटर्सबर्ग से ऐसी योजना मिलने पर कुतूज़ोव के मन में उस समय सम्भवतः यही बात रही होगी, जब उन्होंने यह

कहा था कि बहुत बड़े युद्ध-क्षेत्र में चली जानेवाली सैनिक चालों के कभी भी वांछित परिणाम सामने नहीं आते।

दूसरे, यह इस कारण असम्भव था कि जिस शक्ति से नेपोलियन की सेनायें पीछे भागी जा रही थीं, उस शक्ति को वश में करने के लिये उससे कहीं अधिक सेनाओं की ज़रूरत थी जितनी कि रूसियों के पास थीं।

तीसरे, यह इस कारण असम्भव था कि सेना से सम्बन्धित "काट देना" शब्दों का कोई अर्थ नहीं। डबल रोटी का एक टुकड़ा काटा जा सकता है, मगर सेना को नहीं। सेना को काटना या उसका रास्ता रोक देना – किसी तरह भी सम्भव नहीं, क्योंकि इर्द-गिर्द हमेशा बहुत-सी ऐसी जगहें होती हैं जहां से बचकर निकला जा सकता है। फिर रात भी होती है, जब कुछ दिखाई नहीं देता और क्रास्नोये तथा बेरेज़िना के उदाहरण ही सेनाशास्त्रियों को इस बात का विश्वास दिलाने के लिये पर्याप्त हैं। इसके अलावा बन्दी तो उन्हीं को बनाया जा सकता है जो बन्दी बनाने को तैयार हों, ठीक उसी तरह जैसे अबाबील को तभी पकड़ा जा सकता है, जब वह ख़ुद हाथ पर आकर बैठ जाये। उसी को बन्दी बनाया जा सकता है जो इसके लिये राज़ी हो जाये, जैसे कि जर्मन जो रणनीति और पैंतरेबाज़ी के नियमों के अनुसार बन्दी बनते थे। किन्तु फ़्रांसीसी सेनाओं को विधिवत ऐसा करना उपयुक्त नहीं लगता था, क्योंकि वे वापस भागें या बन्दी बनें – इन दोनों हालतों में ही भूख और ठण्ड के कारण मरना ही उनकी नियति थी।

चौथे, और सबसे बढ़कर तो इस कारण ऐसा करना असम्भव था कि जब से यह दुनिया बनी है, कभी भी सन् १८१२ के समान भयानक परिस्थितियों में युद्ध नहीं लड़ा गया था और फ़्रांसीसियों का पीछा करती हुई रूसी सेनायें अपनी पूरी शक्ति लगा रही थीं तथा अपने को नष्ट किये बिना इससे ज़्यादा और कुछ नहीं कर सकती थीं।

तारूतिनो से क्रास्नोये तक जाने के समय रूसी सेना के पचास हज़ार बीमार और पिछड़नेवाले सैनिक कम हो गये यानी एक बड़े प्रान्तीय नगर की आबादी के बराबर लोग नहीं रहे। लड़ाई के बिना ही आधी सेना कम हो गयी।

युद्ध के इसी समय के बारे में, जब बूटों और समूर के ओवरकोटों, पूरी खुराक तथा वोद्का के बिना सैनिक पन्द्रह डिग्री की ठण्ड में महीनों

तक बर्फ़ में सोते थे, जब सात-आठ घण्टे का दिन और बाक़ी वक़्त रात ही रहती थी तथा इस कारण अनुशासन नहीं बना रह सकता था, जब लड़ाई के समय की भांति सैनिकों को सिर्फ़ कुछ घण्टों के लिये मौत का सामना करने के लिये नहीं ले जाया जाता था (जब अनुशासन टूट जाता है), बल्कि जब वे भूख और ठण्ड के कारण किसी भी क्षण आ जानेवाली मौत के ख़िलाफ़ महीनों तक जूझते थे, जब एक महीने में ही आधी सेना नष्ट हो गयी थी – युद्ध के इसी समय के बारे में इतिहासकार हमें यह बताते हैं कि मीलोरादोविच को फ़लां-फ़लां जगह पर, तोर्मासोव को उस स्थान पर अपनी सेना के साथ घूमकर जाना चाहिये था, चिचागोव को उस दिशा में बढ़ना चाहिये था (घुटनों से ऊपर तक ऊंची बर्फ़ में) और यह कि कैसे फ़लां ने शत्रु को कुचल डाला था तथा फ़लां ने उसका रास्ता काट दिया था, आदि, आदि।

रूसी सैनिकों ने, जिनमें से आधे काल-कवलित हो गये, राष्ट्र को शोभा देनेवाले ध्येय की प्राप्ति के लिये वह सभी कुछ किया जो सम्भव था और जो उनको करना चाहिये था और उन्हें इस चीज़ के लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि गर्म कमरों में बैठे हुए दूसरे रूसी लोग कुछ ऐसी चीज़ें करने की कल्पना करते थे जो असम्भव थीं।

इतिहास में हमें जो वर्णन मिलता है और वास्तव में जो कुछ हुआ, इन दोनों के बीच की इस अजीब और समझ में न आनेवाली असंगति का कारण यह है कि इस घटना को लिखनेवाले इतिहासकारों ने घटना का इतिहास नहीं, बल्कि विभिन्न जनरलों की अच्छी भावनाओं और शब्दों का इतिहास लिखा है।

इन इतिहासकारों ने मीलोरादोविच के शब्दों, इस या उस जनरल को मिलनेवाले पुरस्कारों-पदकों और उनके अनुमानों को बहुत महत्त्व दिया, किन्तु अस्पतालों में पड़े रहने या क़ब्रों में चले जानेवाले पचास हज़ार सैनिकों के प्रश्न में ज़रा भी रुचि नहीं ली, क्योंकि वे उनके अध्ययन-क्षेत्र के बाहर थे।

यदि हम जनरलों की रिपोर्टों और योजनाओं के अध्ययन की ओर से ध्यान हटाकर इन घटनाओं में सीधे तौर पर भाग लेनेवाले लाखों लोगों के कार्य-कलाप की गहराई में जायें तो वे सभी प्रश्न, जो पहले हल न होनेवाले प्रतीत होते थे, अचानक असाधारण सरलता तथा आसानी से पूरी तरह हल हो जाते हैं।

कोई दसेक लोगों को छोड़कर, जो नेपोलियन और उसकी पूरी सेना का रास्ता काटने की कल्पना करते थे, रूसियों के सामने ऐसा लक्ष्य कभी रहा ही नहीं था। ऐसा लक्ष्य हो भी नहीं सकता था, क्योंकि उसमें कोई तुक नहीं थी और उसकी प्राप्ति असम्भव थी।

लोगों का लक्ष्य एक ही था: अपनी धरती को आक्रमणकारियों से मुक्त करना। यह लक्ष्य सर्वप्रथम तो अपने आप इसलिये पूरा हो रहा था कि फ़्रांसीसी भागते जा रहे थे और अतः उन्हें रोकना नहीं चाहिये था। दूसरे, फ़्रांसीसियों को नष्ट करनेवाले छापेमारों की गति-विधियों से इसकी पूर्त्ति हो रही थी और तीसरे, बड़ी रूसी सेना, जो फ़्रांसीसियों का पीछा कर रही थी और उनके रुकने की स्थिति में उनपर प्रहार करने को तैयार थी, इस ध्येय की प्राप्ति को सम्भव बना रही थी।

रूसी सेना को तो उस चाबुक का काम करना था जो भागते जा रहे जानवर को और तेज़ भागने के लिये मजबूर करता है। अनुभवी हंकवैया जानता था कि भागते जा रहे जानवर के सिर पर चाबुक मारने के बजाय उसे डराने के लिये ऊंचा उठाये रखना ही अधिक लाभदायक है।

भाग ४

१

जब कोई आदमी किसी मरते हुए जानवर को देखता है तो उसका दिल कांप उठता है, क्योंकि उसका अपना ही एक रूप, उसी के समान एक जीव उसकी आंखों के सामने नष्ट हो रहा है, उसका अस्तित्व समाप्त हो रहा है। किन्तु यदि मरनेवाला जीव मानव और प्रिय व्यक्ति हो तो जीवन के नाश को देखते हुए हृदय में पैदा होनेवाले भय के अतिरिक्त एक सम्बन्ध-विच्छेद और आत्मिक घाव की भी अनुभूति होती है तथा यह घाव शारीरिक घाव की भांति कभी तो घातक होता है, कभी भर जाता है, मगर हमेशा टीसता रहता है और हर ऐसी चीज़ से घबराता है जो उसपर नमक छिड़क सकती हो।

प्रिंस अन्द्रेई की मौत के बाद नताशा और प्रिंसेस मरीया समान रूप से ऐसा ही अनुभव करती थीं। मानसिक दृष्टि से परास्त और मौत के उस भयानक बादल के कारण, जिसे वे अपने इर्द-गिर्द मंडराता हुआ अनुभव करती थीं, आंखें मूंदे हुए ये दोनों ज़िन्दगी से नज़रें मिलाने की हिम्मत नहीं कर पा रही थीं। ये बड़ी सावधानी से अपने रिसते घावों को ठेसों और पीड़ा देनेवाले प्रभावों से बचाती थीं। सड़क पर तेज़ी से जानेवाली बग्घी, भोजन करने के लिये मेज़ पर चलने का बुलावा, नौकरानी का यह प्रश्न कि वह कौन-सी पोशाक तैयार करे— यह सभी कुछ तथा इससे भी बढ़कर झूठे मन तथा दिखावे के लिये व्यक्त की जानेवाली सहानुभूति से दिल का घाव बुरी तरह टीस उठता, इन्हें यह सब कुछ अपमानजनक प्रतीत होता और उस आवश्यक नीरवता को भंग कर देता जिसमें ये दोनों अपनी कल्पना में अभी तक गूंज रहे भयानक तथा कठोर सामूहिक भजन-गान को सुनने का प्रयास करती थीं, यह सब कुछ उन रहस्यपूर्ण, असीम विस्तारों की झांकी पाने में बाधा डालता था जो कुछ क्षणों को उनके सम्मुख उभरे थे।

ये दोनों जब अकेली होतीं, केवल तभी अपने को ऐसे अपमान तथा पीड़ा से मुक्त अनुभव करतीं। ये आपस में बहुत कम बातचीत करतीं और यदि करतीं भी तो बहुत मामूली बातों के बारे में। दोनों

ही भविष्य से सम्बन्धित हर बात से कन्नी काटतीं।

भविष्य की सम्भावना की स्वीकृति उन्हें प्रिंस अन्द्रेई की स्मृति के प्रति अपमानजनक प्रतीत होती। अपनी बातचीत में दिवंगत से सम्बन्ध रखनेवाली किसी भी चर्चा से तो ये दोनों और भी अधिक सावधानी से बचतीं। इन्हें लगता कि इन्होंने जो कुछ सहा और अनुभव किया है, उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इन्हें प्रतीत होता कि उसके जीवन के ब्योरों का शब्दों में किया जानेवाला हर उल्लेख इनकी आंखों के सम्मुख प्रकट हुए रहस्य की महिमा और पावनता को दूषित करता है।

प्रिंस अन्द्रेई से सम्बन्धित हर बात के बारे में निरन्तर मौन साधे रहना, उस हर चीज़ से कन्नी काटने की कोशिश करना जिससे उसकी चर्चा चलने की सम्भावना होती, जो कुछ मुंह से नहीं निकालना चाहिये था, उसकी सीमा पर रुक जाना – इससे इनकी कल्पना में वह सब कुछ अधिक स्पष्ट और साफ़ हो जाता था जो ये अनुभव करती थीं।

किन्तु जैसे स्पष्ट और पूर्ण उल्लास असम्भव है, वैसे ही स्पष्ट तथा पूर्ण अवसाद भी सम्भव नहीं। अपने भाग्य का स्वयं और अकेली ही निर्माण करनेवाली तथा भतीजे की पालिका और संरक्षिका होने के नाते प्रिंसेस मरीया दुख-शोक की उस दुनिया से पहले बाहर आने को विवश हुई जिसमें उसने शुरू के दो सप्ताह बिताये थे। रिश्तेदारों से मिले ख़तों के उत्तर देना ज़रूरी था; नन्हा निकोलाई जिस कमरे में रह रहा था, उसमें नमी थी और उसे खांसी आने लगी थी। सभी मामलों के बारे में रिपोर्टें तथा ये सलाहें और सुझाव लेकर अल्पातिच यहां आ गया कि उन्हें मास्को के व्ज़्द्वीजेन्का सड़कवाले मकान में चले जाना चाहिये जो सही-सलामत रह गया था और जहां मामूली-सी मरम्मत की ही ज़रूरत थी। जीवन रुक नहीं गया था और जीना आवश्यक था। प्रिंसेस मरीया के लिये एकान्त और चिन्तन के उस संसार से, जिसमें वह अब तक खोयी रही थी, बाहर निकलना चाहे कितना ही कठिन क्यों न था, नताशा को अकेली छोड़ते हुए उसे बेशक कितना ही अफ़सोस और मानो लज्जा की अनुभूति क्यों न हो रही थी – जीवन की चिन्तायें इस बात की मांग करती थीं कि वह उनमें दिलचस्पी ले और वह बरबस ऐसा

करने लगी। उसने अल्पातिच के साथ हिसाब-किताब की जांच की, डेसाल के साथ भतीजे के बारे में सलाह-मशविरा किया और मास्को जाने के लिये हिदायतें देने तथा तैयारी करने लगी।

नताशा अपने में ही सिमटी-सिमटायी रहती थी और जब से प्रिंसेस मरीया यहां से रवाना होने की तैयारी करने लगी थी, वह उससे भी कतराने लगी थी।

प्रिंसेस मरीया ने काउंटेस से अनुरोध किया कि वह नताशा को अपने साथ मास्को ले जाने की अनुमति दे दें। काउंट और काउंटेस – दोनों ने ही इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया, क्योंकि वे देख रहे थे कि बेटी का स्वास्थ्य हर दिन ख़राब होता जा रहा था और उनका ख़्याल था कि स्थान-परिवर्तन तथा मास्को के डाक्टरों की मदद से उसे लाभ हो सकेगा।

"मैं कहीं नहीं जाऊंगी," नताशा ने जवाब दिया, जब उसके सामने यह सुझाव रखा गया, "कृपया मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिये," वह इतना और कहकर तथा दुख की तुलना में क्रोध और झल्लाहट के कहीं अधिक द्योतक आंसुओं पर बड़ी मुश्किल से क़ाबू पाते हुए कमरे से बाहर भाग गयी।

यह महसूस करने के बाद कि प्रिंसेस मरीया ने उसके दुख में उसका साथ छोड़ दिया है और वह एकाकी रह गयी है, नताशा सोफ़े के एक सिरे पर टांगें समेटकर अपने कमरे में अकेली बैठी रहकर अपना अधिकतर समय बिताती और पतली-पतली तथा बेचैन उंगलियों से कुछ फाड़ते या नोचते हुए उसी चीज़ को अपलक-एकटक देखती जाती जिसपर भी उसकी नज़र टिक जाती। उसका यह एकान्त उसे क्लान्त और संतप्त करता, किन्तु उसके लिये यह आवश्यक था। जैसे ही कोई उसके कमरे में आता, वैसे ही वह झटपट उठकर खड़ी हो जाती, अपनी स्थिति और दृष्टि के भाव को बदल लेती, कोई किताब अथवा सिलाई का काम हाथ में ले लेती और स्पष्टतः बड़ी बेसब्री से इस बाधा डालने-वाले व्यक्ति के कमरे से बाहर जाने की राह देखती।

नताशा को ऐसा प्रतीत होता कि बस थोड़ी ही देर में उसे भयानक और आसानी से उसकी समझ में न आनेवाले उस प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा जिसपर उसकी मानसिक दृष्टि केन्द्रित थी।

दिसम्बर के अन्त में काला ऊनी फ़्रॉक पहने, लापरवाही से चोटी

अन्द्रेई बोल्कोन्स्की के देहान्त के बाद नताशा रोस्तोवा।

का जूड़ा-सा बनाये दुबली-पतली और पीले चेहरेवाली नताशा टांगों को अपने नीचे दबाये हुए सोफ़े के एक सिरे पर बैठी थी, बेचैनी से अपनी पेटी के सिरे का गोला-सा बनाती और फिर उसे सीधा करती हुई दरवाज़े के कोने को ताक रही थी।

वह मानो जीवन के उस दूसरे छोर की ओर देख रही थी जिधर वह गया था। जीवन का वह छोर, जिसके बारे में उसने पहले कभी नहीं सोचा था, जो पहले उसे इतना दूर तथा कल्पनातीत प्रतीत होता था, अब जीवन के इस छोर की तुलना में जहां या तो वीराना और तबाही थी या व्यथा-वेदना और अपमान-तिरस्कार था, कहीं अधिक निकट, अधिक प्रिय तथा आसानी से समझ में आनेवाला लगता था।

वह उस दुनिया की झांकी ले रही थी जहां, जैसाकि उसे ज्ञात था, वह था। किन्तु वह उसे उससे भिन्न रूप में नहीं देख सकती थी जिस रूप में वह यहां, इस दुनिया में था। वह फिर से उसे उसी रूप में देख रही थी जिसमें वह मितीश्ची, त्रोइत्सा और यारोस्लाव्ल में था।

वह उसका चेहरा देख रही थी, उसकी आवाज़ सुन रही थी, उसके और अपने शब्दों को दोहरा रही थी तथा कभी-कभी अपनी तथा उसकी ओर से ऐसे नये शब्दों की कल्पना करती थी जो तब कहे जा सकते थे।

अपनी कल्पना में नताशा उसे रेशमी गाउन पहने, दुबले और पीले हाथ पर सिर टिकाये आरामकुर्सी पर लेटे देखती है। उसका सीना बेहद धंसा हुआ और कंधे ऊपर को उठे हुए हैं। उसके होंठ कसकर मिंचे हुए हैं, आंखें चमक रही हैं और उसके पीले माथे पर एक शिकन कभी उभर आती है और कभी ग़ायब हो जाती है। उसकी एक टांग तेज़ी से कांप रही है, मगर इसका मुश्किल से ही पता चलता है। नताशा जानती है कि वह निचोड़नेवाले तेज़ दर्द से जूझ रहा है। "कैसा है यह दर्द? किसलिये है यह दर्द? वह क्या महसूस करता है? कैसे दर्द होता है उसे!" – नताशा सोच रही थी। प्रिंस अन्द्रेई ने देख लिया था कि वह उसकी ओर ध्यान दे रही है, उसने नज़रें ऊपर उठाईं और मुस्कराये बिना बोलने लगा।

"एक चीज़ भयानक होगी," उसने कहा, "पंगु रोगी के साथ ज़िन्दगी भर के लिये अपने को जोड़ना। यह तो चिर यातना होगी।"

और उसने थाह लेती दृष्टि से – नताशा अब यह दृष्टि देख रही थी – उसकी तरफ़ देखा। नताशा ने कुछ भी सोचे बिना उस वक़्त हमेशा की तरह यही जवाब दिया था – "ऐसा हमेशा नहीं रह सकता, ऐसा नहीं होगा, आप स्वस्थ हो जायेंगे, बिल्कुल स्वस्थ हो जायेंगे।"

नताशा अब उसे फिर से देख रही थी और उस सबको पुनः अपनी स्मृति में जी रही थी जो उसने उस वक़्त अनुभव किया था। उसे याद आया कि इन शब्दों को सुनकर उसने कैसे देर तक, उदास तथा कठोर दृष्टि से उसकी तरफ़ देखा था और वह उसके देर तक ऐसे देखते रहने में निहित भर्त्सना के महत्त्व और हताशा को समझ गयी थी।

"मैं सहमत हो गयी थी," नताशा ने अब अपने आपसे कहा, "कि अगर वह हमेशा ऐसे ही पीड़ा सहता रहता तो यह भयानक होता। उस समय मैंने तो केवल इस कारण यह कहा था कि उसके लिये यह भयानक होता, मगर उसने इसका दूसरा ही अर्थ समझा था। उसने सोचा था कि यह **मेरे लिये** भयानक होगा। तब तो वह जीना चाहता था – मरने से डरता था। लेकिन मैंने ऐसे भद्दे, बेहूदा ढंग से ऐसा कह दिया। मेरा ऐसा अभिप्राय नहीं था। मैं तो बिल्कुल दूसरी ही बात सोच रही थी। अगर मैंने वही कहा होता, जो मैं सोच रही थी, तो मैंने कहा होता – बेशक वह मरता रहता, लगातार मेरी आंखों के सामने मरता रहता, उस हालत में मैं अब की तुलना में कहीं अधिक सुखी होती। अब ... कुछ भी नहीं है, कोई भी नहीं है। क्या उसे यह मालूम था? नहीं, वह नहीं जानता था और कभी नहीं जान पायेगा। और अब यह भूल कभी, कभी भी नहीं सुधारी जा सकेगी।" अब फिर उसने उससे यही शब्द कहे, किन्तु अपनी कल्पना में नताशा ने अब बिल्कुल दूसरा ही उत्तर दिया। नताशा ने उसे टोक दिया और कहा – "आपके लिये भयानक है, किन्तु मेरे लिये नहीं। आप यह जान लीजिये कि आपके बिना मेरे जीवन में कुछ भी नहीं और आपके साथ दुख-दर्द सहना मेरा सबसे बड़ा सौभाग्य है।" और उसने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर उसे उसी तरह से दबाया जैसे मृत्यु के चार दिन पहले की भयानक शाम को दबाया था। उसने अपनी कल्पना में अन्य अनेक ऐसे कोमल और प्यार भरे शब्द कहे जो वह उस समय कह सकती थी और जो अब कह रही थी। "मैं तुम्हें प्यार करती हूं, तुम्हें प्यार करती हूं, प्यार करती हूं ..." वह बेचैनी से हाथों को दबाते

और बहुत ज़ोर से दांतों को भींचते हुए कहती रही।

उसके मन पर अत्यधिक मधुर अवसाद छा गया और उसकी आंखें डबडबा आयीं। किन्तु सहसा उसने अपने आपसे पूछा – वह किससे यह सब कह रही है? वह अब कहां है और वह **क्या है**? फिर से सभी कुछ नीरस तथा कठोर उलझन में बदल गया और तनावपूर्वक त्योरी चढ़ाते हुए उसने पुनः उधर देखा, जहां वह था। उसे लगा कि अभी, बस, अभी-अभी वह रहस्य को जान जायेगी... किन्तु इसी क्षण, जब उसे लगा कि गूढ़ रहस्य खुलनेवाला था, दरवाज़े के हत्थे के घूमने की ज़ोरदार आवाज़ से उसे धक्का-सा लगा। बहुत ही डरा-सहमा चेहरा लिये तथा नताशा की मनोदशा की कुछ भी चिन्ता न करते हुए नौकरानी दुन्याशा तेज़ी और असावधानी से कमरे में आई।

"कृपया, जल्दी से पापा के पास जाइये," दुन्याशा ने विशेष ज़ोर देते और उत्तेजित लहजे में कहा। "बहुत बड़ी मुसीबत आ गयी है, छोटे साहब प्योत्र इल्यीच से सम्बन्धित मुसीबत... ख़त आया है," वह सिसकते हुए कह उठी।

२

यों तो नताशा इस समय सभी लोगों के प्रति परायेपन की सामान्य भावना अनुभव करती थी, किन्तु अपने परिवार के लोगों के मामले में यह भावना विशेष रूप से तीव्र थी। परिवार के सभी लोग – पिता, मां, सोन्या – उसके इतने अधिक घनिष्ठ थे, वह इनकी इतनी अधिक अभ्यस्त थी, ये सभी उसके हर दिन के जीवन के ऐसे अभिन्न अंग थे कि उसे इनके सभी शब्द, सभी भावनायें उस दुनिया के लिये अपमानजनक प्रतीत होती थीं जिसमें वह पिछले कुछ समय से रह रही थी और वह इनके प्रति उदासीन ही नहीं थी, बल्कि शत्रुता भी अनुभव करती थी। उसने प्योत्र इल्यीच के बारे में, मुसीबत के सम्बन्ध में दुन्याशा के शब्द सुने, किन्तु उन्हें समझ नहीं सकी।

"इनके यहां क्या मुसीबत आ सकती है, कैसी मुसीबत हो सकती

है? इनका तो वही पुराना, अभ्यस्त और शान्त जीवन-ढंग है," नताशा ने मन ही मन कहा।

नताशा जब ड्राइंगरूम में दाखिल हुई तो उसके पिता काउंटेस के कमरे से जल्दी-जल्दी बाहर आ रहे थे। उनका चेहरा सिकुड़ा-सिमटा और आंसुओं से भीगा हुआ था। वह सम्भवतः इसलिये उस कमरे से बाहर भाग आये थे कि अपना दम घोंटनेवाली सिसकियों से निजात पाने के लिये खुलकर रो लें। नताशा को देखकर उन्होंने बड़ी विह्वलता से अपने हाथ हिलाये और बहुत ही दुख तथा व्यथा से फूट-फूटकर रोने लगे जिससे उनका गोल और कोमल चेहरा टेढ़ा हो गया।

"पे... पेत्या... जाओ, जाओ, तुम्हारी अम्मां तुम्हें बुला रही हैं..." और एक बालक की तरह रोते और अपनी कमज़ोर, लड़खड़ाती टांगों से तेज़ डग भरते हुए कुर्सी के पास गये और हाथों से मुंह ढांपकर उसपर लगभग ढह पड़े।

नताशा के पूरे बदन में मानो बिजली-सी दौड़ गयी। उसके दिल को भयानक धक्का-सा लगा। उसने बहुत ही ज़ोर का दर्द महसूस किया; उसे लगा कि उसके भीतर कुछ टूट रहा है और वह मर रही है। किन्तु इस पीड़ा के फ़ौरन बाद उसने यह भी अनुभव किया कि दुनिया से मुंह मोड़े हुए और उसके भीतर बन्द ज़िन्दगी आन की आन में बाहर आ गयी है। पिता जी को देखकर और दरवाज़े के पीछे से अम्मां की भयानक तथा तीखी चीख़ सुनकर वह फ़ौरन अपने को तथा अपने दुख को भूल गयी। वह भागकर पिता जी के पास गयी, मगर उन्होंने बहुत धीरे से हाथ हिलाकर मां के कमरे के दरवाज़े की तरफ़ इशारा किया। पीले चेहरे और कांपते हुए निचले जबड़े के साथ प्रिंसेस मरीया दरवाज़े से बाहर आई और नताशा से कुछ कहते हुए उसने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। नताशा न तो उसे देख रही थी और न उसकी आवाज़ सुन रही थी। वह तेज़ क़दमों से कमरे में दाखिल हुई, मानो अपने आप-से संघर्ष करते हुए पल भर को रुकी और भागकर मां के पास गयी।

काउंटेस अजीब-अटपटे ढंग से आरामकुर्सी पर लेटी हुई थीं, उनका तन ऐंठ रहा था और वह दीवार पर अपना सिर पटक रही थीं। सोन्या तथा नौकरानियां उनके हाथ पकड़े थीं।

"नताशा कहां है! नताशा कहां है!.." काउंटेस चिल्ला रही थीं। "यह झूठ है, झूठ है... वह झूठ बोल रहा है... नताशा कहां

है!" अपने को घेरे हुए सभी लड़कियों को परे धकेलते हुए वह चिल्ला रही थीं। "तुम सभी दफ़ा हो जाओ, यह झूठ है! उसे मार दिया गया! .. हा-हा-हा! यह झूठ है!"

नताशा ने आरामकुर्सी पर घुटना टिका लिया, मां पर झुकी, उसने उन्हें बांहों में भर लिया, अप्रत्याशित शक्ति से उन्हें ऊपर उठाया और उनके चेहरे को अपनी ओर मोड़कर गले से लगा लिया।

"अम्मां! .. मेरी प्यारी अम्मां! .. मैं यहां हूं, मेरी प्यारी अम्मां। प्यारी अम्मां," नताशा एक क्षण को भी चुप हुए बिना यह फुसफुसाती जा रही थी।

वह मां को अपनी बांहों से निकलने नहीं दे रही थी, बड़े स्नेह से उन्हें अपने वश में कर रही थी, तकियां और पानी मंगवा रही थी, उनकी पोशाक के बटन खोल रही थी, उसे फाड़कर उतार रही थी।

"मेरी प्यारी, बहुत प्यारी अम्मां ... अम्मां ... मेरी प्यारी अम्मां," वह मां का सिर, हाथ और चेहरा चूमते तथा उनकी अदम्य अश्रु-धाराओं के कारण अपनी नाक में और गालों पर गुदगुदी अनुभव करते हुए लगातार फुसफुसाती जा रही थी।

काउंटेस ने बेटी का हाथ दबाया, आंखें मूंद लीं और कुछ देर को शान्त हो गयीं। अचानक वह अस्वाभाविक-असाधारण तेज़ी से उठकर बैठ गयीं, उन्होंने बहकी-बहकी नज़र से अपने इर्द-गिर्द देखा और नताशा को अपने सामने पाकर अपनी सारी शक्ति से उसके सिर को अपने साथ सटाने लगीं। इसके पश्चात उन्होंने पीड़ा के कारण विकृत हो जानेवाले नताशा के चेहरे को अपनी ओर घुमा लिया और देर तक उसे ताकती रहीं।

"नताशा, तुम मुझे प्यार करती हो," काउंटेस ने धीमी, विश्वास व्यक्त करनेवाली आवाज़ में फुसफुसाकर कहा। "नताशा, तुम तो मुझे धोखा नहीं दोगी न? तुम तो मुझे सब कुछ सच-सच बता दोगी न?"

नताशा आंसुओं से भीगी आंखों से काउंटेस की ओर देख रही थी तथा उसका चेहरा क्षमा तथा प्यार की भीख मांगता-सा प्रतीत हो रहा था।

"मेरी प्यारी, बहुत ही प्यारी अम्मां," नताशा ने इन शब्दों

में अपना पूरा प्यार उंडेलते हुए इन्हें दोहराया ताकि किसी तरह मां के असीम दुख का कुछ भार अपने ऊपर ले ले।

जीवन की वास्तविकता के विरुद्ध एकबार फिर व्यर्थ संघर्ष करते और इस बात पर विश्वास करने से इन्कार करते हुए कि वह तब भी ज़िन्दा थीं, जब उनका लाड़ला बेटा अपनी चढ़ती जवानी में ही मारा गया था, सन्निपात की दुनिया में ही उन्हें वास्तविकता से मुक्ति मिली।

नताशा को इस बात की सुध ही नहीं रही कि कैसे यह दिन, यह रात, अगला दिन और अगली रात बीती। वह न तो सोयी और न मां के पास से दूर ही हटी। नताशा का दृढ़, धैर्यपूर्ण प्यार, जो न तो कोई स्पष्टीकरण और न सान्त्वना ही देता था, बल्कि जीवन का आह्वान करता था, हर क्षण और मानो हर दिशा से काउंटेस को अपनी बांहों में कसे हुए था। तीसरी रात को काउंटेस कुछ मिनट के लिये शान्त हुईं और नताशा ने कुर्सी के हत्थे पर सिर टिकाकर आंखें मूंद लीं। पलंग चरमराया। नताशा ने आंखें खोलीं। काउंटेस पलंग पर बैठी हुई धीमे-धीमे कुछ बोल रही थीं।

"कितनी ख़ुश हूं मैं कि तुम आ गये। तुम थक गये हो, चाय पियोगे?" नताशा मां के क़रीब हो गयी। "तुम बहुत सुन्दर और जवान हो गये हो," बेटी का हाथ अपने हाथ में लेकर काउंटेस कहती गयीं।

"अम्मां, यह आप क्या कह रही हैं! .."

"नताशा, वह नहीं रहा, वह नहीं रहा!" और बेटी को गले लगाकर काउंटेस पहली बार रो पड़ीं।

३

प्रिंसेस मरीया ने अपना जाना स्थगित कर दिया। सोन्या और काउंट ने नताशा की जगह लेनी चाही, मगर वे ऐसा नहीं कर पाये। उन्होंने देखा कि केवल नताशा ही काउंटेस को उन्माद की सीमा तक पहुंचनेवाली घोर निराशा से बचा सकती है। तीन हफ़्ते तक नताशा मां के कमरे में ही रही, वह वहीं आरामकुर्सी पर सोती थी, मां को

खिलाती-पिलाती थी, उनके साथ लगातार बातें करती थी, क्योंकि उसकी कोमल, स्नेहपूर्ण आवाज़ ही काउंटेस को चैन देती थी।

मां के हृदय का घाव नहीं भर सकता था। पेत्या की मृत्यु ने उनसे उनका आधा जीवन छीन लिया था। पेत्या की मृत्यु का समाचार आने के समय काउंटेस ताज़गी लिये पचास वर्ष की उत्साही महिला थीं, और एक महीने बाद वह अधमरी तथा जीवन में कोई दिलचस्पी न रखनेवाली बुढ़िया के रूप में अपने कमरे से बाहर आयीं। किन्तु जिस घाव ने काउंटेस को अधमरा कर दिया, वही नया घाव नताशा को ज़िन्दगी की ओर वापस ले आया।

यह बात चाहे कितनी ही अजीब क्यों न लगे, किन्तु मन या आत्मा का घाव, जो आत्मिक आघात का परिणाम होता है, शारीरिक घाव की तरह धीरे-धीरे ही भरता है। जब गहरा घाव भर जाता है और ऐसा लगता है कि उसके सिरे आपस में जुड़ गये हैं तो केवल आन्तरिक शक्ति के उभरने से ही वह पूरी तरह से ठीक होता है।

नताशा का घाव इसी तरह से भरा। उसने सोचा था कि उसका जीवन समाप्त हो गया। किन्तु मां के प्रति उसके प्यार ने उसे यह स्पष्ट कर दिया कि उसके जीवन का सार, उसका मूल तत्त्व – प्यार – उसके भीतर अभी भी सांस ले रहा है। प्यार ने पलक खोली और जीवन भी जाग उठा।

प्रिंस अन्द्रेई के जीवन के अन्तिम दिन नताशा और प्रिंसेस मरीया को एक-दूसरी के निकट ले आये थे। नयी विपत्ति से इनकी निकटता और बढ़ गयी। प्रिंसेस मरीया ने मास्को जाने का अपना कार्यक्रम स्थगित कर दिया और पिछले तीन हफ़्तों में वह एक बीमार बालक के रूप में नताशा की देखभाल करती रही। मां के कमरे में बिताये गये इन सप्ताहों ने नताशा के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डाला था।

एक दोपहर को प्रिंसेस मरीया ने यह देखकर कि नताशा बुख़ार की जूड़ी की सी हालत में कांप रही है, उसे अपने कमरे में ले गयी और अपने बिस्तर पर लिटा दिया। नताशा लेट गयी, किन्तु जब परदा नीचे खींचकर प्रिंसेस मरीया ने बाहर जाना चाहा तो नताशा ने उसे अपने पास बुला लिया।

"मेरा सोने को मन नहीं हो रहा, मरीया। तुम मेरे पास बैठ जाओ।"

"तुम थक गयी हो – सोने की कोशिश करो।"

"नहीं, नहीं। तुम किसलिये मुझे यहां ले आयी हो? अम्मां मेरे बारे में पूछेंगी।"

"वह अब पहले से बहुत बेहतर हैं। आज वह बहुत अच्छे ढंग बातें करती रही हैं," प्रिंसेस मरीया ने कहा।

नताशा बिस्तर पर लेटी हुई थी और अध-अंधेरे कमरे में प्रिंसेस मरीया के चेहरे को बहुत ग़ौर से देख रही थी।

"उससे मिलती-जुलती है या नहीं?" नताशा सोच रही थी। "हां, मिलती-जुलती है और नहीं भी। किन्तु इसमें कोई अपनी, ख़ास बात है, वह परायी, एकदम नयी, अपरिचिता-सी है। और वह मुझे प्यार करती है। उसके भीतर, उसकी आत्मा में क्या है? भलाई ही भलाई। किन्तु कैसे? वह कैसे सोचती है? मेरे बारे में उसकी क्या राय है? हां, वह बहुत ही अच्छी है।"

"प्यारी मरीया," नताशा ने झिझकते-झिझकते उसका हाथ अपनी ओर खींचते हुए कहा। "तुम ऐसा नहीं सोचो कि मैं बुरी हूं। ऐसा नहीं सोचती हो न? मेरी प्यारी मरीया। कितना चाहती हूं मैं तुम्हें। आओ, हम बहुत ही पक्की सहेलियां बन जायें।"

और नताशा उसे गले लगाती हुई उसके हाथों और मुंह को चूमने लगी। प्रिंसेस मरीया को नताशा के इस भावना-प्रदर्शन से झेंप और ख़ुशी भी अनुभव हुई।

इस दिन से प्रिंसेस मरीया और नताशा के बीच वह कोमल और गहरी दोस्ती हो गयी जो केवल स्त्रियों के बीच ही होती है। ये दोनों एक-दूसरी को लगातार चूमती रहतीं, एक-दूसरी को प्यार भरे शब्द कहती रहतीं और एकसाथ रहते हुए अधिकतर समय बितातीं। अगर एक कमरे से बाहर चली जाती तो दूसरी बेचैनी अनुभव करने लगती और जल्दी से उसके पास जाने की कोशिश करती। अकेली होने की तुलना में एकसाथ होने पर उन्हें कहीं अधिक चैन मिलता। ये मैत्री से कहीं अधिक सशक्त भावना-सूत्रों में बंध गयी थीं – यह केवल एक-दूसरी की उपस्थिति में ही जीवन की सम्भावना की असाधारण-अद्भुत भावना थी।

कभी-कभी ये घण्टों तक चुप रहतीं और कभी-कभी बिस्तर में लेटे-लेटे बातें करने लगतीं तथा भोर होने तक बातें करती जातीं।

अधिकतर तो ये अपने दूर अतीत की चर्चा करतीं। प्रिंसेस मरीया अपने बचपन, अपनी मां, पिता और अपने सपनों की चर्चा करती और नताशा जो पहले निष्ठा, विनम्रता, ईसाई धर्म की आत्मबलिदान की भावना को न समझते हुए बड़े शान्त भाव से इस सबकी अवहेलना कर देती थी, अब प्रिंसेस मरीया के साथ अपने को प्यार के बन्धन से जुड़ी हुई अनुभव करने के कारण उसके अतीत को भी प्यार करने लगी और जीवन के उस पक्ष को भी समझ गयी जो पहले उसकी समझ में नहीं आता था। वह नम्रता और आत्मबलिदान को अपने जीवन का अंग नहीं बनाना चाहती थी, क्योंकि दूसरे ढंग की खुशिया ढूंढ़ने की आदी थी, किन्तु अब वह प्रिंसेस मरीया की उस दूसरी, पहले समझ में न आनेवाली भलाई की भावना को भी समझ गयी थी और चाहने लगी थी। नताशा के बचपन तथा जवानी के आरम्भ-काल की बातें सुनने से प्रिंसेस मरीया के सम्मुख भी पहले समझ में न आनेवाले जीवन के पक्षों पर से परदा हट गया, जीवन और उसकी खुशियों में उसका विश्वास पैदा हो गया।

ये दोनों पहले की भांति अब भी **उसकी** कभी चर्चा नहीं करती थीं, ताकि, जैसाकि इन्हें लगता था, उस उच्च भावना को, जो इनके दिलों में उसके प्रति थी, शब्दों द्वारा कलुषित न कर दें और इनकी इस ख़ामोशी का यही नतीजा हो रहा था, यद्यपि ये ऐसा मानने को कभी तैयार न होतीं, कि धीरे-धीरे उसे भूलती जाती थीं।

नताशा दुबला गयी थी, उसका चेहरा पीला हो गया था और शारीरिक दृष्टि से इतनी कमज़ोर हो गयी थी कि सभी लगातार उसके स्वास्थ्य की चर्चा करते रहते थे और उनका ऐसा करना उसे अच्छा लगता था। किन्तु कभी-कभी उसपर न केवल मृत्यु, बल्कि बीमारी, कमज़ोरी और अपनी ख़ूबसूरती खो बैठने का भय हावी हो जाता और कभी-कभी वह बरबस ही अपनी नंगी बांह को देखने लगती तथा उसके इतनी पतली होने पर हैरान होती या फिर सुबहों को अपने उतरे हुए, जैसाकि उसे लगता, दयनीय चेहरे को दर्पण में देखती रहती। उसे प्रतीत होता कि ऐसा ही होना चाहिये, मगर साथ ही उसे डर और उदासी भी महसूस होती।

एक बार वह तेज़ी से सीढ़ियां चढ़कर ऊपर गयी और ज़ोर से हांफने लगी। उसी क्षण उसने हठात् अपने लिये नीचे जाने का कोई काम

सोच लिया और वहां से फिर भागकर ऊपर गयी तथा यह जांच की कि उसकी ताक़त कहां तक उसका साथ देती है।

एक बार उसने दुन्याशा को पुकारा और उसकी आवाज़ फट गयी। इस चीज़ के बावजूद कि उसे ऊपर आ रही दुन्याशा के क़दमों की आहट सुनायी दे रही थी, उसने छाती से निकलनेवाली उस ज़ोरदार आवाज़ में, जिससे वह गाया करती थी, उसे फिर से पुकारा और अपनी आवाज़ को सुना।

नताशा यह नहीं जानती थी और उसने इस बात पर विश्वास भी न किया होता, किन्तु उसकी आत्मा पर जमने तथा अभेद्य प्रतीत होनेवाली कीचड़ की गहरी तह के नीचे से घास की पतली-पतली और कोमल-कोमल पत्तियां फूटने लगी थीं, जिन्हें गहरी जड़ें जमानी थीं तथा जीवन से स्पन्दित अपनी हरियाली से उस दुख पर ऐसे छा जाना था कि जल्द ही वह लुप्त हो जायेगा, उसका नाम-निशान ही बाक़ी नहीं रह जायेगा। घाव भीतर से भरने लगा था।

जनवरी के अन्त में प्रिंसेस मरीया मास्को के लिये रवाना हो गयी और काउंट ने ज़िद्द की कि डाक्टरों से सलाह-मशविरा करने के लिये नताशा भी उसके साथ जाये।

४

फ़्रांसीसियों के साथ व्याज़्मा में हुई मुठभेड़ के बाद, जहां कुतूज़ोव अपनी सेनाओं को शत्रु को कुचल डालने, उसका रास्ता काट डालने, आदि की इच्छा से रोक नहीं पाये, भागते फ़्रांसीसियों और उनका पीछा करते रूसियों का क्रास्नोये तक का सारा रास्ता किसी लड़ाई के बिना ही तय हो गया। फ़्रांसीसी इतनी तेज़ी से भाग रहे थे कि उनका पीछा करनेवाली रूसी सेना ऐसा करने में सफल नहीं हो पा रही थी, कि घुड़सेना और तोपख़ाने के घोड़े रास्ते में ही दम तोड़ देते थे और फिर फ़्रांसीसियों की गतिशीलता के बारे में प्राप्त होनेवाले समाचार भी हमेशा विश्वसनीय नहीं होते थे।

रात-दिन में लगातार चालीस वेर्स्ता तक चलते रहने के कारण रूसी

सैनिक इस बुरी तरह से थक-टूट गये थे कि इससे अधिक तेज़ी से चलने में असमर्थ थे।

रूसी सेना किस सीमा तक क्लान्त हो गयी थी, इस बात को समझने के लिये इस तथ्य को स्पष्ट रूप से जान लेना ज़रूरी है कि तारूतिनो से एक लाख की संख्या में रवाना होनेवाली रूसी सेना के क्रास्नोये तक के सारे रास्ते में पांच हज़ार से अधिक सैनिक न तो मरे और न घायल हुए तथा उसके एक सौ सैनिक भी बन्दी नहीं बनाये गये, फिर भी क्रास्नोये पहुंचने पर उसकी सैनिक-संख्या केवल पचास हज़ार रह गयी थी।

भागती हुई फ़्रांसीसी सेना की भांति उसका पीछा करनेवाली रूसी सेना पर भी इस तेज़ गति का घातक प्रभाव पड़ रहा था। फ़र्क़ सिर्फ़ यह था कि रूसी सेना अपने को नाश के उस ख़तरे से मुक्त अनुभव करती हुई, जो फ़्रांसीसियों के ऊपर हर वक़्त मंडराता रहता था, मनमर्ज़ी से आगे बढ़ती थी और यदि पिछड़ जानेवाले फ़्रांसीसी रोगी शत्रु के हाथों में पड़ जाते थे, तो पीछे रह जानेवाले रूसी अपने लोगों के बीच होते थे। नेपोलियन की सेना के कम होते जाने का मुख्य कारण उसका बहुत तीव्र गति से भागना था और इसका निर्विवाद प्रमाण यही है कि रूसी सेना भी इसी के अनुरूप कम होती जाती थी।

तारूतिनो और व्याज़्मा के समय की भांति कुतूज़ोव अब भी इसी चीज़ के लिये – जिस सीमा तक उनके लिये ऐसा करना सम्भव था – अपना एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहे थे कि फ़्रांसीसियों के इस घातक पलायन को रुकने न दिया जाये (जैसाकि पीटर्सबर्ग में और रूसी सेना के जनरल चाहते थे), इसमें योग दिया जाये और अपनी सेना की गति को धीमा किया जाये।

किन्तु बहुत तीव्र गति से पीछा करने के कारण रूसी सेना के अत्यधिक क्लान्त और बड़ी संख्या में सैनिकों की क्षति होने के अतिरिक्त कुतूज़ोव एक और वजह से भी अपनी सेना की गति धीमी करना चाहते थे, उतावली से बचना चाहते थे। रूसी सेना का ध्येय फ़्रांसीसियों का पीछा करना था। फ़्रांसीसियों का मार्ग अज्ञात था और इसलिये रूसी जितना अधिक निकट होकर उनका पीछा करते थे, उन्हें उतना ही अधिक लम्बा रास्ता तय करना पड़ता था। केवल कुछ फ़ासले पर रहते हुए ही वे फ़्रांसीसियों के टेढ़-मेढ़े रास्तों के लिये अपने अनुकूल

छोटे मार्ग चुन सकते थे। हमारे जनरल दक्षतापूर्ण जितनी भी चालों और गति-विधियों के सुझाव देते थे, उन सबका एक ही नतीजा होता था कि हमारी सेना को विवश होकर लम्बे-लम्बे मार्ग तय करने पड़ते थे, जबकि एकमात्र बुद्धिमत्तापूर्ण ध्येय यही था कि हमारी सेना के मार्गों को यथासम्भव छोटा किया जाये। मास्को से वील्ना तक के पूरे अभियान के दौरान कुतूज़ोव इसी ध्येय की प्राप्ति के लिये यत्नशील रहे और सो भी संयोगवश और अस्थायी रूप से नहीं, बल्कि ऐसी दृढ़ता-अडिगता से कि एक बार भी उन्होंने इस ध्येय की अवहेलना नहीं की।

कुतूज़ोव बुद्धि या युद्धविद्या के आधार पर नहीं, बल्कि सम्पूर्ण रूसी अन्तर्मन से यह जानते और अनुभव कर रहे थे, जैसे कि हर रूसी सैनिक अनुभव करता था कि फ़्रांसीसी पिट चुके हैं, कि शत्रु भाग रहा है और उसे अपनी धरती से निकाल बाहर करना चाहिये, किन्तु इसके साथ ही सैनिकों की भांति वह यह भी अनुभव करते थे कि ऐसी अनसुनी-अनदेखी तीव्र पलायन गति और कूच के लिये अनुपयुक्त समय का सेना पर कितना बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

किन्तु जनरलों को, ख़ास तौर पर ग़ैररूसी जनरलों को, जो नाम कमाने, दुनिया को हैरत में डालने, ख़ुदा ही जाने कि किसलिये किसी ड्यूक या बादशाह को क़ैदी बनाने के लिये बहुत बेक़रार थे—ऐसे जनरलों को यही प्रतीत होता था कि लड़ाई लड़ने और किसी को जीतने का इसी वक़्त बढ़िया मौक़ा है, जबकि वास्तव में इस समय कोई लड़ाई लड़ना बिल्कुल बेहूदा और बेमानी काम होता। कुतूज़ोव के सामने जब इस उद्देश्य से एक के बाद एक रणनीतिक योजना प्रस्तुत की जाती कि फटीचर बूट पहने, समूर के कोटों के बिना और अधभूखे रूसी सैनिक, जो लड़ाई के बिना ही आधे रह गये थे और जिन्हें फ़्रांसीसियों के इसी तरह भागते जाने की अनुकूलतम परिस्थितियों में भी देश की सीमा तक पहुंचने के लिये अभी उनसे ज़्यादा फ़ासला तय करना था जितना वे तय कर चुके थे, उन योजनाओं को अमली शक्ल दें तो वह केवल कंधे झटककर रह जाते।

नाम कमाने, जंगी पैंतरेबाज़ी दिखाने, शत्रु को कुचलने और उसका रास्ता काट देने की जनरलों की यह चाह तब तो विशेष रूप से तीव्र हो उठती थी, जब रूसी सेनायें फ़्रांसीसी सेनाओं से टकरा जातीं।

क्रास्नोये के क़रीब ऐसा ही हुआ, जब यह ख्याल था कि फ़्रांसीसियों के तीन में से एक दल हत्थे चढ़ जायेगा और सोलह हज़ार सैनिकों के साथ खुद नेपोलियन ही सामने आ गया। घातक टकराव से बचने और अपनी सेना को सुरक्षित रखने की कुतूज़ोव की सारी कोशिशों के बावजूद क्रास्नोये के क़रीब बेहद थके-टूटे रूसी सैनिक फ़्रांसीसियों की अस्त-व्यस्त भीड़ को नष्ट करने में लगे रहे।

टोल ने लड़ाई की योजना तैयार कर दी – पहला सेना-दल आगे बढ़े, आदि, आदि। हमेशा की तरह कुछ भी योजना के अनुसार नहीं हुआ। वीर्टेमबर्ग का प्रिंस येव्गेनी फ़्रांसीसियों की भागी जाती भीड़ पर पहाड़ी से गोलाबारी करता रहा और उसने कुमक भेजने की मांग की जो नहीं पहुंची। फ़्रांसीसी रातों को रूसियों से बचकर भागते रहे, बिखर गये, जंगल में छिप गये और जिसके लिये जैसे भी सम्भव हुआ, आगे चला गया।

मीलोरादोविच, जो यह कहता था कि उसे अपने सैनिक-दल के रसद-सम्बन्धी मामलों से कुछ लेना-देना नहीं, जो ज़रूरत के वक़्त कभी मिलता नहीं था अपने को खुद ही "निडर और अनिंद्य सूरमा" कहता था तथा जो फ़्रांसीसियों के साथ वार्ताओं का बड़ा शौक़ीन था, फ़्रांसीसियों से हथियार फेंकने की मांग करता हुआ उनके पास अपने दूत भेजता रहा, समय नष्ट करता रहा और उसे जो कुछ करने का हुक्म दिया गया था, उसने वह नहीं किया।

"जवानो, मैं तुम्हें यह लशकर भेंट करता हूं," उसने अपनी सेना के क़रीब आकर तथा फ़्रांसीसियों की ओर संकेत करते हुए अपने घुड़सैनिकों से कहा। और हमारे ये घुड़सैनिक अपने दुबले-पतले, मुश्किल से चलने में समर्थ घोड़ों को एड़ों तथा तलवारों से हांकते और बड़ी कठिनाई से दुलकी चाल से दौड़ाते हुए भेंट किये गये लशकर यानी ठिठुरे, ठण्ड से अकड़े और भूखे फ़्रांसीसियों की भीड़ के पास पहुंचे। इस लशकर ने, जो बहुत पहले से ही ऐसा चाहता था, फ़ौरन हथियार डाल दिये।

क्रास्नोये के निकट छब्बीस हज़ार फ़्रांसीसी क़ैदी बनाये गये, सैकड़ों तोपों पर क़ब्ज़ा किया गया, कोई डंडा भी मिला जिसे "मार्शल की छड़ी" घोषित कर दिया गया और इस मामले पर बहस होती रही कि किसने सबसे ज़्यादा बहादुरी दिखाई। सभी अपनी उपलब्धि से

बहुत प्रसन्न थे, किन्तु इन्हें इस बात का बड़ा मलाल था कि नेपोलियन या कम से कम किसी हीरो, किसी मार्शल को बन्दी नहीं बना सके और इसके लिये एक-दूसरे को तथा ख़ास तौर पर कुतूज़ोव को दोषी ठहराते रहे।

अपने भावावेशों की लहर में बहनेवाले ये लोग अनिवार्यता के बहुत ही दुखद नियम का आंखें मूंदकर पालन करनेवालों के अतिरिक्त कुछ नहीं थे। किन्तु ये अपने को हीरो मानते थे और कल्पना करते थे कि जो कुछ उन्होंने किया है, वही सबसे शोभनीय और उदात्त कार्य था। इन्होंने कुतूज़ोव को दोषी ठहराया और यह कहा कि वह शुरू से ही नेपोलियन पर विजय पाने की इनकी कोशिश में बाधा डालते रहे हैं, कि वह केवल अपनी इच्छाओं की तृप्ति के बारे में ही सोचते हैं और पोलोत्न्यानी ज़ावोदी* से इसलिये नहीं आना चाहते थे कि उन्हें वहां आराम और चैन हासिल था, कि क्रास्नोये के निकट उन्होंने इसलिये अपनी सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया कि नेपोलियन के यहां होने का समाचार मिलने पर वह बिल्कुल चकरा गये, कि ऐसा मानना उचित होगा कि नेपोलियन के साथ उनकी सांठ-गांठ है, कि नेपोलियन ने उन्हें ख़रीद रखा है**, आदि, आदि।

अपनी भावनाओं की लहर में बहनेवाले कुतूज़ोव के समकालीनों ने ही नहीं, बल्कि बाद की पीढ़ियों और इतिहास ने भी नेपोलियन को "महान" बताया है, विदेशियों ने कुतूज़ोव को मक्कार, बदचलन और बूढ़ा, दुर्बल दरबारी कहा है तथा रूसियों ने उन्हें एक साधारण व्यक्ति, एक ऐसे कठपुतले के रूप में प्रस्तुत किया है जो इसीलिये उपयोगी था कि उसका नाम रूसी था।

---

* कालूगा के प्रान्त का एक गांव जहां कुतूज़ोव मुख्य सैनिक शक्तिवाली रूसी सेनाओं के साथ ठहरे हुए थे। – सं०

** यहां सम्राट अलेक्सान्द्र प्रथम और पीटर्सबर्ग में अंग्रेज़ राजदूत के ख़ुफ़िया मुख़बिर जनरल राबर्ट विलसन की टिप्पणी की ओर संकेत है। – सं०

सन् १८१२ और १८१३ में कुतूज़ोव को उनकी भूलों के लिये सीधे-सीधे दोषी ठहराया गया। सम्राट उनसे अप्रसन्न थे। सम्राट के आदेश से लिखे गये और हाल ही में प्रकाशित इतिहास* में यह कहा गया है कि कुतूज़ोव मक्कार, भूठे दरबारी थे, नेपोलियन के नाम से कांपते थे और अपनी भूलों के कारण उन्होंने रूसी सेना को क्रास्नोये तथा बेरेज़िना के निकट फ़्रांसीसियों पर पूरी विजय पाने की कीर्ति से वंचित कर दिया।

यह महान लोगों का, जिन्हें रूसी बुद्धि कभी स्वीकार नहीं करती, भाग्य नहीं, बल्कि ऐसे विरले, हमेशा इने-गिने लोगों का भाग्य है जो नियति की इच्छा को समभकर अपनी इच्छा को उसके अधीन कर देते हैं। नियति के उच्च नियमों को समभने के लिये आम लोग घृणा और तिरस्कार के रूप में उन्हें दण्ड देते हैं।

रूसी इतिहासकारों के लिये (यह कहना बड़ा अजीब और भयानक है!) नेपोलियन – इतिहास का वह तुच्छतम साधन जिसने कभी और कहीं भी, यहां तक कि निर्वासन में भी, मानवीय गरिमा का परिचय नहीं दिया, वही नेपोलियन प्रशंसा और उल्लास का पात्र है; वह महान है। किन्तु कुतूज़ोव, जिन्होंने १८१२ के आरम्भ से अन्त तक अपने सभी कार्य-कलापों, बोरोदिनो से वील्ना तक अपनी हर गति-विधि और हर शब्द के प्रति निष्ठावान रहते हुए आत्मबलिदान और वर्तमान की घटनाओं के भावी महत्त्व को समभने की दृष्टि से इतिहास में एक अनुपम उदाहरण पेश किया, वही कुतूज़ोव उन्हें किसी कारण बहुत साधारण और दयनीय लगते हैं तथा उनकी और १८१२ की चर्चा करते हुए हमेशा मानो कुछ लज्जा अनुभव करते हैं।

इसके बावजूद किसी ऐसे ऐतिहासिक व्यक्ति की कल्पना करना कठिन है जिसने ऐसी निष्ठा तथा इतनी दृढ़ता से अपने सारे कार्य-कलाप को एक ही ध्येय की प्राप्ति में लगाया हो। सारे राष्ट्र की इच्छा के योग्य और अनुरूप किसी अन्य ध्येय की कल्पना करना भी मुश्किल

---

* यहां म० बोगदानोविच की पुस्तक 'दस्तावेज़ों पर आधारित १८१२ के देश-भक्तिपूर्ण युद्ध का इतिहास' से अभिप्राय है जो सम्राट के आदेश से लिखी गयी थी। – सं०

है। इतिहास में कोई ऐसा अन्य उदाहरण ढूंढ़ पाना तो और भी कठिन है, जब किसी ऐतिहासिक हस्ती द्वारा अपने सम्मुख प्रस्तुत किया गया ध्येय ऐसे पूरी तरह से प्राप्त कर लिया गया हो जैसे वह ध्येय, जिसकी प्राप्ति के लिये सन् १८१२ में कुतूज़ोव ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी।

कुतूज़ोव ने कभी भी पिरामिडों से नीचे देखनेवाली चालीस शताब्दियों की, मातृभूमि के लिये अपने बलिदानों और इस चीज़ की चर्चा नहीं की थी कि वह क्या करने का इरादा रखते हैं और क्या कर चुके हैं। वह तो अपने बारे में कभी कुछ कहते ही नहीं थे, किसी तरह का कोई आडम्बर नहीं करते थे, हमेशा बहुत सीधे-सादे और साधारण व्यक्ति प्रतीत होते थे और बहुत ही सीधे-सादे तथा साधारण शब्द बोलते थे। वह अपनी बेटियों और मदाम स्ताल को पत्र लिखते थे, उपन्यास पढ़ते थे, हसीन औरतों की संगत पसन्द करते थे, जनरलों, फ़ौजी अफ़सरों और सैनिकों के साथ हंसी-मज़ाक़ करते थे तथा जो लोग उनके सामने कुछ प्रमाणित करना चाहते थे, कभी भी उनकी बात नहीं काटते थे। याउज़्की पुल पर जब काउंट रस्तोपचिन सरपट घोड़ा दौड़ाता हुआ उनके पास आया था और उसने मास्को की तबाही के लिये उन्हें दोषी ठहराते हुए यह कहा था कि "आपने तो लड़ाई के बिना मास्को न छोड़ने का वचन दिया था," तो कुतूज़ोव ने उत्तर दिया था – "मैं लड़ाई के बिना मास्को छोड़ूंगा भी नहीं," यद्यपि मास्को शत्रु के हवाले किया जा चुका था। जब सम्राट की ओर से आनेवाले अराकचेयेव ने उनसे यह कहा कि येर्मोलोव को तोपख़ाने का संचालक नियुक्त किया जाना चाहिये तो कुतूज़ोव ने जवाब दिया था – "हां, मैंने तो ख़ुद भी अभी-अभी यह कहा था," यद्यपि एक मिनट पहले उन्होंने बिल्कुल दूसरी ही बात कही थी। मूर्खों की उस भीड़ में, जो उस वक़्त उन्हें घेरे थी, घटनाओं के अपार महत्त्व को समझ पानेवाले एकमात्र कुतूज़ोव को इस बात से भला क्या फ़र्क़ पड़ सकता था कि मास्को के दुर्भाग्य के लिये काउंट रस्तोपचिन ख़ुद को या उन्हें दोषी ठहराता है? इस चीज़ में तो उनकी और भी कम दिलचस्पी हो सकती थी कि तोपख़ाने की कमान किसे सौंपी जाये।

न केवल उपर्युक्त उदाहरणों के मामलों में, बल्कि जीवन के अनुभव से इस निष्कर्ष पर पहुंचनेवाले बुज़ुर्ग कुतूज़ोव कि विचार और उन्हें अभिव्यक्ति देनेवाले शब्द ही लोगों की क्रियाशीलता के प्रेरणा-स्रोत

नहीं हैं, बिल्कुल अर्थहीन ऐसे शब्द कह देते थे जो सबसे पहले उनके दिमाग़ में आ जाते थे।

किन्तु इन्हीं कुतूज़ोव ने, जो अपने शब्दों के सम्बन्ध में इतने लापरवाह थे, अपनी सारी गति-विधियों में एक भी ऐसा शब्द मुंह से नहीं निकाला जो उस एकमात्र ध्येय की प्राप्ति के अनुरूप न होता जिसके लिये वह पूरे युद्धकाल में यत्नशील रहे थे। सम्भवतः इस कटु विश्वास के साथ कि लोग उनकी बात को नहीं समझेंगे, उन्होंने अनेक बार तथा विभिन्नतम परिस्थितियों में अपने दिली विचार को अभिव्यक्ति दी। बोरोदिनो की लड़ाई से लेकर, जब अपने इर्द-गिर्द के लोगों के साथ उनके मतभेद प्रकट हुए, केवल वही यह कहते रहते थे कि **बोरोदिनो की लड़ाई में हमारी जीत हुई** और उन्होंने ज़बानी, अपने लिखित संवादों तथा रिपोर्टों में इसी बात को दोहराया और मृत्यु-पर्यन्त यही कहते रहे। केवल उन्हींने यह कहा था कि **मास्को का हाथ से जाना रूस का हाथ से जाना नहीं है।** लोरिस्टन के शान्ति-प्रस्ताव लेकर आने पर उन्होंने कहा था कि **शान्ति नहीं हो सकती, क्योंकि हमारी सारी जनता की यही इच्छा है।** फ़्रांसीसियों के वापस जाने के समय केवल उन्हींने यह कहा था कि **हमारी सारी सैनिक पैंतरेबाज़ियां अनावश्यक हैं, कि सभी कुछ उससे ज़्यादा अच्छे ढंग से हो जायेगा जैसाकि हम चाहते है, कि शत्रु के लिये स्वर्ण-सेतु बनाना चाहिये (ताकि वह भाग सके), कि तारूतिनो, व्याज़्मा और क्रास्नोये की लड़ाइयों की कोई ज़रूरत नहीं, कि सीमा तक पहुंचने के लिये अपने अधिक से अधिक सैनिकों को बचाना चाहिये, कि वह तो दस फ़्रांसीसियों के बदले में अपना एक रूसी भी क़ुर्बान नहीं करना चाहते।**

सिर्फ़ वही, वह तिकड़मबाज़ दरबारी, जैसाकि उन्हें चित्रित किया गया है, जिन्होंने सम्राट को प्रसन्न करने के लिये अराकचेयेव के सामने झूठ बोला, वही, वह तिकड़मबाज़ कुतूज़ोव ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने डंके की चोट वील्ना में यह कहा (और इसीलिये सम्राट के कोप-भाजन बने) कि **रूस की सीमा के पार युद्ध जारी रखना हानिकारक और बेमानी है।**

किन्तु केवल शब्द ही इस चीज़ को प्रमाणित नहीं कर सकते कि कुतूज़ोव उस समय की घटनाओं का महत्त्व अच्छी तरह से समझते थे। किसी भी अपवाद के बिना तीन उपायों पर आधारित उनके सारे

कार्य-कलाप एक ही ध्येय की प्राप्ति की ओर लक्षित थे। ये उपाय थे – १) फ़्रांसीसियों का मुक़ाबला करने के लिये अधिकतम शक्ति जुटाना, २) उनपर विजय पाना और ३) आम लोगों तथा सेना के दुख-मुसीबतों को यथासम्भव कम करते हुए फ़्रांसीसियों को रूस से खदेड़ देना।

उतावली न करनेवाले इन्हीं कुतूज़ोव ने, जिनका आदर्श-वाक्य था – सब्र और समय तथा जो अच्छी तरह से सोचे-समझे बिना कोई भी क़दम उठाने के कट्टर विरोधी थे, बोरोदिनो की लड़ाई लड़ी और उसके लिये बहुत ही गम्भीरता से तैयारी की। इन्हीं कुतूज़ोव ने आउस्टेर-लिट्ज़ की लड़ाई शुरू होने के पहले ही यह कह दिया था कि उसमें हमारी हार होगी, किन्तु बोरोदिनो की लड़ाई के बाद यही कुतूज़ोव जनरलों के यह विश्वास दिलाने के बावजूद कि हमारी पराजय हो गयी है तथा इतिहास में ऐसे अनसुने उदाहरण के बावजूद कि लड़ाई जीतने के बाद भी सेना पीछे हटे, सभी के मत के विरुद्ध जीवन के अन्तिम क्षण तक वह अकेले ही यह दावा करते रहे कि बोरोदिनो की लड़ाई में हमारी जीत हुई थी। फ़्रांसीसियों के पीछे हटने की पूरी अवधि में मात्र वही इस बात पर ज़ोर देते रहे थे कि अब लड़ाइयां लड़ने में कोई तुक नहीं है, कि नया युद्ध न आरम्भ किया जाये और हमारी सेना रूस की सीमा से आगे न जाये।

अगर हम उन लक्ष्यों-ध्येयों को, जो कोई दसेक लोगों के दिमाग़ में ही थे, जनसाधारण के कार्य-कलापों के साथ न जोड़ें तो अब हम घटना के महत्त्व को बहुत अच्छी तरह से समझ सकते हैं, क्योंकि अपने सभी परिणामों के साथ पूरी घटना हमारे सामने है।

किन्तु उस समय सभी लोगों के मत के विरुद्ध यह बूढ़े व्यक्ति ही घटना को जनसाधारण की दृष्टि से कैसे इतनी अच्छी तरह समझ पाये कि उनके सारे कार्य-कलापों में उनसे इस मामले में एक बार भी भूल नहीं हुई?

उस समय की घटनाओं को इतने असाधारण रूप से अच्छी तरह समझ पाने का स्रोत वह लोक-भावना थी जो वह इतने स्पष्ट और सशक्त रूप से अपने हृदय में सहेजे हुए थे।

जनसाधारण द्वारा कुतूज़ोव की इस लोक-भावना की मान्यता ने ही ज़ार की नापसन्दगी के बावजूद और ज़ार की इच्छा के विरुद्ध बड़े अजीब ढंग से इस बुज़ुर्ग को अपना प्रतिनिधि चुनने के लिये विवश

किया। इसी भावना ने उन्हें उस मानवीय ऊंचाई के सिंहासन पर बिठा दिया जहां से सेनापति के रूप में उन्होंने अपनी सारी शक्ति लोगों को लुंज-पुंज बनाने और मरवाने में नहीं, बल्कि उन्हें बचाने तथा उनपर दया करने की दिशा में निर्देशित कर दी।

सीधे-सादे, विनम्र-विनयी और इसलिये वास्तव में ही महान कुतूज़ोव यूरोपीय हीरो और तथाकथित लोक-नायक के इतिहास द्वारा बनाये गये सांचे में नहीं ढल सकते थे।

चाटुकारों के लिये कोई महान व्यक्ति महान नहीं हो सकता, क्योंकि महानता के बारे में उनकी अपनी ही धारणा होती है।

६

५ नवम्बर तथाकथित क्रास्नोये की लड़ाई का पहला दिन था। जनरलों की अनेक बहसों और भूलों के बाद, जो उन जगहों पर नहीं पहुंचे थे जहां उन्हें पहुंचना चाहिये था, तथा परस्पर-विरोधी आदेशों के साथ एडजुटेंटों के इधर-उधर सरपट घोड़े दौड़ाने के पश्चात, जब यह स्पष्ट हो गया कि शत्रु हर जगह भाग रहा है और लड़ाई होने की कोई सम्भावना नहीं, कि लड़ाई नहीं होगी तो कुतूज़ोव क्रास्नोये से दोब्रोये की ओर रवाना हो गये जहां उसी दिन उनका मुख्य सैनिक कार्यालय स्थानन्तरित किया गया था।

दिन निर्मल-उजला था, पाला पड़ रहा था। अपने मोटे-ताज़े सफ़ेद घोड़े पर सवार कुतूज़ोव दोब्रोये को जा रहे थे। उनके अमले के असन्तुष्ट और कानाफूसी करते जनरलों का एक बहुत बड़ा दल उनके पीछे-पीछे आ रहा था। सड़क के साथ-साथ सभी जगहों पर इसी दिन बन्दी बनाये गये फ़्रांसीसी क़ैदियों के दल (इस दिन सात हज़ार फ़्रांसीसी बन्दी बनाये गये थे) अलावों के गिर्द आग ताप रहे थे। दोब्रोये के नज़दीक फटेहाल, जो भी हाथ में आ गया, उसी कपड़े की पट्टियां बांधे और चिथड़ों में लिपटे-लिपटाये फ़्रांसीसी बन्दियों की एक बहुत बड़ी और शोर मचाती भीड़ तोप-गाड़ियों के बिना तोपों की एक लम्बी क़तार के क़रीब जमा थी। सेनापति के नज़दीक आने

पर शोर बन्द हो गया और सभी की नज़रें कुतूज़ोव पर टिक गयीं जो लाल फ़ीतेवाली सफ़ेद टोपी तथा पैडदार ओवरकोट पहने, जो उनके झुके कंधों पर उभरा हुआ था, अपने घोड़े को धीरे-धीरे सड़क पर बढ़ाते जा रहे थे। एक जनरल कुतूज़ोव को यह बता रहा था कि फ़्रांसीसी तोपें और क़ैदी किस जगह क़ब्ज़े में लिये गये हैं।

ऐसे लगता था कि कुतूज़ोव किन्हीं विचारों में डूबे-खोये थे और जनरल की बात पर कान नहीं दे रहे थे। वह झल्लाहट में आंखें सिकोड़े और बहुत ध्यान से तथा एकटक उन क़ैदियों को देख रहे थे जो विशेष रूप से दयनीय प्रतीत हो रहे थे। अधिकांश फ़्रांसीसी सैनिकों की सूरतें बिगड़ी हुई थीं, उनकी नाकों और गालों को पाला मार गया था तथा लगभग उन सभी की आंखें लाल, सूजी हुई और पीप से भरी थीं।

फ़्रांसीसियों का एक दल सड़क के क़रीब खड़ा था और दो सैनिक – जिनमें से एक का चेहरा फोड़ों-फुंसियों से ढका हुआ था – हाथों से कच्चे मांस का एक टुकड़ा तोड़ रहे थे। इन फ़्रांसीसियों ने घुड़सवारों पर जो उड़ती-सी नज़र डाली, उसमें तथा फोड़े-फुंसियोंवाले सैनिक ने जिस क्रोधपूर्ण भाव से कुतूज़ोव की ओर देखा और उसी क्षण मुंह फेरकर अपने काम में लग गया, उसके इस अन्दाज़ में कुछ भयानक और पाशविक था।

कुतूज़ोव बहुत ध्यान से और देर तक इन दो सैनिकों को देखते रहे; उनकी त्योरी और अधिक चढ़ गयी, उन्होंने आंखें सिकोड़ीं तथा कुछ सोचते हुए सिर हिलाया। एक अन्य स्थान पर उन्होंने एक रूसी सैनिक की ओर ध्यान दिया जो हंसते हुए और फ़्रांसीसी बन्दी का कन्धा थपथपाते हुए उससे स्नेहपूर्वक कुछ कह रहा था। कुतूज़ोव ने पहले जैसे भाव के साथ फिर सिर हिलाया।

"तुम क्या कह रहे हो?" उन्होंने जनरल से पूछा जो अपनी रिपोर्ट पेश करता जा रहा था तथा प्रेओब्राजेन्स्की रेजिमेंट के सामने रखे फ़्रांसीसी झण्डों की तरफ़ सेनापति का ध्यान आकर्षित कर रहा था।

"ओह, झण्डे!" कुतूज़ोव ने सम्भवतः बड़ी मुश्किल से विचारों की उस दुनिया से उभरते हुए कहा जिसमें खोये हुए थे। उन्होंने बेख़्याली से अपने इर्द-गिर्द नज़र दौड़ाई। उनके शब्दों का इन्तज़ार करनेवाली हज़ारों नज़रें सभी ओर से उनपर टिकी हुई थीं।

वह प्रेओब्राजेन्स्की रेजिमेंट के सामने रुके, उन्होंने गहरी सांस ली और आंखें मूंद लीं। अमले में से किसी ने इस चीज़ के लिये इशारा किया कि भण्डे थामे हुए सैनिक आगे आयें और उनको सेनापति के गिर्द खड़ा कर दें। कुतूज़ोव कुछ मिनट तक चुप रहे और सम्भवतः अपने पद का अनिवार्य कर्त्तव्य निभाते हुए उन्होंने मन मारकर सिर ऊपर उठाया और बोलने लगे। अफ़सरों की भीड़ ने उन्हें घेर लिया। उन्होंने कुछ अफ़सरों को पहचानते हुए बहुत ग़ौर से उन्हें देखा।

"आप सभी को धन्यवाद देता हूं!" उन्होंने सैनिकों और फिर अफ़सरों को सम्बोधित करते हुए कहा। उनके गिर्द छाई गहरी ख़ामोशी में धीमी आवाज़ में कहे जानेवाले उनके शब्द बिल्कुल साफ़ सुनायी दे रहे थे। "आप सभी को कठिन और निष्ठापूर्ण सेवा के लिये धन्यवाद देता हूं। हमारी पूर्ण विजय हो गयी है और रूस आपको कभी नहीं भूलेगा। आपकी कीर्ति अमर रहे!" वह अपने इर्द-गिर्द देखते हुए चुप हो गये।

"इसका सिर भुका दो, सिर भुका दो," उन्होंने फ़्रांसीसी सत्ता के प्रतीक – उक़ाब – को हाथ में उठाये हुए सैनिक से कहा जिसने अनजाने ही उसे प्रेओब्राजेन्स्की रेजिमेंट के सामने कर दिया था। "और नीचे, और नीचे कर दो, हां, ऐसे। हुर्रा, जवानो!" ठोड़ी को तेज़ी से सैनिकों की ओर घुमाते हुए उन्होंने ज़ोर से कहा।

"हुर्रा!" हज़ारों आवाज़ें एकसाथ गूंज उठीं।

सैनिक जब तक हुर्रा चिल्लाते रहे, इसी बीच कुतूज़ोव ज़ीन पर थोड़ा आगे को भुक गये, उन्होंने अपना सिर कुछ नीचे कर लिया और उनकी आंख में हल्की-हल्की, मानो व्यंग्यपूर्ण मुस्कान चमक उठी।

"मेरे भाइयो, बात यह है," सैनिकों का शोर समाप्त होने पर उन्होंने कहना शुरू किया...

अचानक उनकी आवाज़ और चेहरे का भाव बदल गया – सेनापति की जगह अब एक साधारण, बूढ़ा आदमी बोलने लगा था जो सम्भवतः अपने साथियों से कोई बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कहना चाहता था।

फ़ौजी अफ़सरों तथा सैनिकों की भीड़ ज़रा हिली-डुली ताकि अधिक स्पष्ट रूप से उस बात को सुन सके जो वह अब कहने जा रहे थे।

"बात यह है, मेरे भाइयो। मुझे मालूम है कि आप लोगों को

काफ़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है, मगर क्या किया जाये! सब्र से काम लीजिये, अब और ज़्यादा वक़्त नहीं लगेगा। इन मेहमानों को यहां से विदा कर दें और इसके बाद हम आराम कर लेंगे। आपकी सेवाओं को ज़ार कभी नहीं भूलेंगे। आपको कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, फिर भी आप अपने घर में हैं, लेकिन ये – देखिये तो इनका क्या हाल हो गया है," उन्होंने बन्दियों की तरफ़ इशारा करते हुए कहा, "गये-बीते भिखारियों से भी बुरा। जब तक ये शक्तिशाली थे, हमने इनपर दया नहीं की, किन्तु अब इनपर दया की जा सकती है। आख़िर ये भी इन्सान हैं। मैं ठीक कह रहा हूं न, जवानो?"

उन्होंने अपने इर्द-गिर्द दृष्टि दौड़ाई और आदरपूर्ण आश्चर्य से टकटकी बांधकर अपनी तरफ़ देखती नज़रों में उन्हें अपने शब्दों के प्रति अनुमोदन की अनुभूति हुई – बुढ़ापे की मन्द मुस्कान से उनके चेहरे पर अधिकाधिक चमक आती गयी, इस मुस्कान से उनके होंठों और आंखों के आस-पास ढेरों झुर्रियां उभर आयीं। वह ख़ामोश हो गये और मानो किसी उलझन में पड़ते हुए उन्होंने सिर झुका लिया।

"लेकिन आख़िर किसने इन्हें यहां बुलाया था? ये इसी के लायक़ हैं... ये हराम... जा..." उन्होंने अचानक सिर ऊपर उठाकर कहा। और चाबुक सटकारकर तथा पूरे युद्धकाल में पहली बार वह अपने घोड़े को सरपट दौड़ाते हुए उन सैनिकों से दूर चले गये जो अपनी पांतों को तोड़कर ख़ुशी से ठहाके लगा रहे थे और हुर्रा चिल्ला रहे थे।

कुतूज़ोव के शब्दों के भाव को सैनिक शायद ही समझे हों। उनमें से कोई भी सेनापति के प्रारम्भिक धीर-गम्भीर और अन्त में कहे गये एक बूढ़े व्यक्ति के सीधे-सरल शब्दों का सार नहीं बता सकता था। किन्तु वे न केवल इन शब्दों का मानवीय अर्थ समझ गये थे, बल्कि शत्रु के प्रति दया और अपने ध्येय की न्यायशीलता की चेतना के साथ मिश्रित इस उदात्त भाव को, जो बुढ़ापे के अनुरूप और ख़ुशमिज़ाजी की गाली के रूप में व्यक्त हुआ तथा जो हर सैनिक की आत्मा में भी बसा हुआ था, उन्होंने देर तक जारी रहनेवाले अपने उल्लासपूर्ण कोलाहल में अभिव्यक्ति दी थी। इसके बाद जब एक जनरल ने सेनापति के पास आकर यह पूछा कि क्या उनके लिये बग्घी मंगवा दी जाये तो कुतूज़ोव सम्भवतः अत्यधिक विह्वलता अनुभब करने के कारण उत्तर देते हुए सहसा सिसक उठे।

क्रास्नोये की लड़ाइयों के आखिरी दिन यानी ८ नवम्बर को रात बिताने के लिये सेनायें जब अपने स्थान पर पहुंचीं तो झुटपुटा हो चुका था। दिन भर मौसम शान्त रहा था, पाला पड़ता रहा था तथा हल्का-हल्का हिमपात होता रहा था। शाम होते न होते आकाश निर्मल होने लगा। हिमकणों के बीच से तारक-जड़ित काले-बैंगनी आकाश की झलक मिलने लगी और पाले का ज़ोर बढ़ने लगा।

बन्दूक़चियों की रेजिमेंट, जिसमें तारूतिनो से रवाना होने के वक़्त तीन हज़ार सैनिक थे और अब नौ सौ रह गये थे, उन पहली रेजिमेंटों में से एक थी जो बड़ी सड़क के किनारेवाले गांव में अपनी रात बिताने की जगह पर पहुंची। इस रेजिमेंट के यहां पहुंचने पर क्वार्टर-मास्टरों ने बताया कि सभी झोंपड़ों में बीमार और मरे हुए फ़्रांसीसी पड़े हैं या फिर घुड़सैनिक तथा स्टॉफ़-अफ़सर डेरे डाले हुए हैं। रेजिमेंट-कमांडर के लिये ही सिर्फ़ एक झोंपड़ा ख़ाली था।

रेजिमेंट-कमांडर अपने घोड़े को इस झोंपड़े की तरफ़ बढ़ा ले गया। रेजिमेंट ने गांव को लांघा और आख़िरी झोंपड़ों के क़रीब सड़क पर बन्दूकों का ढेर लगा दिया।

सारी रेजिमेंट अनेक अंगोंवाले भीमकाय जानवर की भांति अपने सोने की जगह और भोजन की तैयारी के काम में जुट गयी। सैनिकों का एक भाग गांव के दायीं ओरवाले भोज-वृक्षों के जंगल में घुटनों तक की बर्फ़ में चला गया और उसी क्षण जंगल से कुल्हाड़ों और खांडों के प्रहारों तथा शाखाओं के टूटने की आवाज़ें और आह्लादपूर्ण स्वर सुनायी देने लगे। सैनिकों का दूसरा भाग रेजिमेंट की घोड़ा-गाड़ियों और झुण्ड के रूप में खड़े किये गये घोड़ों के इर्द-गिर्द दौड़-धूप कर रहा था – देग़चे तथा रस्क निकाल रहा था तथा घोड़ों को चारा डाल रहा था। सैनिकों का तीसरा भाग गांव में इधर-उधर फैल गया था – ये सैनिक मृत फ़्रांसीसियों को झोंपड़ों से बाहर निकालकर स्टॉफ़-अफ़सरों के रहने की जगह बना रहे थे, अलावों के लिये तख़्ते, सूखी लकड़ियां और छतों से फूस तथा किसी तरह की पनाह बनाने के लिये टट्टर की बाड़ें घसीटकर ला रहे थे।

गांव के छोरवाले झोंपड़ों के पीछे कोई पन्द्रह सैनिक ख़ुशी से

चीख़ते-चिल्लाते हुए एक सायबान की ऊंची दीवारों को नीचे गिराने के लिये ज़ोर लगा रहे थे। इस सायबान की छत तो पहले ही उतारी जा चुकी थी।

"अब मिलकर पूरा ज़ोर लगा दो!" सैनिकों ने चिल्लाकर कहा और रात के अंधेरे में बर्फ़ से ढकी बहुत बड़ी दीवार पाले की चटक की आवाज़ के साथ हिलने-डुलने लगी। नीचे के खूंटे अधिकाधिक चटकने लगे और आख़िर यह दीवार उन सैनिकों के साथ, जो उसपर ज़ोर डाल रहे थे, नीचे गिर गयी। ख़ुशी भरी ऊंची तथा फूहड़ ढंग की चीख़ें और ठहाके सुनायी दिये।

"अब दो-दो मिलकर इसे सम्भालो! लीवर इधर दो! ऐसे! अरे, तुम कहां घुसे आ रहे हो?"

"सब मिलकर... ज़रा रुको, जवानो! .. गाने के साथ!"

सभी ख़ामोश हो गये और धीमी, प्यारी तथा मख़मली-सी आवाज़ में एक सैनिक ने गाना शुरू किया। तीसरे पद के अन्त में, अन्तिम ध्वनि के समाप्त होते ही बीस आवाज़ें बड़े हेल-मेल से चिल्ला उठीं – "ऊ-हू-हू-हू! दीवार हिल रही है! एकसाथ! पूरा ज़ोर लगाओ जवानो! .." किन्तु उनके हिल-मिलकर ज़ोर लगाने के बावजूद दीवार अपनी जगह से लगभग नहीं हिली और इसके बाद छा जानेवाली ख़ामोशी में सैनिक़ों के हांफने की आवाज़ सुनी जा सकती थी।

"अरे ओ, छठी कम्पनीवालो! शैतानो, बदमाशो! ज़रा हमारा हाथ बंटाओ... हम भी तुम्हारे काम आयेंगे।"

छठी कम्पनी के कोई बीसेक सैनिक, जो गांव की तरफ़ जा रहे थे, इन सैनिकों की मदद करने लगे और पांच साजेन* लम्बी तथा एक साजेन चौड़ी दीवार मुड़कर और हांफते सैनिकों के कंधे को कुचलती तथा छीलती हुई गांव की सड़क पर धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगी।

"क़दम मिलाकर... अरे, सम्भलकर... अबे, रुक क्यों गया? हां, अब ठीक है..."

ख़ुशी भरी और गन्दी-मन्दी गालियों का सिलसिला लगातार चलता जा रहा था।

"अरे, तुम लोग कैसी गन्दी बकवास कर रहे हो?" अचानक

---

* एक साजेन २.१३ मीटर के बराबर होता है। – सं०

एक सार्जेंट की अधिकारपूर्ण तथा बाड़ को ढोनेवालों को डांटती हुई आवाज़ सुनायी दी।

"अफ़सर लोग यहां हैं। खुद जनरल साहब भी पास के झोंपड़े में हैं और तुम शैतान के चरखे, तुम बदमाश लोग ऐसी गन्दी-गन्दी गालियां बक रहे हो। मैं तुम्हारी अक़्ल ठिकाने करूंगा!" सार्जेंट ने चिल्लाकर कहा और सबसे पहले सामने आ जानेवाले सैनिक की पीठ पर जोर से घूंसा टिका दिया। "क्या तुम लोग शोर के बिना काम नहीं कर सकते?"

सैनिक ख़ामोश हो गये। सार्जेंट ने जिस सैनिक को घूंसा मारा था, वह बड़बड़ाता हुआ अपने चेहरे से, जो बाड़ से टकराकर घायल हो गया था, लहू पोंछने लगा।

"इस शैतान को मार-पीट में कमाल हासिल है! मेरा सारा तोबड़ा ही लहू-लुहान कर डाला," सार्जेंट के कुछ दूर चले जाने पर उसने सहमी-सहमी फुसफुसाहट में कहा।

"और तुम्हें यह अच्छा नहीं लगता?" किसी ने हंसते हुए चुटकी ली तथा अपनी आवाज़ों को धीमा करके ये सैनिक आगे चल दिये। गांव से बाहर पहुंच जाने पर वे फिर पहले की तरह ऊंचे-ऊंचे तथा उलटी-सीधी गालियां निकालते हुए बोलने-बतियाने लगे।

ये सैनिक जिस देहाती घर के क़रीब से गुज़रे, उसमें उच्च सेनाधिकारी एकत्रित थे तथा चाय पीते हुए बीते दिन और अगले दिन की रणनीतिक योजना के बारे में बड़ी सजीव बातचीत हो रही थी। यह सुझाया जा रहा था कि बग़ल से घूमकर बायीं तरफ़ बढ़ा जाये, वायसराय * को बाक़ी सेना से काटकर बन्दी बना लिया जाये।

सैनिक जब तक दीवार को घसीटकर लाये, तब तक विभिन्न दिशाओं में खाना पकाने के लिये अलाव जल चुके थे। लकड़ियां चिटक रही थीं, बर्फ़ पिघल रही थी और उस पूरे विस्तार में, जहां पैरों तले बर्फ़ रौंदी जा चुकी थी, सैनिकों की काली-काली आकृतियां इधर-उधर आ-जा रही थीं।

सभी दिशाओं में कुल्हाड़ों और खांडों से काम लिया जा रहा था। किसी आदेश के बिना सब कुछ अपने आप ही हो रहा था। रात के

---

* म्युराट से अभिप्राय है। – सं०

लिये लकड़ियों के ढेर जमा किये जा रहे थे, अफ़सरों के लिये काम चलाऊ झोंपड़ियां बनायी जा रही थीं, देग़चों में कुछ पकाया जा रहा था, बन्दूक़ों और फ़ौजी साज़-सामान को ठीक-ठाक किया जा रहा था।

आठवीं कम्पनी द्वारा खींचकर लायी गयी दीवार को टेकों का सहारा देकर उत्तर की ओर टिका दिया गया और उसके सामने अलाव जला दिया गया। बिगुल बजाया गया, हाज़िरी ली गयी, भोजन किया गया और सभी सैनिक रात भर के लिये अलावों के इर्द-गिर्द जमा हो गये – कोई अपने जूतों की मरम्मत करने लगा, कोई पाइप सुलगाकर तम्बाकू के कश खींचने लगा और कोई पूरी तरह नंगा होकर भाप द्वारा अपने कपड़ों से जुंएं निकालने लगा।

८

ऐसा प्रतीत हो सकता है कि रूसी सैनिक इस वक़्त जैसी कल्पनातीत कठिन परिस्थितियों में जी रहे थे – उनके पास गर्म बूट, भेड़ की खाल के कोट नहीं थे, सिर छिपाने की जगह नहीं थी, वे १८ डिग्री सेंटीग्रेड की ठण्ड और बर्फ़ में सोते थे, उन्हें पूरी रसद भी नहीं मिलती थी, क्योंकि रसदवाली घोड़ा-गाड़ियां हमेशा वक़्त पर नहीं पहुंच पाती थीं – ऐसा प्रतीत हो सकता है कि वे तो मानो बहुत ही कारुणिक और निराशापूर्ण दृश्य प्रस्तुत करते होंगे।

किन्तु नहीं, बात इसके बिल्कुल उलट थी। सर्वाधिक सुखद भौतिक परिस्थितियों में भी हमारी सेना ने इससे अधिक उल्लासपूर्ण और सजीव झांकी नहीं प्रस्तुत की थी। ऐसा इसलिये हुआ कि हिम्मत हारने और कमज़ोर हो जानेवाले लोग हर दिन ही सेना से अलग होते जाते थे। शारीरिक और नैतिक दुर्बलतावाले कभी के पीछे छूट गये थे तथा मनोबल और शारीरिक शक्ति की दृष्टि से चुने हुए लोग ही बाक़ी रह गये थे।

टट्टर की बाड़ की ओट कर लेनेवाली आठवीं कम्पनी में ही सबसे ज़्यादा सैनिक जमा हो गये थे। दो बड़े सार्जेंट इनके पास आ बैठे और इनका अलाव सबसे ज़्यादा अच्छी तरह से जल रहा था। वे [illegible]

के क़रीब बैठने के अधिकार के बदले में लकड़ी लाने की मांग करते थे।

"अरे माकेयेव, कहां चला गया... कहां मर गया तू? या तुझे भेड़िये निगल गये? लकड़ी तो ला," लाल चेहरे और लाल बालोंवाले एक सैनिक ने चिल्लाकर कहा जो धुएं के कारण अपनी आंखों को सिकोड़ और झपझपा रहा था, मगर आग से दूर नहीं हट रहा था। "अरे कौवे, तू ही जाकर लकड़ी ले आ," इसी सैनिक ने एक अन्य सैनिक को सम्बोधित किया। लाल बालोंवाला यह सैनिक न तो सार्जेंट था और न कारपोरेल, लेकिन हट्टा-कट्टा फ़ौजी था और इसलिये अपने से दुर्बलों पर हुक्म चलाता था। दुबला-पतला, नाटा और तीखी नाकवाला सैनिक, जिसे कौआ कहकर बुलाया जाता था, आज्ञाकारिता से उठा और हुक्म बजा लाने को तैयार हो गया। किन्तु इसी समय अलाव की रोशनी में एक पतला-सा, सुन्दर और जवान सैनिक ढेर सारी लकड़ी उठाकर लाता दिखाई दिया।

"इधर लाओ! अब बात बनी न!"

लकड़ी के टुकड़े किये गये, उन्हें अलाव पर टिकाया गया, सैनिक फूंकें मारने और ओवरकोटों के पल्लुओं से आग को हवा देने लगे और लपट सूं-सूं करने तथा चटचटाने लगी। सैनिक अलाव के क़रीब होकर पाइपों से तम्बाकू के कश खींचने लगे। लकड़ियों का ढेर उठाकर लानेवाले सुन्दर और जवान सैनिक ने कूल्हों पर अपने हाथ टिका लिये और ठिठुरे हुए पांवों को जल्दी-जल्दी और फुरती से एक ही जगह पर मारते हुए मानो नाचने लगा।

"अरे, तले निकल जायेंगे!" लाल बालोंवाले ने यह देखकर कि नाचनेवाले सैनिक के बूट का एक तला हिल-डुल रहा है, चिल्लाकर कहा।

"अरे, तले निकल जायेंगे!" लाल बालोंवाले ने यह देखकर कि नाचनेवाले सैनिक के बूट का एक तला हिल-डुल रहा है, चिल्लाकर कहा।

"ओह, कैसा दीवाना है नाचने का!"

नाचनेवाला सैनिक रुका, उसने हिलने-डुलनेवाला तला अलग किया और उसे आग में फेंक दिया।

"ठीक है तुम्हारी बात, मेरे भाई," उसने कहा और बैठकर अपने फ़ौजी थैले में से नीले रंग की फ़्रांसीसी बनात का एक टुकड़ा निकालकर उसे पांव पर लपेटने लगा। "ठण्ड से एकदम अकड़ गये हैं," आग की ओर पांव फैलाते हुए उसने इतना और कह दिया।

"जल्द ही नये बूट मिल जायेंगे। कहते हैं कि दुश्मनों का पूरी तरह सफ़ाया कर लें तो इसके बाद सभी को बूटों के दो जोड़ों के लिये चमड़ा दिया जायेगा।"

"वह उल्लू का पट्ठा पेत्रोव तो आख़िर पीछे रह ही गया," एक बड़े सार्जेंट ने कहा।

"बहुत समय से मैं उसका ऐसा रंग-ढंग देख रहा था," दूसरा बड़ा सार्जेंट बोला।

"यह भी क्या ख़ाक फ़ौजी हुआ ..."

"सुनने में आया है कि तीसरी कम्पनी में कल नौ आदमी कम हो गये।"

"लेकिन तुम ही बताओ कि जब ठण्ड से पांवों की ऐसी बुरी हालत हो जाये तो आदमी चल ही कैसे सकता है?"

"यह सब बकवास है!" बड़े सार्जेंट ने कहा।

"या फिर तुम ख़ुद भी ऐसा ही करना चाहते हो?" एक बूढ़े सैनिक ने ताना मारते हुए उस सैनिक को सम्बोधित किया जिसने यह कहा था कि ठण्ड से पांवों की इतनी बुरी हालत हो गयी है।

"और तुम क्या समझते हो?" अलाव के पीछे से अचानक उछलकर खड़ा होते हुए तीखी नाकवाला सैनिक, जिसे कौआ कहा जाता था, अचानक चिचियाती और कांपती आवाज़ में चिल्ला उठा। "जो हट्टा-कट्टा है, वह दुबला हो जायेगा और जो दुबला है, उसे मौत आ जायेगी। मिसाल के तौर पर मुझे ही लिया जा सकता है। मेरी ताक़त जवाब दे चुकी है," बड़े सार्जेंट को सम्बोधित करते हुए उसने अचानक दृढ़ता से कहा, "मुझे अस्पताल भेजने को कह दो। मेरे जोड़-जोड़ में दर्द होता है। नहीं तो मैं भी कहीं पीछे रह जाऊंगा ..."

"बस, बस, रहने दो ऐसी बातें," बड़े सार्जेंट ने शान्ति से कहा।

सैनिक चुप हो गया, लेकिन बातचीत जारी रही।

"आज बहुत-से फ़्रांसीसी बन्दी बनाये गये, लेकिन बूट, साफ़ कहना चाहिये, किसी ने भी असली बूट नहीं पहन रखे थे, कहने भर को बूट थे," एक अन्य सैनिक ने नई बातचीत शुरू कर दी।

"कज़्ज़ाकों ने सब पर हाथ साफ़ कर लिया। हम कर्नल के लिये एक झोंपड़ा ठीक-ठाक कर रहे थे, तब वे मुर्दों को उठाकर बाहर ले जा रहे थे। देखकर दया आती थी, भाइयो," नाचने के शौक़ीन

सैनिक ने कहा। "हम उन्हें उलट-पुलट रहे थे, इधर-उधर फेंक रहे थे – तो जानते हो कि अचानक क्या हुआ – उनमें हमें एक ज़िन्दा भी दिखाई दिया, यक़ीन मानना, अपनी बोली में कुछ बक-बक कर रहा था।"

"बहुत ही साफ़-सुथरे लोग हैं," पहले सैनिक ने कहा। "सफ़ेद, भोज-वृक्ष के तने की तरह सफ़ेद-सफ़ेद। उनमें कुछ बहादुर भी हैं, कुलीन भी।"

"और तुमने क्या सोचा था? सभी श्रेणियों के लोग लिये गये हैं उस सेना में।"

"लेकिन हमारी बोली बिल्कुल नहीं समझते," हैरानी भरी मुस्कान के साथ नाचने के शौक़ीन सैनिक ने कहा। "मैंने उससे पूछा – किस बादशाह की प्रजा हो? लेकिन वह अपनी गिटपिट करता रहा। ग़ज़ब के लोग हैं!"

"सबसे ज़्यादा अचम्भे की बात तो यह है," फ़्रांसीसियों के गोरेपन से हैरान होनेवाला कहता गया, "मोजाइस्क के नज़दीक जहां लड़ाइयां हुई थीं, वहां से उनकी लाशें उठानेवाले किसानों ने बताया कि लगभग एक महीने तक वे वहां मरे पड़े रहे थे, उन्होंने बताया कि इनके लोग सफ़ेद काग़ज़ की तरह सफ़ेद, साफ़-सुथरे पड़े थे, उनके बदन से ज़रा भी बू नहीं आती थी।"

"शायद ठण्ड की वजह से?" एक अन्य सैनिक ने प्रश्न किया।

"तुम भी बड़े अक़्लमन्द बनते हो! ठण्ड की वजह से! गर्मी का वक़्त था। अगर ठण्ड होती तो हमारे जवानों की लाशें भी न सड़तीं। उनका कहना था कि जब वे हमारे सैनिकों की लाशों के पास जाते तो उन्हें सड़ी हुई पाते, उनमें कीड़े पड़े होते। किसानों ने बताया कि वे नाकों पर रूमाल बांधते, मुंह फेरते और उन्हें खींचते, उनके लिये बू बर्दाश्त करना मुश्किल होता। लेकिन उनके लोग मानो सफ़ेद काग़ज़ जैसे होते, उनसे ज़रा भी बू नहीं आती थी।"

सब चुप रहे।

"शायद ख़ुराक की वजह से," बड़े सार्जेंट ने कहा, "रईसों का खाना खाते होंगे।"

किसी ने भी आपत्ति नहीं की।

"मोजाइस्क के क़रीब, जहां लड़ाई हुई थी, वहां के उस किसान

ने बताया कि दसियों गांवों से कोई बीस दिनों तक लाशें ढोते रहे, फिर भी पूरी तरह से नहीं ढो पाये। भेड़िये इतने थे, ख़ैर क्या कहा जाये ...''

"वह असली लड़ाई हुई थी," बूढ़े सैनिक ने कहा। "वही याद करने लायक़ है, लेकिन उसके बाद ... यह तो बस दुख भोगनेवाली ही बात है।"

"हां, दादा, ऐसी ही बात है। परसों हमने उन्हें घेर लिया, लेकिन उन्होंने हमें हमला नहीं करने दिया। झटपट हथियार फेंक दिये। घुटने टेक दिये। बोले – माफ़ कीजिये। एक मिसाल देता हूं। सुनने में आया है कि प्लातोव ने ख़ुद नेपोलियन को दो बार बन्दी बनाने की कोशिश की। उसे जादू-टोना करना नहीं आता था। ऐसे लगा कि अभी-अभी हाथ में आ जायेगा, लेकिन वह पंछी की तरह फुर्र से उड़ गया। उसे मारा भी तो नहीं जा सकता।"

"किसेल्योव, देख रहा हूं कि झूठ बोलने के मामले में तुम बड़े उस्ताद हो।"

"झूठ कैसा, बिल्कुल सच है।"

"अगर मेरा बस चलता तो मैं उसे पकड़कर ज़मीन में गाड़ देता तथा उसपर एस्प का डंडा ठोंक देता।* कितने लोगों को उसने मरवा डाला।"

"जल्द ही उसका खेल ख़त्म कर देंगे। फिर कभी यहां नहीं आये-गा," बूढ़े सैनिक ने जम्हाई लेते हुए कहा।

बातचीत बन्द हो गयी। सैनिक सोने की तैयारी करने लगे।

"देखो तो सितारे कैसे चमक रहे हैं! ऐसे लगता है कि औरतों ने आसमान में सफ़ेद चादर फैला दी है," सैनिक ने नभ-गंगा की तरफ़ देखते हुए कहा।

"दोस्तो, यह तो अच्छी फ़सल होने के लक्षण हैं।"

"अलाव के लिये लकड़ी तो और भी लानी पड़ेगी।"

"पीठ गर्माओ तो पेट ठण्डा हो जाता है। कमाल है।"

"हे भगवान!"

---

* लोगों में प्रचलित आख्यानों के अनुसार किसी जादूगर या भूतों-प्रेतों से वास्ता रखनेवाले की क़ब्र पर एस्प के डंडे को ठोंक दिया जाना चाहिये, ताकि मरने के बाद वह लोगों को दुख न दे। – सं०

"धकिया क्यों रहे हो – क्या सिर्फ़ तुम्हारे लिये ही सारी आग है? देखो... कैसे आराम से पसर गये हो।"

ख़ामोशी हो जाने पर सो जानेवाले सैनिकों के खर्राटे सुनायी देने लगे। बाक़ी तन गर्माने के लिये करवटें लेते थे, जब-तब कुछ बातचीत करते थे। कोई एक सौ क़दमों की दूरीवाले अलाव से ऊंचें तथा ख़ुशी भरे ठहाके सुनायी दे रहे थे।

"अरे, पांचवीं कम्पनी में ख़ूब ठहाके लग रहे हैं," एक सैनिक ने कहा। "और लोग भी कितने अधिक हैं वहां!"

एक सैनिक उठकर पांचवीं कम्पनी की तरफ़ चला गया।

"ख़ूब मौज कर रहे हैं," उसने लौटकर कहा। "दो फ़्रेंची वहां आ गये हैं। एक तो ठण्ड से अकड़ा पड़ा है, लेकिन दूसरा बड़ा रंगीला है। गाने गाता है।"

"अच्छा? जाकर देखते हैं..." कुछ सैनिक पांचवीं कम्पनी की ओर चल दिये।

९

पांचवीं कम्पनी जंगल के बिल्कुल क़रीब ही पड़ाव डाले थी। बर्फ़ के बीच जलता हुआ बहुत बड़ा अलाव पाले के बोझ के कारण झुक जानेवाली वृक्षों की टहनियों को रोशन कर रहा था।

आधी रात के वक़्त पांचवीं कम्पनी के सैनिकों को जंगल में बर्फ़ पर किसी के क़दमों की आहट और सूखी टहनियों के चटकने की आवाज़ सुनायी दी।

"साथियो, भालू," एक सैनिक कह उठा। सभी सैनिकों ने सिर ऊपर उठाये, आवाज़ पर कान लगा दिये। अलाव की तेज़ रोशनी में अजीब ढंग के कपड़े पहने और एक-दूसरे को थामे हुए दो व्यक्तियों की आकृतियां जंगल से बाहर आती दिखाई दीं।

ये जंगल में छिपे हुए दो फ़्रांसीसी थे। रूसी सैनिकों की समझ में न आनेवाली भाषा और फटी-फटी आवाज़ में कुछ कहते हुए ये दोनों अलाव के क़रीब आये। इनमें से एक अफ़सरों की टोपी पहने

और लम्बे क़द का था तथा उसकी ताक़त बिल्कुल जवाब दे गयी लगती थी। अलाव के क़रीब आकर उसने बैठना चाहा, लेकिन ज़मीन पर गिर गया। दूसरा, जो नाटा और गोल-मटोल था तथा गालों पर रूमाल बांधे था, ज़्यादा मज़बूत था। उसने अपने साथी को उठाया और अपने मुंह की तरफ़ इशारा करते हुए कुछ कहता रहा। रूसी सैनिकों ने फ़ांसीसियों को घेर लिया, उन्होंने बीमार के नीचे फ़ौजी ओवरकोट बिछा दिया और वे दोनों के लिये दलिया और वोद्का लाये।

अत्यधिक दुर्बल हो गया फ़ांसीसी अफ़सर रामबाल था और चेहरे पर रूमाल लपेटे हुए दूसरा व्यक्ति उसका अर्दली मोरेल था।

मोरेल ने जब वोद्का पी ली और कटोरा भरा हुआ दलिया खा लिया तो वह अचानक अत्यधिक खिल उठा और अपनी बात न समझने-वाले रूसी सैनिकों से लगातार कुछ कहने लगा। रामबाल ने खाने से इन्कार कर दिया और अलाव के क़रीब कोहनी पर सिर टिकाकर वह चुपचाप तथा भावहीन और लाल-लाल आंखों से रूसी सैनिकों की ओर देखता जा रहा था। कभी-कभी वह लम्बी आह भरता, कराहता और फिर से चुप हो जाता। रामबाल के कंधों पर लगे पद-चिह्नों की तरफ़ इशारा करते हुए मोरेल रूसी सैनिकों को यह समझाने की कोशिश कर रहा था कि रामबाल फ़ांसीसी अफ़सर है और उसे गर्माहट की ज़रूरत है। अलाव के क़रीब आनेवाले एक रूसी अफ़सर ने यह मालूम करने के लिये कुछ सैनिकों को कर्नल के पास भेजा कि क्या वह एक फ़ांसीसी अफ़सर को गर्माने के लिये अपने ही झोंपड़े में स्थान दे देगा या नहीं। इन लोगों ने लौटकर यह बताया कि कर्नल ने फ़ांसीसी अफ़सर को लाने का हुक्म दिया है। इन्होंने रामबाल से अपने साथ चलने को कहा। वह उठा, उसने जाना चाहा, किन्तु लड़खड़ा गया और अगर नज़दीक खड़े सैनिक ने उसे सम्भाल न लिया होता तो वह गिर जाता।

"अब फिर कभी तो यहां आने की जुर्रत नहीं करोगे न?" एक सैनिक ने मज़ाक़िया अन्दाज़ में आंख मारकर रामबाल को सम्बोधित करते हुए कहा।

"अरे उल्लू! क्यों ऐसी बकवास कर रहे हो? बिल्कुल देहाती ही रहे," विभिन्न दिशाओं से इस मज़ाक़ करनेवाले सैनिक की भर्त्सना की गयी। रूसी सैनिकों ने रामबाल को घेर लिया, दो सैनिकों ने उसकी

बग़लों में हाथ डालकर उसे उठाया और कर्नल के झोंपड़े की ओर ले चले। रामबाल ने सैनिकों की गर्दनों के गिर्द बांहें डाल दीं और जब वे उसे ले जा रहे थे तो वह दर्द भरी आवाज़ में फ़्रांसीसी में कहता रहा :

"ओह, शाबाश है तुम्हें! ओ, मेरे दयालु, बड़े दयालु मित्रो! ये हैं असली इन्सान! ओ, मेरे दयालु मित्रो!" और उसने बच्चे की तरह एक सैनिक के कंधे पर अपना सिर टिका दिया।

इसी बीच रूसी सैनिकों से घिरा हुआ मोरेल सबसे अच्छी जगह पर बैठ गया था।

सूजी-सूजी और नम आंखोंवाला, नाटा तथा गोल-मटोल मोरेल अपनी फ़ौजी टोपी के ऊपर औरतों की तरह रूमाल बांधे और औरतों का फ़र-कोट पहने था। वह सम्भवतः नशे में था और अपने क़रीब बैठे सैनिक के गले में बांह डालकर फटी-फटी तथा टूटती आवाज़ में एक फ़्रांसीसी गाना गा रहा था। रूसी सैनिक उसे देख-देखकर हंसी से लोट-पोट हो रहे थे।

"अरे, मुझे सिखाओ, मुझे सिखाओ, क्या है यह तुम्हारा गाना? मैं आसानी से सीख जाऊंगा। ज़रा बताओ तो कैसे? .." हंसी-मज़ाक़ करने का शौक़ीन और इस कम्पनी का गवैया रूसी सैनिक, जिसके गले में मोरेल बांह डाले था, कह रहा था।

Vive Henri Quatre,
Vive ce roi vaillant *,

मोरेल आंखें झपकाते हुए गाने लगा।

Ce diable à quatre...

"विवारिक! वीफ़ सेरूवारू! सिदयाब्ल्का..." रूसी सैनिक, जिसका नाम ज़ालेतायेव था, हाथ हिलाकर और वास्तव में ही इस धुन की नक़ल करते हुए दोहराने लगा।

"बहुत बढ़िया! हो-हो-हो-हो! .." विभिन्न दिशाओं से रूसी सैनिकों का फूहड़-सा और ख़ुशी भरा ठहाका सुनायी दिया। मोरेल

* ज़िन्दाबाद हेनरी चतुर्थ! ज़िन्दाबाद यह बहादुर बादशाह! (फ़्रांसीसी गाना)

भी नाक-भौंह सिकोड़कर हंस रहा था।

"तो आगे गाओ, आगे गाओ!"

> Qui eut le triple talent,
> De boire, de battre,
> Et d'être un vert galant...*

"यह भी अच्छा लग रहा है। हां, अब तुम इसे दोहराओ, ज़ालेतायेव! .."

"क्यू..." ज़ालेतायेव बड़ी मुश्किल से फ़्रांसीसी गाने के शब्द दोहराने लगा। "क्यू... यू-यू..." बड़े यत्न से होंठों को मोड़ते हुए वह गा रहा था, "लेत्रीप्ताला, दे बू दे बा इ देत्रावागाला," उसने गाना आगे बढ़ाया।

"बहुत बढ़िया! बिल्कुल फ़्रांसीसी की तरह! ओह-हो-हो-हो-हो! – अरे फ़्रांसीसी, तुम कुछ और खाना चाहते हो क्या?"

"इसे कुछ दलिया और ला दो। देर तक भूखे रहनेवाले आदमी का जल्दी से पेट नहीं भरता।"

उसे फिर से दलिया दिया गया और मोरेल ज़रा हंसकर तीसरे कटोरे पर हाथ साफ़ करने लगा। मोरेल को देखनेवाले सभी जवान रूसी सैनिकों के चेहरों पर ख़ुशी भरी मुस्कान नज़र आ रही थी। बूढ़े सैनिक, जो ऐसी व्यर्थ की बातों में दिलचस्पी लेना अपनी शान के ख़िलाफ़ मानते थे, अलाव के दूसरी ओर लेटे हुए थे। किन्तु वे भी कभी-कभी कोहनी के सहारे ज़रा ऊपर को उठकर मोरेल पर नज़र डालते और मुस्करा देते।

"ये भी इन्सान हैं," एक बुज़ुर्ग ने बड़े ओवरकोट को अपने गिर्द लपेटते हुए कहा। "जंगली घास की भी जड़ होती है, वह उसी के सहारे उगती है।"

"ओह! हे भगवान, हे भगवान! सितारों का तो कोई अन्त नहीं! यह इस बात की निशानी है कि ख़ूब ज़ोर का पाला पड़ेगा..." और ख़ामोशी छा गयी।

---

* तुम थे तीन गुणोंवाले
बड़े पियक्कड़, बड़े सूरमा
बहुत दयालु, दिलवाले ... सं०

सितारे मानो यह जानते हुए कि अब कोई भी उन्हें नहीं देखेगा, काले आकाश में खिलवाड़-सा करने लगे। वे कभी ज़ोर से चमकते, कभी मन्द होते और कभी सिहरते-झिलमिलाते हुए बड़े यत्न से एक-दूसरे के कान में किसी प्रसन्नतापूर्ण, किन्तु रहस्यमयी बात के बारे में कानाफूसी करते।

१०

फ़ांसीसी सेनायें एक नियमित क्रम से नष्ट होती जा रही थीं। बेरेज़िना नदी का पारगमन, जिसके बारे में इतना अधिक लिखा गया है, वह इस युद्ध की निर्णायक घटना नहीं, बल्कि फ़ांसीसी सेना के नाश की एक बीच की कड़ी मात्र था। यदि बेरेज़िना के बारे में इतना अधिक लिखा गया है और लिखा जा रहा है तो फ़ांसीसियों की ओर से केवल इसलिये ऐसा हुआ है कि फ़ांसीसी सेना, जो पहले एक क्रमबद्ध ढंग से नष्ट हो रही थी, बेरेज़िना के पुल के टूटने पर उसकी तबाही अचानक एक भयानक त्रासदी के दृश्य में बदल गयी और सभी के स्मृति-पट पर अंकित होकर रह गयी। रूसियों की ओर से इसकी केवल इसलिये इतनी अधिक चर्चा की गयी है और इसके बारे में इस कारण इतना अधिक लिखा गया है कि युद्ध-क्षेत्र से बहुत दूर, पीटर्सबर्ग में बेरेज़िना नदी पर नेपोलियन को एक रणनीतिक फंदे में फांसने की योजना तैयार की गयी थी (प्फ़ुल ही इस योजना का रचयिता था)। सभी को इस बात का विश्वास था कि सब कुछ वैसे ही होगा जैसे कि योजना में इंगित किया गया था और इसी कारण इस बात की रट लगाते थे कि बेरेज़िना का पारगमन ही फ़ांसीसियों के लिये घातक सिद्ध हुआ। किन्तु वास्तव में बेरेज़िना का पारगमन तोपों और बन्दियों की दृष्टि से क्रास्नोये की तुलना में कहीं कम घातक रहा था, जैसाकि आंकड़े ज़ाहिर करते हैं।

बेरेज़िना के पारगमन का एकमात्र महत्त्व इसी बात में निहित है कि इसने निश्चित रूप से तथा किसी सन्देह के बिना फ़ांसीसी सेना का रास्ता काटने की सारी योजनाओं को झूठा और उस एकमात्र सम्भव कार्य-ढंग को सही सिद्ध कर दिया जिसकी कुतूज़ोव तथा सारी सेनायें

मांग करती थीं अर्थात् केवल यही कि शत्रु का लगातार पीछा किया जाये। फ़्रांसीसियों की भीड़ निरन्तर बढ़ती गति से भागती जा रही थी और उसकी सारी शक्ति अपने लक्ष्य की प्राप्ति पर ही संकेन्द्रित थी। वह घायल जानवर की तरह भागती जा रही थी और उसके लिये रास्ते में रुकना सम्भव नहीं था। इस तथ्य को पारगमन के प्रबन्ध की तुलना में उस स्थिति ने कहीं अधिक अच्छी तरह से स्पष्ट कर दिया जो पुलों पर हुई। जब पुलों को तोड़ दिया गया तो निहत्थे सैनिक, मास्कोवासी तथा फ़्रांसीसियों की घोड़ा-गाड़ियों में सवार नारियां और बच्चे अपनी सुध-बुध खोकर नावों की ओर आगे भागे या बर्फ़ीले पानी में कूद गये।

उनका ऐसा करना समझदारी का काम था। भागनेवालों और उनका पीछा करनेवालों – दोनों की हालत समान रूप से बुरी थी। अपनों के साथ रहने पर मुसीबत के वक़्त हर कोई अपने साथी से कुछ मदद पाने की उम्मीद कर सकता था, उसे इस बात का भरोसा रह सकता था कि उनके बीच उसकी अपनी एक निश्चित जगह है। रूसियों की अधीनता स्वीकार कर लेने पर उसकी स्थिति तो पहले की तरह बुरी ही रहती थी, किन्तु जीवन की आवश्यकताओं की पूर्त्ति की दृष्टि से उसकी हालत और भी ज़्यादा ख़राब हो जाती थी। फ़्रांसीसियों के लिये इस बात की विश्वसनीय सूचना पाने में कोई तुक नहीं थी कि आधे बन्दी, जिनके सम्बन्ध में रूसी नहीं जानते थे कि उनका क्या करें, उन्हें बचाने की रूसियों की इच्छा के बावजूद ठण्ड और भूख के कारण मर रहे थे। वे अनुभव करते थे कि इसके सिवा कुछ हो ही नहीं सकता था। अधिकतम दयाभाव रखनेवाले तथा फ़्रांसीसियों के प्रशंसक रूसी सेना-संचालक तथा रूसी सेना में काम करनेवाले फ़्रांसीसी भी बन्दियों के लिये कुछ नहीं कर सकते थे। रूसी सेना की अपनी बुरी स्थिति के कारण ही फ़्रांसीसी नष्ट हो रहे थे। भूखे और ऐसे रूसी सैनिकों से, जिनकी हमें ज़रूरत थी, रोटी और कपड़े छीनकर उन फ़्रांसीसियों को नहीं दिये जा सकते थे जो बेशक किसी प्रकार की भी हानि पहुंचानेवाले न हों, जिनसे कोई भी घृणा न करता हो और जो किसी तरह भी दोषी न हों, किन्तु जिनकी हमें ज़रूरत नहीं थी। कुछ रूसियों ने फ़्रांसीसी बन्दियों के लिये ऐसा भी किया, किन्तु ये तो अपवाद ही थे।

फ़्रांसीसियों के लिये पीछे रह जाना तो निश्चित रूप में अपने को नष्ट करना था, मगर आगे बढ़ना आशाजनक था। उनकी लुटिया डूब चुकी थी और सम्मिलित रूप से आगे भागते जाने के सिवा उनके बचाव का और कोई रास्ता नहीं था तथा सम्मिलित रूप में भागते जाने पर ही उनकी सारी शक्ति केन्द्रित थी।

फ़्रांसीसी जितना अधिक आगे भागते जा रहे थे, उनके लोगों की हालत उतनी ही अधिक दयनीय होती जा रही थी, ख़ास तौर पर बेरेज़िना के बाद। कारण कि पीटर्सबर्ग की योजना के अनुसार इस स्थान के साथ बड़ी उम्मीदें लगायी गयी थीं और उनके पूरी न होने पर रूसी सेना-संचालकों में आपसी झगड़ा बढ़ता जा रहा था। वे एक-दूसरे को, तथा विशेषतः कुतूज़ोव को सबसे अधिक दोष देते थे। ये मानते हुए कि बेरेज़िना से सम्बन्धित पीटर्सबर्ग की योजना की असफलता के लिये कुतूज़ोव को ही दोषी ठहराया जायेगा, उनके प्रति असन्तोष, तिरस्कार और उपहास-भावना को अधिकाधिक ज़ोर से व्यक्त किया जाता था। ज़ाहिर है कि उपहास और तिरस्कार की इस अभिव्यक्ति को आदरपूर्ण और ऐसा रूप दिया जाता था कि कुतूज़ोव यह तक नहीं पूछ सकते थे कि उन्हें किस कारण तथा किस चीज़ के लिये दोषी ठहराया जा रहा है। उनके प्रति गम्भीरता का रवैया नहीं अपनाया जाता था, उनके सामने रिपोर्टें पेश की जाती थीं और उनकी अनुमति ली जाती थी, अप्रिय कर्त्तव्यपूर्त्ति का नाटक खेला जाता था, किन्तु उनकी पीठ के पीछे आंखों से इशारे किये जाते थे और हर क़दम पर उनकी आंखों में धूल झोंकने की कोशिश की जाती थी।

चूंकि ये सभी लोग कुतूज़ोव को समझ पाने में असमर्थ थे, इसलिये इन सभी ने ऐसा मान लिया था कि बूढ़े के साथ बात करने में कोई तुक नहीं, कि वह कभी भी उनकी योजनाओं की गहराई को नहीं समझ पायेंगे और "स्वर्ण-सेतु" तथा इस बारे में अपने वाक्यों के रूप में (उन्हें लगता था कि ये केवल वाक्य ही थे) उत्तर देंगे कि आवारों की भीड़ के साथ विदेश जाना उचित नहीं, आदि, आदि। वे कुतूज़ोव के मुंह से यह सब कुछ सुन चुके थे। कुतूज़ोव जो कुछ कहते थे, वह सभी कुछ, उदाहरणतः यह कि रसद के आ जाने की प्रतीक्षा करनी चाहिये, कि सैनिक बूटों के बिना हैं, यह सभी कुछ इतना सीधा-सादा था और जो कुछ वे ख़ुद प्रस्तावित करते थे, वह इतना ज़्यादा

पेचीदा और समझदारी से भरपूर था कि उनके लिये यह सर्वथा स्पष्ट था कि कुतूज़ोव बुड्ढ़ और बूढ़े खूसट हैं, जबकि वे स्वयं बड़े प्रतिभाशाली सेना-संचालक हैं, किन्तु उनके हाथ में सत्ता नहीं है।

बहुत ही बढ़िया नौ-सेनापति चिचागोव और पीटर्सबर्ग के हीरो विटगेन्स्टेन की सेनाओं के एक दूसरी से जा मिलने के बाद इस तरह का मूड और स्टॉफ़ में होनेवाली निन्दा-चुग़ली अपने चरम-बिन्दु पर पहुंच गयी। कुतूज़ोव की नज़र से यह छिपा न रहा और वह आहें भरते हुए केवल कंधे झटक देते थे। बेरेज़िना के मामले के बाद केवल एक बार ही ऐसा हुआ कि वह आपे से बाहर हो गये और उन्होंने बेनिगसेन को, जो सम्राट को अलग से रिपोर्टें भेजता था, यह नोट लिख भेजा :

"आपकी बीमारी के दौरों को ध्यान में रखते हुए मैं यह नोट मिलते ही आप हुज़ूर से कालूगा चले जाने का अनुरोध करता हूं और वहीं आप सम्राट के भावी आदेश तथा नियुक्ति की प्रतीक्षा करें।"

किन्तु सेना से बेनिगसेन की इस तरह छुट्टी कर देने के कुछ ही समय बाद बड़ा ड्यूक कोन्स्तान्तिन पाव्लोविच सेना में आ गया जिसने युद्ध के आरम्भ में सेना में भाग लिया था और जिसे बाद में कुतूज़ोव ने सेना से अलग कर दिया था। बड़े ड्यूक ने अब सेना में आते ही कुतूज़ोव को सूचित किया कि हमारी सेना की बहुत कम सफलता और हमारी आगे बढ़ने की बहुत ही धीमी गति के कारण सम्राट अप्रसन्न हैं। कुछ दिनों बाद सम्राट स्वयं सेना में आने का इरादा रखते थे।

बुज़ुर्ग कुतूज़ोव, जो दरबारी मामलों में भी उतने ही अनुभवी थे जितने फ़ौजी मामलों में, जो उसी वर्ष के अगस्त महीने में सम्राट की इच्छा के विरुद्ध सेनापति चुने गये थे, जिन्होंने सिंहासन के भावी उत्तराधिकारी बड़े ड्यूक को सेना से अलग कर दिया था तथा सम्राट की इच्छा के ख़िलाफ़ अपने ही सत्ताधिकार का उपयोग करते हुए मास्को को छोड़ने का हुक्म जारी कर दिया था, वही कुतूज़ोव फ़ौरन यह समझ गये कि उनका ज़माना ख़त्म हो चुका है, कि उनकी भूमिका अदा हो चुकी है और वह झूठी सत्ता, जो अब तक उनके हाथ में थी, अब उनके पास नहीं रही थी। उन्होंने यह चीज़ केवल दरबार के रवैये से ही नहीं समझी। एक ओर तो उन्होंने यह देखा कि युद्ध, जिसमें उन्होंने अपनी भूमिका निभायी थी, ख़त्म हो गया था और

अनुभव किया कि उनका काम पूरा हो चुका था। दूसरी ओर, इसी समय वह अपने बुढ़ापे के शरीर में शारीरिक थकान तथा विश्राम की आवश्यकता अनुभव करने लगे थे।

कुतूज़ोव ने २९ नवम्बर को वील्ना में, उनके शब्दों में अपने प्यारे वील्ना में प्रवेश किया। अपनी नौकरी के दौरान वह दो बार वील्ना के फ़ौजी गवर्नर रह चुके थे। युद्ध के प्रभाव से बच जानेवाले सही-सलामत और समृद्ध वील्ना में उन्हें न केवल जीवन की सुख-सुविधायें ही मिलीं, जिनसे वह बहुत समय से वंचित रहे थे, बल्कि पुराने मित्र भी मिल गये और पुरानी यादें भी सजीव हो उठीं। और जिस हद तक उनके इर्द-गिर्द उमड़ने-घुमड़नेवाले भावावेशों के तूफ़ानों ने ऐसा करना सम्भव बनाया, वह अचानक सभी सैनिक और राजकीय चिन्ताओं से मुंह मोड़कर शान्त ढंग से सामान्य जीवन बिताने लगे मानो इस समय जो कुछ हो रहा था तथा इतिहास की दृष्टि से महत्त्व रखनेवाली जो बातें आगे हो सकती थीं, उनसे उनका कोई वास्ता ही नहीं था।

शत्रु-सेना के रास्ते काटने और कुचल डालने के मामले में एक सर्वाधिक उत्साही व्यक्ति चिचागोव, जिसने शुरू में यूनान में तथा फिर वारसा में तोड़-फोड़ की कार्रवाई करनी चाही, किन्तु किसी तरह भी वहां नहीं जाना चाहा जहां उसे भेजा गया, जो सम्राट के साथ बड़ी दबंगता से बातचीत करने के लिये मशहूर था और कुतूज़ोव को इसलिये अपने प्रति कृतज्ञ मानता था कि कुतूज़ोव की अवहेलना करते हुए जब सन् १८११ में उसे तुर्की के साथ शान्ति-सन्धि करने को भेजा गया था तथा वहां पहुंचने पर यह यक़ीन हो जाने के बाद कि शान्ति-सन्धि हो चुकी है, उसने सम्राट के सामने खुलकर यह स्वीकार किया था कि इसका श्रेय कुतूज़ोव को है, इसी चिचागोव ने दुर्ग के पास, जहां कुतूज़ोव को ठहरना था, वील्ना में सबसे पहले उनका स्वागत किया। नौसेना की वर्दी पहने, कटार लटकाये और अपनी फ़ौजी टोपी को बग़ल में दबाये चिचागोव ने कुतूज़ोव के सामने रिपोर्ट पेश की और उन्हें शहर की चाबी दी। कुतूज़ोव को किन-किन बातों के लिये दोषी ठहराया जा रहा था, यह जाननेवाले चिचागोव ने अपने पूरे आचार-व्यवहार में एक बूढ़े और सठियाये हुए व्यक्ति के प्रति जवान लोगों के तिरस्कार और आदरपूर्ण रवैये को अभिव्यक्त किया।

चिचागोव के साथ बातचीत के दौरान कुतूज़ोव ने योंही प्रसंगवश उससे यह भी कह दिया कि चीनी के बर्तनों से लदी हुई जो घोड़ा-गाड़ियां बोरीसोव में* उससे छीन ली गयी थीं, वे सही-सलामत हैं और उसे लौटा दी जायेंगी।

"आप मुझसे यह कहना चाहते हैं कि मेरे पास खाने-पीने के लिये बर्तन नहीं हैं। इसके उलट, अगर आप दावतें वग़ैरह भी करना चाहें तो मैं हर तरह का इन्तज़ाम कर सकता हूं," चिचागोव भड़ककर फ़्रांसीसी में कह उठा। उसने अपने हर शब्द से यह प्रमाणित करने की कोशिश की कि जो कुछ वह कह रहा है, वह बिल्कुल सही है और उसका विचार था कि कुतूज़ोव भी ऐसी ही भावना से अनुप्राणित हैं। कुतूज़ोव के होंठों पर सूक्ष्म, हृदय की थाह लेती मुस्कान आ गयी और उन्होंने कंधे झटकते हुए फ़्रांसीसी में ही जवाब दिया:

"मैं जो कुछ कह रहा हूं, मेरा तो वही आशय है।"

सम्राट की इच्छा के विरुद्ध कुतूज़ोव ने सेना के बहुत बड़े भाग को वील्ना में ही रोक लिया। कुतूज़ोव के निकटवर्ती लोगों के कथनानुसार इस बार के वील्नावास के समय उनका असाधारण रूप से पतन हो गया था और शारीरिक दृष्टि से बहुत दुर्बल हो गये थे। वह मन मारकर सेना के मामलों में दिलचस्पी लेते थे, उन्होंने सभी काम अपने जनरलों को सौंपा दिये और सम्राट की प्रतीक्षा करते हुए व्यभिचार का जीवन बिताते थे।

अपने अमले – काउंट तोलस्तोय, प्रिंस वोल्कोन्स्की, अराकचेयेव तथा अन्य लोगों के साथ सम्राट ७ दिसम्बर को पीटर्सबर्ग से रवाना होकर ११ दिसम्बर को वील्ना पहुंचे और अपनी सफ़री स्लेज में सीधे दुर्ग आ गये। बेहद ठण्ड और पाले के बावजूद परेड की पूरी वर्दी पहने कोई एक सौ जनरल तथा स्टॉफ़-अफ़सर और सेम्योनोव्स्की रेजिमेंट का एक सैनिक-दल सलामी देने के लिये दुर्ग के बाहर खड़ा था।

सम्राट के आगमन की सूचना देनेवाला सन्देशवाहक पसीने से तर तीन घोड़ों की गाड़ी को तेज़ी से दौड़ाता हुआ दुर्ग के पास आया और उसने चिल्लाकर घोषणा की – "पधार रहे हैं!" एक छोटे-से

* बोरीसोव – बेलोरूस का एक शहर। – सं०

घर में प्रतीक्षा कर रहे कुतूज़ोव को सूचित करने के लिये कोनोव्नीत्सिन उस घर की ड्योढ़ी की ओर भागकर गया।

एक मिनट बाद परेड की पूरी वर्दी पहने, पूरे वक्ष पर पदक-तमग़े लगाये और तोंद को पटके से कसे हुए वृद्ध कुतूज़ोव झूमती-झामती चाल से पोर्च में आये। उन्होंने तिकोनी फ़ौजी टोपी, जिसका चौड़ा भाग सामने की ओर था, ओढ़ ली, हाथों में दस्ताने ले लिये और बड़ी मुश्किल से तथा एक ओर को झुकते हुए सीढ़ियों से नीचे उतरे और वह रिपोर्ट हाथ में ले ली जो उन्होंने सम्राट के सामने पेश करने को तैयार की थी।

दौड़-धूप, खुसर-फुसर, बहुत ही तेज़ रफ़्तार से तीन घोड़ोंवाली एक अन्य गाड़ी का आगमन और इसके बाद सबकी नज़रें फर्राटे से आनेवाली उस स्लेज पर जम गयीं जिसमें सम्राट तथा वोल्कोन्स्की की झलक मिल रही थी।

पचास वर्ष की आदत के मुताबिक़ इस सब का बूढ़े जनरल के शरीर पर उत्तेजनापूर्ण प्रभाव पड़ा। उन्होंने विह्वल होते हुए झटपट अपनी वर्दी और टोपी को ठीक-ठाक किया और उसी क्षण, जब सम्राट ने स्लेज से बाहर आकर उनकी ओर दृष्टि उठाई, उत्साहपूर्वक अपने को सीधा करके रिपोर्ट पेश की और अपने नपे-तुले तथा ख़ुशामदी अन्दाज़ में बोलने लगे।

सम्राट ने कुतूज़ोव पर सिर से पांव तक एक उड़ती-सी नज़र डाली, क्षणभर को त्योरी चढ़ायी, किन्तु उसी क्षण अपने पर क़ाबू पाते हुए वह कुतूज़ोव के निकट गये और बांहें फैलाकर उन्होंने बूढ़े जनरल का आलिंगन किया। एक बार फिर उनकी अत्यधिक संवेदन-शीलता ने, जो हमेशा उनकी चिरसंगिनी बनी रही थी, अपना रंग दिखाया और इस आलिंगन ने किसी स्मृति को सजीव करते हुए उनपर सदा जैसा प्रभाव डाला – वह सिसक उठे।

सम्राट ने फ़ौजी अफ़सरों और सेम्योनोव्स्की रेजिमेंट के सलामी देनेवाले दस्ते का अभिवादन किया और बुज़ुर्ग कुतूज़ोव से एक बार फिर स्नेहपूर्वक हाथ मिलाकर उनके साथ दुर्ग में गये।

फ़ील्ड-मार्शल के साथ एकान्त में रह जाने पर सम्राट ने धीमी गति से शत्रु का पीछा करने और क्रास्नोये तथा बेरेज़िना की लड़ाइयों के समय की गयी भूलों के बारे में अपनी अप्रसन्नता प्रकट की तथा

विदेश में भावी अभियान के बारे में उन्हें अपने इरादे से सूचित किया। कुतूज़ोव ने न तो कोई आपत्ति और न टिप्पणी की। उनके चेहरे पर वही आज्ञाकारिता और भावशून्यता अंकित हो गयी थी जो सात साल पहले आउस्टेरलिट्ज़ के युद्ध-क्षेत्र में सम्राट के आदेश सुनते समय उनके चेहरे पर झलक उठी थी।

कुतूज़ोव जिस समय अपनी बोझल और डोलती-डगमगाती चाल से सम्राट के कक्ष से बाहर निकले और सिर झुकाये हुए हॉल को लांघने लगे तो किसी की आवाज़ ने उन्हें रोक लिया।

"महामान्य जी," किसी ने पुकारा।

कुतूज़ोव ने सिर ऊपर उठाया और देर तक काउंट तोलस्तोय की आंखों में झांकते रहे जो चांदी की तश्तरी में कोई छोटी-सी चीज़ लिये उनके सामने खड़ा था। कुतूज़ोव तो मानो यह नहीं समझ पा रहे थे कि उनसे किस बात की अपेक्षा की जा रही है।

वह अचानक मानो सम्भले – उनके फूले-फूले चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान दिखाई दी और उन्होंने अत्यधिक आदरपूर्वक नीचे झुककर तश्तरी में रखी चीज़ को उठा लिया। यह प्रथम श्रेणी का सेंट जार्ज का पदक था।

११

अगले दिन फ़ील्ड-मार्शल कुतूज़ोव ने डिनर और बॉल-नृत्य का आयोजन किया। सम्राट ने इस आयोजन में भाग लेकर इसकी शोभा बढ़ाई। कुतूज़ोव को प्रथम श्रेणी का सेंट जार्ज पदक भेंट किया जा चुका था, सम्राट ने उन्हें उच्चतम सम्मान प्रदान किया था। किन्तु सम्राट फ़ील्ड-मार्शल से अप्रसन्न थे, यह बात सभी को मालूम थी। शिष्टता और मर्यादा का पालन किया गया था तथा सम्राट ने ही इसका उदाहरण प्रस्तुत करने के मामले में पहल की थी। लेकिन सभी यह जानते थे कि बुज़ुर्ग कुतूज़ोव दोषी हैं और उन्होंने अपनी असमर्थता-अयोग्यता प्रकट कर दी है। बॉल-नृत्य के हॉल में सम्राट के प्रवेश करने पर जब महारानी येकतेरीना के ज़माने की परम्परा के अनुसार कुतूज़ोव

ने शत्रु से छीने गये झण्डों को उनके क़दमों पर झुकाने का आदेश दिया तो सम्राट ने बुरा-सा मुंह बनाते हुए त्योरी चढ़ाई और बुदबुदाकर कुछ शब्द कहे। निकट खड़े लोगों ने उन्हें मानो "बूढ़ा ममखरा" कहते सुना।

वील्ना में कुतूज़ोव के विरुद्ध सम्राट की नाराज़गी इस कारण ख़ास तौर पर बढ़ गयी कि कुतूज़ोव भावी युद्धाभियान के महत्त्व को सम्भवतः समझना नहीं चाहते थे या समझने में असमर्थ थे।

अगली सुबह को सम्राट ने अपने यहां एकत्रित फ़ौजी अफ़सरों से जब यह कहा कि "आपने केवल रूस ही नहीं, यूरोप को भी बचा लिया" – तो उसी वक़्त यह बात सब की समझ में आ गयी कि युद्ध समाप्त नहीं हुआ।

केवल कुतूज़ोव ही यह नहीं समझना चाहते थे और दो टूक अपना यह मत प्रकट करते थे कि नया युद्ध रूस की स्थिति और कीर्ति में चार चांद नहीं लगा सकता, बल्कि उसकी स्थिति को ख़राब ही कर सकता है तथा कीर्ति के उस शिखर से उसे नीचे ही ला सकता है जिसपर, उनके मतानुसार, रूस इस समय पहुंचा हुआ था। उन्होंने सम्राट को यह स्पष्ट करने की कोशिश की कि नयी सेनायें भरती करना सम्भव नहीं, कि लोग बहुत दुख-दर्द सह रहे हैं और यह कि अभियान असफल हो सकता है, आदि, आदि।

फ़ील्ड-मार्शल के ऐसे मूड के कारण उन्हें स्वभावतः भावी युद्ध के मार्ग में केवल बाधा और रुकावट ही माना जाता था।

बुज़ुर्ग कुतूज़ोव के साथ सीधे टकराव से बचने का एक आसान रास्ता यही था कि आउस्टेरलिट्ज़ की लड़ाई के समय तथा युद्ध के आरम्भ में बार्कले के साथ जिस नीति से काम लिया गया था, उसी को अब दोहराया जाये यानी सेनापति को परेशान किये बिना और बताये बिना सैनिक सत्ता के उस आधार को उनके पांवों के नीचे से हटा लिया जाये जिसपर वह खड़े थे और उसे सम्राट को सौंप दिया जाये।

इसी उद्देश्य से कुतूज़ोव के मुख्य सैनिक कार्यालय को धीरे-धीरे पुनर्गठित किया गया, उसकी सारी शक्ति नष्ट करके उसे सम्राट के अधीन कर दिया गया। टोल, कोनोव्नीत्सिन और येर्मोलोव को नये पद दे दिये गये। सभी लोग ज़ोर-ज़ोर से यह कहते थे कि फ़ील्ड-मार्शल

बहुत कमज़ोर हो गये हैं और उनकी सेहत बहुत ख़राब हो गयी है।

कुतूज़ोव की सेहत का इसलिये बुरा होना ज़रूरी था कि कोई दूसरा आदमी उनकी जगह ले सके। और उनकी सेहत वास्तव में ही ख़राब थी।

जिस प्रकार कुतूज़ोव बहुत स्वाभाविक, सीधे-सादे और क्रमिक ढंग से तुर्की से पीटर्सबर्ग के वित्तीय विभाग में जन-सेना की भरती करने आये और बाद में, जब उनकी ज़रूरत महसूस हुई, वह सेनापति बनाये गये, ठीक इसी प्रकार उनकी भूमिका समाप्त हो जाने पर स्वाभाविक, सीधे-सादे तथा क्रमिक ढंग से एक नये कार्यकर्त्ता ने, जिसकी अब आवश्यकता थी, उनका स्थान ले लिया।

१८१२ के युद्ध को उस राष्ट्रीय महत्त्व के अतिरिक्त, जो प्रत्येक रूसी हृदय को प्रिय था, एक अन्य, यूरोपीय महत्त्व ग्रहण करना था।

लोगों के पश्चिम से पूरब की ओर आने के बाद अब उन्हें पूरब से पश्चिम की ओर जाना था और इस नये युद्ध के लिये एक ऐसे नये नायक की आवश्यकता थी जिसमें कुतूज़ोव से भिन्न गुण और दृष्टिकोण हों तथा जो दूसरी ही प्रेरणाओं से अनुप्राणित हो।

सम्राट अलेक्सान्द्र प्रथम लोगों के पूरब से पश्चिम की ओर जाने तथा राष्ट्रों की सीमाओं की पुनर्स्थापना के लिये उतने ही आवश्यक थे जितने रूस की रक्षा और कीर्ति के लिये कुतूज़ोव।

यूरोप, उसके शक्ति-सन्तुलन और नेपोलियन का क्या महत्त्व है, कुतूज़ोव इसे समझने में सर्वथा असमर्थ थे। यह समझना उनके बस की बात नहीं थी। शत्रु के नाश, रूस की मुक्ति और उसके कीर्ति-शिखर पर पहुंचने के बाद रूसी जनता के प्रतिनिधि और रूसी होने के नाते एक रूसी व्यक्ति के लिये अब और कुछ भी करने को बाक़ी नहीं रहा था। लोक-युद्ध के प्रतिनिधि के लिये मरने के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहा था। और कुतूज़ोव मर गये।

१२

जैसाकि आम तौर पर होता है, प्येर ने युद्ध-बन्दी के रूप में अनुभूत शारीरिक अभावों और तनावों का पूरा बुरा असर इन अभावों

तथा तनावों के ख़त्म हो जाने के बाद ही महसूस किया। मुक्त होने के पश्चात वह ओर्योल नगर आ गया और यहां आने के तीसरे दिन, उस समय जब वह कीयेव जाने की तैयारी कर रहा था, बीमार पड़ गया और तीन महीने तक ओर्योल में बिस्तर पर ही रहा। डाक्टरों के कथनानुसार उसे "जिगर का बुख़ार" हो गया था। इस चीज़ के बावजूद कि डाक्टर उसका इलाज करते थे, ख़ून निकालते थे और पीने को दवाइयां देते थे, वह स्वस्थ हो गया।

प्येर के मुक्त होने और बीमार पड़ने तक उसके साथ जो कुछ हुआ, उसने उसके मन पर कोई छाप नहीं छोड़ी। उसे केवल उदास, धुंधला-धूसर, कभी बारिश तो कभी हिमपातवाला मौसम, आन्तरिक शारीरिक पीड़ा, पांवों और बग़ल में दर्द, दुख-मुसीबतों तथा लोगों की व्यथा-वेदनाओं की सामान्य अनुभूति, लगातार पूछ-ताछ करने-वाले फ़ौजी अफ़सरों तथा जनरलों की परेशानकुन कुरेद, अपने लिये बग्घी और घोड़े ढूंढ़ पाने की दौड़-धूप तथा मुख्यतः तो इस बात की याद रह गयी कि उस समय वह कुछ भी सोचने-समझने और अनुभव करने में असमर्थ था। अपने मुक्त होने के दिन उसने पेत्या रोस्तोव का शव देखा। उसी दिन उसे यह पता चला कि प्रिंस अन्द्रेई बोरोदिनो की लड़ाई के बाद एक महीने से अधिक समय तक ज़िन्दा रहा और कुछ ही दिन पहले यारोस्लाव्ल नगर में रोस्तोवों के यहां उसका देहान्त हुआ था। इसी दिन, जब देनीसोव ने प्येर को प्रिंस अन्द्रेई के बारे में समाचार दिया और यह मानते हुए कि प्येर को बहुत पहले से ऐसा मालूम होगा, बातों ही बातों में हेलेन की मृत्यु का भी उल्लेख कर दिया। उस समय प्येर को यह सभी कुछ बहुत अजीब-सा लगा था। उसने अनुभव किया था कि वह इन सभी समाचारों का महत्त्व नहीं समझ सकता। उस समय तो उसने जल्दी से जल्दी इन जगहों से, जहां लोग एक-दूसरे को मार-काट रहे थे, किसी ऐसे स्थान पर जाना चाहा था जहां उसे पनाह और चैन मिले, जहां वह आराम कर सके और इस वक़्त के दौरान उसे जो भी अजीब तथा नयी बातें मालूम हुई थीं, उनपर सोच-विचार कर सके। किन्तु ओर्योल नगर पहुंचते ही वह बीमार पड़ गया। बीमारी के बाद होश-हवास ठिकाने आने पर उसने मास्को से आये अपने दो नौकरों – तेरेन्ती तथा वास्का – और सबसे बड़ी प्रिंसेस को, जो येलेत्स में उसकी जागीर पर रह रही

थी तथा उसकी मुक्ति और बीमारी की ख़बर पाकर टहल-सेवा करने के लिये यहां आयी थी, अपने पास पाया।

स्वस्थ होने के दौरान प्येर बहुत धीरे-धीरे ही आदत बन जानेवाली पिछले महीनों की अनुभूतियों से मुक्ति पा सका और इस चीज़ का अभ्यस्त होने लगा था कि अगले दिन कोई उसे कहीं भी नहीं खदेड़ेगा, कि गर्म-गर्म बिस्तर को कोई उससे नहीं छीनेगा और यह कि उसे सुबह का नाश्ता, दोपहर तथा शाम का खाना अवश्य मिल जायेगा। किन्तु सपनों में वह अपने को बहुत समय तक बन्दी-जीवन की परिस्थितियों में ही देखता रहा। इसी प्रकार उन समाचारों को भी, जो उसे मुक्त होने के बाद मिले, जैसे कि अन्द्रेई और पत्नी का देहान्त तथा फ़ांसीसियों का नाश – वह धीरे-धीरे ही समझ पाया।

प्येर के स्वस्थ होने के दौरान स्वतन्त्रता की, पूर्ण स्वतन्त्रता की उस सुखद भावना से, जो मानवीय अस्तित्व का अभिन्न अंग है और जिसे उसने मास्को से बाहर निकलने पर पहले पड़ाव के वक़्त अनुभव किया था, उसकी आत्मा ओत-प्रोत रहती थी। उसे इस बात से आश्चर्य होता था कि यह आन्तरिक स्वतन्त्रता, जो बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करती, उसके लिये मानो अब बाहरी स्वतन्त्रता का भी एक अतिरिक्त और बढ़िया ढांचा बन गयी थी। अजनबी नगर में वह परिचितों के बिना एकदम अकेला था। उससे कोई भी तथा किसी भी बात की अपेक्षा नहीं करता था। उसे कहीं भी नहीं भेजा जाता था। वह जो कुछ चाहता था, उसे वह सब उपलब्ध था। पत्नी के बारे में पहले निरन्तर यातना देनेवाला विचार अब उसे व्यथित नहीं करता था, क्योंकि अब वह इस दुनिया में नहीं थी।

"ओह, यह सब कुछ कितना अच्छा है! कैसा लाजवाब है!" वह अपने आपसे उस समय कहता जब साफ़-सुथरे मेज़पोश से ढकी मेज़ पर महकता हुआ शोरबा उसकी तरफ़ बढ़ाया जाता या फिर जब वह नर्म-नर्म और साफ़-सुथरे बिस्तर पर सोने के लिये लेटता या जब उसे यह याद आता कि उसकी पत्नी तथा फ़्रांसीसी नहीं रहे। "ओह, यह सब कुछ कितना अच्छा है! कैसा लाजवाब है!" और पुरानी आदत के मुताबिक़ वह अपने आपसे यह पूछता – "इसके बाद क्या होगा? मैं क्या करूंगा?" और उसी क्षण अपने आपको उत्तर देता – "कुछ भी नहीं। ज़िन्दा रहूंगा। ओह, यह सब कितना लाजवाब है!"

जिस चीज़ के कारण वह व्यथित रहता था, जिसे वह निरन्तर खोजता रहता था यानी जीवन का उद्देश्य – उसके लिये अब इसका अस्तित्व ही नहीं रहा था। जीवन के इस उद्देश्य की खोज अब उसके लिये केवल अस्थायी रूप से, केवल इस समय के लिये ही नहीं रही थी, बल्कि वह यह अनुभव करता था कि ऐसा कोई उद्देश्य है ही नहीं और हो भी नहीं सकता। उद्देश्य की यही अनुपस्थिति तो उसे पूर्ण और उस सुखद स्वतन्त्रता की चेतना प्रदान करती थी जो इस समय उसका सुख-सौभाग्य थी।

उसके लिये उद्देश्य नहीं हो सकता था, क्योंकि अब उसमें आस्था पैदा हो गयी थी, – किन्हीं नियमों, शब्दों या विचारों में नहीं, बल्कि जीते-जागते, हमेशा अनुभव होनेवाले ईश्वर में आस्था पैदा हो गयी थी। पहले वह प्रभु को उन उद्देश्यों में ढूंढ़ता था जो अपने सामने प्रस्तुत करता था। उद्देश्य की यह खोज केवल भगवान की ही खोज थी। किन्तु बन्दी बनने पर उसने शब्दों या तर्क-वितर्कों के द्वारा नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभूति से अचानक उस चीज़ को जान लिया जो उसकी आया बहुत अरसे से कहती रही थी – भगवान तो वह रहे, यहां हैं, सब जगह हैं। बन्दी-जीवन के दौरान उसने यह जान लिया कि कारातायेव में बसनेवाले भगवान फ़्री मेसनों के ब्रह्माण्ड-स्रष्टा से कहीं अधिक महान, अनन्त और अबोधगम्य हैं। उसे उस व्यक्ति जैसी अनुभूति हुई जिसे वह चीज़, जिसकी वह खोज करता रहा हो, अपने पांवों के क़रीब ही मिल जाये, जबकि वह अपनी नज़र पर ज़ोर डालता हुआ उसे दूरी पर ढूंढ़ता रहा हो। वह जीवन भर अपने इर्द-गिर्द के लोगों के सिरों के ऊपर से कहीं दूर दृष्टि दौड़ाता रहा था, जबकि उसे नज़र पर ज़ोर डाले बिना अपने सामने ही देखना चाहिये था।

पहले वह किसी भी चीज़ में महान, अबोधगम्य और असीम को नहीं देख पाता था। वह केवल यह अनुभव करता था कि उसे कहीं होना चाहिये और वह उसे खोजता था। जो कुछ उसके निकट था, बोधगम्य था, उस सबमें उसे केवल सीमित, तुच्छ, साधारण और अर्थहीन ही दिखाई देता था। उसने अपने को बौद्धिक दूरबीन से लैस कर लिया था और वह बहुत दूर, वहां देखता था जहां यह तुच्छ और साधारण धुंधली दूरी में छिपकर सिर्फ़ इसीलिये उसे महान और असीम-अनन्त प्रतीत होता था कि स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देता था। यूरो-

पीय जीवन, राजनीति, फ़्री मेसनरी, दर्शन और परोपकार उसे ऐसे ही लगते थे। किन्तु तब, उन क्षणों में भी, जिन्हें वह अपनी दुर्बलता के क्षण मानता था, उसकी बुद्धि उस दूरी की थाह लेती थी और वहां भी उसे वही तुच्छ, साधारण तथा अर्थहीन दिखाई देता था। किन्तु अब तो उसने सभी कुछ में महान, शाश्वत और अनन्त-असीम को देखना सीख लिया था और इसलिये स्वाभाविक था कि इसे देखने के लिये, इसके चिन्तन का आनन्द पाने के लिये उसने उस दूरबीन को फेंक दिया जिसे आंखों पर टिकाकर लोगों के सिरों के ऊपर से देखता रहा था तथा बहुत प्रसन्नता से अपने इर्द-गिर्द चिर परिवर्तनशील, चिर महान, अबोधगम्य और अनन्त जीवन का आनन्द लेने लगा। वह जितना अधिक अपने निकट देखता था, उसे उतना ही अधिक चैन और सुख मिलता था। उसकी बौद्धिक इमारत को पहले खण्ड-खण्ड कर देनेवाले भयानक प्रश्न – "किसलिये" – का अब उसके जीवन में अस्तित्व ही नहीं रहा था। उसकी आत्मा में अब इसका हमेशा ही एक सीधा-सादा जवाब तैयार रहता था – इसलिये कि भगवान हैं, वह भगवान जिनकी इच्छा के बिना मानव के सिर से एक बाल तक नहीं गिरता।

१३

बाहरी रंग-ढंग की दृष्टि से प्येर में लगभग कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। देखने में वह पहले जैसा ही था। वह पहले की तरह ही बेख़्याल-सा रहता था और ऐसे प्रतीत होता था कि जो कुछ उसके सामने था, उसकी ओर कोई ध्यान न देकर किन्हीं, अपने खास विचारों में ही खोया हुआ है। उसकी भूतपूर्व और वर्तमान स्थिति में सिर्फ़ यही फ़र्क़ था कि पहले तो जब उसे उसका ध्यान नहीं रहता था जो उसके सामने होता था और जो उससे कहा जाता था तो वह मानो बहुत व्यथापूर्वक माथे पर बल डालकर उसे देखने-समझने की कोशिश करता था जो उसकी पहुंच से कहीं बहुत दूर होता था। अब भी वह इसी ढंग से उसके बारे में भूल जाता था जो उसके सामने होता और जो

कुछ उससे कहा जाता ; किन्तु अब वह तनिक दिखाई देनेवाली मानो व्यंग्यपूर्ण मुस्कान के साथ उसे देखता जो उसके सामने होता, उसे सुनता जो उससे कहा जाता, यद्यपि स्पष्टत: वह कुछ दूसरी ही चीज़ देखता तथा दूसरी ही बात सुनता होता। पहले वह यद्यपि दयालु, तथापि दुखी व्यक्ति प्रतीत होता था और लोग अनचाहे ही उससे दूर रहते थे। किन्तु अब उसके होंठों के आसपास जीवन के उल्लास की निरन्तर मुस्कान बनी रहती और उसकी आंखों में लोगों में दिलचस्पी तथा इस प्रश्न की चमक झलकती रहती – वे भी उसकी तरह सुखी हैं या नहीं? और लोगों को उसकी उपस्थिति अच्छी लगती।

पहले वह बहुत अधिक बातें करता था, बातें करते हुए उत्तेजित हो उठता था और दूसरों को कम सुनता था। अब वह बहुत कम बातें करता था और ऐसी दिलचस्पी से दूसरों की बातें सुनता था कि लोग बड़े उत्साह से अपने दिली राज़ भी उसे बता देते थे।

प्रिंसेस ने, जिसे प्येर कभी भी अच्छा नहीं लगा था और जिसके मन में बुज़ुर्ग काउंट की मृत्यु के बाद इस चेतना से कि वह प्येर की आभारी है एक विशेष शत्रुतापूर्ण भावना पैदा हो गयी थी, उसी प्रिंसेस ने ओर्योल में कुछ दिन बिताने के बाद, जो यह प्रमाणित करने के इरादे से यहां आई थी कि प्येर की कृतघ्नता के बावजूद उसकी टहल-सेवा करना वह अपना कर्त्तव्य मानती है, यह अनुभव किया कि वह उसे चाहती है। प्येर ने प्रिंसेस का मन जीतने के लिये कुछ भी नहीं किया। वह तो केवल जिज्ञासा से उसकी तरफ़ देखता ही रहता। उसकी नज़र में प्रिंसेस को पहले उदासीनता और उपहास की अनुभूती होती थी और जैसे दूसरों के सामने, वैसे ही उसके सामने भी अपने भीतर ही सिकुड़-सिमट जाती थी तथा अपने जीवन का जुझारू पक्ष ही सामने लाती थी। इसके विपरीत, अब वह यह अनुभव करती थी कि वह मानो उसके जीवन के सबसे अन्तरंग पक्षों की गहराई में भी जाने की कोशिश करता है और वह शुरू में अविश्वास के साथ, किन्तु बाद में कृतज्ञतापूर्वक अपने चरित्र के गुप्त, दयालु पक्ष भी उसके सामने लाने लगी।

चालाक से चालाक आदमी भी प्रिंसेस की जवानी के सबसे अच्छे वक़्तों की यादें ताज़ा करके तथा उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करके प्येर जैसी होशियारी से प्रिंसेस का विश्वास-पात्र नहीं बन सकता था।

किन्तु प्येर की सारी होशियारी इसी बात में निहित थी कि वह जली-भुनी, रूखी और अपने ढंग से गर्वीली प्रिंसेस के मन में मानवीय भावनायें जागृत करते हुए अपना मनबहलाव करता था।

"हां, जब वह बुरे लोगों के प्रभाव में न होकर मेरे जैसे लोगों के प्रभाव में रहता है तो बहुत ही अच्छा, बड़ा लाजवाब आदमी होता है," प्रिंसेस अपने आपसे कहती।

प्येर के नौकर – तेरेन्ती और वास्का – भी उसमें हुए परिवर्तन को अपने ढंग से अनुभव करते थे। उन्हें लगता था कि उसमें बहुत सादगी और मानवीयता आ गयी है। तेरेन्ती कपड़े बदलने में अपने मालिक की सहायता करने तथा शुभरात्रि कहने के बाद हाथ में बूट और पोशाक लिये हुए इसी आशा से बाहर जाने में देर करता रहता कि शायद वह कोई बातचीत शुरू कर दे। प्येर यह देखकर कि तेरेन्ती कुछ बातचीत करना चाहता है, अक्सर उसे रोक लेता।

"अच्छा तो तुम मुझे यह बताओ... तुम लोग अपने लिये ख़ुराक कैसे हासिल करते थे?" वह पूछता। और तेरेन्ती मास्को की तबाही या दिवंगत बड़े काउंट की चर्चा शुरू कर देता, पोशाक हाथ में लिये देर तक बातें करता रहता या प्येर की बातें सुनता जाता और फिर मालिक के साथ अपनी निकटता और उसके प्रति स्नेह की सुखद भावना मन में लिये हुए कमरे से बाहर जाता।

प्येर का इलाज करने और हर दिन उसके यहां आनेवाला डाक्टर, जो सभी डाक्टरों की तरह यह ज़ाहिर करना अपना कर्त्तव्य मानता था कि उसका हर क्षण पीड़ित मानवजाति के लिये बहुत ही मूल्यवान है, घण्टों तक प्येर के पास बैठा हुआ अपने मनपसन्द क़िस्से-कहानियां तथा रोगियों, विशेषकर बीमार महिलाओं के आचार-व्यवहार से सम्बन्धित अपने निरीक्षण की बातें सुनाता रहता।

"हां, ऐसे आदमी के साथ, जो हमारे प्रान्तीय लोगों से बहुत भिन्न है, बात करके सचमुच बड़ी ख़ुशी हासिल होती है," वह कहता।

ओर्योल में फ़्रांसीसी सेना के कुछ बन्दी-अफ़सर रहते थे और डाक्टर उनमें से एक को, एक जवान इतालवी अफ़सर को प्येर के यहां ले आया।

यह अफ़सर प्येर के यहां आने-जाने लगा और प्येर के प्रति वह जो स्नेहमयी भावनायें व्यक्त करता, प्रिंसेस उनका मज़ाक़ उड़ाती।

यह इतालवी अफ़सर अपने को सम्भवतः तभी सौभाग्यशाली अनुभव करता, जब प्येर के पास आ पाता, उससे बातें कर लेता, उससे अपने अतीत, अपने घरेलू जीवन और प्यार की चर्चा कर पाता तथा फ़्रांसीसियों, ख़ास तौर पर नेपोलियन के ख़िलाफ़ अपना गुस्सा निकाल लेता।

"अगर सभी रूसी कुछ हद तक भी आपके जैसे हैं," वह प्येर से कहता, "तो ऐसे लोगों के साथ लड़ना मानो अपराध है। फ़्रांसीसियों के कारण आपने इतने दुख-दर्द सहे हैं, लेकिन आप तो उनके ख़िलाफ़ गुस्सा-गिला तक नहीं रखते।"

प्येर को इस इतालवी का इतना अधिक प्यार केवल इसीलिये हासिल हुआ था कि उसने उसकी आत्मा के श्रेष्ठ पक्षों को उभार दिया था और उनसे आनन्दित होता था।

ओर्योल नगर में प्येर के रहने के अन्तिम दिनों में उसका एक पुराना परिचित, फ़्री मेसन काउंट विल्लार्स्की उसके यहां आया। यह वही व्यक्ति था जिसने सन् १८०७ में उसे फ़्री मेसन संगठन का सदस्य बनाया था। विल्लार्स्की एक धनी रूसी महिला का पति था जिसकी ओर्योल गुबेर्निया में बहुत बड़ी जागीर थी और वह नगर के रसद विभाग में कुछ समय के लिये काम कर रहा था।

यह मालूम होने पर कि प्येर बेज़ूख़ोव ओर्योल में है, वह ऐसी दोस्ती और घनिष्ठता दिखाते हुए उसके पास आया जैसी रेगिस्तान में मिल जाने पर लोग एक-दूसरे के प्रति प्रकट करते हैं, यद्यपि उनके बीच कभी कोई विशेष मेल-जोल नहीं रहा था। विल्लार्स्की ओर्योल में ऊब महसूस करता था और अपने ही सामाजिक स्तर और, जैसाकि वह समझता था, समान रुचियोंवाले व्यक्ति से भेंट होने पर उसे प्रसन्नता हुई।

किन्तु विल्लार्स्की ने हैरान होते हुए जल्द ही इस बात की तरफ़ ध्यान दिया कि प्येर वास्तविक जीवन से बहुत पिछड़ गया है और, जैसाकि उसने प्येर के बारे में स्वयं ही निर्णय कर लिया, वह उदासीनता और स्वार्थ का शिकार हो गया है।

"आपका ह्रास हो रहा है, मेरे प्यारे," उसने प्येर से कहा। इसके बावजूद प्येर की संगत में विल्लार्स्की अब पहले से कहीं अधिक ख़ुशी अनुभव करता था और हर दिन उसके घर आता था। विल्लार्स्की

को देखते और उसकी बातें सुनते हुए प्येर को अब यह सोचना बड़ा अजीब और आश्चर्यजनक लगता था कि कुछ समय पहले तक वह ख़ुद भी ऐसा ही था।

विल्लार्स्की विवाहित और घर-गृहस्थीवाला व्यक्ति था, पत्नी की जागीर की देख-भाल, नौकरी और परिवार के कामों में व्यस्त रहता था। वह इन सब चीज़ों को अपने जीवन में बाधा और तिरस्कार के योग्य मानता था, क्योंकि इनका उद्देश्य उसकी अपनी तथा उसके परिवार की भलाई ही था। सैनिक, प्रशासकीय, राजनीतिक तथा फ़्री मेसनरी के प्रश्नों में ही निरन्तर उसका ध्यान उलझा रहता था। और प्येर उसके दृष्टिकोण को बदलने, उसकी आलोचना करने की कोशिश किये बिना अब अपनी शान्त और प्रसन्नतापूर्ण व्यंग्यात्मक मुस्कान के साथ, जो हर समय उसके होंठों पर बनी रहती थी, इस अजीब, किन्तु अपने लिये अत्यधिक सुपरिचित उसकी मानसिक दशा को देखता रहता था।

विल्लार्स्की, प्रिंसेस, डाक्टर और सभी लोगों के साथ प्येर के सम्बन्धों में, जिनसे अब उसकी भेंट होती थी, एक नया लक्षण आ गया था जिसकी बदौलत उसे सभी की सद्भावना मिलती थी – यह चीज़ों को अपने ही ढंग से सोचने, अनुभव करने और देखने की हर व्यक्ति की सम्भावना और इस असम्भवना की स्वीकृति थी कि शब्दों से किसी भी व्यक्ति के विचारों-विश्वासों को बदला नहीं जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति का यह न्यायसंगत अधिकार, जिसके कारण वह पहले विह्वल हो जाता था तथा खीझ उठता था, अब उस सहानुभूति और दिलचस्पी का आधार था जो वह सभी लोगों के प्रति व्यक्त करता था। लोगों के विचारों और उनकी जीवन की भिन्नता, कभी-कभी उनके पूर्ण विरोधाभासों तथा एक-दूसरे के बीच पाये जानेवाले ऐसे अन्तरों से प्येर को प्रसन्नता होती और उसके होंठों पर व्यंग्यात्मक तथा विनम्र मुस्कान आ जाती।

व्यावहारिक मामलों में प्येर ने अप्रत्याशित ही अब यह महसूस किया कि उसके भीतर एक गुरुत्व-केन्द्र है जो पहले नहीं था। पहले पैसों से सम्बन्धित हर प्रश्न, विशेषकर उसके धनी होने के फलस्वरूप पैसे देने के लिये उससे बहुधा किये जानेवाले अनुरोधों के कारण वह अपने को बड़ी अटपटी और परेशानी की हालत में पाता था। "पैसे दे या न दे?" वह अपने आपसे पूछता। "मेरे पास हैं और उसे ज़रूरत

है। किन्तु किसी दूसरे को उससे भी अधिक आवश्यकता है। किसे ज़्यादा ज़रूरत है? यह भी हो सकता है कि दोनों मेरी आंखों में धूल झोंक रहे हों?" अतीत में वह इस तरह के सन्देहों-अनुमानों से किसी तरह भी मुक्ति नहीं पा सकता था और जब तक उसके पास देने को कुछ भी होता, सभी को देता रहता था। अपनी सम्पत्ति के मामले में भी पहले उसकी ऐसी ही परेशानी की हालत होती थी, जब कुछ लोग उससे एक रास्ता अपनाने को कहते और दूसरे – दूसरा।

अब उसने हैरान होते हुए यह अनुभव किया कि इन सभी मामलों में उसके मन में सन्देहों और ऊहापोह का स्थान नहीं रह गया था। उसके अन्दर अब एक ऐसा निर्णायक प्रकट हो गया था जो किन्हीं अज्ञात नियमों के अनुसार यह तय कर देता था कि उसे ऐसा करना चाहिये और ऐसा नहीं करना चाहिये।

पैसों के मामलों में वह पहले की तरह ही उदासीन था, किन्तु निश्चित रूप से अब यह जानता था कि उसे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। उसके भीतर प्रकट होनेवाले इस नये निर्णायक का सबसे पहले एक बन्दी फ़्रांसीसी कर्नल से वास्ता पड़ा जिसने उसके पास आकर देर तक अपनी बहादुरी के क़िस्से सुनाये और अन्त में लगभग यह मांग की कि प्येर उसे अपने बीवी-बच्चों को भेजने के लिये चार हज़ार फ़्रांक दे दे। प्येर ने ज़रा-सी भी मुश्किल और मानसिक तनाव के बिना उसे इन्कार कर दिया तथा बाद में इस बात से हैरान हुआ कि पहले उसे जो कुछ असाध्य रूप से कठिन प्रतीत होता था, अब उसी को उसने कितनी सरलता और आसानी से तय कर डाला था। फ़्रांसीसी कर्नल को पैसे देने से इन्कार करने के साथ-साथ उसने यह भी निर्णय किया कि ओर्योल से जाते समय उसे इतालवी अफ़सर को पैसे लेने को राज़ी करने के लिये, जिसकी सम्भवतः उसे ज़रूरत थी, किसी चतुराई से काम लेना होगा। पत्नी के क़र्ज़ों और मास्को के मकानों तथा मास्को के निकटवर्ती बंगले को फिर से निर्मित करने या न करने के प्रश्नों के बारे में उसके निर्णयों ने व्यावहारिक मामलों में उसके दृष्टिकोण की पुष्टि का नया प्रमाण प्रस्तुत किया।

प्येर का बड़ा कारिन्दा ओर्योल में उसके पास आया। प्येर ने उसके साथ बैठकर अपनी आमदनी में हुई तबदीली का हिसाब-किताब जोड़ा। बड़े कारिन्दे के अनुमान के मुताबिक़ मास्को की आग से प्येर को लगभग

बीस लाख रूबल की हानि हुई थी।

इस हानि की पूर्ति के रूप में बड़े कारिन्दे ने यह सुझाव दिया कि अगर वह काउंटेस द्वारा छोड़े गये क़र्ज़े चुकाने से इन्कार कर दे, जिनके लिये वह ज़िम्मेदार नहीं हो सकता था, और मास्को के मकानों तथा मास्को के निकटवर्ती बंगले के पुनर्निर्माण का इरादा छोड़ दे, जिनपर हर साल अस्सी हज़ार रूबल का ख़र्च होता था और जिनसे आमदनी कुछ भी नहीं होती थी, तो इतनी बड़ी क्षति के बावजूद उसकी आय न केवल कम नहीं होगी, बल्कि बढ़ जायेगी।

"हां, हां, यह बिल्कुल ठीक है," प्येर ने ख़ुशी से मुस्कराते हुए जवाब दिया। "हां, हां, मुझे इस सबकी ज़रूरत नहीं है। तबाही की बदौलत मैं तो पहले से कहीं ज़्यादा अमीर हो गया हूं।"

किन्तु जनवरी में मास्को से सावेलिच आया, उसने मास्को की हालत बयान की और मास्को के मकानों तथा मास्को के निकटवर्ती बंगले के पुनर्निर्माण के लिये वास्तुकार द्वारा तैयार किया गया ख़र्च का तख़मीना ऐसे पेश किया मानो यह मामला तो तय ही हो चुका हो। इसी समय प्येर को पीटर्सबर्ग से प्रिंस वसीली तथा अन्य परिचितों के पत्र मिले जिनमें उसकी पत्नी के क़र्ज़ों का उल्लेख था। और प्येर ने फ़ैसला किया कि उसे इतनी अधिक पसन्द आनेवाली बड़े कारिन्दे की योजना ठीक नहीं थी और उसे पत्नी के मामले निपटाने के लिये पीटर्सबर्ग तथा पुनर्निर्माण के काम के सिलसिले में मास्को जाना चाहिये। किसलिये ऐसा करना ज़रूरी था, उसे यह मालूम नहीं था, किन्तु वह निस्सन्देह रूप से यह जानता था कि ऐसा करना चाहिये। इस निर्णय के परिणामस्वरूप उसकी आमदनी तीन-चौथाई कम हो जायेगी, मगर वह महसूस करता था कि उसे ऐसा करना ही चाहिये।

विल्लार्स्की मास्को जानेवाला था और उन्होंने यह तय किया कि वे इकट्ठे ही जायेंगे।

ओर्योल में अपने स्वस्थ होने की सारी अवधि में प्येर को प्रसन्नता, स्वतन्त्रता और जीवन की अनुभूति होती रही। किन्तु अपनी यात्रा के समय जब वह पूरी तरह से मुक्त संसार में पहुंच गया और उसने सैकड़ों अन्य नये चेहरे देखे तो यह भावना और भी बलवती हो गयी। पूरी यात्रा के दौरान वह छुट्टियां बितानेवाली छात्र जैसी प्रसन्नता अनुभव करता रहा। सभी लोग – कोचवान, घोड़ा-बदल-चौकी का निरीक्षक,

सड़क या गांव में मिलनेवाले किसान – ये सभी उसके लिये एक नया अर्थ रखते थे। विल्लास्कीं की उपस्थिति, यूरोप की तुलना में रूस की ग़रीबी, पिछड़ेपन तथा उजड्डुपन का लगातार रोना रोनेवाली उसकी टीका-टिप्पणियों से प्येर की ख़ुशी में केवल वृद्धि ही होती थी। विल्लास्कीं को जहां मुरदादिली दिखाई देती, प्येर को वहीं असाधारण जीवन-शक्ति नज़र आती, वह जीवन-शक्ति जो इस हिमाच्छादित विस्तार में इस अक्षय-अखण्ड, अनोखे और एकजुट जनगण को शक्ति प्रदान करती थी। वह विल्लास्कीं की बात का खण्डन न करता और उसके साथ मानो सहमति भी प्रकट करते हुए (क्योंकि यह झूठी सहमति वाद-विवाद से बचने का सीधा-सादा साधन थी और वाद-विवाद से कोई फ़ायदा नहीं होनेवाला था) उसकी बातें सुनता तथा प्रसन्नतापूर्वक मुस्कराता रहता।

१४

जिस प्रकार यह बताना कठिन है कि चींटियों की बांबी के टूट जाने पर चींटियां किधर और किसलिये दौड़-धूप करती हैं – कुछ कूड़ा-करकट, अंडे और मरी हुई चींटियों को लेकर बांबी से दूर भागती हैं और कुछ वापस बांबी की तरफ़ तथा ऐसा करते हुए क्यों वे आपस में भिड़ती हैं, एक-दूसरी को पीछे छोड़ने की कोशिश करती हैं और लड़ती हैं – ठीक इसी प्रकार फ़्रांसीसियों के चले जाने के बाद रूसी लोगों को भारी संख्या में उस जगह पर आने की प्रेरणा देनेवाले कारणों को स्पष्ट करना मुश्किल होगा जिसे कभी मास्को कहा जाता था। किन्तु जिस तरह चींटियों की दृढ़ता, उत्साह और भारी भीड़ से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि बांबी पूर्णतः नष्ट हो चुकी है, तथापि नष्ट न होनेवाली कोई ऐसी अमूर्त्त चीज़ बाक़ी रह गयी है जो इन चींटियों की वास्तविक शक्ति है – ठीक इसी तरह नगर-अधिकारियों, गिरजाघरों, देव-प्रतिमाओं, धन-दौलत और मकानों के न होने के बावजूद अक्तूबर के महीने में मास्को अगस्त महीने जैसा ही था। किसी अमूर्त्त-अभौतिक के सिवा, जो अध्वंस्य और प्राणवान था, सब कुछ नष्ट हो चुका था।

मास्को के शत्रु से मुक्त किये जाने के बाद सभी ओर से लोगों के उधर भागने के प्रेरणा-स्रोत बहुत विविधतापूर्ण और व्यक्तिगत तथा आरम्भ में तो जंगली-से तथा पाशविक भी थे। हां, एक प्रेरक तत्त्व सभी में सामान्य था – वहां, उस जगह जाया जाये जिसे पहले मास्को कहा जाता था और वहां अपनी क्रियाशीलता दिखाई जाये।

एक हफ़्ते बाद मास्को की आबादी पन्द्रह हज़ार हो गयी थी, दो हफ़्ते बाद पचीस हज़ार, आदि। यह संख्या इसी तरह बढ़ती गयी तथा १८१३ की पतझर आने तक यहां की आबादी सन् १८१२ की आबादी से अधिक हो गयी।

मास्को में सबसे पहले आनेवाले रूसी थे – विंत्सेनगेरोदे की सैनिक टुकड़ी के कज़्ज़ाक, आस-पास के गांवों के किसान और मास्को से भागने तथा उसके इर्द-गिर्द छिपनेवाले मास्कोवासी। तबाहहाल मास्को में आने तथा उसे लुटा हुआ पाने पर रूसी भी उसे लूटने लगे। फ़ांसीसियों ने जो कुछ शुरू किया था, रूसियों ने उसे आगे जारी रखा। किसान अपनी घोड़ा-गाड़ियां लेकर इसी उद्देश्य से मास्को आते कि तबाह-बरबाद मास्को के घरों और गलियों में जो कुछ पड़ा रह गया है, उसे उठाकर गांव ले जायें। कज़्ज़ाकों के लिये जो कुछ भी सम्भव होता, वे अपने शिविरों में उठा ले जाते। घरों के मालिक दूसरे घरों में हाथ लग जानेवाली चीज़ों को इस बहाने हथिया ले जाते कि ये तो उनकी अपनी ही चीज़ें हैं।

मगर लुटेरों के पहले दलों के बाद दूसरे और तीसरे दल आये और जैसे-जैसे लुटेरों की संख्या बढ़ती गयी, लूट वैसे-वैसे कठिन होती गयी और अधिकाधिक निश्चित रूप लेती गयी।

फ़्रांसीसियों के मास्को में आने पर उन्हें नगर बेशक ख़ाली मिला था, फिर भी उसमें सामान्य शहरी जीवन के सभी मूलभूत रूप – तरह-तरह के व्यापार और शिल्प, सुख-साधन, प्रशासकीय और धार्मिक संगठन, आदि – विद्यमान थे। निष्क्रिय होते हुए भी इनका अस्तित्व तो था ही। व्यापार-केन्द्र, स्टाल, दुकानें, अनाज की मंडियां और बाज़ार थे तथा इनमें से अधिकांश मालों से भरे हुए थे। फ़ैक्टरियां थीं, कर्मशालायें थीं, विलासिता की चीज़ों से भरे हुए महल तथा अमीरों के घर थे, अस्पताल, जेलख़ाने, सरकारी दफ़्तर, छोटे और बड़े गिरजाघर थे। फ़्रांसीसी जितने अधिक समय तक यहां रहे, शहरी

जीवन के ये रूप उतने ही अधिक नष्ट होते गये और अन्त में गड़बड़ तथा लूट का निर्जीव दृश्य बनकर रह गये।

फ़्रांसीसियों की लूट जितने अधिक समय तक जारी रही, मास्को की दौलत और लुटेरों की शक्ति उतनी ही अधिक नष्ट होती चली गयी। किन्तु रूसियों की लूट, जिसके साथ उन्होंने अपनी राजधानी में लौटना आरम्भ किया, जितनी अधिक देर तक चलती रही तथा लुटेरों की संख्या जितनी ज़्यादा बढ़ती गयी, मास्को की दौलत और उसकी व्यवस्थित शहरी ज़िन्दगी उतनी ही जल्दी बहाल होती गयी।

लुटेरों के अलावा तरह-तरह के अन्य लोग विभिन्न दिशाओं से इसी तरह मास्को आ रहे थे जैसे रक्त हृदय की ओर आता है। इनमें से कुछ जिज्ञासावश, कुछ नौकरी के कर्त्तव्य पूरे करने के लिये और कुछ अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर, जैसे कि घरों के मालिक, धार्मिक कार्यकर्त्ता, छोटे-बड़े सरकारी कर्मचारी, व्यापारी, कारीगर और किसान मास्को आते जाते थे।

मास्को से चीज़ें लादकर ले जाने की इच्छा से ख़ाली घोड़ा-गाड़ियां लेकर आनेवाले किसानों को एक सप्ताह बाद भी अधिकारियों ने रोक लिया और इस चीज़ के लिये मजबूर किया कि वे नगर से लाशें लादकर ले जायें। दूसरे किसानों ने जब यह सुना कि उनके साथियों को कैसी स्थिति का सामना करना पड़ा तो वे गेहूं, जौ और सूखी घास लेकर मास्को आने लगे तथा एक-दूसरे से प्रतियोगिता करते हुए उन्होंने क़ीमतों को पहले से भी नीचे गिरा दिया। अच्छी कमाई की उम्मीद करते हुए बढ़इयों के दल के दल हर दिन मास्को आते जा रहे थे, सभी ओर नये-नये मकान बनने लगे तथा पुराने, जले हुए मकानों की मरम्मत होने लगी। व्यापारी लोग लकड़ी की अस्थायी दुकानों में व्यापार करने लगे। जले मकानों में ढाबे और सस्ते क़िस्म के होटल खुल गये। बहुत-से गिरजाघरों में, जो आग की लपेट में आने से बच गये थे, पादरियों ने फिर से प्रार्थनायें आरम्भ कर दीं। श्रद्धालु लोग गिरजाघरों से लूटी हुई चीज़ें वापस ले आये। सरकारी कर्मचारी छोटे-छोटे कमरों में बनात के मेज़पोशों से ढकी मेज़ों तथा काग़ज़ों-दस्तावेज़ों सहित अलमारियों को ठीक-ठाक करने लगे। उच्चाधिकारी और पुलिसवाले फ़्रांसीसियों के बाद रह गयी चीज़ों के बंटवारे की व्यवस्था में जुट गये। जिन घरों में दूसरे घरों से लायी गयी बहुत-सी चीज़ें रह गयी थीं,

उनके मालिक इस बेइन्साफ़ी के ख़िलाफ़ रोना रोते थे कि उन्हें क्रेमलिन के ग्रानोविट भवन* में ये सभी चीज़ें लाने का आदेश दिया गया था। दूसरे मकान-मालिक इस बात की मांग करते थे कि फ़्रांसीसियों ने विभिन्न मकानों से चीज़ें ला-लाकर एक जगह पर इकट्ठी कर दी थीं और इसलिये उस मकान-मालिक के यहां उन चीज़ों को छोड़ना न्यायपूर्ण नहीं होगा जहां वे मिली थीं। पुलिस को भला-बुरा कहा जाता था ; उसे रिश्वत दी जाती थी ; आग के कारण जल जानेवाली सरकारी सम्पत्ति के दस गुना अधिक तख़मीने बनाये गये ; सहायता के लिये लोगों के ढेरों आवेदनपत्र आने लगे। काउंट रस्तोपचिन अपने परचे लिखता जाता था।

१५

जनवरी के अन्त में प्येर मास्को पहुंचा और अपने मकान के उस उपभवन में ठहरा जो आग की नज़र होने से बच गया था। वह काउंट रस्तोपचिन तथा मास्को लौट आनेवाले अपनी जान-पहचान के कुछ अन्य लोगों से मिलने गया। दो दिन के बाद उसने पीटर्सबर्ग जाने का कार्यक्रम बनाया। सभी लोग विजय की ख़ुशी मना रहे थे ; तबाहहाल, मगर फिर से पुनर्जीवित होती राजधानी में सभी ओर ज़िन्दगी की चहल-पहल थी। प्येर से मिलकर सभी बहुत ख़ुश होते ; सभी उससे मिलना चाहते और उसने जो कुछ देखा था, उसके बारे में उससे पूछ-ताछ करते। प्येर जिन भी लोगों से मिलता, उन सभी के प्रति एक विशेष प्रकार का मैत्रीपूर्ण सद्भाव अनुभव करता। किन्तु अनजाने-अनचाहे ही वह अब सभी लोगों के मामले में सतर्क-चौकस रहता ताकि अपने को किसी भी चीज़ के लिये वचनबद्ध न कर ले। उससे जो कुछ भी पूछा जाता, महत्त्वपूर्ण या मामूली, जैसे कि वह कहां रहेगा? पुनर्निर्माण करेगा या नहीं? वह पीटर्सबर्ग कब जा रहा है और क्या छोटा-सा पैकेट अपने साथ ले जा सकता है या नहीं? – वह अस्पष्ट-से

---

* ग्रानोविट भवन – क्रेमलिन का एक समारोही भवन। – सं०

जवाब देता – हां, सम्भव है, कुछ ऐसा ही सोच रहा हूं, आदि, आदि।

रोस्तोवों के बारे में उसने सुना कि वे कोस्त्रोमा में रह रहे हैं, लेकिन नताशा का उसे बहुत कम ही ध्यान आता। अगर वह उसे याद आती भी तो दूर अतीत की एक मधुर स्मृति के रूप में ही। वह केवल सामाजिक-पारिवारिक बन्धन से ही नहीं, बल्कि उस भावना से भी अपने को मुक्त अनुभव करता था, जिसे, जैसाकि उसे लगता था, उसने जान-बूझकर अपने ऊपर लाद लिया था।

मास्को में अपने आगमन के तीसरे दिन उसे द्रुबेत्स्की-परिवारवालों से पता चला कि प्रिंसेस मरीया मास्को में है। प्रिंस अन्द्रेई की मृत्यु, उसकी व्यथा-पीड़ा और उसके जीवन के अन्तिम दिनों के बारे में प्येर अक्सर सोचता रहता था और ये विचार अब एक नयी तीव्रता से उसके दिमाग़ में आये। दिन के भोजन के समय यह मालूम होने पर कि प्रिंसेस मरीया मास्को में है और व्ज़्द्वीजेन्का सड़क पर अपने उस मकान में रह रही है, जो जला नहीं था, वह उसी शाम को उससे मिलने गया।

प्रिंसेस मरीया के यहां जाते हुए प्येर लगातार प्रिंस अन्द्रेई, उसके साथ अपनी दोस्ती, उसके साथ अपनी बहुत-सी मुलाक़ातों और विशेषकर अन्तिम – बोरोदिनो में हुई भेंट के बारे में सोचता रहा।

"क्या वह उसी कटु मन:स्थिति में इस दुनिया से कूच कर गया जिसमें वह उस समय था? क्या मृत्यु से पहले उसके सामने जीवन का अर्थ स्पष्ट नहीं हुआ?" प्येर सोच रहा था। उसे करातायेव और उसकी मौत याद हो आयी और अनजाने ही वह इन दोनों व्यक्तियों की तुलना करने लगा जो एक-दूसरे से इतने भिन्न, फिर भी इन दोनों के प्रति उसके प्यार के कारण इतने समान थे और इसलिये भी कि दोनों जीवित रहे थे तथा दोनों मर गये थे।

बहुत ही गम्भीर मन:स्थिति में प्येर बुज़ुर्ग प्रिंस के घर पर पहुंचा। यह मकान बच गया था। उसपर थोड़ी-सी क्षति के चिह्न नज़र आ रहे थे, मगर मोटे तौर पर वह ज्यों का त्यों था। बूढ़े नौकर ने कठोर मुख-मुद्रा बनाये हुए प्येर का स्वागत किया मानो मेहमान को यह महसूस करवाना चाहता हो कि बुज़ुर्ग प्रिंस के न रहने पर भी इस घर के रंग-ढंग में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। उसने प्येर से कहा कि प्रिंसेस

अपने कमरों में जा चुकी हैं और वह रविवारों को ही मेहमानों से मिलती हैं।

"तुम मेरे आने की सूचना दे दो, शायद वह मिलने को राज़ी हो जायें," प्येर ने कहा।

"जो हुक्म हुज़ूर का," बूढ़े नौकर ने जवाब दिया, "कृपया चित्र-गैलरी में चले जाइये।"

कुछ मिनट बाद बूढ़ा नौकर और उसके साथ डेसाल प्येर के पास आये। प्रिंसेस की ओर से डेसाल ने प्येर से कहा कि अगर वह औपचारिकता न निभाने के लिये उसे क्षमा कर दें और उसके कमरे में ऊपर आ जायें तो उसे उनसे मिलकर बहुत खुशी होगी।

कम ऊंची छतवाले कमरे में, जिसमें केवल एक ही मोमबत्ती जल रही थी, प्रिंसेस और उसके साथ काली पोशाक पहने हुए एक अन्य महिला बैठी थी। प्येर को स्मरण हो आया कि प्रिंसेस के साथ हमेशा उसकी सेविका-संगिनियां रहती थीं, किन्तु वे कौन थीं और कैसी थीं, प्येर को न तो यह मालूम था और न याद था। "यह उसकी सेविका-संगिनियों में से ही कोई एक होगी," काली पोशाक पहने महिला पर दृष्टि डालते हुए उसने सोचा।

प्रिंसेस उससे मिलने के लिये झटपट उठी और उसने अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया।

"तो ऐसे भेंट होती है हमारी," प्येर द्वारा उसका हाथ चूम लेने के बाद उसके बदले हुए चेहरे को ग़ौर से देखते हुए प्रिंसेस ने कहा। "वह तो अपने अन्तिम दिनों में भी अक्सर आपकी चर्चा किया करता था," प्रिंसेस ने कुछ झिझकते हुए अपनी दृष्टि को प्येर के चेहरे से संगिनी की ओर घुमाते हुए कहा। प्रिंसेस की झिझक से प्येर को क्षण भर को आश्चर्य हुआ।

"आपके बच जाने की ख़बर मिलने पर मुझे बहुत ही खुशी हुई थी। यही तो एक खुशख़बरी थी जो बहुत समय के बाद हमें मिली थी," प्रिंसेस ने पहले से भी ज़्यादा झिझक और बेचैनी महसूस करते हुए संगिनी की ओर देखा तथा कुछ कहना चाहा, किन्तु प्येर ने उसे टोक दिया।

"आप कल्पना करें कि मुझे उसके बारे में कुछ भी मालूम नहीं था," उसने कहा। "मैं तो यही समझता था कि वह युद्धभूमि में खेत

रहा है। मुझे तो जो कुछ भी मालूम हुआ, सब दूसरों से, पराये लोगों से ही मालूम हुआ। हां, मैं इतना ज़रूर जानता हूं कि वह रोस्तोवों के साथ था... और यह भी अजीब संयोग रहा!"

प्येर जल्दी-जल्दी और उत्साहपूर्वक बोल रहा था। उसने प्रिंसेस की संगिनी की ओर एक बार देखा और उसकी स्नेहमयी तथा जिज्ञासा-पूर्ण दृष्टि को अपने चेहरे पर टिका पाया तथा, जैसाकि बातचीत के समय अक्सर होता है, न जाने क्यों, उसने यह अनुभव किया कि काली पोशाक पहने यह संगिनी एक प्यारी, दयालु और नेक महिला है जो प्रिंसेस मरीया के साथ उसके खुलकर बातें करने में किसी प्रकार भी बाधक नहीं होगी।

किन्तु प्येर ने जब रोस्तोवों के बारे में अन्तिम शब्द कहे तो प्रिंसेस मरीया के चेहरे पर पहले से भी ज़्यादा परेशानी झलक उठी। उसने प्येर के चेहरे से अपनी दृष्टि हटाकर एक बार फिर काली पोशाक पहने महिला की ओर देखा और कहा:

"क्या आप इसे पहचान नहीं रहे?"

प्येर ने प्रिंसेस की संगिनी के पीले, तीखे नाक-नक़्शे, काली आंखों तथा अजीब-से मुंहवाले चेहरे पर एक बार फिर दृष्टि डाली। बहुत ही प्रिय, एक मुद्दत से भूला-बिसरा और प्रिय से भी मन के कहीं अधिक निकट कोई व्यक्ति टकटकी बांधे हुए उसकी ओर देख रहा था।

"किन्तु नहीं, ऐसा नहीं हो सकता," प्येर ने सोचा। "यह कठोर, दुबला-पतला, पीला और बुढ़ाया हुआ चेहरा? नहीं, यह वह नहीं हो सकती। यह तो केवल उसकी याद है।" मगर इसी समय प्रिंसेस मरीया कह उठी – "नताशा।" और टकटकी बांधकर प्येर को देखती आंखोंवाला चेहरा ज़ंग लगे दरवाज़े की तरह बड़ी मुश्किल से, बहुत यत्नपूर्वक मुस्कराया, इस खुले दरवाज़े में से अचानक उस सुख-सौभाग्य की मधुर सुगन्ध का झोंका आया और उसके तन-मन पर छा गया जिसे प्येर एक ज़माने से भूल चुका था तथा जिसके बारे में उसने ख़ास तौर पर इस वक़्त तो बिल्कुल सोचा ही नहीं था। यह सुगन्धित झोंका आया, उसपर छा गया, उसके पूरे व्यक्तित्व पर हावी हो गया। जब वह मुस्करायी तो सन्देह की गुंजाइश नहीं रही कि यह नताशा ही है और वह उसे प्यार करता है।

पहले ही क्षण में प्येर ने अनजाने ही नताशा, प्रिंसेस मरीया और सबसे बढ़कर तो यह कि खुद अपने सामने वह राज़ खोल दिया जिसकी स्वयं उसे चेतना नहीं थी। उसका चेहरा खुशी तथा यातनापूर्ण पीड़ा से लाल हो गया। उसने अपनी विह्वलता को छिपाना चाहा। किन्तु जितना ज़्यादा उसने उसे छिपाना चाहा, उतने ही अधिक स्पष्ट रूप में, किन्हीं भी शब्दों से अधिक स्पष्टता के साथ उसने अपने आपसे, नताशा और प्रिंसेस मरीया से यह कह दिया कि वह उसे प्यार करता है।

"नहीं, यह तो अप्रत्याशित ही ऐसा हो जाने के कारण है," प्येर ने सोचा। किन्तु उसने प्रिंसेस मरीया के साथ शुरू की हुई बातचीत को आगे बढ़ाना ही चाहा था कि फिर से नताशा की ओर देखे बिना न रह सका और उसके चेहरे पर पहले से भी ज़्यादा लाली आ गयी तथा उसकी आत्मा को प्रसन्नता और भय की पहले से भी तीव्र विह्वल-ता ने दबोच लिया। उसके शब्द गड़बड़ा गये और उसने अपनी बात अधूरी ही छोड़ दी।

नताशा की ओर प्येर ने इसलिये ध्यान नहीं दिया था कि उसने उसे यहां देखने की आशा ही नहीं की थी। किन्तु वह उसे पहचान इस कारण नहीं पाया था कि उनकी अन्तिम भेंट के बाद के समय में नताशा में बहुत ही ज़्यादा परिवर्तन हो गया था। वह दुबली हो गयी थी और उसका रंग पीला पड़ गया था। मगर उसके पहचान में न आने की यह वजह नहीं थी। प्येर के कमरे में दाखिल होने और नताशा की ओर देखने पर उसके पहचान में न आने का कारण यह था कि उसकी जिन आंखों में पहले हमेशा ही जीवन की खुशी की छिपी-छिपी चमक बनी रहती थी, अब उस खुशी का लेशमात्र भी नहीं था। केवल आंखें थीं, एकटक देखती, दयालु, विषादपूर्ण और मानो प्रश्न पूछती हुईं।

प्येर की घबराहट की प्रतिक्रिया के रूप में नताशा ने किसी भी प्रकार की घबराहट व्यक्त नहीं की। उसने तो सिर्फ़ खुशी ही ज़ाहिर की जिसकी उसके सारे चेहरे पर हल्की-सी चमक फैल गयी।

"नताशा मेरे यहां रहने को आ गयी है," प्रिंसेस मरीया ने कहा। "काउंट और काउंटेस भी कुछ दिनों में आनेवाले हैं। काउंटेस की हालत बहुत ख़राब है। लेकिन नताशा के लिये भी डाक्टर से सलाह-मशविरा लेना ज़रूरी था। इसे तो ज़बर्दस्ती मेरे साथ भेजा गया है।"

"हां, क्या कोई ऐसा परिवार है जो शोकग्रस्त न हो?" प्येर ने नताशा को सम्बोधित करते हुए कहा। "जानती हैं, यह उसी दिन हुआ जिस दिन हमें मुक्त करवाया गया। मैंने उसे देखा था। कितना प्यारा लड़का था!"

नताशा ने उसकी ओर देखा और उसके शब्दों के जवाब में उसकी आंखें और अधिक फैल गयीं तथा उनमें पहले से ज़्यादा चमक आ गयी।

"तसल्ली देने को क्या कहा जा सकता है और क्या सोचा जा सकता है?" प्येर ने अपने आपसे प्रश्न किया। "कुछ भी तो नहीं। ऐसे प्यारे, जीवन के उत्साह से ओत-प्रोत ऐसे लड़के के लिये मौत के मुंह में जाना क्यों ज़रूरी था?"

"हां, हमारे ज़माने में भगवान में विश्वास किये बिना जीना कठिन होता..." प्रिंसेस मरीया ने कहा।

"हां, हां। यह बिल्कुल सच बात है," प्येर ने जल्दी से प्रिंसेस की बात का समर्थन किया।

"भला क्यों?" बहुत ग़ौर से प्येर की आंखों में देखते हुए नताशा ने पूछा।

"तुम भी यह क्या पूछ रही हो?" प्रिंसेस मरीया ने उत्तर दिया। "केवल यह विचार ही कि उस दुनिया में हमारे लिये क्या है..."

प्रिंसेस मरीया के शब्दों को अन्त तक सुने बिना ही नताशा ने फिर प्रश्नसूचक दृष्टि से प्येर की ओर देखा।

"और इसलिये भी," प्येर कहता गया, "कि केवल वही व्यक्ति, जो यह विश्वास करता है कि भगवान हमारा भाग्य-संचालन करते हैं, ऐसे दुख को सह सकता है जैसाकि प्रिंसेस को और... आपको सहना पड़ा है।"

नताशा ने कुछ कहने के लिये अपना मुंह खोल भी लिया था,

लेकिन अचानक चुप रह गयी। प्येर ने नताशा की ओर से अपना मुंह जल्दी से दूसरी तरफ़ कर लिया और पुनः अपने मित्र के जीवन के अन्तिम दिनों के बारे में प्रिंसेस मरीया से पूछ-ताछ करने लगा। प्येर की झेंप-घबराहट अब लगभग जाती रही थी। किन्तु इसके साथ ही वह यह भी अनुभव कर रहा था कि उसकी पहलेवाली सारी आज़ादी भी ख़त्म हो गयी है। वह महसूस कर रहा था कि अब उसके हर शब्द, उसके प्रत्येक कार्य-कलाप को जांचने-परखनेवाला एक पारखी, एक निर्णायक है जिसका निर्णय उसके लिये दुनिया के सभी लोगों से ज़्यादा महत्त्व रखता है। वह अब बोलता था और साथ ही इस बात का भी अनुमान लगाता था कि उसके शब्दों का नताशा पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। वह जान-बूझकर ऐसा कुछ नहीं कह रहा था जो नताशा को अच्छा लगता, किन्तु जो कुछ भी कहता, उसे नताशा की दृष्टि से जांचता-परखता।

जैसाकि हमेशा होता है, प्रिंसेस मरीया मन मारकर ही उस स्थिति का वर्णन करने लगी जिसमें उसने प्रिंस अन्द्रेई को पाया था। किन्तु प्येर के प्रश्नों, उसकी उत्सुकतापूर्ण विह्वल दृष्टि और बेचैनी से कांपते चेहरे ने प्रिंसेस को उन तफ़सीलों में जाने को मजबूर कर दिया जिन्हें वह अपनी आत्मा में सजीव करते हुए डर रही थी।

"हां, हां, तो इसके बाद..." प्येर अपने सारे शरीर को प्रिंसेस मरीया की ओर झुकाये तथा बहुत ध्यान से उसकी बातें सुनते हुए कह रहा था। "हां, हां, तो यह हुआ कि वह शान्त हो गया? उसमें नर्मी आ गयी? वह अपने पूरे तन-मन से हमेशा एक ही चीज़ के लिये यत्न करता रहा था कि उसमें कोई कमी, कोई त्रुटि न रह जाये, इसलिये वह मृत्यु से भयभीत नहीं हो सकता था। उसमें जो त्रुटियां थीं – यदि वे थीं – तो उसके अपने कारण नहीं थीं। तो उसमें नर्मी आ गयी थी?" प्येर ने कहा। "यह कैसा सौभाग्य था कि उसकी आपसे भेंट हो गयी," उसने अचानक नताशा को सम्बोधित करते और अश्रुपूरित आंखों से उसकी ओर देखते हुए कहा।

नताशा का चेहरा सिहर उठा। उसके माथे पर बल पड़ गये और क्षण भर को उसने नज़रें झुका लीं। ज़रा-सी देर तक वह इस दुविधा में रही – कुछ कहे या न कहे।

"हां, यह सौभाग्य था," उसने वक्ष से निकलती भारी आवाज़

में धीमे-धीमे कहा, "मेरे लिये तो निस्संदेह यह सौभाग्य था," वह चुप हो गयी। "और उसने ... उसने ... उसने यह कहा कि जब मैं उसके पास गयी तो उस क्षण वह यही चाह रहा था ..." नताशा की आवाज़ टूट गयी। उसके चेहरे पर लाली दौड़ गयी, उसने घुटनों पर टिके हुए हाथों को ज़ोर से दबाया और सम्भवतः बहुत यत्न से अपने को वश में करते हुए सिर ऊपर उठाया और बोलने लगी :

"जब हम मास्को से रवाना हुए तो हमें कुछ भी मालूम नहीं था। मैं उसके बारे में पूछने की हिम्मत नहीं कर सकती थी। अचानक सोन्या ने मुझसे कहा कि वह हमारे साथ है। मैंने कुछ भी सोचा-विचारा नहीं, मैं इस बात की ज़रा भी कल्पना नहीं कर सकती थी कि उसकी कैसी हालत है – मैं तो केवल उसे देखना चाहती थी, सिर्फ़ यही चाहती थी कि उसके निकट रह सकूं," नताशा कांपते और हांफते हुए कह रही थी। और अपने को टोकने की सम्भावना न देते हुए उसने वह सभी कुछ कह दिया जो अब तक किसी से तथा कभी नहीं कहा था – वह सभी कुछ जो यात्रा और यारोस्लाव्ल में बीते जीवन के तीन सप्ताहों के दौरान उसने अनुभव किया और भोगा था।

प्येर मुंह बाये और अपनी अश्रुपूरित आंखों को उसके चेहरे पर टिकाये उसकी बातें सुनता जा रहा था। नताशा की बातें सुनते हुए वह न तो प्रिंस अन्द्रेई, न मृत्यु और न उसके बारे में ही कुछ सोच रहा था जो वह बता रही थी। वह नताशा को सुन रहा था और उसे उस व्यथा-वेदना के लिये उसपर केवल दया आ रही थी जो यह सब कुछ बताते हुए वह सहन कर रही थी।

अपने आंसुओं पर क़ाबू पाने की कोशिश के कारण नाक-भौंह सिकोड़े हुए प्रिंसेस मरीया नताशा की बग़ल में बैठी थी और पहली बार अपने भाई तथा नताशा के प्यार के अन्तिम दिनों की यह कहानी सुन रही थी।

शायद नताशा के लिये यह यातनापूर्ण, फिर भी सुखद कहानी सुनाना ज़रूरी था।

वह अपने हृदय के गहनतम रहस्यों को मामूली से मामूली तफ़सीलों के साथ मिलाते हुए यह सब बता रही थी और ऐसा लगता था कि इस दास्तान का कभी अन्त नहीं होगा। उसने कई बार एक ही बात को दोहराया।

दरवाज़े के पीछे से डेसाल की आवाज़ सुनायी दी जो यह जानना चाहता था कि क्या नन्हा निकोलाई शुभरात्रि कहने के लिये भीतर आ सकता है या नहीं।

"बस, मुझे इतना ही, यही कुछ कहना था..." नताशा ने अपनी बात समाप्त की। जब नन्हा निकोलाई कमरे में आ रहा था तो वह जल्दी से उठी, दरवाज़े की ओर लगभग भाग गयी, परदे से ढके दरवाज़े से उसका सिर टकरा गया और या तो दर्द या दुख के कारण कराहते हुए वह कमरे से बाहर चली गयी।

प्येर उस दरवाज़े की ओर देख रहा था जिससे नताशा बाहर गयी थी और यह नहीं समझ पा रहा था कि किस कारण वह इतनी बड़ी दुनिया में अचानक अकेला रह गया था।

प्रिंसेस मरीया ने कमरे में आ जानेवाले अपने भतीजे की तरफ़ उसका ध्यान आकर्षित करके उसे बेख़्याली की इस स्थिति से उबारा।

भावुकता की जिस लहर में प्येर इस समय बह रहा था, उसमें प्रिंस अन्द्रेई से बहुत मिलते-जुलते नन्हे निकोलाई के चेहरे ने उसके मन को इतना अधिक छू लिया कि नन्हे निकोलाई को चूमने के बाद वह जल्दी से उठा और जेब से रूमाल निकालकर खिड़की के पास चला गया। उसने प्रिंसेस मरीया से विदा लेकर जाना चाहा, किन्तु प्रिंसेस ने उसे रोक लिया।

"मैं और नताशा तो कभी-कभी रात के दो बजने के बाद तक नहीं सोतीं, सो आप जाने की जल्दी कृपया नहीं कीजिये। मैं भोजन की व्यवस्था करने को कह देती हूं। आप नीचे चलें, हम अभी आती हैं।"

प्येर के कमरे से बाहर जाने के पहले प्रिंसेस ने उससे कहा:

"आज पहली बार उसने उसकी ऐसे चर्चा की है।"

१७

प्येर को एक बड़े, रोशनी से जगमगाते भोजन-कक्ष में ले जाया गया। कुछ मिनट बाद क़दमों की आहट सुनायी दी और प्रिंसेस मरीया तथा नताशा भीतर आयीं। नताशा अब शान्त थी, यद्यपि उसके चेहरे पर फिर से कठोरता का भाव आ गया था। प्रिंसेस मरीया,

नताशा और प्येर समान रूप से उसी तरह का अटपटापन अनुभव कर रहे थे जो गम्भीर और हार्दिक बातचीत के बाद हमेशा अनुभव होता है। ऐसी स्थिति में पहलेवाली बात को जारी रखना सम्भव नहीं होता ; इधर-उधर की व्यर्थ बातें करते हुए शर्म महसूस होती है और चुप रहना बुरा लगता है, क्योंकि मन बात करने को ललकता है और ख़ामोशी ढोंग जैसी प्रतीत होती है। ये तीनों मौन साधे हुए खाने की मेज़ के क़रीब आ गये। नौकरों ने कुर्सियां पीछे हटायीं और फिर आगे बढ़ायीं। प्येर ने ठण्डा नेपकिन हाथ में लिया और इस मौन को भंग करने का इरादा बनाकर नताशा तथा प्रिंसेस मरीया की तरफ़ देखा। इन दोनों ने भी सम्भवतः इसी समय ऐसा ही निर्णय कर लिया था। दोनों की आंखों में जीवन के प्रति सन्तोष की चमक और इस बात की स्वीकृति झलक रही थी कि ज़िन्दगी में दुख-दर्द ही नहीं, ख़ुशी भी है।

"काउंट, आप वोद्का पीते हैं?" प्रिंसेस मरीया ने पूछा और इन शब्दों ने अचानक कुछ समय पहले की परछाइयों को दूर भगा दिया।

"हमें अपने बारे में बताइये," प्रिंसेस मरीया ने कहा, "आपके सम्बन्ध में बड़ी अद्भुत और अनोखी बातें सुनने को मिलती हैं।"

"हां," प्येर ने अब अपनी विनम्रतापूर्ण व्यंग्यात्मक मुस्कान के साथ, जिसका वह अब अभ्यस्त हो गया था, जवाब दिया। "ख़ुद मुझे ही ऐसी-ऐसी अजीब बातें सुनायी जाती हैं जिन्हें मैंने सपने में भी नहीं देखा। मरीया अब्रामोव्ना ने मुझे अपने यहां निमन्त्रित किया और लगातार यही बताती रही कि मेरे साथ क्या कुछ बीती है या बीतनी चाहिये थी। स्तेपान स्तेपानिच ने भी मुझे यह शिक्षा दी कि मुझे अपनी आपबीती किस तरह सुनानी चाहिये। कुल मिलाकर मैंने यह महसूस किया है कि दिलचस्प व्यक्ति होना (मैं अब दिलचस्प व्यक्ति हूं) बहुत सुविधाजनक मामला है। लोग मुझे निमन्त्रित करते हैं और मुझे मेरे ही बारे में बताते हैं।"

नताशा मुस्करायी और उसने कुछ कहना चाहा।

"हमें बताया गया है," प्रिंसेस मरीया बीच में ही बोल पड़ी, "कि मास्को में आपका बीस लाख का नुक़सान हो गया है। क्या यह सच है?"

"मैं तो पहले से तिगुना अमीर हो गया हूं," प्येर ने जवाब दिया। इस चीज़ के बावजूद कि पत्नी के ऋण चुकाने और पुनर्निर्माण का निर्णय करने के फलस्वरूप उसकी स्थिति बदल गयी थी, वह यही कहता रहता था कि पहले की तुलना में तिगुना अमीर हो गया है।

"जो लाभ मैंने निश्चित रूप से प्राप्त किया है, वह है मेरी आज़ादी..." उसने गम्भीरतापूर्वक कहना आरम्भ किया, किन्तु यह सोचकर कि इस समय की बातचीत के लिये यह बहुत ही व्यक्तिगत विषय होगा, उसने अपना इरादा बदल लिया।

"आप निर्माण करेंगे?"

"हां, सावेलिच ऐसा करने को कहता है।"

"यह बताइये कि जब आप मास्को में ही थे तो उस वक़्त आपको काउंटेस के देहान्त के बारे में मालूम नहीं था?" प्रिंसेस मरीया ने पूछा और यह अनुभव करके उसके चेहरे पर झेंप की लाली दौड़ गयी कि प्येर के अपने को आज़ाद कहने के फ़ौरन बाद ही ऐसा प्रश्न पूछकर वह उसके शब्दों को वह अर्थ प्रदान कर रही है जो शायद उनमें निहित नहीं था।

"नहीं," प्येर ने आज़ाद होने के बारे में अपने शब्दों के प्रिंसेस मरीया द्वारा लगाये गये अर्थ में स्पष्टतः कुछ भी अटपटा न अनुभव करते हुए उत्तर दिया। "मुझे ओर्योल में इसका पता चला और आप कल्पना भी नहीं कर सकतीं कि इसका मुझपर कैसा प्रभाव पड़ा। हम आदर्श दम्पति तो थे नहीं," उसने नताशा की ओर देखकर तथा उसके चेहरे पर इस बात की जिज्ञासा पाकर कि अपनी पत्नी के बारे में वह क्या राय ज़ाहिर करेगा, जल्दी से कहा। "किन्तु इस मौत से मुझे बड़ा धक्का लगा। जब दो व्यक्तियों में झगड़ा होता है तो हमेशा दोनों ही दोषी होते हैं। अचानक उस व्यक्ति के सामने, जो इस दुनिया से कूच कर जाता है, अपना दोष-अपराध बहुत ही भयानक हो उठता है। और फिर ऐसी मौत... दोस्तों के बिना, किसी तरह की सान्त्वना, तसल्ली के बिना। मुझे बहुत ही, बहुत ही अफ़सोस है उसके लिये," उसने अपनी बात समाप्त की और नताशा के चेहरे पर प्रसन्नतापूर्ण अनुमोदन का भाव देखकर उसे हर्ष हुआ।

"आप फिर से अकेले हैं और विवाह के लिये अच्छे वर बन गये हैं," प्रिंसेस मरीया ने कहा।

प्येर का चेहरा अचानक लाल-सुर्ख़ हो गया और वह देर तक यही कोशिश करता रहा कि नताशा की ओर न देखे। जब उसने उसकी ओर देखने का साहस किया तो उसे उसके चेहरे पर रूखापन, कठोरता और जैसाकि उसे लगा, तिरस्कार का भाव भी दिखाई दिया।

"जैसे कि हमें बताया गया है, क्या आप सचमुच ही नेपोलियन से मिले थे और आपने उससे बातें की थीं?" प्रिंसेस मरीया ने पूछा।

प्येर खिलखिलाकर हंस दिया।

"एक बार भी नहीं, कभी भी नहीं। सबको हमेशा ऐसा ही लगता है कि बन्दी होने का मतलब नेपोलियन का मेहमान होना है। मैंने तो न केवल उसे देखा ही नहीं, बल्कि उसकी चर्चा भी नहीं सुनी। मैं तो कहीं ज़्यादा घटिया लोगों की संगत में था।"

भोजन समाप्त हो रहा था और प्येर, जिसने शुरू में अपने बन्दी-जीवन का हाल सुनाने से इन्कार कर दिया था, धीरे-धीरे इसके बारे में बताने लगा।

"लेकिन यह तो सच है न कि आप नेपोलियन की हत्या करने को ही मास्को में रहे थे?" नताशा ने ज़रा मुस्कराकर पूछा। "मैंने तो तभी यह अनुमान लगा लिया था, जब सूख़ारेवा मीनार के पास हमारी भेंट हुई थी। आपको याद है न?"

प्येर ने स्वीकार किया कि यह सच है। इस प्रश्न तथा प्रिंसेस मरीया और विशेषकर नताशा के प्रश्नों से निर्देशित होता हुआ वह धीरे-धीरे अपने सारे कारनामे सुनाने लगा।

आरम्भ में उस व्यंग्यात्मक और विनम्र ढंग से, जो वह अब सभी लोगों तथा विशेषत: अपने मामले में अपनाता था, यह सब सुनाता रहा, किन्तु बाद में, जब उन दुख-दर्दों और भयानक मुसीबतों की चर्चा करने लगा जिनका साक्षी बना था तो अनजाने ही भावनाओं के प्रवाह में बह गया और अपनी विह्वलता को दबानेवाले ऐसे व्यक्ति की भांति बोलने लगा जो अपनी कल्पना में उन स्मृतियों को फिर से जीता है जिन्होंने उसके मन पर गहरी छाप अंकित की होती है।

प्रिंसेस मरीया मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कभी प्येर तो कभी नताशा की ओर देखती। इस सारी कहानी में उसे प्येर और उसकी नेकी को ही झलक मिल रही थी। नताशा हथेली पर गाल टिकाये हुए प्येर को एकटक देख रही थी, उसके वर्णन के अनुसार उसके चेहरे का भाव

लगातार बदलता जाता था और उसके साथ वह सम्भवतः उस सभी कुछ को अनुभव कर रही थी जो वह बता रहा था। न केवल उसकी दृष्टि, बल्कि उसके द्वारा व्यक्त किये जानेवाले विस्मय, भय, आदि के उद्गार और जब-तब पूछे जानेवाले छोटे-मोटे प्रश्न भी प्येर को यह स्पष्ट कर रहे थे कि वह वही कुछ समझ रही है जो वह व्यक्त करना चाहता था। साफ़ नज़र आ रहा था कि नताशा न केवल वही समझ रही थी जो वह बता रहा था, बल्कि वह भी जो वह कहना चाहता था, मगर जिसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रहा था। उस बच्ची और नारी से सम्बन्धित घटना को, जिनकी प्येर ने रक्षा की थी और जिसके लिये उसे गिरफ़्तार कर लिया गया था, उसने ऐसे बयान किया :

"वह तो बहुत ही भयानक दृश्य था, बच्चों को असहाय छोड़ दिया गया था, उनमें से कुछ को आग में... मेरे सामने ही एक बच्चे को आग में से निकाला गया... औरतों के बदन पर से उनकी चीज़ें झपट ली जाती थीं, उनके कानों में से झुमके निकाल लिये जाते थे..."

प्येर के चेहरे पर लाली दौड़ गयी और वह झिझक गया।

"इसी समय फ़्रांसीसियों का एक गश्ती सैनिक-दल आ गया और उन सभी मर्दों को, जो लूट-मार नहीं कर रहे थे, गिरफ़्तार करके ले गये। मुझे भी।"

"आप निश्चय ही सब कुछ नहीं बता रहे हैं, आपने ज़रूर कुछ किया होगा..." नताशा ने कहा और चुप हो गयी, "कोई अच्छी बात की होगी।"

प्येर आगे कहता चला गया। जब उसने मृत्यु-दण्ड की घटना सुनायी तो भयानक ब्योरों से बचना चाहा, किन्तु नताशा ने ज़िद्द की कि वह उनसे कोई भी तफ़सील न छिपाये।

प्येर ने करातायेव की चर्चा शुरू की (वह मेज़ से उठकर इधर-उधर आने-जाने लगा था और नताशा उसे देखती जा रही थी), मगर रुक गया।

"नहीं, आप यह नहीं समझ सकतीं कि इस अनपढ़ आदमी, इस सीधे-सादे व्यक्ति से मैंने क्या कुछ सीखा।"

"नहीं, नहीं, आप ज़रूर बताइये," नताशा ने कहा। "वह अब कहां है?"

"उसको तो उन्होंने लगभग मेरे सामने ही मार डाला था।" और प्येर फ़्रांसीसियों के पीछे हटने के अन्तिम समय तथा कारातायेव की बीमारी (उसकी आवाज़ लगातार कांपती जाती थी) और मृत्यु की चर्चा करने लगा।

प्येर अपने कार्य-कलापों का ऐसे वर्णन कर रहा था जैसे उसने पहले कभी नहीं किया था और जिस रूप में उसने उनके बारे में खुद कभी नहीं सोचा था। उसने जो कुछ सहा-भोगा था, उस सबमें वह मानो एक नया अर्थ देख रहा था। अब, जब वह यह सब कुछ नताशा को बता रहा था तो ऐसी अनोखी खुशी महसूस कर रहा था जो पुरुष उस समय अनुभव करते हैं जब नारियां उनकी बातें सुनती हैं – **चतुर** नारियां नहीं जो ऐसी बातें सुनते हुए या तो इसलिये उन्हें ग्रहण करती हैं कि अपने दिल-दिमाग़ को समृद्ध बना लें और अवसर मिलते ही उन्हें दोहरा दें या फिर इसलिये कि जो कुछ उन्हें बताया जाता है, उसे अपने विचारों पर लागू करें तथा अपने दिमाग़ की छोटी-सी कर्मशाला में उसे निखार-संवार करके झटपट अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण टिप्पणियां प्रस्तुत कर दें, बल्कि वह खुशी जो ऐसी असली औरतें प्रदान करती हैं जिनमें पुरुषों द्वारा पेश किये जानेवाले उनके रूप के सबसे अच्छे तत्त्वों को चुनने और ग्रहण करने की क्षमता होती है। नताशा इस बारे में सजग न होते हुए प्येर पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित किये थी – वह उसके एक भी शब्द, आवाज़ के एक भी उतार-चढ़ाव, उसकी दृष्टि, चेहरे की मांस-पेशियों की सिहरन और हाव-भाव को अपनी नज़र से नहीं चूकने दे रही थी। वह प्येर के मुंह से अभी तक न निकले शब्दों को पहले ही समझ जाती थी, अपने खुले हृदय में उन्हें स्थान देती थी और प्येर की आत्मिक हलचल के गुप्त अर्थ का अनुमान लगाती थी।

प्रिंसेस मरीया प्येर की इस सारी कहानी को समझ रही थी, उसके लिये सहानुभूति अनुभव कर रही थी, किन्तु अब वह एक नयी ही चीज़ देख रही थी और उसी में पूरी तरह से उसका ध्यान लगा हुआ था; उसे प्येर और नताशा के बीच प्यार तथा सुखी जीवन की सम्भावना नज़र आ रही थी। उसके दिमाग़ में पहली बार आनेवाले इस विचार से उसकी आत्मा खिल उठी।

रात के तीन बज चुके थे। नौकर उदास और कठोर मुख-मुद्रा

बनाये हुए मोमबत्तियां बदलने को आते, लेकिन उनकी तरफ़ कोई भी ध्यान नहीं देता था।

प्येर ने अपनी कहानी समाप्त की। नताशा चमकती और उत्सुक नज़रों से उसे बहुत ग़ौर से तथा एकटक देखती जा रही थी मानो किसी ऐसी बात को समझना चाहती हो जो शायद उसने न कही हो। प्येर लज्जा और प्रसन्नतापूर्ण घबराहट अनुभव करते हुए जब-तब नताशा की ओर देख लेता और यह सोचता कि बातचीत का विषय बदलने के लिये अब वह क्या कहे। प्रिंसेस मरीया मौन साधे थी। किसी के दिमाग़ में भी यह बात नहीं आ रही थी कि रात के तीन बज गये हैं और सोने का वक़्त हो गया है।

"लोग दुर्भाग्य, दुख-मुसीबतों की चर्चा करते हैं," प्येर ने कहा। "लेकिन अगर अभी, इसी क्षण मुझसे यह पूछा जाता कि तुम बन्दी बनने से पहले जैसे थे, वैसे ही रहना चाहते हो या फिर से उस सभी कुछ को सहना-भोगना चाहते हो जो मैंने सहा-भोगा तो मेरा यही जवाब होता – भगवान के लिये मुझे फिर से बन्दी बना दो और खाने को घोड़े का मांस दो। हम यह समझते हैं कि जैसे ही हमें उस लीक से हटा दिया जाता है जिसके हम आदी हो जाते हैं, वैसे ही सब कुछ समाप्त हो जाता है। लेकिन यहीं से तो कुछ नया और अच्छा शुरू होता है। जब तक जीवन है, सुख-सौभाग्य भी है। आगे बहुत कुछ है, बहुत कुछ है। यह मैं आपसे कह रहा हूं," उसने नताशा को सम्बोधित किया।

"हां, हां," उसने बिल्कुल दूसरी ही भावना की लहर में बहते हुए उत्तर दिया, "मैंने भी उस सभी को फिर से जीने, फिर से भोगने के अतिरिक्त और कुछ न चाहा होता।"

प्येर ने बहुत ग़ौर से नताशा को देखा।

"हां, मैंने और कुछ भी न चाहा होता," नताशा ने अपने कथन की फिर से पुष्टि की।

"यह झूठ है, यह झूठ है," प्येर चिल्ला उठा। "इसमें मेरा कोई दोष नहीं है कि मैं ज़िन्दा हूं और जीना चाहता हूं; और आप भी।"

अचानक नताशा ने हाथों से सिर थाम लिया और रो पड़ी।

"क्या बात है नताशा?" प्रिंसेस मरीया ने पूछा।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं," वह आंसुओं के बीच से प्येर की ओर देखकर मुस्करा दी। "शुभरात्रि, अब सोना चाहिये।"

प्येर ने उठकर विदा ली।

हर रात की तरह ये दोनों प्रिंसेस मरीया के शयन-कक्ष में आ गयीं। प्येर ने जो कुछ बताया था, इन्होंने उसकी चर्चा की। प्रिंसेस मरीया ने प्येर के बारे में अपनी राय ज़ाहिर नहीं की। नताशा ने भी उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा।

"तो अब मैं अपने कमरे में जाती हूं," नताशा बोली। "एक बात कहूं, मुझे अक्सर यह शंका होती है कि अपनी भावना को अपवित्र न करने के भय से हम **उसका** (प्रिंस अन्द्रेई) का ज़िक्र नहीं करती हैं और उसे भूल जाती हैं।"

प्रिंसेस मरीया ने गहरी उसांस ली और ऐसा करके यह स्वीकार कर लिया कि नताशा की बात सही है। किन्तु शब्दों में उसने उसके साथ अपनी सहमति प्रकट नहीं की।

"क्या उसे भूलना सम्भव है?" उसने कहा।

"मुझे आज सब कुछ कह देने से ख़ुशी हुई। मन पर भारी भी गुज़री, तकलीफ़ भी हुई और ख़ुशी भी। बहुत ख़ुशी हुई," नताशा कह उठी, "मुझे यक़ीन है कि वह उसे प्यार करता था। इसीलिये तो मैंने उसके सामने अपना दिल खोलकर रख दिया। कुछ बुरा तो नहीं किया मैंने उसे यह सब बताकर?" नताशा ने सहसा लज्जारुण होते हुए पूछा।

"प्येर को बताकर? ओह, नहीं! कैसा लाजवाब आदमी है वह," प्रिंसेस मरीया ने कहा।

"जानती हो, मरीया," नताशा अपने होंठों पर अचानक ऐसी शरारत भरी मुस्कान लाते हुए कह उठी, जैसी मरीया ने बहुत अरसे से उसके चेहरे पर नहीं देखी थी। "वह तो ऐसे निखर गया है, चिकना-चिकना और ताज़ा-ताज़ा हो गया है मानो नहाकर अभी-अभी ग़ुसल-ख़ाने से बाहर आया हो। तुम मेरी बात समझ रही हो न? नैतिक रूप से। मैं ठीक कह रही हूं?"

"हां," मरीया ने सहमति प्रकट की, "वह बहुत बेहतर हो गया है।"

"और उसका छोटा-सा फ़्रॉक-कोट तथा ढंग से कटे बाल। एकदम ऐसे लगता है मानो गुसलखाने से बाहर आया हो ... कभी-कभी पापा ..."

"मैं इस चीज़ को समझ सकती हूं कि **वह** (प्रिंस अन्द्रेई) अन्य किसी भी व्यक्ति की तुलना में क्यों इसे इतना अधिक प्यार करता था," प्रिंसेस मरीया ने कहा।

"हां, और वह उससे बिल्कुल भिन्न है। कहते हैं कि एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न होने पर पुरुषों में ज़्यादा अच्छी दोस्ती होती है। शायद यह सच है। इसमें और उसमें तो कुछ भी समानता नहीं है न?"

"हां, और बहुत ही लाजवाब आदमी है यह।"

"अच्छा, तो शुभरात्रि," नताशा ने कहा और शरारत भरी वही मुस्कान उसके चेहरे पर मानो चिपककर रह गयी।

१८

प्येर बहुत देर तक सो नहीं पाया। वह कमरे में इधर-उधर आ-जा रहा था, कभी किसी कठिन समस्या पर सोच-विचार करते हुए त्योरी चढ़ा लेता, कभी सिहरकर अचानक कंधे झटकता और कभी ख़ुशी से मुस्करा देता।

वह प्रिंस अन्द्रेई और नताशा तथा उनके प्यार के बारे में सोच रहा था। कभी तो नताशा के अतीत के विचार से उसे ईर्ष्या होती, कभी वह इसके लिये अपने को भला-बुरा कहता और कभी क्षमा करता। सुबह के छः बज चुके थे, लेकिन वह कमरे में चक्कर ही काटता जा रहा था।

"तो क्या किया जाये। अगर और कोई चारा नहीं है तो क्या किया जा सकता है! मतलब यह है कि ऐसा ही करना चाहिये," उसने अपने आपसे कहा और जल्दी से कपड़े उतारकर बिस्तर पर चला गया। वह ख़ुश तथा विह्वल, मगर सन्देह-शंका और दुविधा से मुक्त था।

"यह सौभाग्य बेशक बहुत अजीब और असम्भव प्रतीत होता है, फिर भी मुझे इस बात के लिये अपनी पूरी कोशिश करनी चाहिये

कि हम पति-पत्नी बन जायें," उसने अपने आपसे कहा।

प्येर ने नताशा से भेंट होने के कुछ दिन पहले ही शुक्रवार को पीटर्सबर्ग जाने का निर्णय कर लिया था। बृहस्पतिवार को जब उसकी आंख खुली तो सावेलिच सफ़र के लिये सामान बांधने का आदेश लेने को उसके पास आया।

"पीटर्सबर्ग जाने के लिये? यह पीटर्सबर्ग क्या है? कौन है पीटर्सबर्ग में?" उसने अनजाने ही, मगर मन ही मन अपने आपसे पूछा। "हां, बहुत पहले, जब यह सब नहीं हुआ था, मैंने किसी कारण पीटर्सबर्ग जाने की बात सोची थी," उसे याद आया। "लेकिन किसलिये? सम्भव है कि मैं जाऊं भी। ओह, यह कितना दयालु, कितना ध्यान रखनेवाला है, कैसे सब कुछ याद रखता है!" सावेलिच के बुढ़ाये चेहरे को देखते हुए उसने सोचा। "और कितनी प्यारी मुस्कान है इसकी!"

"तो क्या तुम अब भी मुक्त नहीं होना चाहते?" प्येर ने उससे पूछा।

"हुज़ूर, क्या ज़रूरत है मुझे मुक्त होने की? जब बुज़ुर्ग काउंट, आपके पिता जी जीवित थे, तब भी हम मज़े में रहे और आपके वक़्त में भी हमें कोई तकलीफ़ नहीं।"

"लेकिन तुम्हारे बच्चे?"

"बच्चों को भी कोई तकलीफ़ नहीं होगी आप जैसे मालिक के साथ रहने में।"

"मगर मेरे वारिस?" प्येर ने पूछा। "अगर मैं शादी कर लूं तो... ऐसा हो तो सकता है," उसने बरबस मुस्कराते हुए इतना और जोड़ दिया।

"अगर मैं ऐसा कहने की जुर्रत करूं तो यह तो बहुत ही अच्छी बात होगी, हुज़ूर।"

"कितना आसान मामला है यह उसके लिये," प्येर ने सोचा। "वह नहीं जानता कि कितना भयानक, कितना ख़तरनाक है यह। बहुत जल्दी या बहुत देर से... भयानक है!"

"तो क्या हुक्म है हुज़ूर का? कल जा रहे हैं?" सावेलिच ने पूछा।

"नहीं, मैं कुछ समय के लिये स्थगित कर रहा हूं। मैं बाद में

तुम्हें बताऊंगा। तुम्हें परेशानी हुई, इसके लिये माफ़ी चाहता हूं," प्येर ने कहा और सावेलिच्च को मुस्कराते हुए देखकर सोचा – "लेकिन कैसी अजीब बात है, उसे यह मालूम नहीं कि मेरे लिये अब पीटर्सबर्ग का अस्तित्व नहीं रहा और सबसे पहले तो 'इस मामले' को तय करना ज़रूरी है। वैसे शायद उसे मालूम है, मगर वह ढोंग कर रहा है। मैं उससे बात करूं? यह मालूम करूं कि इस बारे में उसका क्या ख़्याल है?" प्येर ने सोचा। "लेकिन नहीं, फिर कभी ऐसा करूंगा।"

नाश्ते के वक़्त प्येर ने अपनी चचेरी बहन, प्रिंसेस को बताया कि पिछले दिन वह प्रिंसेस मरीया के यहां गया था और क्या वह कल्पना कर सकती है कि वहां उसकी किससे भेंट हुई? – नताशा रोस्तोवा से।

प्रिंसेस ने ऐसा दिखावा किया कि इस समाचार में कुछ भी ख़ास बात नहीं है। यह तो बिल्कुल वैसे ही है, जैसे कि वह आन्ना सेम्योनोव्ना से मिला हो।

"आप उससे परिचित हैं?" प्येर ने जानना चाहा।

"मैंने प्रिंसेस को देखा है," उसने जवाब दिया। "मैंने सुना है कि जवान रोस्तोव के साथ उसकी सगाई की जा रही है। रोस्तोवों के लिये यह बहुत ही अच्छा होगा – सुनने में आया है कि उनकी माली हालत बिल्कुल ख़राब हो गयी है।"

"नहीं, मैं यह जानना चाहता हूं कि आप नताशा रोस्तोवा से परिचित हैं?"

"तब उसका वह क़िस्सा सुना था। बहुत अफ़सोस की बात है।"

"या तो यह समझ नहीं रही या फिर ढोंग कर रही है," प्येर ने सोचा। "यही ज़्यादा अच्छा होगा कि इससे बात न की जाये।"

प्रिंसेस ने भी प्येर के लिये सफ़र के दौरान खाने-पीने की चीज़ों की व्यवस्था की थी।

"कितने दयालु हैं ये सभी," प्येर सोच रहा था, "अब, जबकि इस सब में इनकी दिलचस्पी नहीं हो सकती, ये सब इतनी तकलीफ़ उठा रहे हैं और सबसे ज़्यादा हैरानी की बात तो यह है कि यह सब मेरे लिये ही किया जा रहा है।"

इसी दिन एक बड़ा पुलिस-अफ़सर प्येर के पास आया। उसने प्येर से कहा कि वह भरोसे के किसी आदमी को ग्रानोविट भवन में

भेज दे जहां मकान-मालिकों को उनकी लूटी गयी चीज़ें लौटायी जाने-वाली थीं।

"और यह भी," पुलिस-अफ़सर के चेहरे को देखते हुए प्येर सोच रहा था, "कितना भला, सुन्दर और दयालु अफ़सर है! अब ऐसी छोटी-मोटी बातों की चिन्ता करता है। फिर भी लोग कहते हैं कि वह बेईमान है और मौके का फ़ायदा उठाकर चीज़ें उड़ा ले जाता है। कैसी बेतुकी बात है! लेकिन अगर सोचा जाये तो भला वह ऐसा क्यों न करे? उसे तो यही सिखाया गया है। सभी ऐसा करते हैं। लेकिन कितना प्यारा और दयालु चेहरा है इसका और यह मेरी ओर देखते हुए मुस्करा रहा है।"

प्येर दिन के भोजन के लिये प्रिंसेस मरीया के यहां गया।

गलियों-सड़कों पर से जाती हुई उसकी बग्घी जब जले घरों के खण्डहरों के पास से गुज़रती तो वह इनके सौन्दर्य से चकित रह जाता। जले हुए मुहल्लों में घरों की चिमनियां और टूटी-गिरी दीवारें एक-दूसरी को छिपाती हुई दूर-दूर तक फैली थीं और उसे राइन तथा कोलिज़ीयम* के सुन्दर दृश्य की याद दिलाती थीं। किराये की बग्घियों के कोचवान और इन बग्घियों में जानेवाले लोग, बढ़ई, खोमचोंवाली औरतें और दुकानदार – ये सभी खुशी भरे तथा चमकते चेहरों से प्येर की ओर देखते और यह कहते प्रतीत होते – "अरे, यह रहा वह! देखेंगे कि इसका क्या होता है।"

प्रिंसेस मरीया के घर में प्रवेश करते समय प्येर के मन में इस सन्देह ने सिर उठाया कि क्या वह सचमुच ही पिछले दिन यहां आया था, नताशा से मिला था और उसने उससे बातें की थीं। "शायद यह मेरी कल्पना ही हो? सम्भव है कि मैं अन्दर जाऊं और वहां मुझे कोई भी नज़र न आये।" किन्तु कमरे में दाखिल होने के समय ही अपनी आज़ादी के जाते रहने की चेतना के कारण अपने पूरे तन-मन से उसने उसकी उपस्थिति को अनुभव कर लिया। वह हल्की-फुल्की चुन्नटोंवाला वही काला फ़्रॉक पहने थी, उसका केश-विन्यास भी पिछले दिन जैसा था, किन्तु आज वह बिल्कुल भिन्न थी। अगर

---

* राइन नदी के तट पर मध्ययुगीन दुर्गों के अवशेष सुन्दरता के लिये सुरक्षित रखे गये हैं। कोलिज़ीयम – प्राचीन रोम की एक इमारत, जिसकी बाहरी दीवारें और भीतर के कुछ भाग भी बचे हुए हैं। – सं०

पिछले दिन उस वक्त भी, जब वह कमरे में दाखिल हुआ था, वह उस समय भी ऐसी ही होती तो उसने उसे फौरन पहचान लिया होता।

प्येर उसे लगभग बच्ची और फिर जैसे प्रिंस अन्द्रेई की मंगेतर के रूप में जानता था, वह वैसी ही थी। उसकी आंखों में खुशी भरी तथा प्रश्नसूचक चमक थी और चेहरे पर स्नेहपूर्ण तथा शरारत का सा अजीब भाव था।

प्येर ने यहां दिन का भोजन किया और शायद पूरी शाम यहीं बैठा रहता। किन्तु प्रिंसेस मरीया सन्ध्या की प्रार्थना में जा रही थीं और इसलिये प्येर भी इनके साथ ही चला गया।

अगले रोज़ प्येर जल्दी ही यहां आ गया, उसने दिन का खाना खाया और सारी शाम यहीं बैठा रहा। प्रिंसेस मरीया और नताशा प्येर के आने से बेशक खुश थी, बेशक प्येर की ज़िन्दगी की सारी दिलचस्पी अब इसी घर पर केन्द्रित थी, फिर भी शाम होते न होते इनकी बातों का भण्डार खत्म हो चुका था और ये कभी एक तो कभी किसी दूसरे मामूली-से विषय की चर्चा चलाते तथा अक्सर इनके बीच बातचीत ठप्प हो जाती। इस शाम को प्येर इतनी अधिक देर तक बैठा रहा कि प्रिंसेस मरीया और नताशा सम्भवतः इसी चीज़ की प्रतीक्षा करते हुए एक-दूसरी की आंखों में देखती कि वह जल्द ही चला जायेगा या नहीं। प्येर ने यह देखा, लेकिन फिर भी जा नहीं सका। उसे परेशानी हो रही थी, वह अटपटापन महसूस कर रहा था, फिर भी बैठा हुआ था, क्योंकि जा **नहीं सकता था।**

इस स्थिति का अन्त होते न देखकर प्रिंसेस मरीया ही पहले उठी और सिर दर्द का बहाना करके विदा लेने लगी।

"तो कल आप पीटर्सबर्ग जा रहे हैं?" उसने पूछा।

"नहीं, मैं नहीं जा रहा हूं," प्येर ने हैरान होते और मानो कुछ बुरा मानते हुए जल्दी से जवाब दिया। "पीटर्सबर्ग जा रहा हूं, यही कहा न आपने? कल। लेकिन मैं आपसे विदा नहीं ले रहा हूं। शायद आप मुझे कोई काम सौंपना चाहें, मैं यही जानने के लिये आऊंगा," उसने प्रिंसेस मरीया के सामने खड़े रहते, लज्जारुण होते, मगर न जाते हुए कहा।

प्येर से हाथ मिलाकर नताशा कमरे से बाहर चली गयी। प्रिंसेस मरीया जाने के बजाय एक आरामकुर्सी पर बैठ गयी और उसने अपनी

गहन और चमकती नज़र से प्येर को बहुत ध्यान तथा कड़ाई से देखा। कुछ देर पहले उसने स्पष्टतः जो थकान ज़ाहिर की थी, वह अब बिल्कुल ग़ायब हो गयी थी। उसने गहरी और लम्बी सांस ली मानो अपने को देर तक बात करने को तैयार कर रही हो।

नताशा के जाते ही प्येर की सारी घबराहट और अटपटापन हवा हो गया तथा उत्सुकतापूर्ण विह्वलता ने उनका स्थान ले लिया। उसने जल्दी से अपनी कुर्सी प्रिंसेस मरीया के नज़दीक कर ली।

"हां, मैं आपसे यह कहना चाहता था," शब्दों को व्यक्त करती-सी प्रिंसेस की दृष्टि का जवाब देते हुए प्येर ने बोलना शुरू किया। "प्रिंसेस, मेरी मदद कीजिये। मैं क्या करूं? क्या मैं कोई आशा कर सकता हूं? प्रिंसेस, मेरी अच्छी दोस्त, आप मेरी पूरी बात सुन लें। मैं सब कुछ जानता हूं। मुझे मालूम है कि मैं उसके लायक़ नहीं हूं। मैं जानता हूं कि ऐसी चर्चा चलाने का यह ठीक वक़्त नहीं है। लेकिन मैं उसका भाई बनना चाहता हूं। नहीं, ऐसा नहीं है... मैं यह नहीं चाहता, यह नहीं कर सकता..."

वह चुप हो गया और उसने अपने चेहरे और आंखों को हाथों से मला।

"तो मैं यह कहना चाहता हूं," उसने सम्भवतः सुसम्बद्ध रूप से अपनी बात कहने के लिये बहुत यत्न करते हुए अपना कथन आगे बढ़ाया। "मुझे मालूम नहीं कि मैं कब से उसे प्यार करता हूं। किन्तु मैं जीवन भर केवल उसे, मात्र उसी को प्यार करता रहा हूं और इतना अधिक प्यार करता हूं कि उसके बिना अपनी ज़िन्दगी की कल्पना ही नहीं कर सकता। इस वक़्त मैं उससे यह कहने की जुर्रत नहीं कर सकता कि वह मेरी पत्नी बन जाये। मगर यह विचार कि शायद वह मेरी बन सकती है और मैं इस सम्भावना को... इस सम्भावना को... खो सकता हूं, मेरे लिये यह बहुत भयानक है। आप बताइये कि क्या मैं आशा कर सकता हूं? मुझे यह बताइये कि मैं क्या करूं? प्यारी प्रिंसेस," उसने कुछ देर चुप रहने और प्रिंसेस के कोई जवाब न देने पर उसका हाथ छूते हुए कहा।

"आपने मुझसे जो कुछ कहा है, मैं उसके बारे में सोच रही हूं," प्रिंसेस ने उत्तर दिया। "मैं आपको अपना विचार बताती हूं। आपका यह कहना बिल्कुल सही है कि इस वक़्त उससे प्यार की चर्चा करना..."

प्रिंसेस ने वाक्य पूरा नहीं किया। वह कहना चाहती थी कि इस वक़्त उससे प्यार की चर्चा करना असम्भव है। किन्तु वह रुक इसलिये गयी कि पिछले दो दिनों में नताशा में अचानक ही जो परिवर्तन हो गया था, उससे उसने यह समझ लिया था कि अगर प्येर उसके सामने अपना प्रणय-निवेदन कर दे तो वह न केवल बुरा नहीं मानेगी, बल्कि इसी का तो उसे बड़ी बेक़रारी से इन्तज़ार है।

"इस वक़्त उससे प्यार की चर्चा करना... ठीक नहीं होगा," प्रिंसेस मरीया ने फिर भी यही कहा।

"लेकिन मैं क्या करूं?"

"आप यह मामला मुझपर छोड़ दीजिये," प्रिंसेस मरीया ने कहा। "मैं जानती हूं..."

प्येर प्रिंसेस मरीया की आंखों में देख रहा था।

"आप पर? आप पर छोड़ दूं..." उसने कहा।

"मैं जानती हूं कि वह आपको प्यार करती है... प्यार करने लगेगी," प्रिंसेस मरीया ने अपने को सुधारा।

प्रिंसेस मरीया ने ये शब्द कहे ही थे कि प्येर बहुत ही विह्वल-से चेहरे के साथ उछलकर खड़ा हो गया और उसने प्रिंसेस मरीया का हाथ पकड़ लिया।

"किसलिये आप ऐसा सोचती हैं? आपका ख़्याल है कि मैं उम्मीद कर सकता हूं? आप ऐसा सोचती हैं?!"

"हां, मैं ऐसा ही सोचती हूं," प्रिंसेस मरीया ने मुस्कराते हुए जवाब दिया। "नताशा के माता-पिता को लिख दीजिये। बाक़ी सब कुछ मुझपर छोड़ दीजिये। ठीक मौक़ा आने पर मैं उससे यह बात कह दूंगी। मैं ख़ुद भी यही चाहती हूं। और मेरा दिल कहता है कि ऐसा ही होगा।"

"नहीं, यह सम्भव नहीं! ओह, कितना ख़ुश हूं मैं! लेकिन यह सम्भव नहीं... कितना ख़ुश हूं मैं! नहीं, यह असम्भव है!" प्रिंसेस मरीया के हाथ चूमते हुए प्येर कहता जा रहा था।

"आप पीटर्सबर्ग चले जाइये, यही ज़्यादा अच्छा होगा। वक़्त आने पर मैं आपको ख़त लिख दूंगी," प्रिंसेस ने सलाह दी।

"पीटर्सबर्ग चला जाऊं? हां, ऐसा करना ठीक होगा। मगर मैं कल तो आपके यहां आ सकता हूं न?"

अगले दिन प्येर विदा लेने के लिये आया। पिछले दिनों की तुलना में नताशा आज कुछ बुझी-बुझी थी। किन्तु इस दिन नताशा की आंखों में कभी-कभी झांकने पर प्येर को यह अनुभव होता कि वह मानो घुलता जा रहा है, कि न तो उसका तथा न नताशा का ही अस्तित्व रहा है और केवल सुख-सौभाग्य की भावना ही शेष रह गयी है। "क्या यह सम्भव है? नहीं, यह सम्भव नहीं," नताशा की हर नज़र, हर हाव-भाव और हर शब्द के उत्तर में, जिनसे उसकी आत्मा हर्ष-विभोर हो उठती थी, वह अपने आपसे कहता।

नताशा से विदा लेते समय जब उसने उसका दुबला-पतला हाथ अपने हाथ में लिया तो अनजाने ही उसे कुछ अधिक देर तक अपने हाथ में थामे रहा।

"क्या यह मुमकिन है कि यह हाथ, यह चेहरा, ये आंखें, नारी-सौन्दर्य की यह निधि, जो इस समय मेरे लिये बेगानी है, क्या ऐसा मुमकिन है कि यह सब हमेशा को मेरा, सामान्य हो जायेगा जैसे मैं खुद अपने लिये हूं? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता! .."

"तो नमस्ते, काउंट," नताशा ने ऊंची आवाज़ में कहा। "बहुत ही प्रतीक्षा रहेगी मुझे आपकी," उसने फुसफुसाते हुए इतना और जोड़ दिया।

नताशा के यही साधारण शब्द और इनके साथ व्यक्त होनेवाली उसकी दृष्टि तथा चेहरे का भाव दो महीने तक प्येर की अन्तहीन स्मृतियों, स्पष्टीकरणों और सुखद दिवास्वप्नों का आधार बने रहे। "बहुत ही प्रतीक्षा रहेगी मुझे आपकी... हां, हां, कैसे कहा था उसने? हां, बहुत ही प्रतीक्षा रहेगी मुझे आपकी। ओह, कितना खुशक़िस्मत हूं मैं! यह क्या हुआ है मुझे, कितना खुश हूं मैं!" प्येर अपने आपसे कहता रहता।

१९

एलेन के साथ प्येर की सगाई होने के समय उसकी आत्मा में जिस तरह की उथल-पुथल होती रही थी, अब वह उस प्रकार की कोई भी चीज़ अनुभव नहीं करता था।

उस समय की भांति यातनापूर्ण लज्जा अनुभव करते हुए, वह अपने द्वारा कहे गये शब्दों को नहीं दोहराता था या फिर अपने आपसे ऐसा नहीं कहता था – "ओह, मैंने यह क्यों नहीं कहा, किसलिये, किसलिये मैंने उस वक़्त उससे यह कहा – 'मैं आपको प्यार करता हूं'"? इसके विपरीत, अब वह नताशा के चेहरे के हर भाव, उसकी मुस्कान को अपनी कल्पना में सजीव करते हुए, उसके प्रत्येक शब्द, अपने हर शब्द को दोहराता, न तो कुछ कम करना और न बढ़ाना चाहता, सिर्फ़ इन्हें दोहराना ही चाहता। उसने जो कुछ किया है, वह अच्छा है या बुरा है, इसके बारे में सन्देह की छाया तक नहीं थी। कभी-कभी केवल एक ही भयानक शंका उसके मन में आती थी। क्या यह सब कुछ सपना तो नहीं था? प्रिंसेस मरीया से कहीं भूल तो नहीं हो गयी? कहीं मैं ज़रूरत से ज़्यादा घमण्ड और आत्मविश्वास से तो काम नहीं ले रहा हूं? मैं विश्वास कर रहा हू और अचानक शायद यही होगा – प्रिंसेस मरीया उससे बात करेगी और वह मुस्कराकर जवाब देगी – "कैसी अजीब बात है! ज़रूर उसे ग़लतफ़हमी हुई है। क्या वह यह नहीं जानता कि वह नश्वर मानव है, साधारण मानव है, जबकि मैं?.. मैं तो बिल्कुल भिन्न हूं, कहीं श्रेष्ठ हूं।"

केवल यही शंका प्येर के मन में अक्सर आती। अब वह किसी भी तरह की योजनायें न बनाता। अपनी यह भावी ख़ुशी उसे इतनी असम्भव लगती थी कि अगर यह मिल जाये तो इसके पाने के बाद और कुछ बाक़ी ही नहीं रह जायेगा। सब कुछ ख़त्म हो जायेगा।

प्येर के मन पर ऐसा उल्लासपूर्ण और अप्रत्याशित उन्माद हावी हो गया था, जिसकी उसने अपने से कभी आशा ही नहीं की थी। उसे लगता था कि न केवल उसके लिये, बल्कि सारी दुनिया के लिये ही जीवन का अर्थ नताशा के प्रति उसके प्यार और उसके प्रति नताशा के प्यार की सम्भावना में निहित है। कभी-कभी उसे लगता कि सभी लोग केवल उसकी भावी ख़ुशी के विचार में ही खोये हुए हैं। कभी-कभी उसे ऐसा प्रतीत होता कि सब लोग उसकी भांति ही ख़ुश हो रहे हैं और किन्हीं दूसरी दिलचस्पियों में व्यस्त होने का ढोंग करके इस ख़ुशी को छिपाने की कोशिश करते हैं। हर शब्द और हर हाव-भाव में वह अपने सौभाग्य का संकेत देखता। वह अपने से मिलनेवाले लोगों को

अपनी अर्थपूर्ण तथा ख़ुशी भरी नज़रों तथा मुस्कानों से हैरान कर देता जो मानो यह ज़ाहिर करतीं कि उनके बीच किसी बात पर आपसी सहमति हो चुकी है। किन्तु जब उसे यह चेतना होती कि लोग उसकी ख़ुशी के बारे में अनजान भी हो सकते हैं तो उसे जी-जान से उनपर दया आती और उन्हें यह स्पष्ट करने की उसकी हार्दिक इच्छा होती कि जिन चीज़ों में वे व्यस्त हैं, वे सब बकवास और बेकार हैं, उनके ध्यान के योग्य नहीं हैं।

प्येर के सामने जब किसी नौकरी का प्रस्ताव रखा जाता या जब यह मानते हुए कि फ़लां घटना के इस अथवा उस नतीजे पर मानवजाति का सुख-सौभाग्य निर्भर करता है, या फिर किसी सामान्य राजकीय मामले या युद्ध पर विचार किया जाता तो वह विनम्र, सहानुभूतिपूर्ण मुस्कान के साथ लोगों की बातें सुनता और अजीब टीका-टिप्पणियों से अपने सहभाषियों को आश्चर्यचकित कर देता। किन्तु इस अवधि में प्येर अपनी आत्मा में विद्यमान भावना के प्रखर प्रकाश की बदौलत उन लोगों में, जो उसे जीवन का सही अर्थ यानी भावना को समझनेवाले प्रतीत होते थे और उन भाग्यहीनों में भी, जो सम्भवतः इसे नहीं समझते थे – सभी लोगों में, अपने सामने आनेवाले हर व्यक्ति में किसी भी प्रयास के बिना वह सब कुछ, जो अच्छा और प्यार के लायक़ होता था, देख लेता था।

दिवंगत पत्नी के मामलों और काग़ज़ों-दस्तावेज़ों की जांच-पड़ताल करते हुए उसने उसकी स्मृति के प्रति इस चीज़ के लिये दया के अतिरिक्त और कोई भावना अनुभव नहीं की कि वह उस ख़ुशी से अनजान रही जिसे अब वह महसूस कर रहा था। प्रिंस वसीली, जो नया, ऊंचा पद और पदक पाने के फलस्वरूप विशेष रूप से घमण्ड में आ गया था, उसे मर्मस्पर्शी, दयालु और दयनीय बूढ़ा प्रतीत होता था।

अपार हर्ष-उल्लास के इस उन्मादी समय को प्येर बाद में अक्सर याद करता रहा। लोगों और परिस्थितियों के बारे में इस समय उसने जो राय बनायी, उसके लिये वह सदा को विश्वसनीय बनी रही। लोगों और चीज़ों के बारे में उसने इन दृष्टिकोणों को न केवल बदला ही नहीं, बल्कि आन्तरिक दुविधा-शंका और असंगतियों के समय वह उसी दृष्टिकोण का सहारा लेता जो पागलपन के इन दिनों में था और यह दृष्टिकोण हमेशा सही सिद्ध होता।

"सम्भव है," वह सोचता, "उस वक़्त मैं अजीब और हास्यास्पद लगता होऊं, किन्तु उस समय उतना पागल नहीं था, जितना लगता था। इसके विपरीत, मैं उस समय कहीं ज़्यादा समझदार था और अन्य किसी भी समय की तुलना में उन चीज़ों को कहीं ज़्यादा अच्छी तरह से समझता था जो जीवन में समझने लायक़ हैं, क्योंकि मैं सौभाग्यशाली था।"

प्येर का पागलपन इस बात में निहित था कि उसने पहले की भांति लोगों को प्यार करने के लिये उन व्यक्तिगत कारणों की, जिन्हें वह उनके गुण कहता था और जिनके आधार पर वह उन्हें प्यार कर सकता था, प्रतीक्षा नहीं की। उसका हृदय प्यार से ओत-प्रोत हो गया था और किसी कारण के बिना ही लोगों को प्यार करते हुए उसे ऐसे निर्विवाद आधार मिल जाते थे जिनके लिये उन्हें प्यार किया जा सकता था।

२०

उसी पहली शाम से, जब प्येर के जाने के बाद नताशा ने होंठों पर ख़ुशी और शरारत भरी मुस्कान लाते हुए प्रिंसेस मरीया से कहा था कि छोटे-से फ़्रॉक-कोट और ढंग से कटे बालों के साथ वह ऐसे लगता है मानो अभी-अभी गुसलख़ाने से निकला हो, उसी क्षण से उसकी आत्मा में कोई गुप्त, ख़ुद उसके लिये भी अज्ञात, किन्तु अदम्य भावना पैदा हो गयी थी।

नताशा का चेहरा, चाल-ढाल, दृष्टि और आवाज़ – अचानक सभी कुछ बदल गया। स्वयं उसके लिये भी अप्रत्याशित, जीवन की शक्ति और सुख-सौभाग्य की आशायें उभरकर सामने आ गयीं और अपनी सन्तुष्टि की मांग करने लगीं। इस पहली ही शाम से नताशा मानो वह सब भूल गयी जो उसके साथ बीती थी। उसने एक बार भी अपनी स्थिति के बारे में शिकायत नहीं की, अपने अतीत के सम्बन्ध में एक भी शब्द नहीं कहा और वह भविष्य की सुखद योजनायें बनाते हुए नहीं डरती थी। वह प्येर की बहुत कम चर्चा करती, किन्तु प्रिंसेस

मरीया, जब कभी उसका उल्लेख कर देती तो उसकी आंखों में बहुत अरसे से बुझी हुई लौ चमक उठती और उसके होंठ एक अजीब-सी मुस्कान के कारण टेढ़े से हो जाते।

नताशा में होनेवाले परिवर्तन से प्रिंसेस मरीया को शुरू में हैरानी हुई, मगर जब इसका अर्थ उसकी समझ में आया, तो उसे दुख हुआ। "क्या वह मेरे भाई को इतना कम प्यार करती थी कि इतनी जल्दी उसे भूल गयी," नताशा के इस परिवर्तन पर एकान्त में विचार करते हुए वह सोचती। किन्तु जब वह नताशा के साथ होती तो न तो उसके प्रति किसी तरह की खीझ-नाराज़गी ज़ाहिर करती और न ही उसे कुछ भला-बुरा कहती। नताशा के अन्तर में जाग उठनेवाली जीवन की शक्ति इतनी स्पष्ट, इतनी अदम्य और खुद उसके लिये ही इतनी अप्रत्याशित थी कि नताशा की उपस्थिति में प्रिंसेस मरीया यह अनुभव करती कि उसे अपने दिल तक में भी नताशा को धिक्कारने का अधिकार नहीं है।

नताशा पूरी तरह और ऐसी निश्छलता-निष्कपटता से इस नयी भावना की लहर में बह गयी कि यह छिपाने तक की कोशिश नहीं करती थी कि उसके मन में प्रसन्नता तथा उल्लास ने दुख और शोक की जगह ले ली है।

उस रात को, जब प्येर के साथ प्रिंसेस मरीया की साफ़-साफ़ बातें हुईं और प्येर के जाने के बाद वह अपने कमरे की तरफ़ लौटी तो नताशा दहलीज़ के पास उससे मिली।

"उसने सब कुछ कह दिया न? कह दिया न?" उसने दोहराया। और उसके चेहरे पर खुशी भरा, मगर साथ ही अपनी खुशी के लिये क्षमा-याचना करनेवाला दयनीय भाव अंकित होकर रह गया।

"मैं दरवाज़े के पास खड़ी रहकर सुनना चाहती थी, मगर जानती थी कि तुम मुझे बता दोगी।"

नताशा जिस दृष्टि से प्रिंसेस मरीया को बहुत ही ध्यानपूर्वक देख रही थी, मरीया के लिये वह चाहे कितनी ही समझ में आनेवाली और मर्मस्पर्शी क्यों न थी, नताशा की बेचैनी से उसे उसपर चाहे कितनी ही दया क्यों न आयी, फिर भी उसके शब्दों से प्रिंसेस मरीया के मन को शुरू में तो ठेस ही लगी। उसे अपने भाई और उसके प्यार की याद हो आयी।

"किन्तु कुछ भी तो नहीं किया जा सकता! यह उसके बस की बात नहीं है," प्रिंसेस मरीया ने सोचा और उदास तथा कुछ हद तक कठोर चेहरे के साथ नताशा को वह सब कुछ बता दिया जो प्येर ने उससे कहा था। यह सुनकर कि प्येर पीटर्सबर्ग जा रहा है, नताशा को आश्चर्य हुआ।

"पीटर्सबर्ग जा रहा है?" उसने मानो यह न समझ पाते हुए दोहरा-या। किन्तु प्रिंसेस मरीया के चेहरे पर उदासी का भाव देखकर उसने इस उदासी के कारण का अनुमान लगा लिया और अचानक रो पड़ी। "मरीया," उसने कहा, "मुझे बताओ कि मैं क्या करूं – मैं कोई बुरी बात नहीं करना चाहती। तुम जो कहोगी, मैं वही करूंगी। तुम मुझे बताओ..."

"तुम उसे प्यार करती हो?"

"हां," नताशा ने फुसफुसाकर जवाब दिया।

"तो तुम रो किसलिये रही हो? मैं तुम्हारे लिये खुश हूं," प्रिंसेस मरीया ने नताशा के इन आंसुओं के कारण उसकी खुशी को पूरी तरह क्षमा करते हुए उत्तर दिया।

"ऐसा जल्दी ही नहीं, किसी दिन होगा। तुम कल्पना करो कि जब मैं इसकी पत्नी बन जाऊंगी और तुम्हारी निकोलाई से शादी हो जायेगी तो हमारे लिये वह कैसा खुशी का वक्त होगा।"

"नताशा, मैंने तुमसे इस चीज़ की चर्चा न करने का अनुरोध किया था। हम सिर्फ़ तुम्हारी ही बात करेंगी।"

ये दोनों चुप हो गयीं।

"लेकिन वह पीटर्सबर्ग किसलिये जा रहा है!" नताशा अचानक कह उठी और उसने खुद ही जल्दी से इसका जवाब दे दिया – "हां, हां, ऐसा करना ही ठीक होगा... ठीक है न मरीया? ऐसा करना ही ठीक होगा..."

उपसंहार
भाग १

१

सन् १८१२ को बीते सात वर्ष हो चुके थे। यूरोप के इतिहास का उफनता सागर अपने तटों में सिमट गया था। देखने में वह शांत लगता था, पर मानवता का संचालन करनेवाली रहस्यमयी शक्तियां (रहस्यमयी इसलिये कि उनकी क्रिया को निश्चित करनेवाले नियम हमें अज्ञात हैं) अपना काम करती जा रही थीं।

हालांकि इतिहास के सागर की सतह गतिहीन लगती थी, फिर भी मानवजाति तो काल की तरह अनवरत गति से चलायमान थी। लोगों के विभिन्न समूह बनते, बिखरते; राज्यों के उदय और पतन, जनगण के स्थानांतरण के अस्तित्व में लानेवाले कारण तैयार हो रहे थे।

इतिहास का सागर अब पहले की तरह एक तट से दूसरे की ओर हिलोरे नहीं ले रहा था, अब उसकी अथाह गहराइयों में मंथन हो रहा था। इतिहास के पात्रों को लहरें अब एक तट से दूसरे तट पर नहीं ले जा रही थीं; अब वे एक ही स्थान पर घूमते-से लगते थे। ऐतिहासिक पात्र, जो पहले सेनाओं की अगुआई करते हुए युद्धों, अभियानों, लड़ाइयों में दिये गये आदेशों के रूप में जनसमूहों की गति को प्रतिबिम्बित करते थे, अब राजनीतिक और राजनयिक तर्क-वितर्कों, क़ानूनों और संधियों के रूप में इस उथल-पुथल को प्रतिबिम्बित कर रहे थे।

ऐतिहासिक पात्रों के इस कार्य-कलाप को इतिहासकार प्रतिक्रिया का नाम देते हैं।*

इन ऐतिहासिक पात्रों के कार्य-कलाप का वर्णन करते समय इतिहासकार उन लोगों की कड़ी भर्त्सना करते हैं जो उनके विचारानुसार **प्रतिक्रिया** के कारण थे। अलेक्सान्द्र और नेपोलियन से लेकर मदाम

---

* यहां सन् १८१५ में नेपोलियन के साम्राज्य के पतन के बाद आस्ट्रिया, रूस और प्रशा के 'पवित्र संघ' के कार्य-कलाप की शुरुआत से तात्पर्य है, जिसमें बाद में अन्य यूरोपीय देश भी सम्मिलित हुए। – सं०

स्ताल, फ़ोती, शेलिंग, फ़िख़्ते, शातोब्रिआन, इत्यादि * तक उस काल के सभी प्रसिद्ध व्यक्तियों को उनकी कठोर अदालत के कठघरे में खड़े होना पड़ता है जहां यह देखकर कि उन्होंने **प्रगति** में योग दिया या **प्रतिक्रिया** में, उन्हें निर्दोष या दोषी घोषित किया जाता है।

इतिहासकारों के वर्णनानुसार इस समय के रूस में भी प्रतिक्रिया हो रही थी और इस प्रतिक्रिया के मुख्य दोषी ज़ार अलेक्सान्द्र प्रथम थे – वही अलेक्सान्द्र प्रथम जिन्हें उन्हीं के वर्णनानुसार अपने शासनकाल में उदारता और रूस की रक्षा का श्रेय प्राप्त था।

आज के रूसी साहित्य में स्कूली छात्र से लेकर विद्वान इतिहासकार तक शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने अलेक्सान्द्र प्रथम पर उनके द्वारा अपने शासनकाल में किये गये ग़लत कामों के लिये लांछन न लगाया हो।

"उन्हें फ़लां-फ़लां काम इस ढंग से करना चाहिये था। इस मामले में उन्होंने ठीक किया, उसमें ग़लत। अपने शासनकाल के प्रारंभ में और सन् १८१२ में उनका आचरण उत्तम था; पर पोलैंड को संविधान प्रदान करके, 'पवित्र संघ' बनाकर, अराकचेयेव को सत्ता तथा गोलीत्सिन ** और रहस्यवाद को बढ़ावा देकर और इसके बाद शिश्कोव *** और फ़ोती को प्रोत्साहित करके उन्होंने बुरा किया। मोरचावर्ती सेना के मामलों में दख़ल देकर उन्होंने बुरा किया; सेम्योनोव्स्की रेजिमेंट को विसर्जित करके उन्होंने बुरा किया, इत्यादि।"

मानवता की भलाई के बारे में अपने ज्ञान के आधार पर इतिहास-

---

* फ़ोती (१७९२–१८३८) – अराकचेयेव से सम्बन्ध रखनेवाला रूसी धार्मिक कार्यकर्ता जो कुछ समय तक ज़ार अलेक्सान्द्र प्रथम की नीति को प्रभावित करता रहा था। फ़्रेडरिक शेलिंग (१७७५-१८५४) – जर्मनी के आदर्शवादी दर्शन का एक सिद्धांतकार। योहन फ़िख़्ते (१७६२–१८१४) – आदर्शवादी जर्मन दर्शनशास्त्री। फ़्रांसुआ शातोब्रिआन (१७६८–१८४८) – फ़्रांसीसी लेखक जो देश के राजनीतिक जीवन में सक्रिय भाग लेता था। – सं०

** अ० अराकचेयेव के साथ अलेक्सान्द्र गोलीत्सिन ज़ार अलेक्सान्द्र प्रथम का निकटतम सहायक बना। वह बाइबल सोसाइटी का अध्यक्ष था जो जनता में धार्मिक विचारों के प्रसार के लिये सन् १८१२ में गठित की गयी थी। – सं०

*** उक्त काल में एडमिरल अ० शिश्कोव रूसी अकादमी का अध्यक्ष था और विज्ञान, राजनीति व संस्कृति में रूढ़िवादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देता था। – सं०

कार जिन बातों के लिये उनकी भर्त्सना करते हैं, उन सभी को गिनाने के लिये दस पन्ने भरने पड़ेंगे।

ऐसी भर्त्सनायें किस चीज़ को इंगित करती हैं?

राज्यकाल के प्रारंभ में उदारता, नेपोलियन से संघर्ष, सन् १८१२ में दर्शायी गयी दृढ़ता और सन् १८१३ के अभियान* के लिये इतिहास-कार अलेक्सान्द्र प्रथम का अनुमोदन करते हैं, पर क्या इन कृत्यों का उद्गम उनके वंश, शिक्षा-दीक्षा तथा जीवन की उन्हीं परिस्थितियों में निहित नहीं है जिन्होंने अलेक्सान्द्र के व्यक्तित्व को निरूपित किया और जो उनके उन कृत्यों का भी उद्गम हैं जिनकी इतिहासकार भर्त्सना करते हैं जैसे कि 'पवित्र संघ', पोलैंड की पुनर्स्थापना, १९ शताब्दी के बीस के दशक की प्रतिक्रिया?

तो इन भर्त्सनाओं का सार क्या है?

इनका सार यह है कि अलेक्सान्द्र प्रथम जैसा ऐतिहासिक पात्र मानवीय सत्ता के सोपान के उच्चतम संभव शिखर पर खड़ा था और उसपर इतिहास की किरणों का चौंधियानेवाला पुंज संकेन्द्रित था; वह ऐसा पात्र था जिसपर षड्यंत्रों, धोखाधड़ी, चाटुकारिता, आत्म-भ्रांति का, जिनका सत्ता के साथ चोली-दामन का साथ होता है अधिकतम प्रभाव पड़ता था; ऐसा पात्र था जो जीवन के हर पल में यूरोप की सभी घटनाओं के लिये अपने दायित्व को अनुभव करता था; और वह काल्पनिक पात्र नहीं, बल्कि किसी भी आम आदमी की तरह जीता-जागता इन्सान था, उसके भी अपने रुझान, अपनी सनकें थीं और नेकी, सुंदरता तथा सत्य की अपनी आकांक्षायें थीं, कि पचास वर्ष पहले** के इस पात्र में गुणसंपन्नता की तो कमी नहीं थी (इतिहासकार इसके लिये उसकी भर्त्सना नहीं करते), फिर भी मानवजाति की भलाई के बारे में उसका आज के प्रोफ़ेसर जैसा दृष्टिकोण नहीं था जो युवावस्था से विद्यार्जन करता है, यानी पोथियां पढ़ता तथा व्याख्यान सुनता है और इन पोथियों और व्याख्यानों से एक कापी भर डालता है।

---

* रूसी सेना का तथाकथित विदेश अभियान – जर्मनी और फ़्रांस के क्षेत्र में प्रशा, स्वीडन और आस्ट्रिया की सेनाओं के साथ मिलकर नेपोलियन की सेना के विरुद्ध कार्यवाही। – सं०

** 'युद्ध और शान्ति' नेपोलियन के १८१२ के अभियान के पचास से कुछ अधिक समय के बाद १८६४ से १८६९ में लिखा गया। – अनु०

किन्तु यदि यह मान भी लिया जाये कि पचास वर्ष पूर्व जनगण की भलाई के बारे में अलेक्सान्द्र प्रथम की धारणा ग़लत थी तो चाहे-अनचाहे हमें यह भी मानना पड़ेगा कि मानवजाति की भलाई के बारे में अलेक्सान्द्र को आंकनेवाले इतिहासकार की धारणा भी कुछ समय बीतने पर ठीक इसी तरह ग़लत सिद्ध हो सकती है। ऐसा मानना इस-लिये और भी स्वाभाविक एवं आवश्यक है कि इतिहास के विकासक्रम का अध्ययन करते समय हम देखते हैं कि हर वर्ष के साथ, हर नये लेखक के सामने आने पर मानवजाति की भलाई के विषय में धारणा बदलती जाती है ; इस तरह जो चीज़ कभी भलाई लगती थी, दस वर्ष बाद बुराई प्रतीत होती है ; या इसके उलट होता है। सिर्फ़ यही नहीं, हम एक ही समय में बुराई तथा भलाई के बारे में इतिहास में सर्वथा विरोधी दृष्टिकोण भी देखते हैं : कुछ इतिहासकार पोलैंड को संविधान देने, 'पवित्र संघ' की स्थापना करने के लिये अलेक्सान्द्र को श्रेय देते हैं और दूसरे इसके लिये उनकी निंदा करते हैं।

अलेक्सान्द्र और नेपोलियन के कार्य-कलाप के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वह लाभदायक या हानिकर था, क्योंकि हम यह नहीं बता सकते कि किस चीज़ के लिये वह लाभकारी और किसके लिये हानिकर था। अगर यह कार्य-कलाप किसी को अच्छा नहीं लगता तो इसका कारण केवल यह है कि वह भलाई के बारे में उसकी सीमित धारणा के अनुरूप नहीं होता। सन् १८१२ में मास्को में मेरे पिता जी के मकान का आग से बच जाना या रूसी सेनाओं की कीर्ति, या पीटर्स-बर्ग के तथा अन्य विश्वविद्यालयों की उन्नति, या पोलैंड की स्वतंत्रता, या रूस की शक्ति, या यूरोप में शक्ति-संतुलन या प्रगति के रूप में विख्यात यूरोपीय प्रबोधन – मैं इन सभी चीज़ों को भलाई मान सकता हूं, किन्तु फिर भी मुझे यह मानना पड़ेगा कि इनके अलावा प्रत्येक ऐतिहासिक पात्र के कार्य-कलाप के अन्य, अधिक व्यापक लक्ष्य भी होते हैं, जो मेरी समझ की सीमा के परे रहते हैं।

पर आइये, यह मान लें कि तथाकथित विज्ञान के पास सभी अन्तर्विरोधों को दूर करने की शक्ति और सभी ऐतिहासिक पात्रों और घटनाओं के लिये अच्छे और बुरे को निर्धारित करनेवाला कड़ा मानदंड भी है।

आइये, मान लें कि अलेक्सान्द्र सब कुछ दूसरे ढंग से कर सकते

थे। आइये, मान लें कि वह उन लोगों के निर्देशों के अनुसार, जो उनपर आरोप लगाते हैं और जो मानवता की गति के अंतिम लक्ष्य के ज्ञान का दावा करते हैं, लोकवाद, स्वतंत्रता, समता और प्रगति के उस कार्यक्रम का अनुकरण कर सकते थे (क्योंकि लगता है कि दूसरा कार्यक्रम हो ही नहीं सकता) जो उनपर आज आरोप लगानेवाले उनके सामने पेश करते हैं। मान लें कि ऐसा कार्यक्रम संभव हो सकता था, बनाया जा सकता था और अलेक्सान्द्र उसके अनुसार काम कर सकते थे। तब उन सब लोगों के कार्य-कलाप का क्या होता, जो सरकार की तात्कालीन नीति का प्रतिरोध कर रहे थे – उस कार्य-कलाप का, जो इतिहासकारों के मतानुसार अच्छा और लाभकारी था? उनके कार्य-कलाप का अस्तित्व ही न होता, जीवन ही न होता; कुछ भी न होता।

अगर यह मान लिया जाये कि मानव के जीवन का विवेक द्वारा संचालन किया जा सकता है, तो जीवन की संभावना ही नष्ट हो जायेगी।

२

अगर यह मान लिया जाये, जैसाकि इतिहासकार करते हैं, कि महान लोग किन्हीं निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति में, उदाहरण के लिये रूस या फ़्रांस की गौरव-वृद्धि के लक्ष्य, या यूरोप में शक्ति-संतुलन, या क्रांति के आदर्शों के प्रसार, या आम प्रगति अथवा ऐसी ही किसी अन्य चीज़ में मानवजाति की अगुआई करते हैं, तो **संयोग** और **प्रतिभा** की अवधारणा के बिना इतिहास की परिघटनाओं की व्याख्या असंभव है।

यदि इस सदी के प्रारंभ के यूरोपीय युद्धों का लक्ष्य रूस के गौरव को चार चांद लगाना था तो यह लक्ष्य अब तक हुए सभी युद्धों के बिना भी प्राप्त हो सकता था। यदि यह लक्ष्य – फ़्रांस की महिमा की वृद्धि करना था तो वह क्रांति और साम्राज्य के बिना भी प्राप्त किया जा सकता था। अगर यह लक्ष्य – विचारों का प्रसार करना था तो

सैनिकों की अपेक्षा पुस्तकों के प्रकाशन से उसे कहीं अधिक अच्छी तरह हासिल करना मुमकिन था। अगर यह लक्ष्य – मानव-सभ्यता की प्रगति था तो बड़ी आसानी से यह स्वीकार किया जा सकता है कि लोगों और उनकी संपदा का संहार करने के बजाय सभ्यता के प्रसार के दूसरे अधिक उपयुक्त उपाय भी हैं।

पर कुछ और न होकर क्यों ऐसा ही हुआ?

क्योंकि ऐसा ही हुआ। "**संयोग** ने परिस्थिति बनायी; **प्रतिभा** ने उसका लाभ उठाया," इतिहास का यही कहना है।

पर **संयोग** क्या है? **प्रतिभा** क्या है?

संयोग और **प्रतिभा** शब्द किसी ऐसी चीज़ के द्योतक नहीं हैं जिसका वास्तव में ही अस्तित्व हो और इसलिये उनकी परिभाषा नहीं की जा सकती। ये शब्द एक ख़ास हद तक परिघटनाओं की समझ को ही इंगित करते हैं। मैं नहीं जानता कि क्यों कोई परिघटना होती है; सोचता हूं कि मैं जान भी नहीं सकता; इसलिये जानने की कोशिश भी नहीं करता और कह देता हूं: **संयोग।** मैं किसी ऐसी शक्ति को देखता हूं जो आम मानवीय गुणों से भिन्न प्रभाव पैदा करती है; मैं नहीं समझ पाता कि ऐसा क्यों होता है और कह उठता हूं: **प्रतिभा।**

भेड़ों के झुंड को वही भेड़ प्रतिभा लगनी चाहिये जिसे हर शाम चरवाहा अलग बाड़े में हांककर चारा डालता है और इस कारण वह अन्य की तुलना में अधिक मोटी हो जाती है। और यह स्थिति कि हर शाम यही भेड़ आम बाड़े में नहीं जाती, बल्कि ख़ास बाड़े में जौ का चारा पाती है और यही भेड़ मोटी और चर्बीदार होने पर गोश्त के लिये काटी जाती है, कई असामान्य संयोगों के साथ प्रतिभा का आश्चर्य-जनक मेल लगनी चाहिये।

पर भेड़ों द्वारा इस विचार के त्यागते ही कि उनके साथ जो कुछ हो रहा है, उस सबका उद्देश्य सिर्फ़ उनके भेड़ों-सम्बन्धी लक्ष्यों की प्राप्ति ही है; वे यह मान लें कि उनके साथ हो रही घटनाओं के उनकी समझ में न आनेवाले लक्ष्य भी हो सकते हैं, – तो तत्क्षण ही उन्हें उसमें एकता और सुसंगतता नज़र आ जायेगी जो खिला-पिलाकर मुटाई जानेवाली भेड़ के साथ होता है। अगर उन्हें यह मालूम न भी पड़े कि किस लक्ष्य से उसे मोटा किया जा रहा था, तो कम से कम

उन्हें यह तो मालूम हो जायेगा कि भेड़ के साथ जो कुछ हुआ, वह अनायास नहीं हुआ और तब उन्हें न तो **संयोग** और न **प्रतिभा** की धारणा की आवश्यकता होगी।

केवल तत्क्षण ही समझ में आ जानेवाले लक्ष्य के ज्ञान को तिलांजलि देकर और यह स्वीकार करके कि अंतिम लक्ष्य हमारी पहुंच के बाहर है, हम ऐतिहासिक पात्रों के जीवन में सुसंगतता और औचित्य देख सकेंगे; हमारे सामने उनकी आम मानवीय गुणों से भिन्न क्रिया के कारण का उद्घाटन होगा और हमें **संयोग** और **प्रतिभा** शब्दों की आवश्यकता नहीं रहेगी।

यह मानते ही कि यूरोपीय जनगण के आलोड़न का लक्ष्य हमें ज्ञात नहीं और केवल हत्याकांडों के तथ्य ही ज्ञात हैं जो पहले फ़्रांस में, फिर इटली, अफ़्रीका, प्रशा, आस्ट्रिया, स्पेन तथा रूस में हुए, कि पश्चिम से पूरब और पूरब से पश्चिम की ओर अभियान इन घटनाओं का सार और लक्ष्य हैं, हमारे लिये नेपोलियन और अलेक्सान्द्र के चरित्रों में न केवल अनन्यता और प्रतिभा देखने की आवश्यकता नहीं रहेगी, बल्कि हम इन पात्रों की अन्य लोगों से भिन्न रूप में कल्पना भी नहीं कर सकेंगे। तब उन गौण घटनाओं को, जिन्होंने इन लोगों को वह बनाया, जो वे थे, **संयोग** बताने की आवश्यकता भी नहीं रहेगी और यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि ये सब गौण घटनायें अनिवार्य थीं।

अंतिम लक्ष्य के ज्ञान को तिलांजलि देकर हम स्पष्ट रूप से समझ जायेंगे कि ठीक उसी तरह जैसे किसी भी वनस्पति के लिये उस मंजरी और उन बीजों से अधिक उपयुक्त मंजरी और बीजों की कल्पना नहीं की जा सकती जिनकी वह स्वयं उत्पत्ति करती है, उसी प्रकार किन्हीं अन्य दो व्यक्तियों की कल्पना करना असम्भव है, जिनका पूरा अतीत इस हद तक, छोटे से छोटे ब्योरों की सीमा तक उस प्रयोजन के अनुरूप हो, जो उन्हें* सिद्ध करना था।

---

* नेपोलियन और अलेक्सान्द्र को। – अनु०

वर्तमान शताब्दी के आरंभ में यूरोप की घटनाओं का प्रमुख और मूलभूत लक्षण यूरोपीय जनगण का बहुत बड़े पैमाने पर पश्चिम से पूरब और फिर पूरब से पश्चिम की ओर युद्ध-प्रयाण है। पश्चिम से पूरब की ओर प्रयाण से इसकी शुरुआत हुई। पश्चिम के जनगण के लिये मास्को तक का अपना यह युद्ध-प्रयाण आरम्भ करने के हेतु इन परिस्थितियों की आवश्यकता थी: १. कि वे इतना बड़ा सैनिक-समूह बनायें जो पूरब के सैनिक-समूह से टकराव को सह सके; २. कि वे सभी जड़ विश्वासों तथा रीति-रिवाजों को त्याग दें और ३. कि युद्ध-प्रयाण के समय ऐसा व्यक्ति उनकी अगुआई करे जो अपने सामने और अपनी सेना के सामने भी उन धोखाधड़ियों, लूटपाट और हत्याओं की सफ़ाई दे सके जिनका इस प्रयाण के समय होना ज़रूरी था।

और फ़्रांसीसी क्रान्ति * की शुरुआत से वह पुराना समूह, जो काफ़ी बड़ा नहीं था, नष्ट होने लगा; पुरानी रीतियां और परम्परायें नष्ट होने लगीं; धीरे-धीरे नये पैमाने का समूह, नयी रीतियां और परम्परायें बनने लगीं और वह व्यक्ति तैयार होने लगा जिसे भावी प्रयाण का नेतृत्व करना था और भावी घटनाओं का पूर्ण दायित्व अपने ऊपर लेना था।

एक ऐसा व्यक्ति, जिसकी कोई आस्थायें, तौर-तरीक़े, परम्परायें और नाम नहीं था, जो फ़्रांसीसी तक नहीं था **, देखने में बड़े अजीब संयोगों से, फ़्रांस को उद्वेलित करनेवाले सभी दलों के बीच से, और उनमें से किसी का भी दामन पकड़े बिना ऊंचे स्थान पर पहुंच जाता है।

साथियों की मूढ़ता, विरोधियों की दुर्बलता और तुच्छता, झूठ-सम्बन्धी स्पष्टवादिता और इस व्यक्ति की विलक्षण तथा आत्मविश्वास-पूर्ण संकीर्णता उसे सेना का अगुआ बना देती है। इतालवी सेना के उत्तम सैनिक, विरोधियों की लड़ने की अनिच्छा, बाल-सुलभ दबंगता और आत्मविश्वास की बदौलत उसे युद्ध-कीर्ति मिलती है। तथाकथित

---

* सन् १७८९–१७९४ की महान फ़्रांसीसी क्रान्ति से अभिप्राय है। – सं०

** नेपोलियन से अभिप्राय है जो कोर्सिका द्वीप के अयाच्चो नगर का वासी और एक छोटे-से जागीरदार का बेटा था। – सं०

असंख्य संयोग सर्वत्र उसका साथ देते हैं। उसके विरुद्ध फ़्रांस के शासकों की नाराज़गी भी उसी के हित में जाती है। अपने लिये नियत मार्ग को बदलने* के उसके प्रयास विफल रहते हैं: उसे रूस में नौकरी नहीं मिली और तुर्की में नियुक्ति पाने में भी उसे असफलता का मुंह देखना पड़ा। इटली की लड़ाइयों के समय उसने कई बार अपने को मौत के कगार पर पाया, लेकिन हर बार वह अचानक बच गया। रूसी सेनायें, वही सेनायें, जो उसकी ख्याति की धज्जियां उड़ा सकती थीं, विभिन्न कूटनीतिक कारणों से तब तक यूरोप में नहीं गयीं, जब तक वह वहां था।

इटली से पेरिस लौटने पर वह यहां की सरकार को विघटन और सड़ाव की उस प्रक्रिया में पाता है जिसमें इस सरकार में शामिल होनेवाले लोगों का विलोपन और नष्ट होना अवश्यंभावी था। और अफ़्रीका के बेतुके तथा अकारण अभियान** के रूप में इस ख़तरनाक स्थिति से बच निकलने का एक उपाय अपने आप ही उसके सामने आ जाता है। फिर वही तथाकथित संयोग उसका साथ देते हैं। दुर्भेद्य माल्टा ने एक गोली तक चलाये बिना ही आत्मसमर्पण कर दिया; एकदम लापरवाही से दिये गये आदेश भी सफल रहे। शत्रु के बेड़े ने, जिसने बाद में एक नौका तक को नहीं जाने दिया, पूरी की पूरी सेना को निकल जाने दिया।*** अफ़्रीका के लगभग निहत्थे निवासियों पर ढेरों अत्याचार किये गये। और ये अत्याचार करनेवाले लोग और विशेष रूप से उनका नेता अपने को विश्वास दिलाते हैं कि उनकी यह करनी बहुत बढ़िया है, कि यह उनकी कीर्ति है, कि यह सीज़र और सिकंदर महान के समान है, लाजवाब है।

गौरव और **महानता** का वह आदर्श जिसका सार किसी भी चीज़ को अपने लिये बुरा न मानना ही नहीं, बल्कि अपने हर अपराध

---

* २७ जुलाई १७९४ के सत्ता-पलट, रोबेसपियेर और उसके राजनीतिक साथियों को मृत्यु-दंड दिये जाने के बाद नेपोलियन कोपभाजन बना और लगभग दो सप्ताह तक हिरासत में रहा। – सं०

** बोनापार्ट का मत था कि इंगलैंड को पराजित करने के लिये मिस्र पर अधिकार करना आवश्यक है। मई १७९८ में अफ़्रीका-अभियान शुरू हुआ। – सं०

*** भूमध्यसागर में एडमिरल नेल्सन की कमान में अंग्रेज़ी बेड़े ने तूफ़ान के कारण बोनापार्ट के बेड़े को तुलोन से निकलते नहीं देखा। – सं०

को अबोधगम्य अलौकिक महत्त्व देकर उसपर गर्व करना भी है, इस व्यक्ति और उसके अनुयाइयों का पथ-प्रदर्शन करनेवाला यह आदर्श अफ़्रीका में व्यापक रूप से निरूपित होता है। वह जिस काम में भी हाथ डालता है, वही सफल होता है। प्लेग तक उसके पास नहीं फटकती। बंदियों की नृशंस हत्याओं का दोष उसपर नहीं लगाया जाता। बच्चों जैसी असावधानी, किसी कारण के बिना कुत्सित ढंग से साथियों को मुसीबत में छोड़कर अफ़्रीका से उसके प्रस्थान की भी बड़ाई ही की जाती है और फिर से शत्रु की नौसेना की उसपर से दो बार नज़र चूक जाती है। उस समय, जब वह अपने सौभाग्यशाली अपराधों के नशे में पूरी तरह चूर, अपनी भूमिका के लिये तैयार, किसी निश्चित लक्ष्य के बिना पेरिस पहुंचता है तो गणतन्त्रीय सरकार का अनाचार, जो एक वर्ष पहले उसे मटियामेट कर सकता था, अब अपनी चरम सीमा पर था और दलों से अलग एक नये व्यक्ति के रूप में उसकी उपस्थिति अब उसे केवल ऊंचा ही उठा सकती थी।

उसके पास कोई योजना नहीं थी; उसे हर चीज़ से डर लगता था; पर दल उसका दामन पकड़ लेते हैं और इस चीज़ के लिये ज़ोर देते हैं कि वह उनका साथ दे।

सिर्फ़ वही, इटली और मिस्र में गौरव और महानता का अपना आदर्श निरूपित करनेवाला, आत्मस्मृति के उन्माद, अपराधों की धृष्टता और झूठ की स्पष्टवादिता को माननेवाला – सिर्फ़ वही उस सब की सफ़ाई पेश कर सकता था जो होनेवाला था।

उस स्थान के लिये उसकी आवश्यकता थी जो उसकी प्रतीक्षा में था और इसीलिये, लगभग उसकी इच्छा के बिना और उसकी हिचकिचाहट, योजना की अनुपस्थिति और उन सब ग़लतियों के बावजूद, जो वह करता है, उस षड्यंत्र में शामिल हो जाता है जिसका लक्ष्य सत्ता हथियाना था और यह षड्यंत्र सफल होता है।*

उसे शासकों की बैठक में धकेल दिया जाता है। भयभीत होकर वह भागना चाहता है, सोचता है कि कहीं का नहीं रहा; बेहोश होकर गिरने का ढोंग करता है; ऐसी बेसिर-पैर की बातें कह डालता

---

* यहां ९–१० नवम्बर १७९९ के सत्ता-पलट की ओर संकेत है जिसके फलस्वरूप फ़्रांस में डायरेक्टरेट की जगह कौंसिल की शासन-प्रणाली क़ायम हुई और बोनापार्ट तीन कौंसिलरों में से एक हो गया, बाद में वह प्रथम कौंसिलर बन गया। – सं०

है जो उसकी मौत को बुलावा दे सकती थीं। पर फ़्रांस के शासक, जो पहले चतुर और गर्वीले थे, अब यह महसूस करके कि उनकी भूमिका समाप्त हो चुकी है, उससे भी अधिक सहम गये, और उनके मुंह से वे शब्द नहीं निकले जो उन्हें सत्ता को अपने हाथों में रखने और उसको नष्ट करने के लिये बोलने चाहिये थे।

संयोग, लाखों-करोड़ों **संयोग** उसे सत्ता देते हैं और सब लोग, मानो एक होकर इस सत्ता की पुष्टि में योग देते हैं। **संयोग** ही फ़्रांस के उन तत्कालीन शासकों के चरित्रों का निर्माण करते हैं जो उसके अधीन थे; **संयोग** पावेल प्रथम की चरित्र-रचना करता है जिसने उसकी सत्ता को मान्यता दी; **संयोग** उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचता है जिससे उसकी कोई हानि होना तो दूर, उलटे उसकी सत्ता की पुष्टि ही होती है। **संयोग** ड्यूक एनगीयन को उसके हाथों में फंसा देता है और अनायास ही उसकी हत्या करने को बाध्य करता है और इस प्रकार अन्य सभी साधनों की अपेक्षा लोगों को इस बात का विश्वास दिलाता है कि उसे ऐसा करने का अधिकार है, क्योंकि उसके पास शक्ति है। **संयोग** यह करता है कि वह इंगलैंड के विरुद्ध अभियान की तैयारी में, जो शायद उसे नष्ट कर देता, अपनी पूरी शक्ति लगाता है, किन्तु इस इरादे को कभी भी अमली शक्ल नहीं देता, बल्कि अचानक ही फ़ील्ड-मार्शल माक के संचालन में आस्ट्रियाइयों पर हमला कर देता है जो बिना लड़े ही हथियार डाल देते हैं। **संयोग** और **प्रतिभा** उसे आउस्टेरलिट्ज़ के पास की लड़ाई में विजय दिलाते हैं, और **संयोग से** सभी लोग, फ़्रांसीसी ही नहीं, बल्कि इंगलैंड को छोड़कर, जो भावी घटनाओं में भाग ही नहीं लेता, उसके अपराधों के प्रति पहलेवाले भय और घृणा के बावजूद सारा यूरोप और सब लोग अब उसकी सत्ता को, उस नाम को जो उसने अपने को दिया, और महानता व गौरव के उसके आदर्श को मान्यता देते हैं, जो सबको एक तरह से अद्भुत और विवेकपूर्ण लगता है।

भावी प्रयाण के लिये मानो अपनी आज़माइश और तैयारी करते हुए पश्चिम की शक्तियां सन् १८०५, १८०६, १८०७ और १८०९ में बढ़ती और मज़बूत होती हुई कई बार पूरब की ओर बढ़ीं। सन् १८११ में फ़्रांस में निरूपित जनसमूह मध्यवर्ती जनगण के साथ मिलकर एक विराट समूह बन गया। लोगों के बढ़ते समूह के साथ प्रयाण की अगुआई

करनेवाले व्यक्ति की सफ़ाई देने की शक्ति भी आगे बढ़ती जा रही थी। विराट प्रयाण से पहले तैयारी के दस वर्षों में यूरोप के सभी अभिषिक्त लोग इस व्यक्ति से नाता जोड़ते हैं। अपनी प्रतिष्ठा खो चुके विश्व के शासक **गौरव** और **महानता** के नेपोलियन के निरर्थक आदर्श के मुक़ाबले में कोई विवेकपूर्ण आदर्श प्रस्तुत करने में असमर्थ थे। एक के बाद एक वे सभी उसके सम्मुख अपनी तुच्छता दर्शाने को आतुर थे। प्रशा का राजा महान विभूति का कृपापात्र बनने के लिये अपनी पत्नी को उसके पास भेजता है; आस्ट्रिया का सम्राट इस बात पर कृतार्थ हो जाता है कि यह व्यक्ति सीज़रों की पुत्री को अपनी अंकशायिनी बनाता है; पोप, जनगण के धर्म का ठेकेदार, महान व्यक्ति की महिमा बढ़ाने के लिये धर्म का उपयोग करता है। स्वयं नेपोलियन अपनी भूमिका निभाने की उतनी तैयारी नहीं करता, जितना कि उसका सारा परिवेश उसे जो कुछ हो रहा था और जो कुछ होनेवाला था, उसका पूरा दायित्व अपने ऊपर लेने के लिये तैयार करता है। कोई भी ऐसा कार्य, कोई भी ऐसा कुकर्म या ओछी धोखाधड़ी नहीं है जो उसने न की हो और जिसे उसके गिर्द के लोगों ने तत्काल ही महान कार्य के रूप में न सराहा हो। उसके लिये जर्मन जिन सर्वश्रेष्ठ उत्सवों की कल्पना कर सकते थे, वे जेना और आउएरस्ताद के उत्सव थे। न केवल वह महान है, बल्कि उसके पूर्वज, उसके भाई, उसके सौतेले बेटे और दामाद भी महान हैं। सब कुछ उसके विवेक को पूरी तरह समाप्त करने और उसे उसकी भयंकर भूमिका के लिये तैयार करने की खातिर होता है। और जब वह तैयार हुआ तो शक्तियां भी तैयार थीं।

पूरब पर चढ़ाई अपने अंतिम लक्ष्य – मास्को – तक पहुंच जाती है। राजधानी पर क़ब्ज़ा हो गया; रूसी सेना की इतनी अधिक क्षति हुई, जितनी कि अब तक, आउस्टेरलिट्ज़ से लेकर वाग्राम तक के किसी भी युद्ध में शत्रु-सेना की इतनी क्षति नहीं हुई थी। पर अचानक उन **संयोगों** और **प्रतिभा** के स्थान पर, जो इतनी सुसंगतता से उसे निरंतर सफलताओं के साथ नियत लक्ष्य तक ले जा रहे थे, बोरोदिनो में ज़ुकाम से लेकर कड़कते पाले और मास्को को जलानेवाली चिंगारी तक असंख्य उलटे **संयोग** प्रकट होते हैं और **प्रतिभा** के स्थान पर अपूर्व मूर्खता और नीचता सामने आती हैं।

आक्रमणकारी भागते हैं, वापस लौटते हैं, फिर भागते हैं और अब सारे संयोग उसके पक्ष में नहीं, बल्कि हमेशा उसके विरुद्ध रहते हैं।

पूरब से पश्चिम की ओर जवाबी प्रयाण होता है जो इससे पहले पश्चिम से पूरब की ओर हुए प्रयाण से बेहद मिलता-जुलता है। इस विराट-प्रयाण से पहले सन् १८०५–१८०७–१८०६ में पूरब से पश्चिम की ओर बढ़ने के वैसे ही प्रयास हुए; वैसा ही विराट समूह बना; उसी प्रकार मध्यवर्ती जनगण प्रयाण में शामिल हुए; आधे रास्ते में वही हिचकिचाहट हुई और लक्ष्य के पास आने के साथ वैसी ही तेज़ी आई।

पेरिस – अंतिम लक्ष्य प्राप्त हुआ। नेपोलियन की सरकार और सेनायें नष्ट कर दी गयीं। स्वयं नेपोलियन का अब कोई महत्त्व न रहा; उसके सभी कृत्य स्पष्ट रूप से तुच्छ और घिनौने हो जाते हैं; किन्तु फिर से ऐसा संयोग होता है जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती: मित्र राष्ट्र नेपोलियन से घृणा करते हैं, वे उसे अपनी मुसीबतों का कारण मानते हैं; शक्ति और सत्ता से वंचित वह व्यक्ति जिसके दुष्कर्मों और छल-कपट का भंडाफोड़ हो चुका था, वह उन्हें वैसा ही लगना चाहिये था जैसा दस वर्ष पहले और एक वर्ष बाद लगता था – यानी अपराधी और डाकू। पर किसी अजीब संयोग से कोई भी इस चीज़ को नहीं समझ पाता। उसकी भूमिका अभी समाप्त नहीं हुई। उस व्यक्ति को जिसे दस वर्ष पहले और एक वर्ष बाद अपराधी और डाकू माना गया, फ़्रांस से दो दिन के सफ़र की दूरी पर स्थित द्वीप पर भेज दिया गया, जो गार्ड-सेना और लाखों की उस राशि के साथ न जाने किस सेवा के लिये उसे मिल्कियत के रूप में मिला था।*

---

* रूस, प्रशा, स्वीडन तथा आस्ट्रिया की सेनाओं के पेरिस आने के बाद नेपोलियन ने राज-सिंहासन से इन्कार किया। विजेता मित्र-राष्ट्रों ने उसकी सम्राट की उपाधि सुरक्षित रखी और उसे रहने के लिये भूमध्यसागर का एल्बा द्वीप भेंट कर दिया। – सं०

जनगण के गमनागमन के तूफ़ान अपनी तट-सीमाओं में लौटने लगे। विशाल जन-प्रयाण की ज्वार उतर गयी और शांत सागर की सतह पर ऊर्मिकाओं के घेरे बनते रह जाते हैं, जिनमें तैरते हुए कूट-नीतिज्ञ यह सोचते हैं, मानो वे ही विशाल जन-प्रयाण के तूफ़ानों को शान्त कर रहे हैं।

पर शान्त सागर में अचानक फिर से उफान आता है। कूटनीतिज्ञों को लगता है कि वे, उनके मतभेद ही शक्तियों की इस नयी ज्वार का कारण हैं। उन्हें लगता है कि उनके नृपों के बीच युद्ध होगा; स्थिति उन्हें बड़ी विकट प्रतीत होती है। पर लहर, जिसके उत्थान की उन्हें अनुभूति होती है, उधर से नहीं आती जिधर से वे उसके आने की आशा करते हैं। फिर से वही लहर उसी प्रस्थान बिंदु – पेरिस – से उठती है। पश्चिम से प्रयाण का अंतिम थपेड़ा आता है, वह थपेड़ा जिसे विकट प्रतीत होनेवाली कूटनीतिक कठिनाइयों को दूर करके इस काल के युयुत्सु गमनागमन का अंत करना चाहिये।

फ़्रांस को चौपट करनेवाला व्यक्ति किसी षड्यंत्र के बिना, सैनिकों के बिना अकेला फ़्रांस लौटता है। कोई भी चौकीदार उसे दबोच सकता है, पर अजीब संयोग से उसे दबोचना तो दूर, उलटे सभी उस व्यक्ति का बड़े उत्साह से स्वागत करते हैं जिसे वे एक दिन पहले तक कोसते थे और एक महीने बाद फिर से कोसेंगे।

अंतिम सामूहिक क्रिया के औचित्य को सिद्ध करने के लिये अभी इस व्यक्ति की आवश्यकता है।

क्रिया सम्पन्न हुई। अंतिम भूमिका निभा दी गयी। अभिनेता को कपड़े उतारने और सुरमा, पाउडर और लाली धो डालने का आदेश दिया गया: अब उसकी फिर कभी ज़रूरत नहीं पड़ेगी।

और कई वर्ष तक अपने द्वीप पर एकाकी जीवन बिताता हुआ यह व्यक्ति स्वयं अपने सामने दयनीय खेल-तमाशे खेलता करता है, ओछे कपटयोग करता है, अपने कृत्यों की सफ़ाई देने के लिये झूठ बोलता है, जबकि इस सफ़ाई की अब आवश्यकता ही नहीं रही और सारी दुनिया को यह दिखाता है कि वह क्या था जिसे लोग उस समय शक्ति समझ बैठे थे, जब अदृश्य हाथ उसका संचालन कर रहा था।

सूत्रधार नाटक को समाप्त करके और अभिनेता के कपड़े उतारकर उसे हमें दिखाता है।

"यह देखिये, आप किसपर विश्वास करते थे! यह रहा वह! अब तो आप देख रहे हैं न कि यह नहीं, बल्कि **मैं** आपका संचालन कर रहा था?"

किन्तु प्रयाण की शक्ति से चौंधियाये हुए लोग बड़ी देर तक यह नहीं समझे।

अलेक्सान्द्र प्रथम का, उस व्यक्ति का जीवन और अधिक सुसंगत और आवश्यक लगता है, जिसने पूरब से पश्चिम की ओर जवाबी प्रयाण की अगुआई की।

उस व्यक्ति में क्या कुछ होना चाहिये था जो दूसरों को निष्प्रभ करके पूरब से पश्चिम की ओर जन-प्रयाण का अगुआ बन सकता?

उसमें होनी चाहिये थी न्याय-भावना, यूरोप के मामलों में दिलचस्पी, किन्तु तटस्थ और ओछे हितों से मुक्त दिलचस्पी; साथियों – उस काल के राजाओं की तुलना में नैतिक श्रेष्ठता; नम्रता और आकर्षक व्यक्तित्व; नेपोलियन के विरुद्ध व्यक्तिगत अपमान की कसक। और अलेक्सान्द्र प्रथम में यह सब था; उनके अब तक के सम्पूर्ण जीवन के असंख्य तथाकथित **संयोगों** ने यह सब बना दिया: शिक्षण, उनके उदारतावादी विचारों, उनके सलाहकारों, आउस्टेरलिट्ज़, तिलज़ीत ने, एर्फ़ुर्ट ने भी उनमें ये सभी ख़ूबियां पैदा कर दी थीं।

राष्ट्रीय युद्ध के काल में यह पात्र निष्क्रिय रहा, क्योंकि उसकी आवश्यकता नहीं थी। पर जैसे ही आम यूरोपीय युद्ध की आवश्यकता प्रकट हुई, यह पात्र उचित क्षण में अपना स्थान ग्रहण करता है और यूरोपीय जनगण को सूत्रबद्ध करता हुआ उन्हें लक्ष्य की ओर ले जाता है।

लक्ष्य प्राप्त हुआ। सन् १८१५ के अंतिम युद्ध के बाद अलेक्सान्द्र किसी मानव के लिये संभव सत्ता के उच्चतम शिखर पर थे। वह उसका किस प्रकार उपयोग करते हैं?

अलेक्सान्द्र प्रथम, यूरोप के शांतिदाता, युवावस्था से ही अपनी जनता की भलाई के आकांक्षी, अपने देश में उदारतावादी नवाचार के उत्प्रेरक, अब, जब ऐसा लगता है कि वह अधिकतम सत्तासंपन्न हो गये हैं और अपनी प्रजा की भलाई कर सकते हैं और जब निर्वासित नेपोलियन इसके बारे में बचकाना और बेतुकी योजनायें बना रहा है

कि अगर उसके पास सत्ता होती तो कैसे वह मानवजाति को सुखी बना देता. अलेक्सान्द्र प्रथम अपना जीवन-लक्ष्य सिद्ध करके और अपने ऊपर प्रभु की अनुकंपा को अनुभव करके अचानक इस मायावी सत्ता की तुच्छता को समझ जाते हैं, उससे मुंह मोड़ लेते हैं और केवल यह कहते हुए उसे उन घृणित लोगों के हाथों में सौंप देते हैं जिनसे वह स्वयं भी घृणा करते थे :

" 'अपनी नहीं, अपनी नहीं, बल्कि भगवान के नाम की महिमा बढ़ा!' तुम्हारी तरह मैं भी आदमी हूं, मुझे आदमी की तरह जीने दो, अपनी आत्मा और ईश्वर के बारे में सोचने दो।"

जैसे सूर्य और आकाश का प्रत्येक अणु एक गोला, अपने आपमें संपूर्ण, किन्तु साथ ही वह मानव की समझ के परे किसी विराट काय का अणु मात्र ही है, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में अपने लक्ष्यों का वाहक होता है और साथ ही वह मानव के लिये अबोधगम्य आम लक्ष्यों की सेवा के लिये उनका वहन करता है।

फूल पर बैठी मधुमक्खी एक बालक को डंक मार देती है। बालक मधुमक्खियों से डरने लगता है और कहता है कि मधुमक्खी की सुगंध और उसके रस से आनन्दित होने के लिये ही है। मधुमक्खी को हर्ष-विभोर होता हुआ देखता है और कहता है कि मधुमक्खी फूलों की सुगंध और उसके रस से आनन्दित होने के लिये ही है। मधुमक्खी-पालक इस बात को ध्यान में रखते हुए कि मधुमक्खी पराग एकत्र करके छत्ते में लाती है, कहता है कि मधुमक्खी शहद इकट्ठा करने के लिये ही है। दूसरा मधुमक्खी-पालक, जिसने छत्ते के जीवन का अधिक गहरा अध्ययन किया है, यह कहता है कि मधुमक्खी नन्ही मधुमक्खियों के पोषण और रानी-मक्खी के विकास अर्थात् वंश को जारी रखने के लिये ही है। वनस्पतिशास्त्री देखता है कि मधुमक्खी फूल के परागकणों के साथ उड़कर गर्भकेसर पर बैठ उन्हें सींचती है और वनस्पतिशास्त्री इसी को मधुमक्खी के जीवन का लक्ष्य मानता है। दूसरा पेड़-पौधों के प्रव्रजन का प्रेक्षण करते समय देखता है कि मधुमक्खी इस प्रव्रजन में योग देती है और यह नया प्रेक्षक कह सकता है कि मधुमक्खी के जीवन का यही लक्ष्य है। परंतु मधुमक्खी के जीवन का अंतिम लक्ष्य न पहले, न दूसरे, न तीसरे लक्ष्य तक ही सीमित है जिन्हें मानवीय बुद्धि समझने में समर्थ है। मानवीय बुद्धि इन लक्ष्यों के अन्वेषण में

जितनी ऊपर उठती जाती है, उसके लिये अंतिम लक्ष्य की अबोध-गम्यता भी उतनी ही स्पष्ट होती जाती है।

मधुमक्खी के जीवन और जीवन की अन्य परिघटनाओं के आपसी सम्बन्धों को कुछ हद तक समझ पाना ही मानव के बस की बात है। ऐतिहासिक पात्रों और जनगण के लक्ष्यों के विषय में भी यही कहा जा सकता है।

५

रोस्तोव-परिवार की पुरानी पीढ़ी के लिये सन् १८१३ में बेज़ूखोव से नताशा की शादी ही ख़ुशी की अंतिम घटना थी। उसी वर्ष काउंट इल्या अन्द्रेयेविच का देहांत हो गया और जैसाकि सदा होता है, उनकी मृत्यु के साथ पुराना परिवार टूट गया।

पिछले वर्ष की घटनायें: मास्को का अग्निकांड, वहां से पलायन, प्रिंस अन्द्रेई की मृत्यु और नताशा की हताशा, पेत्या की मौत, काउंटेस का ग़म – एक के बाद एक ये सभी चीज़ें वृद्ध काउंट के सिर पर गाज की तरह गिर रही थीं। ऐसा लगता था कि वह इन सब घटनाओं का अर्थ नहीं समझते थे, महसूस करते थे कि उनमें इन्हें समझने की शक्ति नहीं है और मानो विनम्रता से अपना सिर झुकाकर नये सदमों की प्रतीक्षा और उनके लिये विनती करते थे जो उनका काम तमाम कर दें। वह कभी भयभीत और खोये-खोये लगते तो कभी अस्वाभाविक रूप से सजीव और सक्रिय।

कुछ समय के लिये वह नताशा के विवाह के प्रबन्ध आदि में व्यस्त रहे। वह दावतों की व्यवस्था के आदेश देते और सम्भवतः प्रसन्न दिखाई देना चाहते थे, पर उनकी प्रसन्नता अब पहले की तरह दूसरों को भी रंग में लानेवाली नहीं थी, बल्कि, इसके विपरीत, उन्हें जानने व प्यार करनेवाले लोगों में दया उत्पन्न करती थी।

नताशा और प्येर के चले जाने के बाद वह गुम-सुम रहते और ऊब की शिकायत करते। कुछ दिन बीतने पर वह बीमार हो गये और उन्होंने खाट पकड़ ली। अपनी बीमारी के पहले ही दिनों से, डाक्टरों

के आश्वासनों के बावजूद वह समझ गये कि अब उठ नहीं पायेंगे। काउंटेस ने कपड़े बदले बिना उनके सिरहाने के पास आरामकुर्सी पर बैठे-बैठे ही दो सप्ताह बिता दिये। हर बार जब वह उन्हें दवा देतीं तो वह सुबकते और कुछ कहे बिना उनका हाथ चूम लेते। अपने जीवन के अंतिम दिन उन्होंने फूट-फूटकर रोते हुए पत्नी और बेटे से, जो अभी तक घर नहीं लौटा था, उसकी अनुपस्थिति में जागीर की तबाही के लिये क्षमा मांगी – इसी को वह अपना प्रमुख दोष मानते थे। धार्मिक अनुष्ठान पूरा करके वह शान्ति से चिर-निद्रा मग्न हो गये, और अगले दिन रोस्तोव-परिवार के किराये के मकान में मृतक के अंतिम दर्शन के लिये आये परिचितों की भारी भीड़ जमा हो गयी। ये सब परिचित, जो इतनी बार उनके यहां भोजन और नृत्य कर चुके थे, इतनी बार उनकी हंसी उड़ा चुके थे, अब आंतरिक ग्लानि और स्नेह के एक जैसे भाव के साथ, मानो अपनी सफ़ाई पेश करते हुए कह रहे थे – "अरे, चाहे कुछ भी कहिये, पर वह आदमी बहुत बढ़िया थे। अब ऐसे लोग हैं ही कहां ... और कमियां-कमज़ोरियां तो किसमें नहीं होतीं ? .."

उसी समय जब काउंट के आर्थिक मामले इतने अधिक उलझ गये थे कि यह कल्पना करना कठिन था कि अगर एक साल और यही हालत रहती तो अंत क्या होता, वह अचानक मर गये।

निकोलाई उस समय रूसी सेना के साथ पेरिस में था, जब उसे पिता की मृत्यु की सूचना मिली। उसने तत्काल अपने को सेवा से मुक्त करने का प्रार्थना-पत्र दिया और परिणाम की प्रतीक्षा किये बिना छुट्टी लेकर मास्को आ गया। काउंट की मृत्यु के एक महीने बाद वित्तीय मामलों की स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो गयी, विभिन्न छोटे-मोटे क़र्ज़ों को जोड़कर बनी विपुल राशि ने सबको चकित कर दिया, जिनका किसी को गुमान तक न था। क़र्ज़ जागीरों के कुल मूल्य से दुगने थे।

रिश्तेदारों और दोस्तों ने निकोलाई को पैतृक संपत्ति से इन्कार करने की सलाह दी। पर पैतृक संपत्ति से इन्कार को निकोलाई पिता की पुण्य स्मृति का अपमान मानता था, इसलिये वह इसके बारे में सुनना तक नहीं चाहता था और उसने क़र्ज़ों की अदायगी का ज़िम्मा लेकर पैतृक संपत्ति का उत्तराधिकार ग्रहण किया।

इतने समय से चुप ऋणदाता, जो काउंट के जीवनकाल में उनकी

अस्पष्ट, किन्तु अत्यधिक दयालुता के शक्तिशाली प्रभाव में रहे थे, अब अचानक सब के सब अदायगी की मांग करने लगे। जैसाकि सदा होता है, उनमें होड़ शुरू हो गयी कि कौन सबसे पहले अपनी रक़म पाता है, और मीत्या तथा उसके जैसे ही अन्य लोग, जिनके पास उपहार के रूप में मिली हुंडियां थीं, अब सबसे कड़े लेनदार निकले। निकोलाई को न मोहलत दी जाती थी, न दम लेने की फ़ुरसत, और वे, जो शायद अपने नुक़सान के दोषी (अगर नुक़सान हुआ हो) वृद्ध काउंट पर रहम करते थे, अब उनके सामने स्पष्ट रूप से निर्दोष, स्वेच्छा से भुगतान का दायित्व अपने ऊपर लेनेवाले युवा उत्तराधिकारी पर बेरहमी से टूट पड़े।

निकोलाई की कोई भी जुगत नहीं भिड़ी; जागीर आधे दाम पर नीलाम हो गयी और आधे क़र्ज़ों की अदायगी बाक़ी रह गयी। निकोलाई ने जीजा बेज़ूख़ोव द्वारा प्रस्तावित तीस हज़ार रूबल उन क़र्ज़ों के भुगतान के लिये ले लिये जिन्हें वह नक़द ली गयी रक़म के रूप में असली क़र्ज़ मानता था। और बाक़ी क़र्ज़ चुकाने तथा जेल से बचने के लिये, जिसकी लेनदार उसे धमकी दे रहे थे, वह फिर से नौकरी करने लगा।

सेना में वह जा नहीं सकता था, जहां जगह ख़ाली होने पर सबसे पहले उसे ही रेजिमेंट-कमांडर का पद मिलता, क्योंकि मां के लिये अब बेटा ही जीवन का अंतिम सहारा था; इसलिये मास्को में उन लोगों के बीच रहने की अनिच्छा के बावजूद, जो पहले उसे दूसरे रूप में देख चुके थे, ग़ैरफ़ौजी नौकरी से नफ़रत के बावजूद, उसने अपनी प्रिय फ़ौजी वर्दी उतारकर मास्को में नौकरी कर ली और मां तथा सोन्या के साथ सीवत्सेव व्राजेक सड़क पर किराये के एक छोटे-से मकान में रहने लगा।

नताशा और प्येर इस समय पीटर्सबर्ग में रहते थे, निकोलाई की हालत का उन्हें पूरा अंदाज़ नहीं था। जीजा से उधार लेकर निकोलाई ने उससे अपनी दयनीय स्थिति को छिपाने की कोशिश की। निकोलाई की हालत इसलिये और भी बुरी थी कि उसे अपने बारह सौ रूबल के वेतन से न केवल अपना, सोन्या और मां का गुज़ारा चलाना होता था, बल्कि उसे मां को इस तरह रखना होता था कि वह यह महसूस न करें कि वे ग़रीब हैं। काउंटेस विलासिता के बिना, जिसकी वह

बचपन से अभ्यस्त थीं, जीवन की संभावना की कल्पना ही कर नहीं पाती थीं और निरंतर, यह समझे बिना कि बेटे के लिये यह कितना कठिन है, कभी किसी परिचिता को बुलवाने के लिये बग्घी की मांग करतीं, जो उनके पास नहीं थी, तो कभी अपने लिये किसी लज़ीज़ खाने और बेटे के लिये शराब की, तो कभी नताशा, सोन्या या निकोलाई ही को अप्रत्याशित उपहार देने के लिये पैसे मांगने लगतीं।

सोन्या गृहस्थी चलाती, काउंटेस की देखभाल करती, उन्हें किताबें पढ़कर सुनाती, उनकी सनकों और छिपी कुढ़न को सहती और तंगहाली की उस स्थिति को बूढ़ी काउंटेस से छिपाने में निकोलाई को सहायता देती जिसमें वे थे। निकोलाई उस सब के लिये, जो सोन्या उसकी मां के लिये करती थी, उसका अत्यधिक आभार मानता, उसके धीरज और अनुराग को मन ही मन सराहता, पर उससे कन्नी काटने का प्रयास करता।

निकोलाई उसके इतनी अनिन्द्य होने और इस कारण भी दिल ही दिल में मानो उसकी भर्त्सना करता कि कोई ऐसी चीज़ नहीं थी जिसके लिये उसकी भर्त्सना की जा सकती हो। उसमें वह सभी कुछ था जिसके लिये लोगों का आदर किया जाता है, परंतु वह कम था जो निकोलाई को उससे प्रेम करने को बाध्य कर सकता और वह महसूस करता था कि वह उसका जितना अधिक आदर करता है, उतना ही कम प्यार करता है। उसने सोन्या के पत्र में लिखे गये शब्दों को ही आधार बना लिया जिनके ज़रिये उसने निकोलाई को आज़ादी दी थी और अब वह उसके साथ ऐसा बर्ताव करता कि मानो उनके बीच जो कुछ हुआ था, वह कभी का भूला-बिसरा क़िस्सा बन चुका है और अब फिर कभी भी दोहराया नहीं जा सकता।

निकोलाई की हालत बद से बदतर होती जा रही थी। अपने वेतन से कुछ बचाने का विचार महज़ सपना ही निकला। बचत करना तो दूर, अपनी मां की मांगों को पूरा करने के लिये उलटे वह छोटे-मोटे क़र्ज़ लेने लगा। उसे अपनी ऐसी स्थिति से उबरने का कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। अमीर वारिस लड़की से शादी करने के विचार से ही, जिसका सुझाव उसकी रिश्तेदार महिलायें दे रही थीं, उसे घिन आती। इस स्थिति से उसके निकलने का दूसरा रास्ता था – मां की मृत्यु, पर ऐसा विचार

तो उसके दिमाग़ में कभी आया ही नहीं था। वह न तो कुछ चाहता था, न किसी बात की आशा रखता था; और मन की गहराइयों में अपनी इस स्थिति को चुपचाप सहने का विषादपूर्ण और कठोर आनन्द अनुभव करता। वह संवेदना दिखाने और अपमानजनक सहायता के प्रस्ताव करनेवाले पुराने परिचितों से कतराने का प्रयास करता, हर प्रकार के मनोरंजन और मनबहलाव से दूर रहता, मां के साथ ताश खेलने के सिवा घर तक में और कुछ न करता, कमरों में चुपचाप टहलता और लगातार पाइप के कश खींचता रहता। वह अपने भीतर मानो उस विषादपूर्ण मनोदशा को क़ायम रखने का प्रयास करता जो उसके लिये अपनी यह स्थिति झेलना सम्भव बनाती।

६

जाड़े के आरंभ में प्रिंसेस मरीया मास्को आयी। शहर की अफ़वाहों से उसे रोस्तोव-परिवार की हालत और इसके बारे में पता चला कि कैसे "मां की ख़ातिर बेटा अपनी क़ुर्बानी दे रहा है" – शहर में यही कहा जा रहा था।

"मुझे उससे ऐसी ही उम्मीद थी," निकोलाई के प्रति अपने प्रेम की उल्लासपूर्ण पुष्टि को अनुभव करते हुए प्रिंसेस मरीया अपने से कहती। पूरे परिवार के साथ अपने मैत्रीपूर्ण और लगभग रिश्तेदारों जैसे सम्बन्धों को याद करके उसने उनके यहां जाने को अपना कर्त्तव्य माना। पर वोरोनेज़ में निकोलाई के साथ अपनी मुलाक़ातों को याद करके उसे उनके यहां जाते हुए घबराहट महसूस होती थी, फिर भी नगर में अपने आगमन के कुछ सप्ताह बाद अपना मन कड़ा करके वह रोस्तोव-परिवार से मिलने गयी।

निकोलाई से ही उसकी सबसे पहले भेंट हुई, क्योंकि उसी के कमरे से होकर काउंटेस के कमरे में जाया जा सकता था। उसपर नज़र पड़ते ही निकोलाई के चेहरे पर ख़ुशी के बजाय, जिसकी प्रिंसेस मरीया ने आशा की थी, कठोरता, रुखाई और गर्व का ऐसा भाव आ गया, जैसा प्रिंसेस ने पहले कभी नहीं देखा था। निकोलाई ने उसके स्वास्थ्य के

विषय में पूछा, उसे मां के पास ले गया और कोई पांचेक मिनट बैठकर कमरे से चला गया।

काउंटेस के कमरे से प्रिंसेस के बाहर आने पर निकोलाई फिर उससे मिला और बड़ी औपचारिकता और रुखाई से उसने प्रिंसेस को ड्योढ़ी तक विदा किया। काउंटेस के स्वास्थ्य के विषय में प्रिंसेस की बातों का कोई उत्तर तक न दिया। "आपको क्या लेना-देना है इससे? मुझे परेशान नहीं कीजिये," उसकी नज़र यही कह रही थी।

"किसलिये जहां-तहां फिरती रहती है? क्या चाहिये इसे? ये रईसज़ादियां और इनका यह शिष्टाचार मुझे क़तई पसंद नहीं!" प्रिंसेस की बग्घी के घर के सामने से चले जाने पर वह सोन्या के सम्मुख ज़ोर से कह उठा। शायद वह अपनी खीझ को क़ाबू में रखने में असमर्थ था।

"ओह, निकोलाई, ऐसी बात मुंह से निकालना अच्छा नहीं," अपने हर्ष को कठिनाई से छिपाते हुए सोन्या बोली। "वह तो कितनी भली है और अम्मां उसे इतना प्यार करती हैं।"

निकोलाई ने कोई जवाब नहीं दिया और प्रिंसेस के बारे में वह भी चर्चा जारी ही नहीं रखना चाहता था। किन्तु प्रिंसेस के आगमन के पश्चात बूढ़ी काउंटेस रोज़ कई-कई बार उसकी चर्चा करतीं।

काउंटेस उसकी प्रशंसा करतीं और इस चीज़ के लिये ज़ोर देतीं कि बेटा उसके यहां जाये, उसे अक्सर देखने की इच्छा प्रकट करतीं, मगर साथ ही उसके बारे में बात करने पर उनका मूड भी बिगड़ जाता।

मां जब प्रिंसेस की चर्चा चलातीं तो निकोलाई चुप रहने का प्रयास करता, पर उसके मौन से काउंटेस को झुंझलाहट होती।

"वह बहुत भली और बहुत अच्छी लड़की है," वह कहतीं, "तुम्हें उससे मिलने के लिये जाना चाहिये। कम से कम किसी से मिलोगे तो सही, वरना मेरे ख़्याल में हमारे साथ तो तुम्हें ऊब महसूस होती होगी।"

"अम्मां, मेरा ज़रा भी मन नहीं होता।"

"कभी मिलना-जुलना चाहते हो और अब कहते हो कि मन नहीं होता। मेरे लाड़ले, मैं तुम्हें बिल्कुल भी नहीं समझ पाती। कभी तुम्हें ऊब महसूस होती है तो कभी अचानक तुम किसी का मुंह तक नहीं देखना चाहते।"

विषय में पूछा, उसे मां के पास ले गया और कोई पांचेक मिनट बैठकर कमरे से चला गया।

काउंटेस के कमरे से प्रिंसेस के बाहर आने पर निकोलाई फिर उससे मिला और बड़ी औपचारिकता और रुखाई से उसने प्रिंसेस को ड्योढ़ी तक विदा किया। काउंटेस के स्वास्थ्य के विषय में प्रिंसेस की बातों का कोई उत्तर तक न दिया। "आपको क्या लेना-देना है इसमें? मुझे परेशान नहीं कीजिये," उसकी नज़र यही कह रही थी।

"किसलिये जहां-तहां फिरती रहती है? क्या चाहिये इसे? ये रईसज़ादियां और इनका यह शिष्टाचार मुझे क़तई पसंद नहीं!" प्रिंसेस की बग्घी के घर के सामने से चले जाने पर वह सोन्या के सम्मुख ज़ोर से कह उठा। शायद वह अपनी खीझ को क़ाबू में रखने में असमर्थ था।

"ओह, निकोलाई, ऐसी बात मुंह से निकालना अच्छा नहीं," अपने हर्ष को कठिनाई से छिपाते हुए सोन्या बोली। "वह तो कितनी भली है और अम्मां उसे इतना प्यार करती हैं।"

निकोलाई ने कोई जवाब नहीं दिया और प्रिंसेस के बारे में वह भी चर्चा जारी ही नहीं रखना चाहता था। किन्तु प्रिंसेस के आगमन के पश्चात बूढ़ी काउंटेस रोज़ कई-कई बार उसकी चर्चा करतीं।

काउंटेस उसकी प्रशंसा करतीं और इस चीज़ के लिये ज़ोर देतीं कि बेटा उसके यहां जाये, उसे अक्सर देखने की इच्छा प्रकट करतीं, मगर साथ ही उसके बारे में बात करने पर उनका मूड भी बिगड़ जाता।

मां जब प्रिंसेस की चर्चा चलातीं तो निकोलाई चुप रहने का प्रयास करता, पर उसके मौन से काउंटेस को झुंझलाहट होती।

"वह बहुत भली और बहुत अच्छी लड़की है," वह कहतीं, "तुम्हें उससे मिलने के लिये जाना चाहिये। कम से कम किसी से मिलोगे तो सही, वरना मेरे ख़्याल में हमारे साथ तो तुम्हें ऊब महसूस होती होगी।"

"अम्मां, मेरा ज़रा भी मन नहीं होता।"

"कभी मिलना-जुलना चाहते हो और अब कहते हो कि मन नहीं होता। मेरे लाड़ले, मैं तुम्हें बिल्कुल भी नहीं समझ पाती। कभी तुम्हें ऊब महसूस होती है तो कभी अचानक तुम किसी का मुंह तक नहीं देखना चाहते।"

"मैंने यह तो नहीं कहा कि मुझे ऊब महसूस होती है।"

"लेकिन तुमने यह तो अभी-अभी कहा है कि तुम उसे देखना तक नहीं चाहते। वह बहुत भली लड़की है और वह तुम्हें हमेशा पसंद भी थी; और अब अचानक कोई कारण आ गया है तुम्हारे दिमाग़ में। मुझसे सब कुछ छिपाया जाता है।"

"बिल्कुल नहीं, अम्मां।"

"मैं तुमसे कोई बुरा काम करने को तो नहीं कह रही हूं, यही अनुरोध कर रही हूं कि वह मिलने आयी थी तो अब तुम्हें भी उसके यहां जाना चाहिये। शिष्टाचार भी यही कहता है... मैंने तुमसे इसके लिये अनुरोध किया था और अब, जब तुम मां से बातें छिपाते हो तो मैं कोई दख़ल नहीं दूंगी तुम्हारे मामलों में।"

"अगर आप चाहती हैं तो मैं चला जाऊंगा।"

"मुझे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता; मैं तो तुम्हारी ख़ातिर ही ऐसा चाहती थी।"

निकोलाई मूंछें चबाता, उसांसें छोड़ता हुआ और मां का ध्यान बंटाने के लिये ताश के पत्ते बिछाने लगता।

दूसरे, तीसरे और चौथे दिन भी यही वार्तालाप हुआ।

रोस्तोव-परिवार में जाने और निकोलाई द्वारा उसके रूखे स्वागत के बाद प्रिंसेस मरीया ने अपने आपसे कहा कि तब वह सही थी, जब उनके यहां जाने में पहल नहीं करना चाहती थी।

"मैं किसी दूसरी बात की आशा ही नहीं कर सकती थी," अपने स्वाभिमान का दामन थामते हुए वह अपने आपसे कहती। "मुझे उससे कोई मतलब नहीं, मैं तो बस बूढ़ी काउंटेस से मिलना चाहती थी जो मेरे प्रति हमेशा दयालु रही हैं और जिनकी मैं बहुत कृतज्ञ हूं।"

किन्तु ऐसे तर्क-वितर्क से उसके मन को चैन न मिला। जब वह उनके यहां जाने की याद करती तो पश्चात्ताप जैसा भाव उसके मन को व्यथित करता। इसके बावजूद कि वह रोस्तोव-परिवार में फिर कभी न जाने और यह सब भूल जाने का दृढ़ निश्चय कर चुकी थी, वह अपने मन में निरंतर बेचैनी महसूस करती रहती। और जब वह अपने से पूछती कि वह किस कारण व्यथित है तो उसे स्वीकार करना पड़ता कि रोस्तोव के साथ उसकी भेंट ही उसे विह्वल कर रही है। निकोलाई के रूखे, शिष्ट लहजे का कारण उसके प्रति निकोलाई की भावना नहीं

थी (वह यह जानती थी,) बल्कि यह लहजा किसी चीज़ पर पर्दा डालने के लिये ही अपनाया गया था। उसे इसी चीज़ का पता लगाना था और वह महसूस कर रही थी कि जब तक ऐसा नहीं कर लेगी, उसे चैन नहीं मिलेगा।

सर्दियों के मध्य में वह एक दिन अध्ययन कक्ष में बैठी हुई भतीजे की पढ़ाई की जांच कर रही थी कि उसे रोस्तोव के आगमन की सूचना दी गयी। अपने रहस्य को छिपाये रखने और अपनी झेंप को प्रकट न होने देने का दृढ़ निश्चय किये हुए उसने कुमारी बुर्येन को बुलाया और उसके साथ दीवानखाने में गयी।

निकोलाई का चेहरा देखते ही वह समझ गयी कि वह सिर्फ़ शिष्टाचार निभाने के लिये ही आया है और उसने दृढ़ता से वही लहजा अपनाने का फ़ैसला किया जिस लहजे में वह उसके साथ पेश आया था।

वे काउंटेस के स्वास्थ्य, अपने परिचितों, युद्ध के ताज़े समाचारों के बारे में बातें करने लगे और इस तरह शिष्टाचार के वे दस मिनट बीत गये जिनके बाद मेहमान जाने के लिये उठ सकता था। निकोलाई विदा मांगता हुआ उठा।

कुमारी बुर्येन की सहायता से प्रिंसेस ने बातचीत में बहुत अच्छे ढंग से भाग लिया। किन्तु अंतिम क्षण में, उस समय जब वह उठा, वह उन बातों की चर्चा करते-करते जिनसे उसे कुछ भी लेना-देना नहीं था, इतनी थक गयी थी और इस सोच में इतनी अधिक डूब गयी थी कि क्यों उस अकेली के जीवन में ही इतनी कम खुशियां बदी हैं कि सुध-बुध भूलकर अपनी चमकीली आंखों से अपने सामने देखती हुई बुत बनी बैठी रही और इस चीज़ की तरफ़ उसका ध्यान ही नहीं गया कि वह उठकर खड़ा हो गया है।

निकोलाई ने उसकी ओर देखा और यह जताने के लिये कि वह उसकी अन्यमनस्कता को नहीं देख रहा है, कुमारी बुर्येन से कुछ शब्द कहे और फिर से प्रिंसेस पर नज़र डाली। वह उसी तरह बुत बनी बैठी थी और उसके कोमल मुख पर व्यथा झलक रही थी। उसे अचानक प्रिंसेस पर दया आई और अस्पष्ट-सी अनुभूति हुई कि शायद वही उस दुख का कारण हो जो प्रिंसेस के चेहरे पर झलक रहा था। उसका मन हुआ कि उसकी सहायता करे, उससे कोई अच्छी बात कहे; पर

उसे यह नहीं सूझा कि क्या कहे।

"अलविदा, प्रिंसेस," वह बोला। वह चौंकी, उसका चेहरा लाल हो उठा और उसने गहरी उसांस ली।

"ओह, माफ़ी चाहती हूं," वह ऐसे बोली मानो नींद में जागी हो। "आप जा रहे हैं, काउंट; अच्छा, अलविदा! लेकिन काउंटेस के लिये तकिया?"

"ज़रा रुकिये, मैं अभी लाती हूं," कुमारी बुर्येन बोली और कमरे से चली गयी।

दोनों चुप थे, बस कभी-कभी एक-दूसरे पर नज़र डाल लेते।

"हां, प्रिंसेस," आख़िर उदास-सी मुस्कान के साथ निकोलाई बोला, "ऐसे लगता है मानो यह कल की ही बात हो, मगर कितना समय बीत चुका है बोगुचारोवो में हमारी पहली मुलाक़ात हुए। कितने दुर्भाग्यशाली लग रहे थे तब हम सब – पर मैं वह समय लौटाने के लिये कोई भी क़ीमत चुकाने को तैयार हूं... लेकिन उसे लौटाया नहीं जा सकता।"

जब वह यह कह रहा था, प्रिंसेस अपनी चमकीली आंखों से एकटक उसकी आंखों में झांक रही थी। वह मानो उसके शब्दों के उस गूढ़ार्थ को समझने का प्रयास कर रही थी जो उसके प्रति निकोलाई की भावनाओं को स्पष्ट कर सकता।

"हां, हां," वह बोली, "पर, काउंट, आपको अतीत का मलाल करने की कोई आवश्यकता नहीं। आपके इस समय के जीवन को जितना मैं समझ सकती हूं, मुझे लगता है कि आपको उसे याद करके हमेशा ख़ुशी होगी, क्योंकि वह आत्मबलिदान जो अब आप कर रहे हैं..."

"मैं आपकी इस प्रशंसा को स्वीकार नहीं कर सकता," उसने झट से उसकी बात काट दी, "इसके विपरीत, मैं तो निरंतर अपनी भर्त्सना करता रहता हूं; लेकिन ये बातें ज़रा भी रोचक और सुखद नहीं हैं।"

और निकोलाई की आंखों में वही पहले जैसी रुखाई और कठोरता आ गयीं। किन्तु प्रिंसेस को अब फिर से उसमें उस व्यक्ति की झलक मिल गयी थी जिसे वह जानती और प्यार करती थी और अब वह केवल इसी व्यक्ति से बात कर रही थी।

"मैं सोचती थी कि आपको मेरे उक्त शब्दों पर आपत्ति नहीं

होगी," वह बोली। "मैं आपके ... और आपके परिवार के कितनी निकट आ चुकी हूं, और मैं सोचती थी कि आप मेरी सहानुभूति का बुरा नहीं मानेंगे; पर मुझसे भूल हुई," वह बोली। उसका स्वर अचानक कांप उठा। "मैं नहीं जानती क्यों," वह संभलकर आगे बोली, "पहले आप बिल्कुल दूसरे थे और ..."

"**क्यों** के हज़ारों कारण हैं (उसने **क्यों** शब्द पर विशेष बल दिया)। धन्यवाद, प्रिंसेस," वह धीमे से बोला। "कभी-कभी जीवन बहुत दूभर लगता है।"

"अच्छा, तो यह कारण है! यह कारण है!" प्रिंसेस मरीया की अंतरात्मा ने कहा। "नहीं, मैंने सिर्फ़ इस हंसमुख, नेक और निष्कपट नज़र, सिर्फ़ इस सुंदरता के कारण ही इससे प्रेम नहीं किया; मैंने इसकी उदात्त, दृढ़, निःस्वार्थ आत्मा को भी भांप लिया था," वह अपने से कह रही थी। "हां, अब वह ग़रीब है और मैं अमीर ... हां, यही कारण है ... हां, अगर ऐसा न होता ..." और उसके पहलेवाले स्नेह को याद करके और अब उसके नेक व उदास चेहरे को देखकर वह अचानक उसकी सर्दमिज़ाजी का कारण समझ गयी।

"आख़िर क्यों, काउंट, क्यों?" लगभग चिल्लाते और अनजाने ही उसकी ओर बढ़ती हुई वह बोली। "क्यों, मुझे बताइये? आपको बताना ही पड़ेगा।" वह मौन खड़ा था। "काउंट, मैं आपके **क्यों को** नहीं जानती," वह आगे बोली। "पर मेरे दिल पर बहुत भारी गुज़र रही है, मैं ... मैं आपके सामने यह स्वीकार करती हूं। आप किसी कारणवश मुझे हमारी पहले की मैत्री से वंचित करना चाहते हैं। और इससे मेरा दिल टीस उठता है।" उसकी आंखों में आंसू उमड़ आये और गला भर आया। "ज़िंदगी में मुझे इतनी कम ख़ुशियां मिलीं कि कुछ भी खोने से पीड़ा होती है ... मैं माफ़ी चाहती हूं, अलविदा।" वह अचानक रो पड़ी और कमरे से बाहर चली गयी।

"प्रिंसेस! भगवान के लिये, ज़रा रुकिये," उसको रोकने का प्रयास करते हुए वह चिल्लाया। "प्रिंसेस!"

वह मुड़ी। कुछ क्षण तक वे चुपचाप एक-दूसरे की आंखों में झांकते रहे और जो चीज़ बहुत दूर की और असंभव प्रतीत होती थी, अचानक वही पास की, सम्भव और अवश्यंभावी बन गयी . . . .

. . . .

सन् १८१४ की शरत में निकोलाई ने प्रिंसेस मरीया से विवाह कर लिया और पत्नी, मां और सोन्या के साथ लीसियें गोरि में जाकर बस गया।

तीन साल में उसने पत्नी की जागीर में से कुछ भी बेचे बिना बाक़ी क़र्ज़ चुका दिये और एक चचेरी बहन के मरने पर मिली छोटी-सी जायदाद से उसने प्येर से लिया गया क़र्ज़ भी चुका दिया।

इसके तीन साल बाद सन् १८२० तक निकोलाई ने अपनी माली हालत इतनी सुधार ली कि उसने लीसियें गोरि के पास एक छोटी-सी जागीर और ख़रीद ली और वह पिता की ओतरादनोये जागीर छुड़ाने के लिये, जो उसका मनोगत सपना था, बातचीत कर रहा था।

शुरू में उसने मजबूरी के कारण खेतीबारी में दिलचस्पी ली, पर शीघ्र ही उसे ज़मींदारी का ऐसा चस्का पड़ गया कि वह उसका प्रिय और लगभग एकमात्र काम बन गया। निकोलाई सीधे-सादे ढंग का ज़मींदार था, उसे नयी, विशेषकर अंग्रेज़ी विधियां पसंद नहीं थीं जिनका उन दिनों चलन हो गया था। वह खेती के बारे में सैद्धांतिक रचनाओं की हंसी उड़ाता, उसे मशीनें, ख़र्चीली प्रक्रियायें, महंगी क़िस्मों के अनाज की बोवाई पसन्द नहीं थी और वह खेतीबारी के किसी एक ही काम को अलग से कभी नहीं करता था। पूरी जागीर, न कि उसके किसी अलग भाग की उन्नति ही सदा उसकी आंखों के सामने रहती। उसके मतानुसार खेती में तो प्रमुख चीज़ मिट्टी और हवा में मिली नाइट्रोजन और आक्सीजन नहीं, ख़ास हल और खाद नहीं, बल्कि वह प्रमुख साधन था जिसके माध्यम से नाइट्रोजन और आक्सीजन, खाद और हल भी काम करते हैं – अर्थात् कमेरा-किसान। निकोलाई ने जब खेतीबारी का काम हाथ में लिया और उसके विभिन्न पहलुओं की गहराइयों में जाने लगा तो किसान ने विशेष रूप से अपनी ओर उसका ध्यान आकर्षित किया। किसान उसे न केवल साधन, बल्कि साध्य और पारखी भी लगता था। यह समझने के लिये कि किसान क्या चाहता है, किस चीज़ को बुरा और किसको अच्छा मानता है, शुरू में वह बहुत ध्यान से उसका अध्ययन करता रहा और केवल यह दिखावा करते हुए कि हुक्म चलाता है, वास्तव में किसानों की कार्य-

विधियां तथा उनकी बोली सीखता था और यह जानने की कोशिश करता था कि अच्छाई और बुराई के बारे में उनके विचार क्या हैं। और किसानों की रुचियों और आकांक्षाओं को जानने, उनकी बोली बोलने तथा उनकी बातों के गूढ़ार्थ को समझने में समर्थ होने पर ही उसने अपने को उनके समान महसूस किया और केवल तभी वह विश्वास के साथ उनका संचालन करने लगा, यानी उनके प्रति वे कर्त्तव्य निभाने लगा जिनकी उससे अपेक्षा की जाती थी। और निकोलाई की जागीर अत्युत्तम फल दे रही थी।

जागीर की बागडोर सम्भालते समय निकोलाई ने किसी अंतरदृष्टि से और कोई भूल किये बिना फ़ौरन उन्हीं लोगों को कारिन्दा, मुखिया का सहायक नियुक्त किया, जिन्हें स्वयं किसानों ने, अगर उन्हें ऐसा करने का अधिकार होता, चुना होता और उसके ये पदाधिकारी कभी नहीं बदले जाते थे। खाद के रसायनिक गुणों के विश्लेषण से पहले, "**लेनदारी**" और "**देनदारी**" (जैसाकि वह उपहास में हिसाब-किताब के बारे में कहता था) के फेर में पड़ने से पहले वह किसानों के पास उनके मवेशियों की संख्या मालूम करता और इस संख्या को बढ़ाने का हर संभव यत्न करता। वह किसानों के बड़े-बड़े कुटुंबों का समर्थक था और उन्हें विभाजित नहीं होने देता था। आलसियों, अनाचारियों और कमज़ोरों को वह एक ही लाठी से हांकता और उन्हें ग्राम-समुदाय से निकालने का प्रयास करता।

बोवाई और घास व अनाज की कटाई के समय वह अपने और किसानों के खेतों का बिल्कुल एक जैसा ध्यान रखता। इक्के-दुक्के ज़मींदारों के खेतों में ही निकोलाई के खेतों के समान इतनी जल्दी और अच्छी बोवाई और कटाई होती तथा इतनी अधिक आय प्राप्त की जाती।

घर के भूदास-नौकरों से वह कोई वास्ता रखना पसन्द न करता, उन्हें **टुकड़खोर** कहता और जैसाकि सभी कहते थे, उसने उन्हें ढील दे दी थी और सिर पर चढ़ा लिया था; जब किसी नौकर के बारे में कोई फ़ैसला करना होता, विशेषकर जब दंड देने की ज़रूरत होती तो वह हिचकिचाहट महसूस करता, घर के सभी लोगों से सलाह लेता। लेकिन अगर किसान के बदले भूदास-नौकर को फ़ौज में भेजना सम्भव होता तो ऐसा करते हुए ज़रा भी न झिझकता। किसानों से सम्बन्धित अपने सभी आदेशों में उसे कभी कोई संशय न होता। वह यह जानता

था कि एक या दो-चार को छोड़कर बाक़ी सभी लोग उसके हर आदेश का अनुमोदन करेंगे।

वह कभी किसी व्यक्ति के साथ केवल इसलिये कड़ाई से पेश नहीं आता था और सज़ा नहीं देता था कि उसका दिल ऐसा करना चाहता है। ठीक इसी प्रकार वह किसी को कोई रियायत नहीं देता था और पुरस्कृत भी नहीं करता था। वह यह न बता पाता कि क्या होना चाहिये और क्या नहीं होना चाहिये, उसके पास इसका क्या मानदंड है; मगर उसके मन में यह मानदंड बड़ा दृढ़ और अटल था।

किसी असफलता या किसी गड़बड़झाले के कारण दुखी होते हुए वह अक्सर कहता – "**ओह, ये हमारे रूसी किसान के साथ,**" और उसे लगता कि वह देहातियों को बर्दाश्त ही नहीं कर सकता।

पर वह "**हमारे इन रूसी किसानों**" और उनके जीवन-ढंग को जी-जान से प्यार करता था और इसीलिये वह खेतीबारी के उस एकमात्र मार्ग और तरीक़े को अपना और आत्मसात कर सका जो अच्छे परिणाम देता था।

काउंटेस मरीया को अपने पति के इस खेती-प्रेम से ईर्ष्या और यह मलाल होता कि वह इस काम में भाग नहीं ले सकती थी। किन्तु वह उन ख़ुशियों और दुखों को समझने में असमर्थ थी जो पति को उसकी इस अलग तथा अपने लिये सर्वथा परायी खेतीबारी की दुनिया में मिलते। वह यह न समझ पाती कि वह तड़के ही उठकर तथा बोवाई, घास की कटाई या फ़सल की लुनाई के काम के सिलसिले में खेत या खलिहान में सारी सुबह बिताकर चाय पीने के लिये जब उसके पास घर लौटता है तो क्यों इतना ख़ुश तथा सजीव होता है। उसकी समझ में न आता कि किसलिये वह ऐसे आनन्द-विभोर होकर समृद्ध, मेहनती किसान मत्वेई येर्मीशिन की चर्चा करता है जो रात भर अपने पूरे परिवार के साथ पूलों की ढुलाई करता रहा, जबकि किसी अन्य किसान के खेत में लुनाई तक नहीं हुई और उसके यहां पूले तैयार हैं। वह नहीं समझती थी कि जब जौ के सूखते अंकुरों पर वर्षा की कुनकुनी फुहार पड़ती तो क्यों वह खिड़की से हटकर छज्जे में जाते समय मूंछों में ही मुस्कराता, ख़ुशी से आंख मिचमिचाता, या जब घास की कटाई या फ़सल की लुनाई के समय हवा भयंकर घटा को उड़ा ले जाती तो क्यों वह लाल-लाल, धूप से संवलाया, पसीने से तर, और नागदौने

की गंध के साथ खलिहान से लौटता और ख़ुशी से हाथ मलता हुआ कहता – "बस एक दिन और, मेरी और मेरे किसानों की सारी फ़सल खलिहान में होगी।"

वह यह और भी कम समझ पाती कि क्यों वह नेकदिल, उसकी हर इच्छा को पूरा करने को सदा तत्पर, उस वक़्त लगभग झुंझला उठता, जब वह उससे उन देहाती औरतों या मर्दों को काम से मुक्त करने की सिफ़ारिश करती जो उसके पास आकर इसके लिये विनती करते थे, क्यों वह, दयालु निकोलाई कड़ाई से इन्कार कर देता और झुंझलाते हुए उससे अनुरोध करता कि वह उन मामलों में दख़ल न दे जिनसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। वह महसूस करती थी कि पति की एक अपनी अलग दुनिया थी, जिसे वह बेहद प्यार करता था, जिसके कुछ अपने नियम थे जिन्हें वह नहीं समझती थी।

उसे समझने का प्रयास करते हुए वह कभी-कभी उससे अपने किसानों की भलाई के लिये किये जा रहे उसके काम की चर्चा चलाती। ऐसा करने पर वह भड़ककर उत्तर देता – "क़तई नहीं, मेरे दिमाग़ में तो इसका विचार तक नहीं आता; और उनकी भलाई के लिये कभी कुछ नहीं करूंगा। परोपकार – यह सब कविता और लुगाइयों की बातें हैं। मैं तो सिर्फ़ यह चाहता हूं कि हमारे बच्चों को भीख न मांगनी पड़े; जब तक ज़िन्दा हूं मुझे हमारी सम्पत्ति बढ़ानी है; बस, इतनी ही बात है। इसके लिये व्यवस्था और कड़ाई की ज़रूरत है... इसकी ज़रूरत है!" वह ज़ोर से अपनी मुट्ठी भींचकर कहता। "और निश्चय ही न्याय को भी ध्यान में रखना चाहिये," वह जोड़ता, "क्योंकि अगर किसान भूखा-नंगा हो और उसके पास एक ही घोड़ा हो तो वह न तो अपना और न मेरा ही काम कर सकेगा।"

और शायद इसीलिये कि निकोलाई अपने दिमाग़ में यह विचार तक नहीं आने देता था कि वह दूसरों के लिये, परोपकार के लिये कुछ कर रहा है – जो कुछ भी करता, फलप्रद सिद्ध होता: उसकी समृद्धि तेज़ी से बढ़ती जा रही थी; पड़ोस के गांवों के किसान उससे यह प्रार्थना करने आते कि वह उन्हें ख़रीद ले, और उसकी मृत्यु के बाद बहुत समय तक लोगों ने उसके संचालन की पुण्य स्मृति को संजोकर रखा। "असली मालिक थे... पहले किसान की चिन्ता करते थे, फिर अपनी। मगर कोई ढील भी नहीं देते थे। असली मालिक थे!"

निकोलाई के काम-काज में जो बात् उसे सबसे ज़्यादा परेशान करती थी, वह थी – उसकी तुनकमिज़ाजी और इसके साथ ही हाथों को छूट देने की हुस्सारोंवाली पुरानी आदत। शुरू में वह इसे कोई बुरी बात नहीं समझता था, मगर शादी के एक वर्ष बाद इस तरह की मार-पीट के प्रति उसका दृष्टिकोण अचानक बदल गया।

एक बार गर्मियों में बोगुचारोवो के मुखिया को बुलवाया गया था, जिसे द्रोन के मरने के बाद उसके स्थान पर नियुक्त किया गया था। वह तरह-तरह की धांधलेबाज़ी और कुप्रबंध का दोषी था। निकोलाई पोर्च में उसके पास गया और मुखिया के पहले ही उत्तरों के बाद चीख़-चिल्लाहट और मार-पीट की आवाज़ें सुनाई देने लगीं। बाद में नाश्ते के लिये घर लौटने पर निकोलाई कढ़ाई के फ़्रेम पर बहुत नीचा सिर झुकाये बैठी पत्नी के पास गया और सदा की तरह उसे उस सुबह की उन सब बातों के बारे में बताने लगा जिनमें वह व्यस्त रहा था। बातों ही बातों में उसने बोगुचारोवो के मुखिया का भी ज़िक्र कर दिया। काउंटेस मरीया के चेहरे का रंग बदल रहा था, वह लाल, फिर पीला हो गया और वह होंठ भींचे, उसी तरह सिर झुकाये बैठी थी और पति की बातों का कोई उत्तर नहीं दे रही थी।

"ऐसा ढीठ मक्कार है," वह उसकी याद करते ही तैश में आकर बोल रहा था। "अगर वह मुझसे कह देता कि नशे में था, नहीं देख पाया... अरे, तुम्हें क्या हुआ है, मरीया?" अचानक उसने पूछा।

काउंटेस मरीया ने सिर ऊपर उठाया, वह कुछ कहना चाहती थी, पर फिर से सिर झुकाकर उसने होंठ बन्द कर लिये।

"क्या बात है? तुम्हें क्या हुआ है, मेरी प्यारी?.."

रूपहीन काउंटेस मरीया रोते समय हमेशा सुन्दर लगने लगती थी। वह कभी भी पीड़ा और दुख से नहीं, बल्कि उदासी और करुणा से रोती थी। और जब वह रोती तो उसकी चमकीली आंखों में अदम्य मोहिनी आ जाती थी।

जैसे ही निकोलाई ने उसका हाथ अपने हाथों में लिया, वह अपने को नहीं सम्भाल सकी और रो पड़ी।

"निकोलाई, मैंने सब कुछ देखा था... वह दोषी है, पर तुमने, तुमने ऐसा क्यों किया? निकोलाई!.." और उसने हाथों से मुंह ढंक लिया।

निकोलाई चुप हो गया, उसका चेहरा सुर्ख़ हो गया और उसके पास से हटकर तथा चुप्पी साधे हुए वह कमरे में इधर-उधर आने-जाने लगा। वह समझ गया कि क्यों वह रो रही थी, पर अपने मन में फ़ौरन ही उससे इस बात के लिये सहमत नहीं हो सका कि जिस चीज़ का वह बचपन से आदी है जिसे वह आम बात मानता है – बुरी है।

"नम्रता-शिष्टता – यह सब औरतों के दिमाग़ की उपज है या सचमुच मरीया की बात ठीक है?" वह स्वयं से यह प्रश्न पूछ रहा था। इस प्रश्न का अपने लिये उत्तर पाये बिना उसने एक बार फिर उसके व्यथित व स्नेहमय चेहरे पर नज़र डाली और अनायास समझ गया कि वह ठीक कहती है और वह कब से ख़ुद अपने सामने दोषी है।

"मरीया," उसके पास जाकर वह धीमे से बोला, "अब कभी ऐसा नहीं होगा; तुम्हें वचन देता हूं। कभी नहीं," उसने कांपते स्वर में ऐसे यह दोहराया जैसे कोई बालक क्षमा मांगता है।

काउंटेस की आंखों से अश्रुधारा फूट पड़ी। उसने पति का हाथ अपने हाथ में लेकर उसे चूम लिया।

"निकोलाई, तुम्हारा यह नग कब टूट गया?" बात बदलने के लिये वह उसके हाथ को निहारते हुए बोली जिसकी उंगली में अंगूठी थी और जिसमें लाओकून* के सिरवाला उत्कीर्ण नग जड़ा हुआ था।

"आज ही, उसी वजह से। ओह मरीया, अब मुझे इसकी याद मत दिलाओ।" वह फिर से तैश में आ गया। "क़सम खाता हूं कि फिर कभी ऐसा नहीं होगा। और यह हमेशा मुझे इस बात की याद दिलाता रहेगा," उसने अंगूठी के टूटे नग की ओर इशारा करके कहा।

इस दिन से मुखियों और कारिन्दों से जवाबतलबी करते समय निकोलाई को जब भी ताव आता और उसकी मुट्ठियां भिंचने लगतीं, वह टूटी हुई अंगूठी को उंगली में घुमाने लगता और क्रोध दिलाने-वाले आदमी के सामने नज़रें झुका लेता। फिर भी साल में दो-एक

---

* लाओकून – पुराने यूनानी आख्यानों का नायक। – सं०

बार वह आपे से बाहर हो जाता और तब पत्नी के पास आकर अपना दोष स्वीकार करता और फिर से वचन देता कि अब आगे कभी ऐसा नहीं होगा।

"मरीया, तुम तो शायद मुझसे घृणा करती होगी?" वह उससे कहता। "मैं इसी के लायक़ हूं।"

"तुम अगर महसूस करने लगो कि आपे से बाहर हो जाओगे तो उस जगह से चले जाया करो, जल्दी से चले जाया करो," पति को दिलासा देने की कोशिश करते हुए काउंटेस मरीया उदास होकर कहती।

गुबेर्निया के कुलीन समाज में निकोलाई को आदर प्राप्त था, पर प्रेम नहीं। कुलीनों के हितों में उसे कोई रुचि नहीं थी। इसीलिये कुछ लोग उसे घमंडी और दूसरे – बेवक़ूफ़ मानते थे। गर्मियों में, वसंत की बोवाई के बाद से फ़सल की कटाई तक उसका सारा समय ज़मींदारी के कामों में ही बीत जाता। शरत में वह उसी कामकाजी गंभीरता के साथ, जिससे खेतीबारी का संचालन करता था, शिकार में तल्लीन हो जाता, अपने शिकारी दल-बल के साथ महीने-दो महीने घर से दूर रहता। सर्दियों में वह दूसरे गांवों का दौरा करता और पुस्तकें पढ़ता। मुख्य रूप से वह इतिहास की पुस्तकें पढ़ता जिन्हें मंगवाने के लिये हर साल एक निश्चित रक़म ख़र्च करता। जैसाकि वह स्वयं कहता, अपने लिये "गम्भीर पुस्तकालय" बना रहा था और उसने उन सभी पुस्तकों को पढ़ने का नियम बना लिया था जिन्हें ख़रीदता था। वह बड़ी गंभीर मुख-मुद्रा बनाये हुए अपने कक्ष में बैठकर पुस्तकें पढ़ता। शुरू में उसने इसे अपना कर्त्तव्य बना लिया, मगर बाद में वह इसका आदी हो गया और ऐसा करने तथा इस चेतना से उसे एक विशेष प्रकार का आनन्द मिलता कि वह गम्भीर काम में व्यस्त है। कामकाजी यात्राओं को छोड़कर जाड़ों में वह अधिकांश समय घर पर, परिवार के साथ उठने-बैठने, मां और बच्चों के बीच सम्बन्धों की छोटी-मोटी बातों की गहराइयों में जाने में व्यतीत करता। पत्नी के साथ उसकी निकटता बढ़ती जा रही थी, हर रोज ही वह उसमें कोई नयी आध्यात्मिक निधि ढूंढ़ निकालता।

निकोलाई के विवाह के बाद से ही सोन्या उसके घर में रहती थी। अपनी शादी से पहले ही निकोलाई ने अपने को दोषी बताकर और

उसकी प्रशंसा करके अपनी भावी पत्नी को वह सब कुछ बता दिया था जो उसके और सोन्या के बीच हुआ था। उसने प्रिंसेस मरीया से अपनी ममेरी बहन के प्रति स्नेह और दया दर्शाने का अनुरोध किया। काउंटेस मरीया को अपने पति के दोष का पूर्ण आभास था ; सोन्या के सम्मुख वह अपने दोष को भी महसूस करती थी ; वह सोचती थी कि उसकी धन-दौलत ने निकोलाई के चुनाव को प्रभावित किया, वह सोन्या की किसी चीज़ के लिये भी भर्त्सना नहीं कर सकती थी, उससे प्यार करना चाहती थी ; पर प्यार करना तो दूर, उलटे अपने दिल में उसके प्रति अक्सर द्वेष भावना पाती और उसे दूर न कर सकती।

एक बार उसने अपनी सहेली नताशा से सोन्या और उसके प्रति अपने अन्याय की बात छेड़ी।

"जानती हो," नताशा बोली, "तुम इंजील को बहुत पढ़ती रहती हो ; उसमें एक ऐसा स्थल है जो सोन्या पर पूरी तरह से लागू होता है।"

"सच ?" काउंटेस मरीया ने आश्चर्य से पूछा।

"'जिसके पास है, उसे मिलेगा, जिसके पास नहीं है, उससे छिनेगा', याद है यह? उसके पास नहीं है—किस कारण? मैं नहीं जानती, शायद उसमें स्वार्थ भावना नहीं है—मैं नहीं जानती, पर उससे छीन लिया गया है, सब कुछ छीन लिया गया है। कभी-कभी मुझे उसपर बेहद दया आती है। पहले मैं दिल से चाहती थी कि निकोलाई उससे शादी कर ले, पर मेरा दिल हमेशा ही कहता रहता था कि ऐसा नहीं होगा। वह **पुंपुष्प** की तरह है, देखा है जैसे स्ट्राबेरी पर होता है? कभी-कभी मुझे उसपर रहम आता है, किन्तु कभी-कभी मैं सोचती हूं कि वह इसको उस तरह महसूस नहीं करती, जैसे हम करती हैं।"

और इसके बावजूद कि काउंटेस मरीया नताशा को यह समझाती कि इंजील के उक्त शब्दों का वह अर्थ नहीं है, फिर भी सोन्या को देखकर वह नताशा की व्याख्या से सहमत हो जाती। वास्तव में लगता था कि सोन्या अपनी स्थिति से क्षुब्ध नहीं होती थी और उसने **पुंपुष्प** की अपनी नियति को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया था। लगता था कि उसे लोगों से इतना नहीं, जितना कि पूरे परिवार से लगाव था। वह बिल्ली की तरह लोगों की नहीं, बल्कि घर की आदी हो गयी थी।

वह बूढ़ी काउंटेस की सेवा-शुश्रूषा करती, बच्चों से लाड़-प्यार करती, सदा उन छोटी-मोटी सेवाओं के लिये तत्पर रहती जिनमें वह समर्थ थी; किन्तु चाहे-अनचाहे इनके लिये कोई विशेष आभार न माना जाता...

लीसिये गोरि की हवेली फिर से बनायी गयी थी, मगर उतनी भव्य नहीं, जैसी कि स्वर्गीय प्रिंस के काल में थी।

तंगी के वक़्त में किया गया निर्माण मामूली-सा था। पत्थर की पुरानी नींव पर बनायी गयी विशाल हवेली लकड़ी की थी जिसमें अन्दर से ही पलस्तर किया गया था। बिना रंगे लकड़ी के फ़र्शवाले लम्बे-चौड़े मकान में फ़र्नीचर के नाम पर अपनी बर्च की लकड़ी और अपने बढ़इयों द्वारा बनाये गये सादे, कड़े सोफ़े और आरामकुर्सियां, मेजें और कुर्सियां थीं। हवेली में जगह काफ़ी थी, नौकरों और मेहमानों के लिये अलग कमरे थे। रोस्तोव और बोल्कोन्स्की ख़ानदानों के रिश्तेदार कभी-कभी लीसिये गोरि में सपरिवार, अपने सोलह घोड़ों तथा दर्जनों नौकरों के साथ आते और महीनों यहीं रहते। इसके अलावा साल में चार बार मालिकों के संत-दिवसों और वर्षगांठों के अवसर पर एक-दो दिन के लिये सौ तक मेहमान जमा हो जाते। साल के बाक़ी दिनों में बंधी-बंधायी दिनचर्या चलती, वही दैनंदिनी सामान्य काम, अपने ही घर की बनी चीज़ों से चायपान, नाश्ते, लंच और डिनर की व्यवस्था की जाती।

९

सन् १८२० के दिसम्बर महीने की पांचवीं तारीख़ और संत निकोलाई दिवस की पूर्ववेला थी। उस वर्ष शरत के प्रारम्भ से ही नताशा बच्चों और पति के साथ भाई के यहां आयी हुई थी। प्येर पीटर्सबर्ग में था। जैसाकि उसने कहा था, वह अपने ख़ास कामों से तीन सप्ताह के लिये गया था और अब उसे वहां गये हुए सातवां सप्ताह चल रहा था। हर क्षण ही उसके लौटने की प्रतीक्षा बनी रहती थी।

५ दिसम्बर को बेज़ूख़ोव-परिवार के अलावा रोस्तोव-परिवार में

निकोलाई का पुराना मित्र अवकाशप्राप्त जनरल वसीली फ़्योदोरोविच देनीसोव भी आया हुआ था।

निकोलाई जानता था कि ६ तारीख़ को, त्योहार के दिन जब मेहमान जमा होंगे, उसे अंगरखा उतारकर कोट और नुकीले, तंग बूट पहनकर उसके द्वारा बनवाये गये नये गिरजे में जाना पड़ेगा, फिर बधाइयां लेनी होंगी, लोगों को जलपान कराना होगा, कुलीन समाज के चुनावों और फ़सल के बारे में बातें करनी होंगी ; पर वह समझता था कि इस दिन की पूर्ववेला को तो उसे आम दिन की तरह व्यतीत करने का अधिकार है। दोपहर के खाने तक निकोलाई ने पत्नी के भतीजे की र्याज़ान के गांववाली जागीर के कारिन्दे के बही-खाते की जांच की, दो ज़रूरी चिट्ठियां लिखीं और खलिहान, ढोरों के बाड़े और अस्तबल का चक्कर लगाया। अगले दिन, त्योहार के अवसर पर अपेक्षित आम शराबख़ोरी के विरुद्ध ज़रूरी उपाय करके वह दोपहर के खाने के समय लौटा और पत्नी से एकांत में कोई भी बात किये बिना बीस व्यक्तियों के लिये लगायी गयी लम्बी मेज़ पर बैठ गया। घर के सभी लोग यहां जमा थे। मेज़ पर मां, उसकी संगिनी बुढ़िया बेलोवा, पत्नी, तीन बच्चे, शिक्षिका, शिक्षक, अपने शिक्षक के साथ भतीजा, सोन्या, दोनीसोव, नताशा, उसके तीन बच्चे, उनकी शिक्षिका और सेवानिवृत्त होकर लीसिये गोरि में रहनेवाला, दिवंगत प्रिंस का वास्तुकार बूढ़ा मिख़ाईल इवानोविच बैठे थे।

काउंटेस मरीया मेज़ के दूसरे सिरे पर बैठी थी। जैसे ही पति अपने स्थान पर बैठा, जिस ढंग से उसने नेपकिन उठाया, सामने रखे गिलास और जाम को तेज़ी से पीछे हटाया, उसके ऐसा करने के अन्दाज़ से ही काउंटेस मरीया समझ गयी कि पति का मूड बिगड़ा हुआ है, जैसाकि उसके साथ कभी-कभी होता था, विशेषकर सूप खाने से पहले और उस वक़्त, जब वह खेतीबारी के काम के बाद सीधा खाने की मेज़ पर आता था। काउंटेस उसकी इस मनःस्थिति को बहुत अच्छी तरह जानती थी और जब वह खुद अच्छे मूड में होती तो वह शान्ति से उसके सूप खा लेने की प्रतीक्षा करती रहती और तभी उसके साथ कोई बात छेड़ती और उसे यह स्वीकार करने को बाध्य करती कि वह किसी कारण के बिना ही उखड़ा हुआ है। किन्तु आज वह यह बात बिल्कुल भूल गयी ; उसके मन को ठेस लगी कि वह किसी कारण

के बिना ही उससे नाराज़ हो रहा है और उसने अपने को बहुत दुखी महसूस किया। उसने पति से पूछा कि वह कहां गया था। उसने उसे उत्तर दिया। इसके बाद उसने उससे यह भी पूछा कि जागीर के सभी मामले तो ठीक-ठाक हैं न। पत्नी के अस्वाभाविक लहजे से उसने नाक-भौंह सिकोड़ी और रूखा-सा जवाब दिया।

"मतलब यह कि मैं ग़लत नहीं थी," काउंटेस मरीया ने सोचा, "क्यों वह मुझसे नाराज़ है?" जिस लहजे में वह उसे उत्तर दे रहा था, काउंटेस मरीया को उसमें अपने प्रति विद्वेष और बातचीत बन्द करने की इच्छा की अनुभूति हुई। वह महसूस करती थी कि उसकी बातें अस्वाभाविक-सी थीं, पर वह अपने को कुछेक सवाल और पूछने से रोक न पायी।

देनीसोव की बदौलत खाने की मेज़ पर शीघ्र ही आम और सजीव बातचीत होने लगी तथा काउंटेस मरीया ने पति से और कोई बात नहीं की। जब वे मेज़ से उठे और बूढ़ी काउंटेस के प्रति आभार व्यक्त करने गये तो काउंटेस मरीया ने अपना हाथ बढ़ाकर पति को चूमा और पूछा कि वह किस कारण उससे नाराज़ है।

"तुम्हारे दिमाग़ में हमेशा अजीब-सी बातें आती रहती हैं, मैं भला क्यों नाराज़ होने लगा तुमसे," वह बोला।

पर **हमेशा** शब्द काउंटेस मरीया को बता रहा था: हां, मैं नाराज़ हूं और इसका कारण नहीं बताना चाहता।

निकोलाई अपनी पत्नी के साथ इतने सौहार्द से रहता था कि सोन्या और बूढ़ी काउंटेस तक, जो ईर्ष्यावश उनके बीच कलह देखना चाहती थीं, किसी तरह की भर्त्सना के लिये कोई बहाना नहीं ढूंढ़ पाती थीं। मगर इन दोनों के बीच भी मनमुटाव के क्षण आते थे। कभी-कभी, सबसे मधुर समय के बाद ही अचानक उनमें परायेपन और वैमनस्य का भाव पैदा हो जाता। अक्सर यह भाव तब प्रकट होता, जब काउंटेस मरीया गर्भवती होती। आजकल वह इसी हालत में थी।

"अच्छा, सज्जनो और देवियो," निकोलाई ने ज़ोर से और मानो विनोद के लहजे में कहा (काउंटेस मरीया को लगा कि वह उसका अपमान करने के लिये जान-बूझकर ऐसे विनोदपूर्ण लहजे में बोल रहा है),—"मैं सुबह के छः बजे से उठकर दौड़-धूप कर रहा हूं। कल तो मुझे कष्ट झेलना ही होगा, मगर आज तो आराम कर लूं।" और

काउंटेस मरीया से कुछ कहे बिना वह छोटे दीवानखाने में जाकर सोफ़े पर लेट गया।

"**हमेशा** यही तो होता है," काउंटेस मरीया सोच रही थी। "सबके साथ बातें करता है, सिर्फ़ मेरे साथ नहीं। जानती हूं, जानती हूं कि मैं उसे अच्छी नहीं लगती हूं। ख़ासकर इस हालत में।" उसने अपने बड़े पेट पर नज़र डाली और शीशे में अपना पीला-पीला और दुबला चेहरा देखा। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें सामान्य से कहीं बड़ी लग रही थीं।

और सब कुछ उसे अप्रिय लगने लगा: देनीसोव का हल्ला-गुल्ला और ठहाके, नताशा का वार्तालाप और विशेषकर सोन्या द्वारा उसपर डाली गयी उड़ती-सी नज़र।

काउंटेस मरीया सदा सोन्या को ही सबसे पहले अपनी झुंझला-हट का कारण बनाती।

मेहमानों के साथ कुछ देर बैठकर, उनकी बातों को ज़रा भी समझे बिना वह चुपचाप उठकर बच्चों के कमरे में चली गयी।

बच्चे कुर्सियों पर बैठे मास्को जाने का खेल खेल रहे थे, उन्होंने उसे भी साथ चलने को कहा। वह बैठकर कुछ देर तक उनके साथ खेली, किन्तु पति और उसकी अकारण खिन्नता का विचार उसे लगातार कचोटता जा रहा था। वह उठी और कठिनाई से पंजों के बल क़दम बढ़ाती हुई छोटे दीवानख़ाने की ओर चल दी।

"शायद निकोलाई सो न रहा हो, मैं उसके साथ बात साफ़ कर लूंगी," वह अपने से बोली। मां की नक़ल करता हुआ बड़ा लड़का अन्द्रूशा उसके पीछे-पीछे पंजों के बल चल रहा था। काउंटेस मरीया ने उसे नहीं देखा।

"प्यारी मरीया, लगता है कि वह सो रहा है, बहुत थका हुआ है," बड़े दीवानख़ाने में मिलनेवाली सोन्या उससे बोली (काउंटेस मरीया को लगा कि वह जहां भी जाती है, वह उसे वहीं मिल जाती है)। "कहीं अन्द्रूशा उसे जगा न दे।"

काउंटेस मरीया ने सिर घुमाया और उसे अपने पीछे-पीछे आता अन्द्रूशा दिखाई दिया। उसे महसूस हुआ कि सोन्या ठीक ही कह रही थी, इसी वजह से उसे ताव आ गया और लगता था कि वह बड़ी मुश्किल से अपने को कोई कड़ी-कड़वी बात कहने से रोक पायी। वह

कुछ नहीं बोली, किन्तु सोन्या की बात की अवहेलना करने के लिये उसने हाथ से इशारा किया कि अन्द्रूशा शोर न करके उसके पीछे-पीछे चलता रहे और दरवाज़े के पास गयी। सोन्या दूसरे दरवाज़े से निकल गयी। उस कमरे से, जहां निकोलाई सो रहा था, उसकी शान्ति से आती-जाती सांस की आवाज़ सुनाई दे रही थी जिसके सूक्ष्मतम उतार-चढ़ाव से पत्नी अच्छी तरह परिचित थी। सांसों की आवाज़ सुनकर उसकी आंखों के सामने उसका सुन्दर, सुघड़ ललाट, मूंछें, सारा चेहरा घूमने लगा जिसे वह रात की नीरवता में अक्सर निहारती रहती थी जब वह सोता। निकोलाई ने अचानक हिलकर और ज़रा खांसकर गला साफ़ किया। और उसी क्षण दरवाज़े के पीछे से अन्द्रूशा चिल्लाया :

"पापा, मम्मी यहां खड़ी है।"

डर के मारे काउंटेस मरीया के चेहरे का रंग उड़ गया और वह बेटे को चुप रहने का इशारा करने लगी। वह चुप हो गया और पल भर को काउंटेस मरीया के लिये भयावह मौन छा गया। वह जानती थी कि निकोलाई को सोते से जगा दिया जाना कितना अधिक नापसन्द था। अचानक कमरे से फिर ज़रा खांसकर गला साफ़ करने और करवट बदलने की आवाज़ें तथा निकोलाई का असंतुष्ट स्वर सुनाई दिया :

"पल भर को भी चैन नहीं लेने देते। मरीया, तुम हो? तुम उसे यहां क्यों लायीं?"

"मैं तो बस देखने आयी थी, इसकी तरफ़ मेरा ध्यान नहीं गया... माफ़ कर दो..."

निकोलाई ज़रा खांसकर चुप हो गया। काउंटेस मरीया दरवाज़े के पास से हटी और बेटे को बच्चों के कमरे में ले गयी। पांच मिनट बाद पिता की लाड़ली, नन्ही, काली आंखोंवाली तीन वर्षीया नताशा भाई से यह जानकर कि पापा छोटे दीवानख़ाने में सो रहे हैं मां की नज़र बचाकर पिता के पास भाग गयी। काली आंखोंवाली बच्ची ने बेधड़क किवाड़ चरमराया, नन्हे पांवों से तेज़ी से डग भरती हुई सोफ़े के पास गयी, अपनी ओर पीठ किये सो रहे पिता की ओर ध्यान देकर वह पंजों के बल उचकी और उसने सिर के नीचे टिके पिता के हाथ को चूम लिया। प्यार भरी मुस्कान के साथ निकोलाई ने उसकी ओर मुंह किया।

"नताशा, नताशा!" दरवाज़े के पीछे से काउंटेस मरीया की भयभीत फुसफुसाहट सुनाई दे रही थी, "पापा सोना चाहते हैं।"

"नहीं मम्मी, वह सोना नहीं चाहते," नन्ही नताशा ने बड़े विश्वास के साथ उत्तर दिया, "वह हंस रहे हैं।"

निकोलाई ने फ़र्श पर पैर रखे, खड़ा हुआ और बेटी को गोद में उठा लिया।

"मरीया, अन्दर आ जाओ," उसने पत्नी से कहा। काउंटेस मरीया ने कमरे में प्रवेश किया और पति के पास बैठ गयी।

"मैंने देखा तक नहीं कि कब वह मेरे पीछे-पीछे दौड़ा चला आया," वह सहमी-सहमी-सी बोली। "मैं इतनी ..."

एक हाथ में बेटी को गोद में उठाये हुए निकोलाई ने पत्नी की ओर देखा और उसके चेहरे पर दोषी होने का भाव देखकर उसने दूसरी बांह उसके गिर्द डाल दी और उसके बाल चूम लिये।

"मम्मी को चूम सकता हूं?" उसने नताशा से पूछा।

नताशा लजाकर मुस्करायी।

"फिर से," उस स्थान की ओर आदेशा-सूचक संकेत करके, जहां निकोलाई ने पत्नी को चूमा था, वह बोली।

"पता नहीं क्यों तुम सोचती हो कि मेरा मूड ख़राब है," निकोलाई उस प्रश्न का उत्तर देते हुए बोला, जो वह जानता था, उसकी पत्नी के मन में था।

"तुम सोच भी नहीं सकते कि जब तुम ऐसे होते हो तो मैं कितनी अभागी और एकाकी हो जाती हूं। मुझे लगने लगता है कि ..."

"मरीया, हटाओ भी इन बेवक़ूफ़ी की बातों को। तुम्हें शर्म नहीं आती," वह चहकते हुए बोला।

"मुझे लगता है कि तुम मुझसे प्यार नहीं कर सकते, कि मैं इतनी बदसूरत हूं... हमेशा ऐसी ही... और अब... इस हाल में ..."

"अरे, तुम भी कितनी अजीब हो! कहावत है कि आदमी का चाम नहीं, काम प्यारा होता है। यह तो गुड़ियों और दूसरियों से इसलिये प्रेम किया जाता है कि वे सुन्दर हैं; पर भला मैं पत्नी से प्रेम करता हूं? मैं प्रेम नहीं करता, पर ऐसे, मालूम नहीं, तुम्हें कैसे समझाऊं। तुम्हारे बिना और उस वक़्त, जब हमारे बीच ऐसे मनमुटाव

हो जाता है, मैं मानो सब कुछ खो बैठता हूं और कुछ नहीं कर पाता। अच्छा, यह बताओ कि क्या मैं अपनी उंगली से प्रेम करता हूं? मैं प्रेम नहीं करता, पर तुम उसे काटकर तो देखो..."

"नहीं, मैं ऐसे प्यार नहीं करती हूं, लेकिन तुम्हारी बात समझती हूं। तो तुम मुझसे नाराज़ नहीं हो?"

"बेहद नाराज़ हूं," वह मुस्कराता हुआ बोला, उठकर उसने बाल संवारे और कमरे में टहलने लगा।

"जानती हो, मरीया, कि मैं किस बारे में सोच रहा था?" अब, जब सुलह हो गयी थी तो वह फ़ौरन मन ही मन नहीं, बल्कि पत्नी के सामने बोलते हुए सोचने लगा। उसने यह नहीं पूछा कि वह उसकी बात सुनने के लिये तैयार है या नहीं; उसे इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता था। वह यह मानता कि अगर उसके मन में विचार आया है तो मतलब है कि पत्नी के मन में भी आया है। और उसने उसे प्येर को वसन्त तक यहीं रहने को राज़ी करने के अपने इरादे के बारे में बताया।

काउंटेस मरीया ने उसकी बात सुनी, उसके बारे में अपनी राय ज़ाहिर की और अब वह भी, मन ही मन नहीं, बल्कि बोलते हुए अपने विचारों पर चिन्तन करने लगी। उसके विचार बच्चों के बारे में थे।

"अभी से इसमें औरत को देखा जा सकता है," नताशा की ओर इशारा करके वह फ़्रांसीसी में बोली। "आप तर्कहीनता के लिये हम औरतों की भर्त्सना करते हैं। यह है हमारे तर्क का उदाहरण। मैं कहती हूं: पापा सोना चाहते हैं और यह कहती है: नहीं, वह हंस रहे हैं। और वह सही है," काउंटेस मरीया ख़ुशी भरी मुस्कान के साथ बोली।

"हां, हां!" और निकोलाई ने बेटी को अपने बलिष्ठ हाथ से ऊंचा उठाया, कंधे पर बिठा लिया और उसे टांग से पकड़कर कमरे में टहलने लगा। पिता और बेटी दोनों के ही चेहरे एक जैसी बेमानी ख़ुशी से चमक रहे थे।

"जानते हो तुम शायद ज़्यादती करते हो। तुम इसे ज़रूरत से अधिक प्यार करते हो," काउंटेस मरीया ने फुसफुसाकर फ़्रांसीसी में कहा।

"हां, पर क्या करूं?.. मैं इस चीज़ को ज़ाहिर न होने देने की कोशिश करता हूं..."

तभी ड्योढ़ी से दरवाज़ा चरमराने और किसी के अन्दर आने के क़दमों की आवाज़ सुनाई दी।

"कोई आया है।"

"यक़ीनन यह प्येर ही है। मैं जाकर देखती हूं," काउंटेस मरीया बोली और कमरे से चली गयी।

उसकी अनुपस्थिति में निकोलाई ने कमरे में सरपट दौड़ते हुए बेटी को सवारी करवायी। हांफते-हांफते उसने झट से हंसती बालिका को कंधे से उतारकर छाती से चिपका लिया। अपनी उछल-कूद उसे नृत्य की तरह लगी और बालिका के गोल, खिले चेहरे को देखते हुए वह सोचने लगा कि बूढ़ा हो जाने पर जब वह इसे अपने साथ पार्टियों में ले जाया करेगा और जिस तरह स्वर्गीय पिता जी अपनी बेटी के साथ 'डानियल कूपर' नृत्य करते थे, उसी तरह वह उसके साथ मज़ूर्का नाच करेगा, तब यह बिटिया कैसी लगेगी।

"वही है, प्येर ही है, निकोलाई," कुछ मिनट बाद कमरे में लौटकर काउंटेस मरीया बोली। "अब हमारी नताशा खिल उठी है। उसकी ख़ुशी तो देखते ही बनती थी। और प्येर को देर से आने के लिये फ़ौरन उसकी झाड़ खानी पड़ी। आओ चलें, जल्दी से वहां चलें! अब छोड़ भी दे अपने पापा को," पिता से चिपकी बेटी को देखकर वह मुस्कराती हुई बोली। निकोलाई बेटी का हाथ पकड़े कमरे से निकला।

काउंटेस मरीया दीवानख़ाने में ही रुक गयी।

"कभी भी मैं यक़ीन न कर पाती कि," वह अपने आपसे बुदबुदाकर बोली, "कि आदमी इतना सुखी हो सकता है।" उसके चेहरे पर मुस्कान दमक रही थी, पर साथ ही उसने उसांस ली और उसकी आंखों की गहराई में हल्की-सी उदासी भी झलक उठी, मानो उस सुख के अलावा जिसकी उसे अनुभूति हो रही थी, दूसरा, इस जीवन में अप्राप्य सुख भी था, जिसका उसे इस पल अनायास ही ध्यान आ गया था।

१०

सन् १८१३ के वसन्त के शुरू में नताशा का विवाह हुआ और १८२० तक उसके तीन बेटियां और एक बेटा हो चुका था, जिसकी उसे बड़ी तमन्ना थी और अपना दूध पिलाती थी। वह भारी-भरकम हो गयी थी और इसलिये गदराये बदनवाली इस मां में पहलेवाली दुबली, चुस्त-फुरतीली नताशा को पहचानना कठिन था। उसके नाक-नक्श ने अब एक निश्चित रूप ले लिया था और उसमें शान्त कोमलता और स्पष्टता की अभिव्यंजना थी। उसके चेहरे से निरन्तर जलती रहनेवाली सजीवता की वह पहले जैसी आग, जो उसके आकर्षण का मूल थी, ग़ायब हो गयी थी। अब अधिकतर तो सिर्फ़ उसका चेहरा और बदन ही दिखाई देता, किन्तु उसके मन की ज़रा भी झलक न मिलती। बस एक तगड़ी, सुन्दर और जननक्षम मादा नज़र आती। अब कभी-कभार ही उसमें पहले जैसी लौ चमकती। यह केवल तब होता, जब आज की तरह कुछ समय के बाद पति लौटता, जब बीमार बच्चा स्वस्थ हो जाता या जब काउंटेस मरीया के साथ वह प्रिंस अन्द्रेई को याद करती (पति प्रिंस अंद्रेई की स्मृति के कारण उससे ईर्ष्या करता है, इसलिये उसके साथ कभी भी उसकी चर्चा नहीं करती थी), और कभी-कभार जब वह संयोग से गायन में मग्न हो जाती, जिसे शादी के बाद उसने बिल्कुल त्याग दिया था। और इने-गिने क्षणों में, जब उसकी लम्बी-चौड़ी सुन्दर देह में पहले जैसी आग सुलगती तो वह पहले से भी अधिक आकर्षक लगती।

अपने विवाह के बाद से नताशा पति के साथ मास्को, पीटर्सबर्ग और मास्को के पास के गांव में तथा मां के साथ यानी निकोलाई के यहां रहती। युवा काउंटेस बेज़ूख़ोवा को सोसाइटी में कम ही देखा जाता था और जिन्होंने उसे देखा था, वे उससे असन्तुष्ट रहे। वह न तो मृदुल थी और न ही मिलनसार। यह नहीं कि नताशा एकान्तप्रिय थी (वह नहीं जानती थी कि उसे यह प्रिय था या नहीं; उसे तो लगता था कि नहीं), पर सोसाइटी से इन्कार किये बिना वह गर्भ-धारण, बच्चों के जन्म और उनके पालन-पोषण तथा पति के जीवन के हर क्षण में सहभागिता की आवश्यकता की पूर्त्ति नहीं कर सकती थी। वे सभी लोग, जो नताशा को उसके विवाह से पहले जानते थे,

परिवार के लोगों के बीच प्यार।

उसमें हुए परिवर्तन को एक चमत्कार-सा मानते हुए आश्चर्य प्रकट करते थे। सिर्फ़ बूढ़ी काउंटेस, जो मां के मन से समझ गयीं कि अपने परिवार, पति की आवश्यकता ही (जैसाकि ओतरादनोये में नताशा ने मज़ाक़ में तो उतना नहीं, जितना कि वास्तव ही चिल्लाकर कहा था) नताशा की हर झोंक का उद्गम है – सिर्फ़ मां ही उन लोगों के आश्चर्य पर चकित होतीं जो नताशा को नहीं समझते थे और दोहरातीं कि वह तो हमेशा से ही यह जानती थीं कि नताशा आदर्श पत्नी और मां बनेगी।

"वह बस, पति और बच्चों के प्रति अपने प्रेम में हद से बाहर चली जाती है," काउंटेस कहतीं, "ऐसी हद तक कि यह मूर्खता लगती है।"

नताशा उस बढ़िया नियम का पालन नहीं करती थी जिसका बुद्धिमान लोग, विशेषकर फ़्रांसीसी प्रचार करते थे। वह यह कि विवाह के बाद युवती को अपनी अवहेलना नहीं करनी चाहिये, अपनी प्रतिभाओं को नहीं त्यागना चाहिये, अपने रंग-रूप पर कुंवारियों से भी अधिक ध्यान देना चाहिये, पति को उसी तरह अपनी ओर आकर्षित करना चाहिये जिस प्रकार शादी से पहले आकर्षित करती थी। इसके विपरीत नताशा ने फ़ौरन ही अपने सभी आकर्षणों को तिलांजलि दे दी जिनमें से एक – गायन – अत्यंत सशक्त था। उसने तो इसीलिये उसे त्याग दिया कि वह शक्तिशाली आकर्षण था। वह, जैसाकि कहते हैं, अपनी चिन्ता नहीं करती थी। नताशा न अपने व्यवहार की परवाह करती, न बोलने के ढंग की, न इस बात कि पति को अत्यधिक आकर्षक ठवन दिखाये, न अपने कपड़ों की, न इस चीज़ की कि अपनी मांगों से पति को न परेशान करे। वह सब कुछ इन नियमों के विपरीत करती। वह महसूस करती थी कि उसकी सहजवृत्ति पहले जिन आकर्षणों का उपयोग करना सिखाती थी, वे अब उसके पति की नज़र में, जिसे पहले ही क्षणों से उसने अपने को पूर्ण रूप से – अर्थात् अपने मन का कोई भी कोना उसके लिये बन्द रखे बिना तन-मन से समर्पित कर दिया था, सिर्फ़ हास्यास्पद ही हो सकते थे। वह महसूस करती थी कि पति के साथ उसका नाता काव्यमयी भावनाओं से नहीं जुड़ा हुआ था जिन्होंने पति को उसकी ओर आकर्षित किया था, बल्कि वह किसी दूसरी, अस्पष्ट, किन्तु उसकी आत्मा और उसकी काया के आपसी

सम्बन्ध की तरह ठोस चीज़ पर आधारित था।

अपने पति को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये बाल घुंघराले बनाना, घेरदार पोशाकें पहनना और प्रेम-गीत गाना उसे उतना ही अजीब लगता, जितना कि अपनी सन्तुष्टि के लिये अपना साज-सिंगार करना। दूसरों को अच्छी लगने के लिये अपना शृंगार करना शायद उसे अब भी अच्छा लग सकता था – वह यह नहीं जानती थी, पर इसके लिये समय बिल्कुल नहीं था। अपने गायन, कपड़ों और शब्दों की ओर ध्यान न देने का मुख्य कारण यही था कि उसके पास इस सब के लिये क़तई समय नहीं था।

यह जानी-मानी बात है कि मानव किसी एक चीज़ में, वह चाहे कितनी ही गौण क्यों न प्रतीत हो, पूरी तरह से डूब जाने की क्षमता रखता है। और यह भी सर्वविदित है कि ऐसी कोई गौण चीज़ नहीं होती जो मानव के पूरे ध्यान का केन्द्र-बिन्दु बन जाने पर बढ़कर असीम न हो जाये।

नताशा जिस चीज़ में पूरी तरह से डूब गयी थी, वह उसका परिवार था, अर्थात् पति जिसकी उसे ऐसे चिन्ता करनी थी कि वह केवल उसी का, घर का बनकर रहे, – और बच्चे जिन्हें गर्भ में सहेजना, जन्म देना और जिनका पालन-पोषण करना था।

नताशा विवेक से नहीं, बल्कि पूरे तन-मन से इस चीज़ में जितनी अधिक डूबती जाती थी, उसके देखते-देखते ही यह चीज़ अधिकाधिक बड़ी होती जाती और उसे अपनी शक्तियां और भी क्षीण व तुच्छ लगतीं। इसलिये वह अपनी सारी शक्तियों को इस एक ही चीज़ पर केन्द्रित करती थी। फिर भी वह सब कुछ नहीं कर पाती थी जो उसे आवश्यक लगता था।

हमारे ज़माने की तरह उन दिनों में भी महिलाओं के अधिकारों, पति-पत्नी के सम्बन्धों, उनकी स्वतंत्रताओं और अधिकारों के विषय में चर्चा और वाद-विवाद होता था, हालांकि आज की तरह, उन दिनों में इन्हें **प्रश्न** नहीं कहा जाता था। किन्तु इन प्रश्नों में नताशा की रुचि की तो बात ही क्या की जाये, उसे ये बड़े अजीब भी लगते थे।

अब की तरह ये प्रश्न तब भी केवल उन्हीं के लिये थे जो विवाह में सिर्फ़ पति-पत्नी को एक-दूसरे से मिलनेवाले आनन्द की ओर ही ध्यान देते थे, अर्थात् जो विवाह के सम्पूर्ण महत्त्व यानी परिवार की ओर

ध्यान न देकर उसके प्रारम्भिक आधार की ओर ही देखते थे।

ये वाद-विवाद और आज के ये प्रश्न उन प्रश्नों की तरह ही कि किस प्रकार भोजन से अत्यधिक सम्भव आनन्द पाया जाये, उन लोगों के सामने तब भी नहीं थे और आज भी नहीं हैं जिनके लिये भोजन का लक्ष्य आहार और दाम्पत्य का लक्ष्य है परिवार।

अगर भोजन का लक्ष्य शरीर का पोषण है, तो एक ही समय दो बार भोजन करनेवाला व्यक्ति शायद अधिक आनन्द प्राप्त करेगा, मगर लक्ष्य नहीं प्राप्त सकेगा, क्योंकि पेट दोहरे भोजन को नहीं पचा पायेगा।

अगर विवाह का लक्ष्य परिवार है तो अनेक पत्नियों और पतियों का इच्छुक व्यक्ति शायद बहुत आनन्द तो प्राप्त कर ले, पर उसका परिवार कभी नहीं बन सकेगा।

अगर भोजन का लक्ष्य आहार है और विवाह का लक्ष्य परिवार है तो यह सवाल केवल इसी प्रकार पूरी तरह से हल हो सकता है कि उससे अधिक न खाया जाये जितना कि पेट पचा सकता है और उससे अधिक पत्नियां और पति न हों, जितने कि परिवार के लिये आवश्यक हैं, अर्थात् सिर्फ़ एक पत्नी या एक पति। नताशा को पति की आवश्यकता थी। उसे पति मिल गया। और पति ने उसे परिवार दिया। उसे दूसरे, बेहतर पति की आवश्यकता ही नज़र नहीं आती थी, और चूंकि उसकी पूरी आत्मिक शक्ति इस पति और परिवार की सेवा पर केन्द्रित थी, तो वह इसकी कल्पना तक नहीं कर सकती थी और न ही उसे इस चीज़ की कल्पना करने में कोई रुचि थी कि अगर दूसरा पति होता तो क्या होता।

नताशा सामान्यतः सोसाइटी की परवाह नहीं करती थी और इसीलिये अपने रिश्तेदारों – काउंटेस मरीया, भाई, मां और सोन्या की संगत को बड़ा महत्त्व देती थी। वह उन लोगों की संगत को महत्त्व देती थी जिनके सामने वह ड्रेसिंग-गाउन पहने, अस्त-व्यस्त बालों और प्रफुल्ल चेहरे के साथ बड़े-बड़े डग भरती हुई बच्चों के कमरे से निकल सकती थी, हरे धब्बे के बजाय पीले धब्बेवाला पोतड़ा दिखा सकती थी और सांत्वना के ये शब्द सुन सकती थी कि अब बच्चे की तबीयत काफ़ी सुधर गयी है।

नताशा इतनी लापरवाह हो गयी थी कि उसकी पोशाकें, उसकी

केश-सज्जा, उसके बेमौक़े कहे गये शब्द, उसकी डाह – वह सोन्या, शिक्षिका, हर सुन्दर और बदसूरत औरत से डाह करती थी – उसके सभी प्रियजनों के मज़ाक़ का आम विषय बन गये थे। यह आम राय थी कि प्येर अपनी बीवी से दबकर रहता है और वास्तव में ऐसा ही था। उनके दाम्पत्य जीवन के पहले ही दिनों से नताशा ने अपनी मांगें बता दी थीं। प्येर को अपने लिये सर्वथा नये, पत्नी के इस दृष्टिकोण से बड़ा आश्चर्य हुआ कि अब उसके जीवन के हर क्षण पर उसकी पत्नी का और परिवार का अधिकार है। उसे अपनी पत्नी की मांगों पर आश्चर्य हुआ, किन्तु साथ ही उसे अपने महत्त्व की प्रशंसा की भी अनुभूति हुई और इसलिये उसने उन्हें मान लिया।

प्येर का दब्बूपन इसमें व्यक्त होता था कि वह किसी परायी औरत के साथ चोंचलेबाज़ी तो क्या, उससे मुस्कराकर बात तक करने का साहस नहीं करता था, क्लब या दावतों में सिर्फ़ **योंही**, वक़्त काटने के लिये जाने का साहस नहीं करता था, अपनी कोई सनक पूरी करने के लिये पैसे ख़र्च करने का साहस न करता, उन मौक़ों के सिवा, जब उसे काम से कहीं जाना होता, जिसमें पत्नी विज्ञानों के उसके अध्ययन को भी शामिल करती थी जिनकी ख़ुद उसे कोई समझ नहीं थी, मगर जिन्हें वह बहुत महत्त्वपूर्ण मानती थी, लम्बी यात्राओं पर जाने का साहस नहीं करता था। इसके बदले में प्येर को अपने घर में न केवल वह जो चाहता, वही करने की पूरी छूट थी, बल्कि पूरा परिवार भी उसकी सेवा में हाज़िर था। अपने घर में नताशा पति की दासी बनकर रहती। जब प्येर अध्ययनरत होता, अपने कक्ष में कुछ लिखता या पढ़ता होता तो घर के सभी लोग दबे पांव चलते। प्येर यदि किसी भी चीज़ में अपनी रुचि प्रकट करता तो उसकी पूर्त्ति के लिये सभी कुछ किया जाता। उसके द्वारा कोई भी इच्छा प्रकट करने पर नताशा फ़ौरन उछलकर खड़ी हो जाती और दौड़कर उसे पूरा करती।

सारे घर का संचालन पति के कल्पित आदेशों के अनुसार, अर्थात् प्येर की इच्छाओं के अनुसार होता था जिनका नताशा अनुमान लगाने का प्रयास करती थी। नताशा के जीवन का रंग-ढंग, निवास-स्थान, उसकी जान-पहचान, सम्बन्ध, काम, बच्चों का पालन-पोषण – सब कुछ न केवल प्येर की इच्छा की अभिव्यक्ति के अनुसार होता था,

बल्कि नताशा उस अर्थ को भी बूझने का प्रयास करती जो बातचीत में प्येर द्वारा प्रकट किये जानेवाले विचारों से निकालना सम्भव हो सकता था। वह प्येर की इच्छाओं के सार का सही अनुमान लगाती थी और एक बार ऐसा कर लेने के बाद अपने निर्णय पर अटल रहती। जब कभी प्येर ख़ुद अपनी इच्छा को बदलना चाहता तो वह उसी के अस्त्र से उसके विरुद्ध लड़ती।

उदाहरण के लिये उस कठिन घड़ी में, जो प्येर और नताशा को सदा याद रहेगी, पहले दुर्बल शिशु के जन्म के बाद जब उन्हें तीन धायें बदलनी पड़ीं और नताशा हताश होकर बीमार पड़ गयी तो एक दिन प्येर ने उससे धायों द्वारा बच्चों को स्तनपान कराने की हानि और उनके अप्राकृतिक स्वरूप के विषय में रुस्सो के विचारों की चर्चा की जिनसे वह पूरी तरह सहमत था। अगले बच्चे के जन्म से नताशा ने मां, डाक्टरों और स्वयं पति के प्रतिरोध के बावजूद, जो तब अनसुनी और हानिकर चीज़ के रूप में उसके द्वारा स्तनपान कराने के विरुद्ध थे, अपनी बात पर अड़ी रहकर सभी बच्चों को अपना ही दूध पिलाया।

झुंझलाहट के क्षणों में प्रायः ऐसा होता कि पति-पत्नी के बीच देर तक वाद-विवाद चलता रहता, किन्तु वाद-विवाद के कुछ देर बाद प्येर हर्ष और आश्चर्य के साथ पत्नी की बातों ही में नहीं, बल्कि व्यावहारिक रूप में भी अपने उसी विचार को पाता जिसके विरुद्ध वह बहस कर रही थी। वह न केवल उसी विचार को, बल्कि उसे उस सब से भी मुक्त पाता जो प्येर के विचार की अभिव्यक्ति में भावातिरेक और वाद-विवाद के कारण फ़ालतू होता था।

दाम्पत्य जीवन के सात वर्ष बाद प्येर को इस बात की हर्षदायी और विश्वसनीय अनुभूति होने लगी थी कि वह बुरा आदमी नहीं है और ऐसी अनुभूति उसे इसलिये होती थी कि वह अपने को अपनी पत्नी में प्रतिबिंबित होता देखता था। अपने में वह बुरे और भले, सभी कुछ को गड्डमड्ड और एक दूसरे के साथ बुरी तरह उलझा-उलझाया पाता। पर उसकी पत्नी में केवल वही प्रतिबिंबित होता जो वास्तव में अच्छा होता ; वह सब जो इतना अच्छा न होता, छंट जाता। और यह प्रतिबिंब तार्किक चिन्तन के माध्यम से नहीं, बल्कि किसी अन्य – रहस्यमय और प्रत्यक्ष स्रोत से उत्पन्न हुआ।

११

दो महीने पहले प्येर को, जब वह रोस्तोव-परिवार में आया हुआ था, प्रिंस फ़्योदोर का पत्र मिला, जिसने उसे एक संस्था के सदस्यों के सामने प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने के लिये पीटर्सबर्ग बुलाया था। प्येर इस संस्था के प्रमुख संस्थापकों में से एक था।

यह पत्र पढ़कर नताशा ने, जो पति के सभी पत्र पढ़ती थी, पति की अनुपस्थिति के कारण अनुभव होनेवाले मन के बोझ के बावजूद स्वयं उससे पीटर्सबर्ग जाने को कहा। पति के सभी बौद्धिक, अस्पष्ट-अमूर्त कार्यों को समझे बिना ही वह उन्हें अत्यधिक महत्त्व देती थी और निरंतर इस बात से घबराती रहती थी कि वह पति के इस कार्य-कलाप में किसी तरह बाधा न बन जाये। पत्र पढ़ने के बाद प्येर की सहमी, प्रश्नसूचक दृष्टि का उसने इस अनुरोध से उत्तर दिया कि वह चला जाये, पर उसे अपने लौटने का सही-सही समय बता दे। और उसे चार सप्ताह की छुट्टी दे दी गयी।

प्येर की यह छुट्टी दो सप्ताह पहले समाप्त हो गयी थी और तबसे नताशा लगातार चिन्ता, उदासी और झुंझलाहट की हालत में रहती थी।

देनीसोव जो अब अवकाशप्राप्त जनरल और रूस की वर्तमान स्थिति से असन्तुष्ट व्यक्ति था तथा इन पिछले दो सप्ताहों से यहां आया हुआ था, आश्चर्य और उदासी से नताशा को इस तरह देखता, जैसे कोई किसी, कभी प्रिय व्यक्ति के उससे न मिलते-जुलते चित्र को देखता है। उदास और बुझी-बुझी नज़र, उलटे-सीधे उत्तर और केवल बच्चों की ही चर्चा – देनीसोव को अपनी पहलेवाली जादूगरनी में बस यही कुछ देखने और उससे यही कुछ सुनने को मिलता।

इस सारे वक़्त के दौरान नताशा हमेशा उदास और खिन्न रहती, विशेषकर तब तो और भी अधिक, जब मां, भाई या काउंटेस मरीया उसे दिलासा देते हुए प्येर को क्षमा करने और उसके आने में देर होने के कारण बताने के प्रयास करते।

"यह सब निरी बेवक़ूफ़ी है, सब बिल्कुल बेकार है," नताशा कहती, "उसके सभी विचार और ये बेहूदा संस्थायें भी निरर्थक हैं,"

वह प्येर के उन्हीं कार्यों के बारे में यह सब कहती जिनके विशाल महत्त्व में उसे दृढ़ विश्वास था। और वह अपने इकलौते लड़के पेत्या को दूध पिलाने के लिये बच्चों के कमरे में चली जाती।

नताशा को किसी की भी सांत्वनाप्रद और विवेकपूर्ण बातों से इतना चैन नहीं मिलता था, जितना कि तीन महीने के इस नन्हे जीव से उस समय मिलता था, जब वह उसकी छाती से सटा होता था और वह उसके मुंह की गति और नन्ही-सी नाक की सुड़-सुड़ को महसूस करती थी। यह जीव मानो उससे कहता: "तू नाराज़ हो रही है, तू डाह कर रही है, तू उससे बदला लेना चाहती है, तू डरती है, पर मुझे तो देख। यह रहा मैं..." और वह निरुत्तर रह जाती। यह तो सत्य से भी बढ़-चढ़कर था।

बेचैनी के इन दो सप्ताहों में नताशा सांत्वना पाने के लिये बच्चे के पास इतना अधिक आती, इसे इतना दुलारती कि उसने ज़रूरत से ज़्यादा दूध पिला दिया और वह बीमार हो गया। उसकी बीमारी से वह आतंकित थी, पर साथ ही उसे इसी की तो आवश्यकता थी। उसकी देखभाल करते समय पति के बारे में उसकी चिन्ता कम हो जाती।

वह उस वक़्त बच्चे को दूध पिला रही थी, जब पोर्च के निकट प्येर की बग्घी की आवाज़ सुनाई दी और आया, जो जानती थी कि मेमसाहिबा को कैसे ख़ुश किया जा सकता है, दबे पांव, मगर जल्दी-जल्दी, दमकते चेहरे के साथ दरवाज़े में घुसी।

"आ गये?" नताशा ने जल्दी से और इस डर के कारण कि उसके हिलने से कच्ची नींद में सोता बच्चा जाग न जाये फुसफुसाकर पूछा।

"आ गये, मेमसाब," आया फुसफुसायी।

नताशा का चेहरा तेज़ी से दौड़ते ख़ून के कारण लाल हो गया और पैर अनायास हिले; पर उछलकर दौड़ना सम्भव नहीं था। बच्चे ने आंखें खोलकर उसकी ओर देखा। "तू यहीं है," उसने मानो पूछा और फिर धीरे-धीरे होंठ चटकारने लगा।

बड़ी सावधानी से स्तन हटाकर, नताशा ने उसे गोद में झुलाया, आया को थमाया और तेज़ी से क़दम रखती दरवाज़े की ओर चल पड़ी। पर दरवाज़े के पास वह ठिठकी, मानो उसके अंतर्मन ने उसकी भर्त्सना की कि ख़ुश होकर उसने बच्चे को इतनी जल्दी छोड़ दिया और उसने

पीछे मुड़कर देखा। आया कोहनियां उचकाकर बच्चे को पालने में लिटा रही थी।

"आप जाइये, जाइये मेमसाब, निश्चिन्त होकर जाइये," मुस्कराती हुई आया मालकिन और अपने बीच क़ायम बेतकल्लुफ़ी के साथ फुसफुसाकर बोली।

और नताशा फुरती से ड्योढ़ी की ओर दौड़ पड़ी।

मुंह में पाइप दबाये कमरे से हॉल में आनेवाले देनीसोव ने इस वक़्त नताशा को पहली बार उस रूप में पहचाना जिससे कभी परिचित था। उसके एकदम बदले मुखमंडल से चमकीले, दमकते, हर्षदायी प्रकाश की धारायें-सी फूट रही थीं।

"आ गये!" दौड़ते-दौड़ते वह उससे बोली और देनीसोव को महसूस हुआ कि वह प्येर के आने से, जिसे बहुत कम पसन्द करता था, आनन्द-विभोर हो गया है। ड्योढ़ी में दौड़ते हुए नताशा को समूर का ओवरकोट पहने और मफ़लर खोलती हुई एक ऊंची आकृति दिखाई दी।

"वही है! वही! सचमुच! हां, यह रहा!" वह अपने आपसे बोली और लपककर उसने उसे अपनी बांहों में भर लिया, छाती पर सिर रखकर उसे अपने साथ चिपका लिया और फिर हटाकर प्येर के तुषारित, लाल और खिले चेहरे पर नज़र डाली। "हां, यह वही है; सुखी, ख़ुश..."

और अचानक उसे प्रतीक्षा की वे सारी यातनायें याद आ गयीं जिन्हें उसने पिछले दो सप्ताहों में झेला था: उसके चेहरे पर से चमकती ख़ुशी ग़ायब हो गयी; उसकी भौंहें तन गयीं और उसने प्येर पर तानों और कड़वे शब्दों की बौछार कर दी।

"हां, तुम तो ख़ूब मज़े में हो! तुम बेहद ख़ुश हो, तुमने तो ख़ूब मज़े लूटे... पर मेरा क्या हाल था? कम से कम बच्चों का तो ख़्याल किया होता। मैं बच्चे को दूध पिलाती हूं, मेरा दूध ख़राब हो गया। पेत्या मरते-मरते बचा। लेकिन तुम मौज करते रहे। हां, मज़े लूटते रहे।"

प्येर जानता था कि वह निर्दोष है, क्योंकि पहले नहीं आ सकता था; वह जानता था कि नताशा का यह विस्फोट उसे शोभा नहीं देता और उसे मालूम था कि दो मिनट बाद यह ख़त्म हो जायेगा;

मुख्य बात तो यह थी कि वह जानता था कि स्वयं उसे हर्ष और ख़ुशी हो रही थी। वह मुस्कराना चाहता था, पर उसे ऐसा सोचने तक का साहस नहीं हुआ। उसने करुण, भयभीत-सी सूरत बना ली और पत्नी के विस्फोट के सामने झुक गया।

"भगवान की क़सम, मैं इससे पहले नहीं आ सकता था! पेत्या अब कैसा है?"

"अब ठीक है, चलो, भीतर चलो। तुम्हें शर्म आनी चाहिये!.. काश तुम देख सकते कि तुम्हारे बिना मेरा क्या हाल होता है, मैंने कितनी यातनायें सहीं..."

"तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न?"

"भीतर चलो, भीतर चलो," वह उसका हाथ पकड़े-पकड़े बोली। और वे अपने कमरे में चले गये।

निकोलाई और उसकी पत्नी जब प्येर से मिलने के लिये उसे खोजते हुए आये तो वह बच्चों के कमरे में था, उसने नींद से जागे दुधमुंहे बेटे को दायें हाथ की अपनी बड़ी हथेली पर उठा रखा था और उससे लाड़ कर रहा था। बच्चे के पोपले, खुले मुंहवाले चौड़े चेहरे पर ख़ुशी भरी मुस्कान मानो जमकर रह गयी थी। नताशा के ग़ुस्से का तूफ़ान कब का गुज़र चुका था और अब उसके चेहरे पर हर्ष और उल्लास से ओत-प्रोत सूर्य चमक रहा था और वह गदगद होकर पति और बेटे को देख रही थी।

"प्रिंस फ्योदोर के साथ अच्छी तरह से और पूरी बात कर ली?"

"हां, बहुत अच्छी तरह से।"

"देखते हो, ऊपर उठा रखा है (नताशा का तात्पर्य बेटे के सिर से था)। लेकिन इसने मुझे कितना डरा दिया था!"

"और प्रिंसेस से भी मिले? क्या यह सच है कि वह फ़लां के इश्क़ में डूबी हुई है?.."

"हां, तुम ज़रा ख़्याल करो..."

तभी निकोलाई और काउंटेस मरीया ने प्रवेश किया। प्येर ने बेटे को हाथ में लिये-लिये ही झुककर उनको चूमा और उनके प्रश्नों के उत्तर दिये। हां, इतना स्पष्ट था कि यद्यपि बहुत-सी रोचक बातें करनी थीं, तथापि प्येर का सारा ध्यान टोपीवाले, सिर हिलाते बच्चे में रमा हुआ था।

"कितना प्यारा है!" काउंटेस मरीया बच्चे को निहारते और उसके साथ खेलते हुए बोली। "निकोलाई, मैं यह नहीं समझ पाती," पति को सम्बोधित करके उसने कहा, "कि तुम इन नन्हे-मुन्नों की अनोखी मोहकता को क्यों नहीं समझते।"

"नहीं समझता और न ही समझ सकता हूं," निकोलाई ने उदासीनता से बच्चे की ओर देखते हुए कहा। "मांस का लोथड़ा है। आओ, चलें प्येर।"

"फिर भी मुख्य बात यह है कि यह अत्यधिक स्नेही पिता हैं," अपने पति की सफ़ाई देते हुए काउंटेस मरीया बोली, "पर केवल बच्चे के साल भर का या इससे कुछ अधिक बड़ा हो जाने पर..."

"किन्तु प्येर तो इनकी बहुत अच्छी तरह से देख-रेख करते हैं," नताशा बोली, "वह कहते हैं कि उनका हाथ बच्चे को बिठाने के लिये ही बना है। देखो तो।"

"अरे, सिर्फ़ इसी के लिये नहीं," प्येर ने बच्चे को दूसरे हाथ में लेकर आया को थमाते हुए अचानक हंसकर कहा।

१२

किसी असली कुटुम्ब की तरह लीसिये गोरि के घर में एक साथ कई, बिल्कुल भिन्न, लघु संसार रहते थे, जो अपनी अलग विशेषताओं को बनाये रखते हुए और एक-दूसरे का लिहाज़ करते हुए, एक सामंजस्यपूर्ण समष्टि के अंग थे। घर में होनेवाली प्रत्येक सुखद या दुखद घटना इन सभी लघु संसारों के लिये एक जैसी महत्त्वपूर्ण होती थी; किन्तु किसी घटना को लेकर प्रत्येक लघु संसार के सुखी या दुखी होने के ख़ास अपने, दूसरों से अलग कारण होते थे।

तो प्येर का आगमन एक ऐसी ही हर्षपूर्ण और महत्त्वपूर्ण घटना था और इसी रूप में इसका सभी पर प्रभाव पड़ा।

नौकर, जो अपने मालिकों के असली पारखी होते हैं, क्योंकि वे उन्हें बातों और व्यक्त भावनाओं की कसौटी पर नहीं, बल्कि कार्यों और जीवन के रंग-ढंग की कसौटी पर परखते हैं, – प्येर के आगमन

से ख़ुश हुए, क्योंकि उसकी उपस्थिति में काउंट निकोलाई कारोबार का रोज़ निरीक्षण करना छोड़ देंगे और हंसमुख एवं दयालु होंगे और इसीलिये भी कि त्योहार पर सबको बढ़िया उपहार मिलेंगे।

बच्चे और शिक्षिकायें बेज़ूख़ोव के आगमन से ख़ुश थे, क्योंकि कोई भी उन्हें प्येर के समान घर के आम जीवन में शामिल नहीं करता था। सिर्फ़ वही क्लावीकॉर्ड बाजे पर वह एकोसेज़ धुन बजाना जानता था (उसे केवल यही धुन आती थी), जिसपर, जैसाकि वह कहता था, हर तरह के नृत्य किये जा सकते हैं, और फिर वह सबके लिये उपहार तो ज़रूर लाया ही होगा।

नन्हा निकोलाई, जो अब पन्द्रह वर्ष का दुबला, हल्के कत्थई रंग के घुंघराले बालों और सुन्दर आंखोंवाला, कुछ अस्वस्थ-सा तथा बुद्धिमान लड़का था, इसलिये ख़ुश था कि प्येर चाचा (वह उसे ऐसे ही सम्बोधित करता था) उसकी श्रद्धा और आसक्तिपूर्ण प्रेम का पात्र था। किशोर निकोलाई को किसी ने भी प्येर से प्रेम करने की कोई विशेष प्रेरणा नहीं दी थी और यों भी वह कभी-कभार ही उससे मिलता-जुलता था। उसकी संरक्षिका, काउंटेस मरीया किशोर निकोलाई को इस चीज़ के लिये बाध्य करने का पूरा ज़ोर लगाती कि वह उसके पति से वैसे ही प्रेम करे, जैसे वह ख़ुद प्रेम करती थी और किशोर निकोलाई अपने फूफा को प्यार करता था; किन्तु हल्के से तिरस्कार-भाव के साथ। प्येर की तो वह उपासना करता था। निकोलाई फूफा की तरह वह न तो हुस्सार बनना चाहता था, न सेंट जार्ज पदक पाना चाहता था, बल्कि प्येर की तरह विद्वान, बुद्धिमान और दयालु बनना चाहता था। प्येर की उपस्थिति में उसका चेहरा सदा हर्ष से चमकता रहता और जब प्येर उसको सम्बोधित करता तो ख़ुशी के मारे उसका चेहरा लाल हो जाता, उसकी सांस फूलने लगती। वह प्येर के हर शब्द को अपने मन में जज़्ब करता और बाद में डेसाल के साथ और ख़ुद अकेले ही प्येर के प्रत्येक शब्द को याद करता और उसका अर्थ समझने की कोशिश करता। प्येर का पूर्व जीवन, सन् १८१२ तक की उसकी मुसीबतें (जिनके बारे में सुनी बातों से उसने अपने लिये उसका धुंधला-सा काव्यात्मक बिम्ब बना लिया था), मास्को में उसके जीवन की जोखिम भरी घटनायें, क़ैद, प्लातोन करातायेव (जिसके विषय में उसने प्येर से सुना था), नताशा के प्रति उसका प्रेम (लड़का उससे

भी विशेष प्रेम करता था) और सबसे बढ़कर पिता के साथ, जिसकी किशोर निकोलाई को याद नहीं थी उसकी मित्रता – इन सब बातों ने प्येर को उसके लिये पूजनीय नायक बना दिया।

किशोर निकोलाई ने, जिसे अभी-अभी प्यार की चेतना होने लगी थी, अपने पिता और नताशा के बारे में जब-तब मिली कुछ भनक, उस भावुकता से, जिसके साथ प्येर दिवंगत का उल्लेख करता था, उस झिझक भरे, श्रद्धापूर्ण स्नेह से, जिसके साथ नताशा उसकी चर्चा करती, यह अनुमान लगा लिया कि उसके पिता नताशा से प्रेम करते थे और मरते समय उसे अपने मित्र को सौंप गये। और यह पिता, जिसकी उसे ज़रा भी याद नहीं थी, उसे कल्पनातीत देवता के समान लगते और उनके बारे में सोचने पर हर बार ही उसका दिल धड़कने लगता और उसकी आंखों में दुख तथा आह्लाद के आंसू छलक आते। प्येर के आगमन से वह ख़ुश था।

अतिथियों ने किसी भी महफ़िल को रंगीन बनाने और उसे एक तार में पिरो देनेवाले व्यक्ति के रूप में प्येर का सहर्ष स्वागत किया।

पत्नी की तो बात ही छोड़िये, घर के सभी वयस्क लोग ऐसे मित्र के आने से ख़ुश थे जिसकी उपस्थिति से ज़िन्दगी आसान और चैन की हो जाती है।

वृद्धायें उपहारों की सोचकर भी, जो वह उनके लिये लाया होगा और मुख्यत: इसलिये बहुत ख़ुश थीं कि नताशा अब फिर से खिल उठेगी।

प्येर अपने प्रति इन विभिन्न लघु संसारों की इन विविध अपेक्षाओं को महसूस करता था और जल्दी से प्रत्येक की इच्छा पूरी करना चाहता था।

अधिकतम अन्यमनस्क, भुलक्कड़ प्येर अब पत्नी द्वारा बनायी गयी सूची के अनुसार सब कुछ ख़रीद लाया था। वह न अपनी सास और न साले की फ़रमाइशें पूरी करना भूला, न बेलोवा के लिये कपड़े, न भतीजों के लिये खिलौने लाना। विवाह के बाद, शुरू-शुरू में उसे पत्नी की यह मांग अजीब लगती थी कि वह सारे काम पूरे करे और जो कुछ ख़रीदना है, उसे न भूले। उसे पत्नी की अत्यधिक नाराज़गी पर तब बड़ा आश्चर्य हुआ था, जब वह अपनी पहली ही यात्रा के समय सब कुछ भूल गया था। मगर बाद में वह इसका आदी हो गया। यह जानते हुए कि नताशा अपने लिये कुछ नहीं मंगवाती

थी और दूसरों के लिये भी केवल तभी मंगवाती थी, जब वह ख़ुद इसका प्रस्ताव करता। अब उसे सारे घर के लिये उपहार ख़रीदने में बच्चों की तरह आनन्द आता और वह कभी कुछ भी नहीं भूलता था। अगर उसे नताशा के ताने सुनने पड़ते तो सिर्फ़ फ़ालतू और बेहद महंगी चीज़ें ख़रीद लाने के लिये। अधिकांश लोगों के मतानुसार नताशा ने अपनी अन्य कमियों में, किन्तु प्येर जिन्हें उसके गुण मानता था, अपनी अवहेलना और लापरवाही के अलावा कंजूसी को भी जोड़ लिया।

जब से प्येर घर बसाकर परिवार के साथ रहने लगा था जिसके लिये बड़े ख़र्च की आवश्यकता होती है, उसे इस बात की ओर ध्यान देने से आश्चर्य हुआ कि पहले की अपेक्षा उसका ख़र्च आधा रह गया था, कि उसकी पिछले समय से कुछ बिगड़ी हुई माली हालत (विशेषकर पहली पत्नी के क़र्ज़ों के कारण) अब सुधरने लगी थी।

जीना इसलिये सस्ता हो गया था कि जीवन बंध गया था: महंगी विलासिता के इस जीवन से अब प्येर का नाता छूट गया था जिसमें किसी भी क्षण कोई परिवर्तन किया जा सकता है। उसे अब इसकी चाह भी नहीं थी। वह महसूस करता था कि अब उसके जीवन का ढर्रा सदा के लिये, अंतिम सांस तक के लिये निर्धारित हो गया है, कि उसे बदलना उसके बस में नहीं है, क्योंकि जीवन का यह ढर्रा सस्ता था।

प्येर उल्लास से खिले चेहरे के साथ ख़रीदकर लायी गयी चीज़ें दिखा रहा था।

"बढ़िया है न!" दुकानदार की तरह छींट का टुकड़ा खोलकर दिखाते हुए वह बोला। बड़ी बेटी को गोद में बिठाये नताशा अपनी चमकती आंखों को तेज़ी से कभी पति तो कभी उन चीज़ों की ओर घुमाती हुई जिन्हें वह खोलकर दिखा रहा था, उसके सामने बैठी थी।

"यह बेलोवा के लिये है? बहुत बढ़िया है," उसने कपड़े को मसलकर गुणवत्ता की जांच की।

"यह एक रूबल की दर का है न?"

प्येर ने दाम बताया।

"महंगा है," नताशा बोली। "बच्चे और अम्मां कितने ख़ुश होंगे। मेरे लिये तुम बेकार ही यह ख़रीद लाये," उसने अपनी मुस्कान को मुश्किल से दबाये हुए मोती जड़े सोने के कंघे को, जिनका तब

फ़ैशन चला ही था, प्रशंसा से निहारते हुए इतना और जोड़ दिया।

"आदेल बार-बार मुझसे कहती रही : खरीद लो, ख़रीद लो," प्येर बोला।

"मैं इसे अपने बालों में सजाऊंगी कब?" और नताशा ने उसे अपनी चोटी में खोंस लिया। "जब माशा को बाल-नृत्य आदि में ले जाने का समय आयेगा, तब काम आ जायेगा। शायद उस वक़्त इनका फिर से चलन हो। आओ, अब उपहार देने चलें।"

और उपहार समेटकर वे पहले बच्चों के कमरे में और फिर काउंटेस के पास गये।

बग़लों में पैकेट दबाये प्येर और नताशा ने जब दीवानख़ाने में प्रवेश किया तो काउंटेस सदा की तरह बेलोवा के साथ बैठी ग्रैंडपेशेंस खेल रही थीं।

काउंटेस साठ की उम्र पार कर चुकी थीं। उनके बाल बिल्कुल सफ़ेद हो गये थे, वह टोपी पहने रहती थीं जिसकी झालरों का चेहरे के गिर्द घेरा-सा बना रहता था। उनके चेहरे पर ढेरों झुर्रियां थीं, ऊपरवाला होंठ धंस गया था और आंखें धुंधला गयी थीं।

बहुत कम समय में बेटे और फिर पति की मौत के बाद वह अपने को धरती पर भूल से छूट गये ऐसे प्राणी की तरह महसूस करती थीं, जिसके जीवन का न कोई लक्ष्य हो, न अर्थ। वह खाती-पीतीं, सोती-जागतीं, पर जीती नहीं थीं। जीवन उनके मन पर कोई छाप नहीं छोड़ता था। चैन के सिवा वह जीवन से अन्य किसी भी चीज़ की अपेक्षा नहीं करती थीं और यह चैन उन्हें केवल मौत ही दे सकती थी। पर जब तक मौत नहीं आ रही थी, वह जीने को मजबूर थीं अर्थात् उन्हें अपने जीवन की अवधि और शक्ति का उपभोग करना था। उनमें वह लक्षण अत्यधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देता था जो अत्यंत छोटे बच्चों और अत्यंत वृद्ध लोगों में दृष्टिगोचर होता है। काउंटेस के जीवन में कोई प्रत्यक्ष लक्ष्य नहीं दिखाई देता था और केवल अपनी विभिन्न रुचियों और क्षमताओं के उपयोग की आवश्यकता ही स्पष्ट थी। उनके लिये केवल इस कारण खाना, सोना, सोचना, बोलना, रोना, कुछ करना और क्रुद्ध होना ज़रूरी था कि उनका पेट था, मस्तिष्क था, मांसपेशियां, नसें और जिगर था। यह सब वह किसी बाह्य प्रेरणा के बिना करतीं, उस तरह नहीं, जिस प्रकार लोग अपने जीवन की संपूर्ण शक्ति से ओत-प्रोत

अवधि में करते हैं, जब उस लक्ष्य के कारण, जिसकी ओर वे अग्रसर होते हैं, दूसरा लक्ष्य – यानी अपनी शक्तियों के मात्र उपयोग का लक्ष्य दृष्टिगोचर नहीं होता। वह सिर्फ़ इसीलिये बोलती थीं कि यह उनके फेफड़ों और जीभ की शारीरिक आवश्यकता थी। वह बच्चों की तरह रोती थीं, क्योंकि नाक को साफ़ करना ज़रूरी था। जीवन की शक्ति से पूरी तरह ओत-प्रोत लोगों को जो कुछ अपने जीवन का लक्ष्य लगता है, उनके लिये वह बहाना मात्र था।

उदाहरण के लिये सवेरे, विशेषकर तब, जब रात को उन्होंने कोई तर खाना खाया होता, वह किसी पर ग़ुस्सा करने की आवश्यकता अनुभव करतीं और तब वह सबसे आसान बहाना – बेलोवा के बहरेपन को चुनतीं।

वह कमरे के दूसरे कोने से दबे स्वर में उसे कोई बात कहने लगतीं।

"मेरी प्यारी, लगता है कि आज कल से कुछ ज़्यादा गर्मी है," वह फुसफुसाकर कहतीं। और जब बेलोवा उत्तर देती – "आये कैसे नहीं, आ गये हैं," तो वह ग़ुस्से से बड़बड़ातीं – "हे भगवान, कैसी बहरी और बेवक़ूफ़ है!"

दूसरा बहाना था नसवार का, जो कभी उन्हें सूखी, तो कभी गीली और कभी ठीक से मसली हुई न लगती। इस तरह की झुंझलाहट के बाद उनका पित्त चेहरे पर छा जाता और उनकी नौकरानियां जाने-पहचाने पक्के लक्षणों से जानती थीं कि कब बेलोवा फिर से बहरी होगी, कब नसवार फिर से गीली होगी और कब चेहरा पीला होगा। जैसे उन्हें अपनी झुंझलाहट निकालनी होती थी, इसी तरह उन्हें कभी-कभी सोचने की बची-बचायी क्षमता से भी काम लेने की ज़रूरत पड़ती और पेशेंस का खेल इसका बहाना होता। जब रोने की ज़रूरत महसूस होती तो इसके लिये स्वर्गीय काउंट बहाना होते। जब चिन्तित होने की आवश्यकता अनुभव होती तो निकोलाई और उसका स्वास्थ्य बहाना बन जाते; जब कटाक्ष करने होते तब काउंटेस मरीया बहाना होती। जब कण्ठ के उपयोग की आवश्यकता होती – अधिकतर ऐसी आवश्यकता छः बजे के बाद, अंधेरे कमरे में पाचन के हेतु विश्राम के उपरांत अनुभव होती – तो इसके लिये उन्हीं गिने-गिनाये श्रोताओं को वही घिसे-पिटे पुराने क़िस्से सुनाने की प्रक्रिया इसका बहाना बन जाती।

घर के सभी लोग बूढ़ी काउंटेस की इस दशा को समझते थे,

हालांकि कभी और कोई भी इसके विषय में जबान नहीं खोलता था और उनकी इन आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये सभी यथासम्भव प्रयास करते थे। केवल कभी-कभार निकोलाई, प्येर, नताशा और काउंटेस मरीया की एक-दूसरे की ओर लक्षित नज़र या हल्की मुस्कान में काउंटेस की स्थिति की यह पारस्परिक समझ व्यक्त होती।

पर ये नज़रें इसके अलावा कुछ और भी कहती थीं; वे कहती थीं कि बूढ़ी काउंटेस जीवन में अपनी भूमिका अदा कर चुकी हैं, वे कहती थीं कि वह जैसी अब नज़र आती हैं, यही उनका पूरा रूप नहीं है, वे कहतीं कि किसी दिन हम सबकी भी ऐसी ही हालत होगी, कि उसकी इच्छा के आगे सिर झुकाने, हमारी ही तरह कभी स्फूर्तिवान, कभी प्रिय, किन्तु अब दयनीय प्राणी की ख़ातिर अपने को क़ाबू में रखना आनन्दप्रद है। "मौत को नहीं भूलो," – ये नज़रें कहतीं।

घर के केवल बिल्कुल निर्दयी और मूर्ख लोग तथा नन्हे बच्चे ही यह नहीं समझते थे और बूढ़ी काउंटेस से कन्नी काटते थे।

१३

जब प्येर पत्नी के साथ दीवानख़ाने में आया तो काउंटेस अपने को ग्रैंडपेशेंस खेल के बौद्धिक काम में व्यस्त रखने की आवश्यकता की सामान्य अवस्था में थीं, इसलिये इसके बावजूद कि उन्होंने वे शब्द कहे, जो वह हमेशा प्येर या बेटे के लौटने पर कहती थीं – "तुम्हारी बाट जोहते-जोहते आंखें थक गयीं। शुक्र है भगवान का कि आ गये," और उपहार ग्रहण करते हुए उन्होंने हमेशा की तरह दूसरे शब्द दोहराये – "महत्त्व उपहार का नहीं, मेरे प्यारे, महत्त्व तो इस बात का है कि मुझ बुढ़िया को भूले नहीं..." – यह साफ़ था कि इस क्षण प्येर का आना उन्हें अखरा, क्योंकि इससे ग्रैंडपेशेंस के खेल से उनका ध्यान हट रहा था। उन्होंने खेल पूरा करने के बाद ही उपहारों की ओर ध्यान दिया। उपहार थे: ताश की गड्डी के लिये सुंदर काम की मंजूषा, ग्वालिनों के चित्रोंवाला गहरे नीले रंग का मशहूर सेव्र पॉटरी का ढक्कनदार प्याला और सोने की नासदानी, जिसपर स्वर्गीय काउंट का चित्र

बना था। प्येर ने पीटर्सबर्ग के लघु चित्र बनानेवाले एक चित्रकार से इसे बनवाया था। (काउंटेस को कब से इसकी इच्छा थी।) चूंकि इस समय उनका मन रोने को नहीं था, इसलिये उन्होंने तसवीर को उदासीनता से देखा और मंजूषा को निहारने लगीं।

"धन्यवाद, मेरे प्यारे, तुमने मेरे दिल ख़ुश कर दिया," वह बोलीं, जैसे हमेशा कहती थीं। "पर सबसे ज़्यादा ख़ुशी की बात तो यह है कि तुम ख़ुद आ गये। लेकिन किसने दुनिया में ऐसा देखा-सुना है? तुम्हें तो ज़रूर ही अपनी बीवी को डांटना चाहिये। यह भी कोई बात हुई, तुम्हारे बिना पगली हो जाती है। अपनी सुध-बुध खो बैठती है," वह रटे-रटाये शब्द बोल रही थीं। "देखो तो, आन्ना तिमोफ़ेये-व्ना," उन्होंने अपनी संगिनी को सम्बोधित किया, "बेटा हमारे लिये कैसी सुन्दर मंजूषा लाया है।"

बेलोवा उपहारों की तारीफ़ कर रही थी और अपनी छींट को मुग्ध होकर देख रही थी।

हालांकि प्येर, नताशा, निकोलाई, काउंटेस मरीया और देनीसोव को ऐसी बहुत-सी बातें करनी थीं, जो वे काउंटेस के सामने नहीं करते थे, इसलिये नहीं कि उनसे कुछ छिपाया जाता था, पर इसलिये कि वह बहुत-सी बातों में इतनी पिछड़ गयी थीं कि उनकी उपस्थिति में कोई बात शुरू करने पर उनके कई बेमौक़ा प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता और कई बातों को, जो उन्हें कई बार पहले ही बतायी जा चुकी थीं, पुनः दोहराना पड़ता था: बताना पड़ता था कि फ़लां मर गया, फ़लां की शादी हो गयी – काउंटेस को ये बातें फिर से याद नहीं रहेंगी; फिर भी वे हमेशा की तरह दीवानख़ाने में सामोवार के पास बैठकर चाय पी रहे थे और प्येर काउंटेस के ऐसे प्रश्नों के उत्तर दे रहा था जिनकी न उन्हें ज़रूरत थी और जिनमें न किसी अन्य की रुचि थी जैसे कि प्रिंस वसीली बूढ़ा हो गया है, कि काउंटेस मरीया अलेक्सेयेव्ना को अभी भी उनकी याद है और उसने अभिवादन करने को कहा है, इत्यादि ...

ऐसा वार्तालाप, जो किसी के लिये भी रोचक नहीं था, पर आवश्यक था और चाय के समय होता। परिवार के सभी वयस्क चाय-पान के लिये गोल मेज़ के गिर्द जमा होते थे, जहां सामोवार से चाय डालने का काम सोन्या करती थी। बच्चे और उनके शिक्षक-शिक्षिकायें

चाय पी चुके थे और बग़ल के दीवानख़ाने से उनकी आवाज़ें सुनाई दे रही थीं। चाय पीने के समय सब अपने रोज़ के स्थान पर बैठे थे ; निकोलाई अंगीठी के पास छोटी मेज़ के सामने बैठा था, जहां उसे चाय दी जाती थी। बूढ़ी शिकारी कुतिया मील्का, जो पहली मील्का की बेटी थी और जिसके मुंह के बालों के बिल्कुल सफ़ेद हो जाने के कारण बड़ी-बड़ी काली आंखें और भी उभरी हुई लग रही थीं, निकोलाई के क़रीब आरामकुर्सी पर लेटी थी। जनरल की वर्दी के कोट के बटन खोले आधे सफ़ेद घुंघराले बालों, मूंछों और गलमुच्छोंवाला देनीसोव काउंटेस मरीया के निकट बैठा था। प्येर पत्नी और बूढ़ी काउंटेस के बीच बैठा था। वह ऐसे विषय की चर्चा कर रहा था, जो, जैसाकि उसे मालूम था, बूढ़ी काउंटेस के लिये रोचक और बोधगम्य हो सकता था। वह सामाजिक और उन लोगों के जीवन की ऐसी सतही और मामूली घटनायें बता रहा था जो कभी बूढ़ी काउंटेस के समवयस्कों की मंडली में शामिल थे, जो कभी वास्तव में अलग सजीव मंडली थे, पर अब दुनिया भर में बिखरे हुए थे और काउंटेस की तरह अपनी ज़िन्दगी की आख़िरी घड़ियां गिनते हुए उस फ़सल की बची-बचायी बालियां जमा कर रहे थे जो कभी उन्होंने बोयी थीं। पर बूढ़ी काउंटेस को अपने ये समवयस्क ही असाधारण रूप से गम्भीर और असली दुनिया लगते थे। प्येर की सजीवता देखकर नताशा समझ गयी थी कि उसकी यात्रा रोचक रही थी, कि वह बहुत कुछ बताना चाहता है, मगर काउंटेस के सामने उसकी चर्चा नहीं कर सकता था। चूंकि देनीसोव परिवार का सदस्य नहीं था, इसलिये वह प्येर की सावधानी को नहीं समझ पा रहा था तथा इसके अलावा एक असन्तुष्ट व्यक्ति के नाते पीटर्सबर्ग की घटनाओं में बड़ी रुचि रखता था तथा प्येर से कभी सेम्योनोव्स्की रेजिमेंट की हाल की घटना के बारे में, कभी अराकचेयेव के बारे में, तो कभी बाइबल सोसाइटी के बारे में बताने का लगातार आग्रह कर रहा था। प्येर कभी भूलकर बताने लगता, पर निकोलाई और नताशा उसे हर बार प्रिंस इवान और काउंटेस मरीया अन्तोनोव्ना के स्वास्थ्य के विषय की ओर लौटा देते।

"अरे, यह क्या पागलपन है, गोस्नर और ततारिनोवा* भी,"

---

* योहान गोस्नर (१७७३–१८५८) – रहस्यवादी जर्मन पादरी, जो १८२० में बाइबल सोसाइटी का निदेशक चुना गया ; येकातेरीना ततारिनोवा (१७८३–१८५६) –

देनीसोव ने पूछा, "क्या सचमुच यह सब जारी है?"

"तुम पूछते हो जारी है?" प्येर चिहुंककर बोला। "पहले किसी समय से कहीं अधिक। बाइबल सोसाइटी – यह अब पूरी सरकार है।"

"यह तुम किस बात की चर्चा कर रहे हो, मेरे प्यारे?" अपनी चाय पूरी कर चुकी काउंटेस ने पूछा, वह शायद खाने के बाद नाराज़गी का बहाना ढूंढ़ना चाहती थीं। "तुम सरकार के बारे में क्या कह रहे थे, यह मैं नहीं समझी।"

"अरे अम्मां," निकोलाई मामले को सम्भालते हुए बोला, जिसे मालूम था कि मां की भाषा में यह कैसे कहना चाहिये, "प्रिंस अलेक्सान्द्र निकोलायेविच गोलीत्सिन ने यह सोसाइटी बनायी है, अब उसकी बहुत चलती है, कहते तो यही हैं।"

"अराकचेयेव और गोलीत्सिन," प्येर सावधानी भूलकर बोला, "ये दोनों ही अब पूरी सरकार बन बैठे हैं। और कैसी! हर क़दम पर उन्हें साज़िशें दिखाई देती हैं, वे सब से डरते हैं।"

"लेकिन प्रिंस अलेक्सान्द्र निकोलायेविच में भला कोई क्या दोष ढूंढ़ सकता है? वह बड़े इज़्ज़तदार आदमी हैं। उन दिनों मैं मरीया अन्तोनोव्ना के यहां उनसे मिली थी," बुरा मानकर काउंटेस बोलीं और सबके चुप हो जाने का और भी बुरा मानकर उन्होंने आगे कहा – "अब सभी की बुराई की जाने लगी है। बाइबल सोसाइटी – तो इसमें बुरा क्या है?" और वह उठीं (बाक़ी लोग भी उठकर खड़े हो गये) तथा कठोर-सी मुख-मुद्रा बनाये हुए दीवानख़ाने में अपनी मेज़ की ओर तैरती-सी चल दीं।

कमरे में छा गयी उदासी भरी ख़ामोशी को बग़ल के कमरे से आनेवाली बच्चों की हंसी और आवाज़ों ने भंग किया। बच्चों के बीच कोई उल्लासपूर्ण घटना घट रही थी।

"बन गयी, बन गयी!" नन्ही नताशा की सबसे अधिक हर्षपूर्ण

१८२७ में उसने पीटर्सबर्ग में रहस्यवादी धार्मिक सम्प्रदाय – "आध्यात्मिक संघ" की स्थापना की जिसकी सभायें "आध्यात्मिक आमोद" के रूप में होती थीं। इन सभाओं के समय सामूहिक और एकल नृत्य होते, लोग नाच-नाचकर हर्षोन्माद में डूब जाते। – सं०

किलकारी सुनाई पड़ी। प्येर ने काउंटेस मरीया और निकोलाई की ओर देखा (नताशा तो सदा उसकी आंखों के सामने रहती थी) और उसके होंठों पर सुखद मुस्कान छा गयी।

"कैसा जादुई संगीत है!" प्येर कह उठा।

"आन्ना मकारोव्ना ने ज़रूर पूरी जुर्राब बुन ली है," काउंटेस मरीया बोली।

"अच्छा, अभी जाकर देखता हूं," प्येर ने उछलकर खड़ा होते हुए कहा। "जानते हैं," वह दरवाज़े के पास रुककर बोला, "क्यों मुझे यह संगीत इतना अधिक प्यारा है? बच्चे ही तो सबसे पहले मुझे यह बताते हैं कि सब कुछ ठीक है। आज लौटते वक़्त मैं घर के जितना पास पहुंचता जाता था, मेरी घबराहट उतनी ही अधिक बढ़ती जाती थी। जैसे ही ड्योढ़ी में क़दम रखा और अन्द्रूशा की किलकारी सुनाई पड़ी, मैं समझ गया कि सब ख़ैरियत है..."

"हां, हां, मैं भी इस अनुभूति से परिचित हूं," निकोलाई ने हां में हां मिलायी। "लेकिन मैं तो वहां जा नहीं सकता, क्योंकि जुर्राबें मुझे देने के लिये छिपाकर बुनी जा रही हैं।"

प्येर ने बच्चों के कमरे में प्रवेश किया और हंसी-किलकारियां और भी ऊंची हो गयीं। "अच्छा तो आन्ना मकारोव्ना," प्येर की आवाज़ सुनाई दे रही थी, "इधर बीच में आइये और मेरे गिनती करने पर – एक, दो और जब मैं कहूं तीन... तुम यहां खड़े हो जाओ। तुम्हें मैं गोद में ले लेता हूं। अच्छा, तो एक, दो..." प्येर की आवाज़ सुनाई दी; शान्ति छा गयी। "तीन!" और कमरा बच्चों की उल्लास-पूर्ण किलकारियों से भर गया।

"दो हैं, दो हैं!" बच्चे चिल्ला रहे थे।

ये दो जुर्राबें थीं जिन्हें आन्ना मकारोव्ना केवल उसी को ज्ञात किसी विधि से एकसाथ सलाइयों पर बुनती और जब बुनने का काम पूरा हो जाता तो वह हमेशा बच्चों के सामने बड़े उल्लासपूर्ण वातावरण में एक जुर्राब में से दूसरी निकालती।

१४

इसके शीघ्र बाद ही बच्चे शुभरात्रि कहने के लिये आये। बच्चों ने सबको चूमा, शिक्षक-शिक्षिकाओं ने झुककर अभिवादन किया और चले गये। केवल डेसाल ही अपने शिष्य के साथ यहां रह गया। शिक्षक फुसफुसाकर अपने शिष्य को नीचे चलने को कह रहा था।

"नहीं, मिस्टर डेसाल, मैं आंटी से यहीं रहने की अनुमति मांग लूंगा," किशोर निकोलाई बोल्कोन्स्की ने भी फुसफुसाकर फ़्रांसीसी में उत्तर दिया।

"आंटी, मुझे यहीं रहने की अनुमति दे दीजिये," उसने बूआ के पास जाकर कहा। उसके चेहरे पर विनती, उद्विग्नता और उल्लास का भाव था। काउंटेस मरीया ने उसकी ओर देखा और प्येर को संबोधित करते हुए बोली:

"जब आप यहां होते हैं तो इसका मन जाने को होता ही नहीं..."

"मैं अभी इसे आपके पास ले आऊंगा, मिस्टर डेसाल, शुभरात्रि," प्येर ने स्विस शिक्षक की ओर हाथ बढ़ाकर फ़्रांसीसी में कहा और मुस्कराते हुए किशोर निकोलाई से बोला – "हम तो एक-दूसरे से मिले ही नहीं। मरीया, यह हू-ब-हू वैसा ही होता जा रहा है," काउंटेस मरीया को सम्बोधित करके उसने इतना और कह दिया।

"पिता जैसा?" लड़के का चेहरा उत्तेजना से लाल हो गया और उसने प्रशंसाभाव से चमकती आंखों से प्येर की ओर नज़र ऊपर उठाते हुए पूछा। प्येर ने सिर हिलाकर हामी भरी और बच्चों के आने के कारण अधूरी रह गयी अपनी बात आगे बढ़ाने लगा। काउंटेस मरीया कैनवेस पर कढ़ाई कर रही थीं; नताशा टकटकी लगाये पति को देख रही थी। निकोलाई और देनीसोव उठकर तथा पाइप मंगवाकर पी रहे थे, सामोवार के पास उदास, डटकर बैठी सोन्या से चाय ले रहे थे और प्येर से सवाल पूछते जा रहे थे। चमकीली आंखों, घुंघराले बालोंवाला दुबला-सा किशोर निकोलाई कोने में दुबका बैठा था, उसकी ओर कोई भी ध्यान नहीं दे रहा था। वह तो जब-तब खुले कालर से बाहर निकली पतली गर्दन पर टिके घुंघराले सिर को प्येर की ओर घुमाता और कुछ बुदबुदाता। शायद उसके मन में कोई नया और तीव्र विचार उमड़ रहा था।

बातचीत उच्च राजकीय क्षेत्रों से सम्बन्धित अफ़वाहो के गिर्द घूम रही थी। यही तो वह विषय है जिसमें प्रायः अधिकांश लोग गृह-नीति के अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हितों को देखते हैं। सैनिक सेवा में अपनी निराशा के कारण सरकार से असन्तुष्ट देनीसोव बड़ी ख़ुशी से उन मूर्खताओं के विषय में सुन रहा था, जो उसके मतानुसार अब पीटर्सबर्ग में की जा रही थीं और बड़े कड़े व उग्र शब्दों में प्येर की बातों पर टिप्पणियां कर रहा था।

"पहले जर्मन होने की ज़रूरत थी, अब ततारिनोवा और मदाम क्रूडनेर* के साथ नाचना चाहिये, एक्कार्त्सहाउज़ेन** और उसके भाई-बन्धुओं की रचनाओं को पढ़ना चाहिये। ओह! अगर मेरा बस चलता तो मैं फिर से पट्ठे बोनापार्ट को छोड़ देता! वह इन सब की अक़्ल ठिकाने कर देता। यह भी कोई बात हुई – सिपाही श्वार्ट्ज़*** को सेम्योनोव्स्की रेजिमेंट सौंप दी गयी?" वह चिल्ला रहा था।

निकोलाई भी सरकार के विषय में चर्चा को उचित और महत्त्व-पूर्ण मानता था, हालांकि देनीसोव की तरह सब चीज़ों में बुराई ढूंढ़ने का इच्छुक नहीं था। वह मानता था कि अ० का फ़लां-फ़लां विभाग का मन्त्री नियुक्त किया जाना, ब० का फ़लां-फ़लां जगह का गवर्नर-जनरल बनाया जाना, सम्राट का फ़लां-फ़लां कथन और मन्त्री के फ़लां-फ़लां शब्द – ये सभी बड़ी महत्त्वपूर्ण बातें हैं। और वह इनमें रुचि लेना आवश्यक मानता था और प्येर से सवाल पूछ रहा था। इन दोनों की बातचीत का विषय, उच्च राजकीय क्षेत्रों के बारे में गप-शप और निन्दा-चुगली की सामान्य सीमा से बाहर नहीं निकल रहा था।

किन्तु पति के सभी मनोभावों और विचारों से परिचित नताशा

---

* देनीसोव का तात्पर्य १८१२ की लड़ाई में रूसी सेना के उच्चाधिकारियों में जर्मनों का बोलबाला होने और अब कट्टरपंथियों के अंधानुकरण से है। वरवारा क्रूडनेर (१७६४–१८२५) – लेखिका-धर्मप्रचारिका, "भविष्यवक्ता", जिसका कुछ समय तक अलेक्सान्द्र प्रथम पर प्रभाव रहा। – सं०

** कार्ल एक्कार्त्सहाउज़ेन (१७५२–१८०३) – जर्मन रहस्यवादी लेखक। – सं०

*** १८२० के मार्च में कर्नल फ़्योदोर श्वार्ट्ज़, जो अपनी निर्दयता के लिये कुख्यात था, सेम्योनोव्स्की रेजिमेंट का कमांडर बना। उसके द्वारा लागू डंडा शासन रेजिमेंट के विद्रोह का कारण बना। – सं०

देख रही थी कि प्येर बहुत देर से वार्तालाप को दूसरी दिशा में मोड़ना चाहता है, पर ऐसा कर नहीं पा रहा है। वह अपने उस मनोगत विचार को प्रकट करना चाहता था जिसके सम्बन्ध में अपने नये मित्र प्रिंस फ़्योदोर से सलाह-मशविरा करने पीटर्सबर्ग गया था। नताशा ने यह प्रश्न पूछकर पति की सहायता की कि प्रिंस फ़्योदोर के साथ उसकी बातचीत कैसी रही?

"किस बारे में?" निकोलाई ने पूछा।

"अरे, उसी बारे में, उसी पुराने क़िस्से के बारे में," प्येर ने चारों ओर नज़र घुमाते हुए कहा। "सभी यह देख रहे हैं कि हालत इतनी ख़राब होती जा रही है कि उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता और सभी ईमानदार लोगों को यथाशक्ति प्रतिरोध करना चाहिये।"

"ईमानदार लोग कर ही क्या सकते हैं?" निकोलाई ने ज़रा भौंहें सिकोड़ते हुए पूछा। "क्या करना मुमकिन है?"

"यह कि ..."

"आओ, अध्ययन-कक्ष में जाकर बैठते हैं," निकोलाई बोला।

नताशा काफ़ी देर से अनुभव कर रही थी कि किसी भी क्षण उसे बच्चे को दूध पिलाने के लिये बुलाया जा सकता है और आया की आवाज़ सुनकर वह बच्चों के कमरे में चली गयी। काउंटेस मरीया भी उसके साथ चल दी। पुरुष अध्ययन-कक्ष में चले गये और किशोर निकोलाई बोल्कोन्स्की भी, जिसपर फूफा की नज़र नहीं पड़ी, अध्ययन-कक्ष में जाकर खिड़की के निकट लिखने की मेज़ के पास अन्धेरे कोने में बैठ गया।

"अच्छा, तो तुम्हारे ख़्याल में क्या करना चाहिये?" देनीसोव बोला।

"हमेशा ख़्याली पुलाव पकाता रहता है," निकोलाई ने कहा।

"मेरा ख़्याल तो यह है," प्येर ने बैठे बिना बोलना शुरू किया। कभी वह कमरे में चहलक़दमी करता, कभी रुक जाता। वह अपने शब्दों पर ज़ोर देते हुए और हाथ नचा-नचाकर बोल रहा था। "मेरा ख़्याल तो यह है – पीटर्सबर्ग की स्थिति ऐसी है: सम्राट अब किसी काम में दिलचस्पी नहीं लेते। वह पूरी तरह से रहस्यवाद के फेर में पड़े हुए हैं (रहस्यवाद के लिये प्येर अब किसी को भी नहीं बख़्शता था)। वह तो सिर्फ़ चैन की खोज में रत हैं और उन्हें वही लोग

रूस के भविष्य के बारे में प्येर और निकोलाई रोस्तोव के बीच वाद-विवाद हो रहा है।

चैन दे सकते हैं जिनका न कोई धर्म है, न ईमान, जो सब कुछ समूल नष्ट करते हैं: माग्नीत्स्की, अराकचेयेव और उनके जैसे दूसरे लोग... क्या तुम इस बात से सहमत हो सकते कि अगर तुम ख़ुद अपना कारोबार न चलाकर सिर्फ़ चैन चाहते, तो तुम्हारा कारिंदा जितना ज़्यादा निर्दयी होता, तुम्हें उतनी ही जल्दी चैन प्राप्त हो जाता?" उसने निकोलाई से पूछा।

"पर तुम यह सब कह किसलिये रहे हो?" निकोलाई ने पूछा।

"इसलिये कि सब सत्यानास हो रहा है। अदालतों में चोर-उचक्कों का बोलबाला हैं, फ़ौज में सब डंडे के बल पर चलता है: फ़ौजी क़वायद, बस्तियां* – जनता पर सितम ढाये जा रहे हैं, सभ्यता का दम घोंटा जा रहा है। हर नयी और ईमानदारी की चीज़ का ख़ात्मा किया जा रहा है! सभी देख रहे हैं कि ऐसे काम नहीं चल सकता। सब कुछ इतना तना हुआ है कि टूटकर रहेगा," प्येर बोल रहा था (उसी तरह, जैसे लोग तब से, जब से सरकारें अस्तित्व में आयी हैं उनके काम का विश्लेषण करते हुए बोलते हैं)। "मैंने पीटर्सबर्ग में उनसे एक बात कही।"

"किनसे?" देनीसोव ने पूछा।

"अरे, आप जानते हैं किनसे," प्येर ने अर्थपूर्ण नज़र से घूरकर जवाब दिया, "प्रिंस फ़योदोर और अन्य सब से। शिक्षा-प्रसार और परोपकार को प्रोत्साहन देना बेशक नेक काम है। लक्ष्य ऊंचा है, इससे अधिक कुछ नहीं; मगर आज की परिस्थितियों में दूसरी चीज़ की आवश्यकता है।"

इसी समय निकोलाई की भतीजे पर नज़र पड़ गयी। उसका चेहरा खिन्न हो उठा; वह उसके पास जाकर बोला:

"तुम यहां क्या कर रहे हो?"

"इसके यहां होने में क्या बुरी बात है? बैठा रहने दो इसे," निकोलाई का हाथ अपने हाथ में लेते हुए प्येर ने कहा और आगे बोला – "यही नहीं, मैंने उनसे कहा कि इस वक़्त दूसरी चीज़ की ज़रूरत है। जब आप उम्मीद कर रहे हैं कि यह तना हुआ तार किसी क्षण भी

---

* बस्तियां – अराकचेयेव द्वारा स्थापित सैनिक बस्तियां जहां सैन्य सेवा के साथ-साथ खेतीबारी भी की जाती थी। उनमें जीवन की बहुत कठोर परिस्थितियां थीं। – सं०

टूट सकता है ; जब सब अवश्यंभावी सत्ता-पलट की प्रतीक्षा में हैं तो अधिक से अधिक लोगों को एक दूसरे का हाथ पकड़कर एकजुट हो जाना चाहिये ताकि महाविपदा का मुक़ाबला किया जा सके। सब युवा और शक्तिशाली उधर खिंचकर पतित हो जाते हैं। किसी को औरतें, किसी को मान-सम्मान की लालसा, किसी को दम्भ और किसी को पैसा पथभ्रष्ट कर देता है और वे उस शिविर में चले जाते हैं। आप और मुझ जैसे स्वाधीन, स्वतंत्र लोग तो रहे ही नहीं। मेरा तो यह कहना है कि संगठन का विस्तार करो, हमारा नारा सिर्फ़ नेकी और परोपकार नहीं, बल्कि स्वाधीनता और सक्रियता होना चाहिये।"

निकोलाई ने भतीजे के क़रीब से हटते हुए गुस्से में आरामकुर्सी खिसकायी और उसपर बैठ गया, प्येर की बातें सुनते हुए वह असन्तोष से गला खंखारने और अधिकाधिक नाक-भौंह सिकोड़ने लगा।

"आख़िर सक्रियता का लक्ष्य क्या है?" उसने चिल्लाकर पूछा। "और सरकार के प्रति क्या रवैया अपनाओगे?"

"सरकार के प्रति! मददगारों का रवैया। अगर सरकार ऐसा करने की अनुमति दे दे तो संगठन का गुप्त होना भी ज़रूरी नहीं। सरकार के प्रति शत्रुता की बात तो दूर, इसके विपरीत यह तो असली रूढ़िवादियों का संगठन है। सही अर्थ में जेंटलमैनों का संगठन है। हम तो सिर्फ़ इसलिये ऐसा कर रहे हैं कि फिर से कोई पुगाचोव* मेरे और तुम्हारे बच्चों का गला काटने न आ जाये और अराकचेयेव मुझे सैनिक बस्ती में न भेज दे, – हम तो सिर्फ़ सभी की भलाई और सभी की सुरक्षा के एकमात्र लक्ष्य से एक-दूसरे का हाथ पकड़ रहे हैं।"

"सो तो ठीक है, पर गुप्त संगठन – अर्थात् शत्रुतापूर्ण और हानिकर, जो केवल बुराई को ही जन्म दे सकता है," आवाज़ ऊंची करके निकोलाई बोला।

"भला क्यों? क्या तूगेनबुंद ने,** जिसने यूरोप को बचाया (तब तो

---

* येमेल्यान पुगाचोव (१७४० या १७४२–१७७५) – रूस में १७७३-७५ के किसान युद्ध का नायक। – सं०

** 'तूगेनबुंद' – 'सदाचार का संघ' – गुप्त राजनीतिक संगठन जो प्रशा पर क़ब्ज़ा करनेवाले फ़्रांसीसियों के विरुद्ध संघर्ष में जर्मनी की "राष्ट्र-भावना" के उत्थान के हेतु १८०८ में केनिग्सबर्ग में स्थापित हुआ था। रूसी कुलीन क्रान्तिकारियों-दिसम्बरवादियों ने अपने राजनीतिक कार्यक्रम और कार्यनीति का निरूपण करने के लिये 'तूगेनबुंद' के विधान से लाभ उठाया था। – सं०

यह सोचने की हिम्मत ही नहीं की जाती थी कि रूस ने यूरोप को बचाया), क्या बुरा किया? तूगेनबुंद – यह सदाचार का संघ है, इसका अर्थ है एक दूसरे से प्रेम और एक दूसरे की सहायता करना। यह वही है जिसका मसीहा ने सलीब से उपदेश दिया था।"

नताशा, जो बातचीत के दौरान कमरे में आ गयी थी, पुलकित होकर पति को देख रही थी। उसे उसकी बातों से ख़ुशी मिल रही हो, ऐसा नहीं था। उसे तो उनमें रुचि तक नहीं थी, क्योंकि उसे ये सब बातें अत्यन्त सरल और ऐसी लगती थीं जिन्हें मानो वह कभी से जानती है (उसे इसलिये ऐसा लगता था, क्योंकि वह इन बातों के उद्गम – प्येर की आत्मा – को जानती थी)। किन्तु उसे ख़ुशी हो रही थी उसकी सजीव और उल्लासपूर्ण आकृति को देखकर।

खुले कालर से बाहर निकली पतली गर्दनवाला, सभी द्वारा विस्मृत किशोर निकोलाई बोल्कोन्स्की प्येर को और भी अधिक हर्षोल्लास के साथ देख रहा था। प्येर का एक-एक शब्द उसके दिल में चिंगारी-सी पैदा कर रहा था और वह उत्तेजना के कारण उंगलियों से फूफा की मेज़ पर रखे मुहर लगाने के लाख के टुकड़ों और परों की कलमों को अनजाने ही तोड़ता जा रहा था।

"जैसा तुम सोचते हो जर्मन तूगेनबुंद बिल्कुल वैसा नहीं था, बल्कि जिस तरह के संगठन का प्रस्ताव मैं कर रहा हूं, ऐसा था।"

"सासेज बनानेवालों के लिये तो तूगेनबुंद ठीक है। लेकिन यह सब मेरी समझ से बाहर है, मैं तो इस शब्द का उच्चारण भी नहीं कर सकता," देनीसोव की ऊंची, दृढ़ आवाज़ गूंजी। "मैं सहमत हूं कि सब ख़राब और घिनौना है, सिर्फ़ तूगेनबुंद मेरी समझ के परे है, अगर अच्छा नहीं लगता – तो **बग़ावत** ही सही! तब मैं तुम्हारे साथ हूं!"

प्येर मुस्कराया, नताशा हंस पड़ी, लेकिन निकोलाई की भौंहें और भी तन गयीं और वह प्येर को यह यक़ीन दिलाने लगा कि कोई तख़्ता-पलट वग़ैरह नहीं होनेवाला है और वह सारा ख़तरा, जिसका वह ज़िक्र कर रहा है, सिर्फ़ उसके दिमाग़ की उपज है। प्येर इसके उलट बात सिद्ध कर रहा था और चूंकि उसकी बौद्धिक क्षमता अधिक और गहरी थी, इसलिये निकोलाई ने महसूस किया कि उसकी बात कुछ बन नहीं रही है। इससे उसका क्रोध और भी बढ़ गया, क्योंकि वह

मन से, विवेक से नहीं, पर विवेक से भी अधिक शक्तिशाली किसी चीज़ के आधार पर यह जानता था कि उसका मत निर्विवाद रूप से सही है।

"मैं तुमसे यह कह देना चाहता हूं," उठकर तथा उद्वेग के साथ पाइप को कोने में टिकाने की कोशिश करते और अंततः उसे फेंकते हुए वह बोला। "मैं अपनी बात सिद्ध तो नहीं कर सकता। तुम कहते हो कि हमारे यहां सब बुरा है, कि तख़्ता-पलट होगा, मुझे ऐसा नज़र नहीं आता; पर तुम कहते हो कि शपथ सोपाधिक मामला है और इसी विषय में मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि तुम मेरे सबसे प्यारे मित्र हो, तुम यह जानते हो, लेकिन अगर आप लोग गुप्त संगठन बनायेंगे, सरकार का विरोध करने लगेंगे, चाहे वह कैसी भी क्यों न हो, तो उस हालत में मैं जानता हूं कि मेरा कर्त्तव्य उसकी आज्ञा का पालन करना होगा। और अगर अराकचेयेव मुझे यह आदेश दे कि मैं तुमपर अपने स्क्वाड्रन से हमला करके तुम्हारे सिर क़लम कर दूं – तो पल भर भी सोचे बिना ऐसा कर दूंगा। बाक़ी तुम जो भी चाहो, नतीजा निकाल सकते हो।"

इन शब्दों के बाद अटपटा-सा मौन छा गया। सबसे पहले नताशा ने पति की हिमायत और भाई पर आक्षेप करते हुए इसे भंग किया। उसकी हिमायत कमज़ोर और बेतुकी थी, पर उसका लक्ष्य पूरा हो गया। बातचीत फिर से शुरू हो गयी और वह अब उस अप्रिय तथा द्वेषपूर्ण लहजे में नहीं हो रही थी जिसमें निकोलाई ने अपने अंतिम शब्द कहे थे।

जब सब रात के खाने के लिये उठे तो किशोर निकोलाई बोल्कोन्स्की प्येर के पास आया, उसके चेहरे का रंग उड़ा हुआ था और उसकी चमकीली आंखों से रश्मिपुंज फूट रहा था।

"चाचा प्येर... आप... नहीं... मैं कहना चाहता हूं कि अगर पापा ज़िन्दा होते... तो वह आपसे सहमत होते?" उसने पूछा।

प्येर अचानक समझ गया कि उसकी बातचीत के समय इस किशोर के मन में भावों और विचारों की कितनी असामान्य, स्वतंत्र, जटिल और शक्तिशाली प्रक्रिया चल रही होगी और वह सब याद करके, जो उसने कहा था, उसे मलाल हुआ कि लड़के ने उसकी बातें सुनीं। पर सवाल का जवाब तो देना ही था।

"मेरे विचार में तो सहमत होते।" वह अनिच्छा से बोला और अध्ययन-कक्ष से बाहर चला गया।

लड़के ने सिर झुकाया और तभी मानो उसने पहली बार देखा कि उसने मेज़ पर क्या कर डाला है। उसका चेहरा लाल हो गया और वह निकोलाई के पास गया।

"फूफा जी, मुझे माफ़ कर दें, मैं अनजाने में ही यह कर बैठा," लाख के टूटे टुकड़ों और परों की टूटी क़लमों की ओर इशारा करते हुए उसने कहा।

निकोलाई ग़ुस्से से कांप उठा।

"ठीक है, ठीक है," मेज़ से लाख और परों के टुकड़े गिराते हुए वह बोला। और शायद अपने भीतर उबलते क्रोध को मुश्किल से क़ाबू में करते हुए उसने मुंह फेर लिया।

"तुम्हें तो यहां होना ही नहीं चाहिये था," वह बोला।

१५

रात के खाने के समय राजनीतिक और संगठनों की फिर से चर्चा नहीं चली, बल्कि निकोलाई के अत्यन्त प्रिय विषय – सन् १८१२ की यादों को लेकर बातचीत हुई जिसे देनीसोव ने छेड़ा और जिसमें प्येर की बातें विशेष रूप से प्रिय और रोचक लगीं। और रिश्तेदार अत्यन्त सौहार्द के साथ जुदा हुए।

खाने के बाद अपने अध्ययन-कक्ष में कपड़े बदलकर और बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रहे प्रबंधक को निर्देश देकर निकोलाई जब ड्रेसिंग-गाउन पहने हुए सोने के कमरे में गया तो उसने लिखने की मेज़ पर बैठी पत्नी को कुछ लिखते पाया।

"तुम क्या लिख रही हो, मरीया?" निकोलाई ने पूछा। काउंटेस मरीया के गालों पर लाली दौड़ गयी। उसे डर था कि जो कुछ वह लिख रही थी, पति उसे नहीं समझेगा और उसका अनुमोदन नहीं करेगा।

वह जो कुछ लिख रही थी, उसे पति से छिपाना भी चाहती थी,

मगर साथ ही ख़ुश भी थी कि उसने उसे यह करते देख लिया था और अब उसे सब कुछ बताना पड़ेगा।

"यह डायरी है, निकोलाई," अपनी स्पष्ट, बड़े-बड़े अक्षरोंवाली लिखावट से भरी नीली कापी उसे देते हुए वह बोली।

"डायरी?.." निकोलाई उपहास के पुट के साथ कह उठा और उसने कापी हाथ में ले ली। उसमें फ़्रांसीसी में लिखा था:

"४ दिसंबर। आज बड़ा बेटा – अन्द्रूशा – सुबह उठकर कपड़े नहीं पहनना चाहता था और कुमारी लुईज़ा ने मुझे बुलवाया। वह ज़िद और हठ कर रहा था। मैंने उसे धमकाने की कोशिश की, पर इससे वह और भी ग़ुस्से में आ गया। तब मैंने अपने को वश में किया, उसे उसी हाल में छोड़ दिया और आया के साथ दूसरे बच्चों को उठाने लगी और उससे कहा कि मैं उसको प्यार नहीं करती। वह मानो हैरान होता हुआ बड़ी देर तक चुप रहा; फिर नाइट-ड्रेस में मेरे पास दौड़ा आया और ऐसे फूट-फूटकर रोने लगा कि मैं बड़ी देर तक उसे शांत न कर पायी। लगता था कि उसे सबसे ज़्यादा दुख इस बात का था कि उसने मेरा दिल दुखाया; बाद में रात के वक़्त जब मैंने उसे रिपोर्ट दी तो वह मुझे चूमते हुए फिर बड़े कारुणिक ढंग से रो पड़ा। स्नेहपूर्वक उससे कुछ भी करवाया जा सकता है।"

"यह रिपोर्ट क्या है?" निकोलाई ने पूछा।

"मैंने बड़े बच्चों को शाम को उनके दिन भर के आचरण की रिपोर्ट लिखकर देनी शुरू कर दी है।"

निकोलाई ने अपनी ओर ताकती काउंटेस मरीया की कांतिमयी आंखों में झांका और पन्ने पलटकर पढ़ने लगा। डायरी में बच्चों के जीवन से सम्बन्धित वह सभी कुछ लिखा जाता था जो बच्चों के चरित्र को व्यक्त करने की दृष्टि से मां को दिलचस्प लगता या पालन-पोषण की विधियों के विषय में आम विचारों को जागृत करता। अधिकतर तो ये अत्यन्त मामूली बातें थीं, पर वे न मां को ऐसी लगती थीं और न पिता को ही ऐसी लगीं जो अब पहली बार बच्चों की यह डायरी पढ़ रहा था।

५ दिसंबर को लिखा गया था:

"मीत्या खाने की मेज़ पर शरारत कर रहा था। पापा ने उसे पेस्ट्री देने से मना कर दिया। उसे नहीं दी गयी, पर वह बहुत ही

दयनीय और ललचायी नज़र से दूसरों को खाते देखता रहा था! मेरे विचार में मिठाई न देने का दंड बालक के लालच को बढ़ाता है। निकोलाई से कहना चाहिये।"

निकोलाई ने डायरी रखकर पत्नी की ओर देखा। कांतिमयी आंखें प्रश्न पूछती-सी उसकी ओर देख रही थीं – वह डायरी का अनुमोदन करता है या नहीं करता? न केवल निकोलाई के अनुमोदन, बल्कि पत्नी के प्रति उसके प्रशंसाभाव के बारे में भी कोई सन्देह नहीं हो सकता था।

"शायद यह सब इतने पंडिताऊ ढंग से नहीं करना चाहिये; शायद इसकी बिल्कुल ज़रूरत न हो," निकोलाई सोच रहा था; परन्तु यह अथक, अनवरत आत्मिक तनाव, जिसका लक्ष्य केवल बच्चों की नैतिक भलाई था, उसे सम्मोहित कर रहा था। अगर निकोलाई अपनी भावना का विश्लेषण कर सकता तो वह पाता कि पत्नी के प्रति उसका दृढ़, कोमल और गर्वपूर्ण प्रेम मुख्य रूप से उसकी उसी आत्मिकता, ख़ुद उसके लिये लगभग अप्राप्य उस उच्च, नैतिक जगत के समक्ष, जिसमें उसकी पत्नी हमेशा रहती थी, उसकी इस आश्चर्य भावना पर ही टिका हुआ है।

उसे गर्व था कि वह इतनी समझदार है और आत्मिक जगत में उसके सामने अपनी तुच्छता के बोध से उसे इस बात की और भी अधिक ख़ुशी होती कि अपनी आत्मा समेत वह न केवल उसकी है, बल्कि ख़ुद उसी का एक अंग है।

"मैं बहुत-बहुत अनुमोदन करता हूं, मेरी प्यारी," उसने गम्भीरता से कहा। और कुछ चुप रहकर आगे बोला – "पर मेरा व्यवहार आज अच्छा नहीं था। तुम अध्ययन-कक्ष में नहीं थीं। प्येर के साथ मेरी बहस हो गयी और मुझे ताव आ गया। लेकिन वह बड़ा ही अजीब आदमी है, एकदम बच्चा है। अगर नताशा हमेशा उसकी लगाम कसे न रहती तो पता नहीं उसका क्या होता। तुम कल्पना कर सकती हो कि वह किसलिये पीटर्सबर्ग गया था?.. उन्होंने वहां..."

"हां, मुझे मालूम है," काउंटेस मरीया बोली, "मुझे नताशा ने बताया था।"

"अच्छा, तो तुम्हें मालूम है," बहस की याद से ही तैश में आकर निकोलाई आगे बोला। "वह मुझे विश्वास दिलाना चाहता है कि हर

ईमानदार व्यक्ति का यह फ़र्ज़ है कि वह सरकार का विरोध करे, किन्तु तब शपथ और कर्त्तव्य... अफ़सोस है कि तुम वहां नहीं थीं। वहां तो सब मुझपर टूट पड़े, देनीसोव भी और नताशा भी... नताशा भी ख़ूब है। वह उसे अपने इशारों पर नचाती है, किन्तु जैसे ही सोच-विचार करने की कोई बात सामने आ जाती है तो उसके पास अपने शब्द ही नहीं होते – उसी के शब्द बोलती है," प्रियजनों और आत्मीयों को आंकने की उत्कट इच्छा से प्रेरित होकर निकोलाई ने यह भी जोड़ दिया। निकोलाई यह भूल रहा था कि नताशा के बारे में वह जो कुछ कह रहा था, अपनी पत्नी के संदर्भ में वही बात उसपर भी पूरी तरह लागू होती थी।

"हां, इस चीज़ की ओर मेरा ध्यान गया है," काउंटेस मरीया बोली।

"जब मैंने उससे यह कहा कि कर्त्तव्य और शपथ ही सबसे बढ़-चढ़कर हैं तो भगवान जानें, वह क्या-क्या बोलने लगा। अफ़सोस है कि तुम नहीं थीं; तुम क्या कहतीं?"

"मेरे विचार में तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक है। मैंने नताशा से भी यही कहा। प्येर कहता है कि सब दुख-दर्द और मुसीबतें भोग रहे हैं, पतित हो रहे हैं, कि अपने आस-पास के लोगों की सहायता करना हमारा कर्त्तव्य है। बेशक वह सही है," काउंटेस मरीया कह रही थी, "पर वह यह भूल जाता है कि हमारे कहीं अधिक निकट, हमारे कुछ दूसरे कर्त्तव्य भी हैं, जिनका स्वयं भगवान ने हमें निर्देश किया है, कि हम अपने को तो जोखिम में डाल सकते हैं, मगर अपने बच्चों को नहीं।"

"हां, हां, मैंने भी उससे बिल्कुल यही कहा था," निकोलाई ने हां में हां मिलायी। उसे सचमुच ऐसा लग रहा था कि उसने ठीक यही बात कही थी। "पर वह अपनी ही रट लगाये जा रहा था: आस-पास के लोगों से प्रेम और ईसाई धर्म आदि, और यह सब कुछ किशोर निकोलाई के सामने, जो चुपके से अध्ययन-कक्ष में आ गया था और उसने सब कुछ तोड़-फोड़ डाला।"

"ओह, निकोलाई, तुम नहीं जानते कि अपने इस भतीजे के कारण मैं अक्सर कितनी चिन्तित होती हूं," काउंटेस मरीया बोली। "बड़ा असाधारण लड़का है। और मुझे तो यह डर है कि

अपने बच्चों की वजह से मैं उसे भूल जाती हूं। हम सबके बच्चे हैं, सबके भाई-बहन हैं; पर उसका कोई नहीं हैं। वह हमेशा अकेला और अपनी सोच में डूबा रहता है।"

"छोड़ो भी, उसके मामले में तो तुम अपनी कोई भर्त्सना नहीं कर सकतीं। वह सब जो एक ममतामयी मां अपने बेटे के लिये कर सकती है, वह तुमने उसके लिये किया और कर रही हो। और मैं, ज़ाहिर है, इससे खुश हूं। वह बहुत, बहुत ही अच्छा लड़का है। आज वह मानो अपनी सुध-सी खोकर प्येर की बातें सुनता रहा। और तुम ज़रा सोचो तो: हम खाना खाने के लिये निकल रहे थे; मैं देखता क्या हूं कि उसने मेरी मेज़ पर रखी सभी चीज़ों को चकनाचूर कर दिया है और उसी वक़्त मुझे यह सब बता दिया। मैंने उसे कभी भी झूठ बोलते नहीं देखा। बहुत ही अच्छा लड़का है!" निकोलाई ने फिर से कहा, जिसे मन में तो यह लड़का अच्छा नहीं लगता था, पर जिसे वह हमेशा भला मानना चाहता था।

"फिर भी वह बात नहीं, जो मां में होती है," काउंटेस मरीया बोली, "मैं महसूस करती हूं कि वह बात नहीं, और यही चीज़ मुझे सताती है। लाजवाब लड़का है; पर मैं उसके लिये बहुत सशंकित रहती हूं। लोगों की संगत से उसे फ़ायदा होगा।"

"ठीक है, इस बार गर्मियों में मैं उसे कुछ दिन के लिये पीटर्सबर्ग ले जाऊंगा," निकोलाई बोला। "हां, प्येर हमेशा सपनों की दुनिया में जिया है और जियेगा," अध्ययन-कक्ष में हुई बातचीत की ओर लौटते हुए, जो शायद उसे उद्वेलित कर रही थी, वह आगे बोला। "मुझे इस सब से क्या लेना-देना है कि अराकचेयेव बुरा है, वग़ैरह-वग़ैरह – मुझे इस सबकी उस वक़्त क्या परवाह हो सकती थी, जब मैंने शादी की और मुझपर इतना अधिक क़र्ज़ चढ़ा हुआ था कि लोग मुझे जेल में डालनेवाले थे और मेरी मां थी कि यह सब न देखती और न समझती थी। और फिर तुम हो, बच्चे हैं, कारोबार है। क्या मैं अपनी खुशी के लिये सुबह से शाम तक दफ़्तर और खेतीबाड़ी के कामों में फंसा रहता हूं? नहीं, मैं जानता हूं कि मुझे काम करना चाहिये ताकि मां को आराम-चैन मिले, तुम्हारा ऋण अदा कर सकूं और बच्चों को ऐसा भिखारी न छोड़ूं, जैसा मैं खुद था।"

काउंटेस मरीया उससे कहना चाहती थी कि आदमी के लिये रोटी

ही सब कुछ नहीं है, कि वह इस **कारोबार** को ज़रूरत से ज़्यादा महत्त्व देता है; पर वह जानती थी कि यह कहना उचित नहीं और व्यर्थ भी है। उसने तो बस निकोलाई का हाथ अपने हाथ में लेकर उसे चूम लिया। निकोलाई ने पत्नी के ऐसा करने को अपने विचारों का अनुमोदन और पुष्टि माना और कुछ समय तक चुपचाप सोचते रहने के बाद अपने विचार के क्रम को आगे बढ़ाने लगा :

"जानती हो, मरीया, ताम्बोव के पासवाले गांव से आज इल्या मित्रोफ़ानोविच आया है (यह प्रबंधक था) और उसका कहना है कि वहां हमारे जंगल के दाम अब अस्सी हज़ार लगाये जा रहे हैं।" और निकोलाई उद्वेलित होकर निकट भविष्य में ओतरादनोये की जागीर को छुड़ाने की संभावना के बारे में बताने लगा। "बस दसेक साल की ज़िन्दगी और मिल जाये, तो मैं बच्चों को ... बहुत मज़े में छोड़कर मरूंगा।"

काउंटेस मरीया पति की बात सुन रही थी और जो कुछ वह उससे कह रहा था, वह सब समझ रही थी। उसे मालूम था कि जब वह इस तरह बोलते हुए सोचता है तो कभी-कभी उससे पूछ लेता है कि अभी-अभी उसने क्या कहा था और जब यह देखता है कि वह किसी दूसरी चीज़ के बारे में सोच रही है तो बुरा मान जाता है। किन्तु बड़ी कोशिश करके वह उसकी ओर ध्यान दे रही थी, क्योंकि उसे उसकी बातों में ज़रा भी रुचि नहीं थी। वह उसकी ओर देख रही थी और यह कहना ठीक नहीं होगा कि वह किसी दूसरी चीज़ के बारे में सोच रही थी, मगर अनुभव कुछ और ही कर रही थी। वह इस व्यक्ति के प्रति, जो कभी भी वह सब कुछ नहीं समझ पायेगा, जिसे वह समझती थी, विनम्र और कोमल प्रेम-भावना अनुभव कर रही थी, और मानो इसी कारण वह उसको और भी अधिक आसक्तिपूर्ण अनुराग के साथ प्रेम करती थी। इस भावना के अलावा, जिसमें वह पूरी तरह डूबी हुई थी और जो उसे पति की योजनाओं की बारीकियों की गहराई तक जाने में विघ्न डाल रही थी, उसके मस्तिष्क में कुछ अन्य ऐसे विचार भी आ-जा रहे थे, जिनका उन बातों से, जो वह कह रहा था, कोई वास्ता न था। वह भतीजे के बारे में सोच रही थी (प्येर की बातें सुनते समय भतीजे की उद्विग्नता के बारे में पति ने जो कुछ बताया था, उससे वह अत्यन्त विस्मित हो गयी थी) और उसके

सुकुमार, संवेदनशील स्वभाव की विभिन्न विशेषतायें उसकी आंखों के सामने घूम रही थीं। भतीजे के बारे में सोचते हुए अपने बच्चों के बारे में भी सोचने लगी। वह भतीजे और अपने बच्चों की नहीं, बल्कि उनके प्रति अपनी भावनाओं की तुलना कर रही थी और दुखी होते हुए यह अनुभव कर रही थी कि भतीजे के प्रति उसकी भावनाओं में किसी चीज़ की कमी थी।

कभी-कभी उसके मन में यह विचार आता कि बच्चों की आयु का अन्तर ही भावनाओं की इस भिन्नता का कारण है; किन्तु वह महसूस करती कि भतीजे के सामने दोषी है और मन ही मन अपने को सुधारने और असम्भव को सम्भव करने की प्रतिज्ञा करती – अर्थात् इस जीवन में अपने पति, बच्चों, भतीजे निकोलाई और अपने निकट के सभी लोगों को उसी तरह से प्यार करेगी जैसे ईसा मसीह सारी मानवजाति से प्रेम करते थे। काउंटेस मरीया की आत्मा में सदा अनंतता, शाश्वतता और पूर्णता की उत्कंठा बनी रहती और इसीलिये उसे कभी चैन नहीं मिलता था। उसके चेहरे पर काया के बोझ से दबी आत्मा की प्रच्छन्न, उदात्त वेदना का कठोर भाव प्रकट हुआ। निकोलाई ने उसकी ओर देखा।

"हे भगवान! अगर यह मर गयी, जैसाकि इसके चेहरे के ऐसा होने पर मुझे लगता है, तो हमारा क्या होगा," उसने सोचा और वह देव-प्रतिमा के सामने खड़ा होकर रात की प्रार्थना करने लगा।

१६

पति के साथ अकेली रह जाने पर नताशा भी वैसे ही बातें कर रही थी, जैसे केवल पति-पत्नी ही आपस में करते हैं, यानी असाधारण स्पष्टता और एक-दूसरे के विचारों को जल्दी-जल्दी समझते और समझाते हुए, तर्क के सभी नियमों के विपरीत, मूल्यांकनों, बुद्धि की कसौटियों और निष्कर्षों का सहारा लिये बिना, सर्वथा विशेष ढंग से। नताशा पति के साथ इस ढंग से बातें करने की इतनी आदी हो गयी थी कि प्येर के विचारों का तर्क-संगत प्रवाह उसके लिये इसका पक्का लक्षण होता था कि उसके और पति के बीच कोई गड़बड़

है। जब वह कोई बात सिद्ध करने लगता, सोच-समझकर और शान्त ढंग से बोलने लगता और जब नताशा उसके उदाहरण के प्रभाव से खुद भी यही करने लगती, तो उसे मालूम होता था कि उनके बीच झगड़ा अवश्यंभावी है।

उस क्षण से, जब ये दोनों अकेले रह गये और नताशा खुशी से चमकती और फैली-फैली आंखों के साथ चुपचाप उसके पास आयी और अचानक तेज़ी से उसका सिर अपने हाथों में लेकर और उसे अपनी छाती से चिपकाकर बोली – "अब पूरी तरह, पूरी तरह मेरे हो, मेरे ही! अब कहीं नहीं जाने दूंगी!" – उस क्षण से तर्क के सभी नियमों के विपरीत यह बातचीत शुरू हुई, विपरीत इसलिये कि एक ही साथ बिल्कुल भिन्न विषयों पर बातें हो रही थीं। बहुत-से विषयों पर एक ही समय होनेवाला यह विचार-विमर्श उन्हें समझने में विघ्न डालने के बजाय इस बात का पक्का लक्षण था कि वे एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ रहे हैं।

जिस प्रकार सपनों में उस भावना के सिवा, जो सपनों का संचालन करती है, सब बेतुका, ऊल-जलूल और परस्परविरोधी होता है, उसी प्रकार विवेक के सभी नियमों के विपरीत बातें नहीं, बल्कि केवल वह भावना ही तर्क-संगत और स्पष्ट थी जो उनका संचालन कर रही थी।

नताशा प्येर को भाई के रहन-सहन और हाल-चाल तथा इस बारे में बता रही थी कि पति के बिना वह जीती नहीं थी, बल्कि यातना झेलती थी, कि वह मरीया को और भी अधिक प्यार करने लगी है, कि मरीया सभी दृष्टियों से उससे बेहतर है। यह कहते हुए नताशा सच्चे दिल से मरीया की श्रेष्ठता को स्वीकार कर रही थी, पर ऐसा कहते हुए साथ ही वह प्येर से यह मांग कर रही थी कि इसके बावजूद वह मरीया और बाक़ी सभी औरतों के मुक़ाबले में उसे ही तरजीह दे, और अब, जब वह पीटर्सबर्ग में फिर बहुत-सी औरतों से मिलकर आया है, उसके सामने इसी चीज़ को दोहराये।

नताशा की बातों का उत्तर देते हुए प्येर ने उसे बताया कि पीटर्स-बर्ग में पार्टियों और दावतों में महिलाओं की संगत उसके लिये कैसी यातना होती थी।

"महिलाओं से बातें करना तो मैं बिल्कुल भूल गया हूं," वह बोला, "बड़ी ऊब महसूस होती थी। खासकर जब मैं इतना व्यस्त था।"

नताशा ने उसे घूरकर देखा और आगे बोली :

"मरीया तो बस, कमाल ही है! कितनी अच्छी तरह से बच्चों को समझती है। वह मानो उनके मन की थाह ले लेती है। कल की ही बात है, मीत्या ज़िद करने लगा ..."

"ओह, वह तो बिल्कुल अपने बाप जैसा है," प्येर ने बात काटी।

नताशा समझ गयी कि क्यों उसने मीत्या और निकोलाई की इस समानता का उल्लेख किया है: साले के साथ हुई अपनी बहस की याद उसका मन कचोट रही थी और इस बारे में वह नताशा का मत जानना चाहता था।

"निकोलाई में यह कमज़ोरी है कि अगर किसी चीज़ को सामान्य मान्यता प्राप्त नहीं होती, तो वह किसी भी हालत में उसे मानने को तैयार नहीं होगा। पर मैं जानती हूं कि तुम अपनी क्रियाशीलता का कोई नया क्षेत्र ढूंढ़ने को ही सबसे ज़्यादा महत्त्व देते हो," उसने कभी प्येर के मुंह से ही सुने हुए उक्त शब्द दोहराये।

"नहीं, मुख्य बात यह है," प्येर बोला, "निकोलाई के लिये विचार और तर्क-वितर्क – मनबहलाव हैं, लगभग वक़्त काटने का साधन ही हैं। वह पुस्तकें जमा कर रहा है और उसने तब तक नयी पुस्तक नहीं ख़रीदने का नियम बना लिया है, जब तक ख़रीदी हुई पुस्तक न पढ़ ले – अर्थशास्त्री और इतिहासकार सिसमोंडी, रुस्सो और निरंकुश राजतंत्र के विरोधी मोंटेस्क्ये की किताब भी," मुस्कराते हुए प्येर ने यह भी कह दिया। "तुम तो जानती ही हो कि मैं उसे कितना ..." अपनी आलोचना को कुछ नरम करने के लिये उसने कहना शुरू किया। लेकिन नताशा ने यह आभास दिलाते हुए कि ऐसा करने की ज़रूरत नहीं है, उसकी बात काट दी।

"तो तुम्हारा कहना है कि उसके लिये विचार मनबहलाव हैं ..."

"हां, और मेरे लिये बाक़ी सब कुछ मनबहलाव है। पीटर्सबर्ग के पूरे वक़्त के दौरान मैं सबको मानो सपने में ही देखता था। जब कोई विचार मेरे दिल-दिमाग़ पर छा जाता है तो मेरे लिये बाक़ी सब कुछ मनबह-लाव हो जाता है।"

"अरे, कितने खेद की बात है कि मैं तुम्हें बच्चियों से मिलते हुए नहीं देख पाई," नताशा बोली। "कौन-सी बच्ची सबसे ज़्यादा ख़ुश हुई? लीज़ा ही न?"

"हां," प्येर ने उत्तर दिया और फिर से उसी विषय की चर्चा करने लगा, जो उसके मन पर हावी था। "निकोलाई कहता है कि हमें सोचना नहीं चाहिये। पर मैं ऐसा नहीं कर सकता। इस बात का तो ज़िक्र ही क्या किया जाये कि पीटर्सबर्ग में मैंने यह महसूस किया (मैं तुमसे तो यह कह ही सकता हूं) कि मेरे बिना सारा मामला चौपट हो जायेगा, वहां हर कोई अपना राग अलाप रहा था। लेकिन मैं सबको एक करने में कामयाब हो गया और फिर मेरा विचार भी तो बहुत सीधा-सादा है। मैं यह नहीं कहता हूं कि हमें फ़लां-फ़लां का विरोध करना चाहिये। हम ग़लती भी कर सकते हैं। मैं तो इतना ही कहता हूं: जो लोग नेकी को प्यार करते हैं, वे एक-दूसरे का हाथ थाम लें और हमारा एक ही नारा होना चाहिये – नेकी और सक्रियता। प्रिंस सेर्गेई बहुत बढ़िया और बुद्धिमान आदमी है।"

प्येर का विचार महान विचार था, नताशा को इसमें सन्देह नहीं हो सकता था, लेकिन एक बात उसे परेशान कर रही थी। वह यह कि वह उसका पति था। "क्या समाज के लिये सचमुच इतना महत्त्वपूर्ण और आवश्यक व्यक्ति – मेरा पति भी है? यह कैसे हुआ?" वह उसके सामने अपना यह सन्देह प्रकट करना चाहती थी। "इस बात का फ़ैसला करनेवाले कौन लोग हो सकते हैं कि अन्य सब की तुलना में वह वास्तव में ही अधिक बुद्धिमान है?" वह अपने से यह प्रश्न पूछ रही थी और मन ही मन उन लोगों को याद करने की कोशिश कर रही थी जिनका प्येर बहुत आदर करता था। उसकी बातों से तो यही पता चलता था कि वह प्लातोन करातायेव के समान अन्य किसी का भी आदर नहीं करता था।

"जानते हो, मैं किसके बारे में सोच रही हूं?" वह बोली, "प्लातोन करातायेव के बारे में। वह क्या कहता? क्या उसने अब तुम्हारा अनुमोदन किया होता?"

प्येर इस प्रश्न से तनिक भी चकित नहीं हुआ। वह पत्नी के विचार-प्रवाह को भांप गया था।

"प्लातोन करातायेव ने?" उसने पूछा और सोच में डूब गया। शायद वह वास्तव में ही इस विषय में करातायेव की राय का अनुमान लगाने की कोशिश कर रहा था। "वह समझ तो न पाता, पर मेरे विचार में, फिर भी उसने अनुमोदन किया होता।"

"मैं तुमको बेहद प्यार करती हूं!" नताशा अचानक कह उठी। "बेहद। बेहद!"

"नहीं, उसने अनुमोदन न किया होता," कुछ देर तक सोचने के बाद प्येर बोला। "हां, हमारे पारिवारिक जीवन का उसने ज़रूर अनुमोदन किया होता। वह हर चीज़ में चारुता, सुख, चैन देखने को लालायित रहता था और मैंने बड़े गर्व से हम लोगों को उसके सामने पेश किया होता। तुमने हमारे वियोग की बात की। मगर तुम विश्वास नहीं करोगी कि वियोग के कुछ समय के बाद मेरे मन में तुम्हारे लिये किस तरह का ख़ास भाव होता है..."

"हां, मैं तुमसे एक और बात..." नताशा ने कहना शुरू किया।

"नहीं, मैंने ठीक नहीं कहा। मैं तुम्हें प्यार तो हमेशा ही करता रहता हूं। और इससे अधिक प्रेम करना असम्भव है; लेकिन यह ख़ास भावना... हां, हां..." उसने अपनी बात पूरी नहीं की, क्योंकि उनकी इस समय मिलनेवाली नज़रों ने उसे पूरा कर दिया।

"मधुमास और यह दावा कि सुख-आनन्द दाम्पत्य जीवन के आरम्भ में ही मिलता है, ये सब कैसी बेवक़ूफ़ी की बातें हैं," नताशा अचानक कह उठी। "इसके विपरीत, अभी सबसे अच्छा समय है। बस, अगर तुम कहीं बाहर न आया-जाया करो। याद है, हम कैसे झगड़ा करते थे? और हमेशा मैं ही दोषी होती थी। हमेशा मैं ही। और किस बात पर हम झगड़ा करते थे – मुझे तो याद तक नहीं।"

"बस, एक ही बात पर," प्येर मुस्कराकर बोला, "ईर्ष्या..."

"नहीं कहो, मैं तो सुन भी नहीं सकती," नताशा चिल्लायी। और उसकी आंखों में कठोरता और क्रोध की लौ-सी चमक उठी। "तुम उससे मिले थे?" कुछ चुप रहकर उसने पूछा।

"नहीं, अगर मुलाक़ात हो भी जाती, तो मैंने उसे पहचाना न होता।"

दोनों चुप हो गये।

"अरे, जानते हो? जब तुम अध्ययन-कक्ष में बोल रहे थे मैं तुम्हें बहुत ग़ौर से देख रही थी," शायद उसकी ख़ुशी के आकाश पर घिरती घटा को दूर भगाने का प्रयास करते हुए नताशा ने कहना शुरू किया। "तुम हूबहू उसके जैसे हो, लड़के के जैसे हो। (वह बेटे को लड़का कहकर बुलाती थी।) अरे, उसके पास जाने का समय हो

गया है... मेरा दूध उतर आया है... पर जाने को मन नहीं हो रहा।"

वे दोनों कुछ क्षण तक मौन रहे। फिर अचानक दोनों एक ही क्षण एक दूसरे को सम्बोधित करते हुए कुछ कहने लगे। प्येर आत्म-सन्तोष और उत्साह से बोलने लगा; नताशा शान्त और सुखी मुस्कान के साथ। अचानक दोनों रुक गये और एक-दूसरे को बोलने की सम्भावना देने लगे।

"हां, तुम क्या कह रही हो? बोलो, बोलो।"

"नहीं, तुम बोलो, मैं तो योंही बेवक़ूफ़ी की बातें कर रही थी," नताशा ने कहा।

प्येर ने अपनी बात पूरी की। यह पीटर्सबर्ग में अपनी सफलता के बारे में उसके विचारों का सिलसिला था। इस क्षण उसे लग रहा था कि सारे रूसी समाज और पूरी दुनिया को एक नयी दिशा देना ही उसके जीवन का ध्येय है।

"मैं बस यही कहना चाहता था कि वे सब विचार, जिनके परिणाम बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं, हमेशा सरल होते हैं। मेरे विचार का केवल यही सार है कि अगर बुरे लोग आपस में सूत्रबद्ध और एक शक्ति हैं तो ईमानदार लोगों को भी बस यही करना चाहिये। कितनी सरल बात है यह।"

"हां।"

"और तुम क्या कहना चाहती थीं?"

"कुछ ख़ास नहीं।"

"फिर भी।"

"अरे, कुछ नहीं, योंही मामूली-सी बात है," और भी खिली मुस्कान के साथ नताशा बोली, "मैं तो बस पेत्या के बारे में कहना चाहती थी: आज आया उसे मुझसे लेने आयी, वह हंस पड़ा, आंखें मूंदकर मेरे साथ चिपक गया – उसने ज़रूर सोचा होगा कि छिप गया। बहुत ही प्यारा है! सुनते हो, चिल्ला रहा है। अच्छा, अलविदा!" और वह कमरे से चली गयी।

इसी समय नीचे, किशोर निकोलाई बोल्कोन्स्की के सोने के कमरे में हमेशा की तरह दीपक जल रहा था (लड़के को अंधेरे में डर लगता था और घर के लोग किसी भी तरह उसके इस भय को दूर नहीं कर पाये

थे)। डेसाल अपने चार तकियों पर सिर टिकाये ऊंचा उठा हुआ सो रहा था और उसकी सीधी नाक से खर्राटों की लयबद्ध आवाज़ आ रही थी। ठंडे पसीने से तर अभी-अभी जागनेवाला किशोर निकोलाई आंखें फाड़-फाड़कर सामने देखता हुआ बिस्तर में बैठा था। भयावह सपने ने उसे जगा दिया था। सपने में उसने अपने और प्येर को लोहे के वैसे ही टोप पहने देखा था, जैसे प्लूटार्क की पुस्तक में चित्रित थे। चाचा प्येर के साथ वह विशाल सेना के आगे-आगे चल रहा था। यह सेना पतझड़ में हवा में तैरनेवाले मकड़ी के सफ़ेद आड़ी रेखाओं के उन तारों की तरह थी, जिन्हें डेसाल मां मरियम के धागे कहता था। आगे कीर्ति थी, वैसी ही, जैसे ये धागे, पर कुछ घने। ये दोनों – किशोर निकोलाई और प्येर – बड़ी आसानी से और हर्ष के साथ लक्ष्य के अधिकाधिक निकट पहुंचते जा रहे थे। अचानक इन्हें उड़ाये लिये जानेवाले धागे ढीले पड़ने लगे; इन्हें कठिनाई-सी अनुभव होने लगी। और फूफा निकोलाई इल्यीच भयानक और कठोर मुद्रा बनाये इनके सामने आकर खड़े हो गये।

"यह आपने किया है?" लाख के टुकड़ों और परों की टूटी क़लमों की ओर इशारा करते हुए उन्होंने पूछा। "मैं आपसे प्यार करता था, पर अराकच्चेयेव ने मुझे हुक्म दिया है और अब जो भी आगे बढ़ेगा, मैं उसे मार डालूंगा।" किशोर निकोलाई ने मुड़कर प्येर की ओर देखा, मगर प्येर वहां नहीं था। प्येर की जगह उसके पिता – प्रिंस अन्द्रेई खड़े थे और पिता का न कोई रूप था न आकार, किन्तु वह थे और उन्हें देखकर किशोर निकोलाई प्यार से विह्वल हो उठा: उसने अपने को निःशक्त, हाड़-मांस के बिना और तरल-सा अनुभव किया। पिता ने उसे दुलारा, उसके लिये अफ़सोस ज़ाहिर किया। पर फूफा निकोलाई इल्यीच उनके पास आते जा रहे थे। किशोर निकोलाई को भय ने जकड़ लिया और उसकी आंख खुल गयी।

"पिता जी," वह सोच रहा था, "पिता जी" (इसके बावजूद कि घर में प्रिंस अन्द्रेई के दो मिलते-जुलते अच्छे चित्र थे, फिर भी किशोर निकोलाई ने मानव के रूप में प्रिंस अन्द्रेई की कभी भी कल्पना नहीं की थी), "पिता जी मेरे साथ थे, उन्होंने मुझे प्यार किया। वह मेरा अनुमोदन कर रहे थे, चाचा प्येर का अनुमोदन कर रहे थे।

चाचा प्येर जो भी कहेंगे – मैं वही करूंगा। मूसियस स्त्सेवोला* ने अपना हाथ जलाया था। भला मैं जीवन में ऐसा क्यों नहीं कर सकता? मैं जानता हूं कि वे चाहते हैं कि मैं पढ़ूं। और मैं पढ़ूंगा। पर कभी न कभी तो मेरी पढ़ाई समाप्त होगी और तब मैं कुछ ऐसा ही काम करूंगा। मैं भगवान से बस एक ही प्रार्थना करता हूं कि मेरे साथ भी वही हो जो प्लूटार्क के नायकों के साथ हुआ था** और मैं भी वही कुछ कर दिखाऊंगा। मैं और भी बढ़कर करूंगा। सबको पता चल जायेगा, सब मुझको प्यार करेंगे, सब मेरी बड़ाई करेंगे।" और अचानक किशोर को लगा कि उसका गला भरा आ रहा है और वह रो पड़ा।

"क्या आपकी तबीयत ख़राब है?" डेसाल की आवाज़ सुनाई दी।

"नहीं," किशोर निकोलाई ने उत्तर दिया और तकिये पर सिर रखकर लेट गया। "मेरे यह शिक्षक नेक और भले आदमी हैं, मैं इनको प्यार करता हूं," वह डेसाल के बारे में सोच रहा था। "और चाचा प्येर! ओह, वह तो लाजवाब हैं! और पिता जी? पिता जी! पिता जी! हां, मैं वह करूंगा जिससे **उन्हें** भी सन्तोष होता..."

---

* गेय मूसियस – प्राचीन रोमन आख्यान का नायक, जिसने शत्रु द्वारा यातना की धमकियों के उत्तर में खुद अपना दायां हाथ आग में डाल दिया था। – सं०

** प्लूटार्क (लगभग ४५ – लगभग १२७) – प्राचीन यूनानी लेखक और इतिहासकार। अपनी रचनाओं में उसने रोम और यूनान के अनुकरणीय नायकों के बिम्ब और चरित्र प्रस्तुत किये हैं। – सं०

भाग २

१

राष्ट्रों और मानवजाति का जीवन इतिहास का विषय है। मानव-जाति की बात तो दूर, किसी एक जनता के जीवन को भी ठीक तौर पर समझकर उसे शब्दों का जामा पहनाना – अर्थात् उसका सही वर्णन करना असम्भव लगता है।

सभी प्राचीन इतिहासकार किसी जनता के अबोधगम्य प्रतीत होने-वाले जीवन के वर्णन और उसे समझने के लिये अक्सर एक और सीधी-सादी युक्ति का ही उपयोग करते थे। वे जनता पर शासन करनेवाले इक्के-दुक्के लोगों के कार्य-कलाप का वर्णन करते थे और उनके लिये यह कार्य-कलाप पूरी जनता के कार्य-कलाप की ही अभिव्यक्ति होता था।

इन प्रश्नों का कि इक्के-दुक्के लोग किस प्रकार अपनी इच्छा से जनगण का संचालन करते थे और इन लोगों की इच्छा किससे परि-चालित होती थी, प्राचीन लोग पहले प्रश्न का उत्तर – दैवी इच्छा की मान्यता से देते थे, जो जनगण को एक श्रेष्ठ पुरुष की इच्छा के अधीन करती थी और दूसरे प्रश्न का – इसी दैवी इच्छा की मान्यता से, जो श्रेष्ठ पुरुष की इस इच्छा को प्रायोजित लक्ष्य की ओर परि-चालित करती थी।

प्राचीनकाल में ये प्रश्न मानवजाति के कामों में देवताओं की प्रत्यक्ष सहभागिता में आस्था से हल हो जाते थे।

नवीन इतिहास ने अपने सिद्धान्त में इन दोनों अवधारणाओं को ठुकरा दिया।

ऐसा प्रतीत हो सकता है कि प्राचीनकाल के लोगों की दैवी इच्छा की अधीनता और पूर्वनिश्चित लक्ष्यों, जिनकी ओर जनगण को ले जाया जाता है, की आस्थाओं से इन्कार करके नवीन इतिहास-शास्त्र को सत्ता की अभिव्यक्तियों का नहीं, बल्कि उसे निरूपित करने-वाले कारणों का अध्ययन करना चाहिये था। किन्तु नवीन इतिहास-शास्त्र ने ऐसा नहीं किया। सिद्धान्त के रूप में प्राचीन दृष्टिकोणों को ठुकराकर वह व्यवहार में उनका अनुकरण कर रहा है।

नवीन इतिहास ने दैवी सत्ता के वरदान से युक्त और प्रत्यक्ष दैवी इच्छा से परिचालित लोगों के स्थान पर या तो असाधारण अतिमानवीय योग्यताओं-क्षमताओंवाले नायकों को प्रस्तुत कर दिया, या जनसाधारण का नेतृत्व करनेवाले राजा-महाराजाओं से लेकर पत्रकारों तक अत्यन्त विविध गुणसम्पन्न सामान्य लोगों को। यहूदी, यूनानी, रोमन जनगण के देवताओं के मनपसन्द पहलेवाले लक्ष्यों के स्थान पर, जो प्राचीन लोगों को मानवजाति की गति के लक्ष्य लगते थे, नवीन इतिहासशास्त्र ने फ़्रांसीसी, जर्मन, अंग्रेज़ जनता की भलाई और अत्यन्त अमूर्त रूप में, सम्पूर्ण मानवजाति की सभ्यता के कल्याण के लक्ष्य पेश कर दिये। आम तौर पर इस कल्याण का तात्पर्य विशाल महाद्वीप के छोटे-से उत्तर-पश्चिमी कोने में रहनेवाले जनगण से है।

नवीन इतिहासशास्त्र ने प्राचीन लोगों की आस्थाओं के स्थान पर कोई नया दृष्टिकोण प्रस्तुत किये बिना उन्हें ठुकरा दिया और स्थिति के तर्क ने नरेशों की दैवी सत्ता और विश्व का संचालन करनेवाली प्राचीन लोगों की शक्ति को मानो ठुकरा देनेवाले इतिहासकारों को दूसरे मार्ग से वहीं ला पहुंचाया: यानी उन्हें यह जानने को विवश कर दिया कि: १. इक्के-दुक्के लोग ही जनगण का नेतृत्व करते हैं और २. कि एक निश्चित लक्ष्य होता है जिसकी ओर जनगण और मानवजाति बढ़ती है।

गिबन से लेकर बुक्ले* तक अर्वाचीन इतिहासकारों की सभी कृतियां उनके भासमान मतभेदों और उनके दृष्टिकोणों की प्रतीयमान नवीनता के बावजूद इन दो पुरानी अवश्यंभावी अवधारणाओं पर आधारित हैं।

इतिहासकार सर्वप्रथम तो उन अलग-अलग लोगों के कार्य-कलाप का वर्णन करता है जो उसके मतानुसार मानवजाति का नेतृत्व करते थे (एक इतिहासकार केवल नरेशों, सेनानायकों, मन्त्रियों को ऐसा मानता है; दूसरा – नरेशों और वक्ताओं के अलावा इनमें विद्वान सुधारकों, दर्शनशास्त्रियों और कवियों को भी शामिल करता है)।

---

* एडवर्ड गिबन (१७३७–१७९४) – अंग्रेज़ इतिहासकार और समाजसुधारक, 'रोमन साम्राज्य के पतन और विनाश का इतिहास' का लेखक। हेनरी टॉमस बुक्ले (१८२१–१८६२) – अंग्रेज़ समाजशास्त्री, 'इंगलैंड में सभ्यता का इतिहास' का लेखक। – सं०

दूसरे यह कि वह लक्ष्य, जिसकी ओर मानवजाति को ले जाया जाता है, इतिहासकार को विदित होता है (एक के लिये यह लक्ष्य रोमन, स्पेनी, फ़्रांसीसी राज्यों की महानता है; दूसरे के लिये – यह स्वतन्त्रता, समानता, यूरोप कहलाये जानेवाले विश्व के एक छोटे-से कोने की विशिष्ट प्रकार की सभ्यता है)।

१७८९ में पेरिस में उथल-पुथल शुरू होती है; * वह बढ़ती है, उग्र रूप धारण करती है और जनगण के पश्चिम से पूरब की ओर प्रयाण में व्यक्त होती है। इस प्रयाण को कई बार पूरब की ओर उन्मुख किया जाता है और वह पूरब से पश्चिम की ओर प्रतिप्रयाण से टकराता है। सन् १८१२ में वह अपने चरमबिन्दु – मास्को तक पहुंच जाता है और विलक्षण प्रतिसाम्य तथा पहले प्रयाण की भांति मध्यवर्ती जनगण को अपने साथ लेते हुए पूरब से पश्चिम का प्रतिप्रयाण होता है। पश्चिम की ओर होनेवाला प्रतिप्रयाण प्रारम्भिक प्रयाण के उद्भव-स्रोत – यानी पेरिस – तक पहुंचकर शान्त हो जाता है।

बीस वर्ष की इस अवधि में बहुत बड़ी संख्या में खेत नहीं जोते गये; घर जले; व्यापार की दिशा बदली; लाखों लोग ग़रीब हुए, अमीर हुए, विस्थापित हुए और लाखों-करोड़ों ईसाई लोगों ने, जो बन्धु मानव से प्रेम का प्रचार करनेवाले धर्म के अनुयायी थे, एक-दूसरे का संहार किया।

इस सबका अर्थ क्या है? ऐसा क्यों हुआ? किस चीज़ ने इन लोगों को घर जलाने और अपने ही जैसों की हत्या करने को बाध्य किया? इन घटनाओं के कारण क्या थे? वह क्या शक्ति थी जिसने लोगों को यह करने को बाध्य किया? ये कुछ अनायास, सीधे-सादे और अत्यन्त नियमसंगत ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें अतीत के इस प्रयाण के स्मारकों और आख्यानों से वास्ता पड़ने पर मानवजाति अपने सामने पेश करती है।

इन प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिये मानवजाति की सहज बुद्धि इतिहासशास्त्र का सहारा लेती है, जिसका लक्ष्य जनगण और मानवता को आत्मसंज्ञान की शिक्षा देना है।

अगर इतिहास प्राचीन दृष्टिकोण को बनाये रखता तो वह कहता कि

---

* लेखक का तात्पर्य १७८९–१७९४ की महान फ़्रांसीसी क्रान्ति से है। – सं०

अपनी जनता को देवताओं ने पुरस्कृत या दंडित करने के लिये नेपोलियन को सत्ता दी और अपने दैवी लक्ष्यों की प्राप्ति के हेतु उसकी इच्छा का परिचालन किया। यह उत्तर पूर्ण एवं स्पष्ट होता। नेपोलियन के दैवी महत्त्व में विश्वास किया जा सकता था या न किया जा सकता था, पर उसमें आस्था रखनेवाले के लिये इस काल के इतिहास में सब कुछ स्पष्ट होता और एक भी असंगति नहीं हो सकती थी।

किन्तु नवीन इतिहासशास्त्र इसका इस प्रकार उत्तर नहीं दे सकता। विज्ञान मानवता के कामों में देवताओं की प्रत्यक्ष सहभागिता के बारे में प्राचीन दृष्टिकोण को मान्यता नहीं देता और इसीलिये उसे दूसरे उत्तर देने चाहिये।

नवीन इतिहास इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहता है: आप जानना चाहते हैं कि इस प्रयाण का अर्थ क्या है, वह क्यों हुआ और किस शक्ति के कारण ये घटनायें घटीं? तो सुनिये:

"लुई चौदहवां बड़ा घमंडी और अक्खड़ आदमी था; उसकी फ़लां-फ़लां रखेलें थीं, फ़लां-फ़लां मन्त्री और वह फ़्रांस का बुरा शासक था। लुई के उत्तराधिकारी भी दुर्बल थे और वे भी ठीक ढंग से फ़्रांस पर शासन नहीं करते थे। और उनके भी फ़लां-फ़लां मुंह लगे लोग और फ़लां-फ़लां रखेलें थीं। फिर कुछ लोग पोथियां भी लिखते थे। १८वीं सदी के अन्त में पेरिस में कोई दो दर्जन लोग जमा हुए जो यह कहने लगे कि सब लोग समान और स्वतंत्र हैं। इस कारण सारे फ़्रांस में लोग एक-दूसरे को मारने-काटने और डुबोने लगे। इन लोगों ने बादशाह और बहुत-से अन्य लोगों को मार डाला। इसी समय फ़्रांस में एक प्रतिभाशाली व्यक्ति – नेपोलियन था। वह सब पर और सर्वत्र विजय पाता था, अर्थात् ढेरों लोगों को मारता था, क्योंकि वह बड़ा प्रतिभाशाली था। और किसी कारण से वह अफ़्रीकियों को भी मारने गया, वहां उसने बहुत ही अच्छी तरह से उनकी मार-काट की और इतना चालाक व बुद्धिमान था कि फ़्रांस लौटकर उसने सबको अपनी आज्ञा का पालन करने का आदेश दिया। और सब उसके अधीन हो गये। सम्राट बनकर वह फिर से इटली, आस्ट्रिया और प्रशा के लोगों की मार-काट करने गया। वहां भी उसने ढेरों लोग मारे। इसी समय रूस में सम्राट अलेक्सान्द्र थे, जिन्होंने यूरोप में व्यवस्था बहाल करने का निर्णय किया और इसलिये नेपोलियन से लड़ाई की। पर सन् १८०७ में अचानक उन्होंने

उससे दोस्ती कर ली, लेकिन सन् १८११ में फिर से झगड़ बैठे और वे दोनों फिर से ढेरों लोगों की मार-काट करने लगे। नेपोलियन रूस में छः लाख लोगों को ले आया और उसने मास्को जीत लिया, मगर बाद में वह अचानक मास्को से भाग गया और तब सम्राट अलेक्सान्द्र ने श्टेन और दूसरों की सलाहों से यूरोप को उसकी शान्ति भंग करनेवाले के विरुद्ध हथियार उठाने के लिये एक किया। नेपोलियन के सभी मित्र अचानक उसके शत्रु बन गये और इस प्रतिशोधी वाहिनी ने नयी शक्तियां जुटाते हुए नेपोलियन के विरुद्ध चढ़ाई शुरू की। मित्र-राष्ट्रों ने नेपोलियन को पराजित किया, पेरिस में प्रवेश किया, नेपोलियन को राजपाट त्यागने के लिये विवश किया और सम्राट की पदवी से वंचित किये बिना तथा हर प्रकार के सम्मान के साथ उसे एल्बा द्वीप पर निष्कासित कर दिया, यद्यपि पांच वर्ष पहले और एक वर्ष बाद सबने उसे विधि-बहिष्कृत और डाकू-लुटेरा माना। इसके बाद लुई अठारहवां, जिसकी तब तक फ़्रांस के लोग और मित्र-राष्ट्र केवल हंसी ही उड़ाते थे, गद्दी पर बैठा। और नेपोलियन ने पुरानी गार्ड-सेना के सामने आंसू बहाते हुए राजसिंहासन से इन्कार किया और निष्कासित हो गया। फिर कुशल राजपुरुष और कूटनीतिज्ञ (विशेषकर टालीरान*, जो अन्य किसी से पहले सुविदित आरामकुर्सी पर जमकर बैठ गया था और इसकी बदौलत फ़्रांस की सीमाओं का विस्तार कर पाया) वियाना में बातचीत कर रहे थे** और इन वार्ताओं से जनगण को सौभाग्यशाली या दुर्भाग्यशाली बना रहे थे। कूटनीतिज्ञों और बादशाहों में अचानक झगड़ा होते-होते रह गया; वे अपनी-अपनी सेनाओं को फिर से एक-दूसरे को मारने-काटने का आदेश देने को लगभग तैयार हो चुके थे, पर उसी समय नेपोलियन एक बटालियन के साथ फ़्रांस पहुंच गया और फ़्रांसीसी लोगों ने, जो उससे घृणा करते थे, तत्क्षण उसके सामने घुटने टेक दिये। पर मित्र-नरेशों को इसपर क्रोध आया और वे फिर से फ़्रांसीसियों से लड़ने लगे। प्रतिभाशाली नेपोलियन को

---

* चार्ल्स मॉरिस टालीरान (१७५४-१८३८) – फ़्रांस का राजपुरुष, जो १७६७ से १८१५ तक के काल में अंतरालों के साथ कई बार विदेश-मंत्री रहा। वियाना सम्मेलन में वह फ़्रांसीसी प्रतिनिधिमंडल का नेता था। – सं०

** वियाना कांग्रेस से अभिप्राय है। – सं०

पराजित किया गया और अचानक डाकू-लुटेरे के रूप में उसकी पुष्टि करके सेंट हेलेना द्वीप पर ले जाया गया। और वहां अपने परम प्रिय फ़्रांस से जुदा किया गया यह निष्कासित व्यक्ति चट्टानी द्वीप पर घुल-घुलकर मरता हुआ उत्तराधिकार के रूप में वंशजों को अपने महान कार्य सौंप गया। यूरोप में प्रतिक्रिया का दौर आया तथा सभी राजा-महाराजा फिर से अपनी प्रजाओं को सताने लगे।"

आपने व्यर्थ ही यह सोचा होगा कि यह तो ऐतिहासिक वर्णनों का उपहास है, विद्रूप है। नहीं, इसके विपरीत, यह उन परस्पर-विरोधी और प्रश्नों को निरुत्तर छोड़नेवाले उत्तरों की सर्वाधिक दबी-घुटी-सी अभिव्यक्ति है जो संस्मरणों और अलग-अलग राज्यों के इतिहासों के संकलनकर्त्ताओं से लेकर सामान्य इतिहासों और तत्कालीन **संस्कृति** के नये प्रकार के इतिहासों तक **सम्पूर्ण** इतिहास हमें देता है।

इन उत्तरों की विचित्रता और हास्यास्पदता का कारण यह है कि नवीन इतिहास एक बधिर की तरह उन प्रश्नों का उत्तर देता है जो उससे किसी ने भी नहीं पूछे हैं।

अगर इतिहास का लक्ष्य मानवजाति और जनगण के प्रयाण और प्रतिप्रयाण का वर्णन करना है, तो पहला प्रश्न, जिसके उत्तर के बिना बाक़ी कुछ भी नहीं समझा जा सकता, यह है: वह कौन-सी शक्ति है जो जनगण को चलायमान करती है? इस प्रश्न के उत्तर में नवीन इतिहास बहुत यत्नपूर्वक या तो यह बताता है कि नेपोलियन अत्यन्त प्रतिभाशाली था या यह कि लुई चौदहवां बड़ा घमंडी था या यह कि फ़लां-फ़लां लेखकों ने फ़लां-फ़लां पोथियां लिखीं।

यह सब हो सकता है और मानवजाति इससे सहमत होने को तैयार है, किन्तु प्रश्न का आशय दूसरा है। यह सब रोचक हो सकता था अगर हम स्वतन्त्र अस्तित्व रखनेवाली ऐसी चिरस्थायी दैवी सत्ता को मानते होते, जो नेपोलियनों, लुईयों और लेखकों के माध्यम से अपनी प्रजाओं का संचालन करवाती है। परन्तु हम ऐसी किसी सत्ता को स्वीकार नहीं करते, इसलिये नेपोलियनों, लुईयों और लेखकों की चर्चा करने से पहले हमें इन व्यक्तियों और जनगण के प्रयाण के बीच के सम्बन्ध को स्पष्ट करना चाहिये।

अगर कोई दूसरी शक्ति दैवी सत्ता का स्थान ले लेती है तो यह समझाना चाहिये कि यह नयी शक्ति क्या है, इतिहास की सम्पूर्ण

रुचि इसी शक्ति में निहित है।

इतिहास मानो यह मानकर चलता है कि यह शक्ति स्वतःस्पष्ट और सबको ज्ञात है। पर इस नयी शक्ति को ज्ञात मानने की हमारी लाख इच्छा के बावजूद वह व्यक्ति, जो इतिहास की ढेरों कृतियां पढ़ेगा, अनचाहे ही इसमें सन्देह करने लगेगा कि यह नयी शक्ति, जिसका स्वयं इतिहासकार भी तरह-तरह से अर्थ लगाते हैं, सबको पूरी तरह से ज्ञात है।

२

वह क्या शक्ति है जो जनगण को चलायमान करती है?

विशिष्ट लोगों की जीवनियां और अलग-अलग जनगण का इतिहास लिखनेवाले इतिहासकार इस शक्ति को जन-नायकों और नृपों की सत्ता के रूप में देखते हैं। उनके वर्णन के अनुसार घटनायें नेपोलियनों, अलेक्सान्द्रों या उन्हीं व्यक्तियों की इच्छा से होती हैं जिनका वर्णन विशिष्ट लोगों का इतिहास लिखनेवाला इतिहासकार करता है। इतिहासकारों द्वारा घटनाओं को जन्म देनेवाली शक्ति से सम्बन्धित प्रश्न के इस प्रकार के दिये जानेवाले उत्तर सन्तोषजनक हैं, पर केवल तब तक, जब तक कि प्रत्येक घटना का केवल एक ही इतिहासकार वर्णन करता है। किन्तु जैसे ही विभिन्न राष्ट्रों के और भिन्न दृष्टिकोणोंवाले इतिहासकार एक ही घटना का वर्णन करने लगते हैं, तो उनके द्वारा दिये जानेवाले उत्तर तत्क्षण निरर्थक हो जाते हैं, क्योंकि उनमें से प्रत्येक की इस शक्ति की समझ न केवल भिन्न, बल्कि अक्सर परस्पर-विरोधी भी होती है। एक इतिहासकार दावा करता है कि घटना नेपोलियन की सत्ता के कारण घटी; दूसरा दावा करता है कि उसका स्रोत अलेक्सान्द्र की सत्ता है और तीसरा यह कह सकता है कि किसी तीसरे ही व्यक्ति की सत्ता से घटी। इसके अलावा इस प्रकार के इतिहासकारों के बीच उस शक्ति की व्याख्या तक में भी अन्तर्विरोध है, जिसपर किसी व्यक्ति विशेष की सत्ता आधारित है। बोनापार्टवादी त्येर कहता है कि नेपोलियन की सत्ता उसके सदाचार और प्रतिभा पर आधारित

थी, लोकतन्त्रवादी लांफ़्रे* कहता है कि वह उसके छल-कपट और जनता के साथ धोखाधड़ी पर आधारित थी। इस प्रकार इस तरह के इतिहासकार एक दूसरे की धारणाओं को नष्ट करते हुए घटना को जन्म देनेवाली शक्ति की समझ को भी नष्ट करते हैं और इतिहास के एक मूल प्रश्न का कोई उत्तर नहीं देते।

सामान्य इतिहास के लेखक, जो सभी जनगण के बारे में लिखते हैं, मानो घटना को जन्म देनेवाली शक्ति के विषय में विशिष्ट व्यक्तियों के इतिहासकारों के ग़लत दृष्टिकोण को स्वीकार करते प्रतीत होते हैं। वे जन-नायकों और नृपों की सत्ता को यह शक्ति नहीं मानते, बल्कि इसे अनेक, विविध दिशान्मुखी शक्तियों का परिणाम मानते हैं। युद्ध या जनता के पराभव का वर्णन करते हुए सामान्य इतिहास का लेखक घटना के कारण को एक व्यक्ति की सत्ता में नहीं, बल्कि घटना से सम्बन्धित अनेक लोगों की अन्योन्य-क्रिया में खोजता है।

यह लग सकता है कि इस दृष्टिकोण के अनुसार ऐतिहासिक पात्रों की सत्ता, जो अनेक शक्तियों की उपज है, ऐसी शक्ति नहीं मानी जा सकती, जो स्वयं घटना को जन्म देती है। इसके बावजूद सामान्य इतिहासकार अधिकांश मामलों में सत्ता की अवधारणा का ऐसी शक्ति के रूप में उपयोग करते हैं जो स्वयं अपने आपमें घटनाओं को जन्म देती है और उनका कारण होती है। उनकी व्याख्यानुसार ऐतिहासिक पात्र कभी तो अपने काल की उपज होता है और उसकी सत्ता केवल विभिन्न शक्तियों का योग होती है, तो कभी उसकी सत्ता वह शक्ति होती है जो घटनाओं को जन्म देती है। उदाहरण के लिये गेर्विनुस और श्लोसर व अन्य कभी तो यह सिद्ध करते हैं कि नेपोलियन क्रान्ति, १७८९ के आदर्शों, आदि की उपज है, तो कभी दो टूक यह कहते हैं कि सन् १८१२ का अभियान व उनको पसन्द न आनेवाली घटनाओं का सार नेपोलियन की इच्छा के दिग्भ्रम की उपज मात्र है और नेपोलियन के स्वेच्छाचार के परिणामस्वरूप १७८९ के आदर्शों का विकास रुक गया। क्रान्ति के आदर्शों, आम मनोवृत्ति ने नेपोलियन की सत्ता

---

* प्येर लांफ़्रे (१८२८–१८७७) – फ़्रांसीसी इतिहासकार, 'नेपोलियन प्रथम का इतिहास' कृति का लेखक जिसमें १८११ तक की घटनाओं का वर्णन है। – सं०

को जन्म दिया। और नेपोलियन की सत्ता ने क्रान्ति के आदर्शों और आम मनोवृत्ति का दमन किया।

यह विचित्र अन्तर्विरोध मात्र संयोग नहीं है। वह न केवल हर डग पर मिलता है, बल्कि ऐसे अन्तर्विरोधों की क्रमिक शृंखला से ही सामान्य इतिहासकारों के सभी वर्णन संयोजित हैं। इस अन्तर्विरोध का कारण यह है कि विश्लेषण की भूमि पर क़दम रखकर सामान्य इतिहासकार आधे रास्ते में ही रुक जाते हैं।

इस हेतु कि मूलभूत शक्तियां अपने समान प्रभावकारी अंगभूत शक्ति या एक विशेष परिणामी शक्ति को जन्म दें, यह आवश्यक है कि अंगभूत शक्तियों का योग मूल के बराबर हो। सामान्य इतिहासकारों ने इसी सूत्र का ही तो कभी पालन नहीं किया और इसीलिये परिणामी शक्ति की व्याख्या के लिये अपर्याप्त घटकों के अलावा उन्हें अवश्य ही मूलभूत शक्ति पर प्रभाव डालनेवाली एक अन्य, अविवेचित शक्ति को मानना पड़ता है।

विशिष्ट व्यक्तियों का इतिहासकार सन् १८१३ के अभियान या बोर्बोन वंश को गद्दी लौटाये जाने का वर्णन करते समय साफ़-साफ़ ही कहता है कि ये घटनायें अलेक्सान्द्र की इच्छा का परिणाम थीं। किन्तु सामान्य इतिहासकार गेर्विनुस विशिष्ट व्यक्तियों के इतिहासकार के इस दृष्टिकोण का खंडन करते हुए यह प्रमाणित करने का प्रयास करता है कि अलेक्सान्द्र की इच्छा के अलावा श्टेन, मेतेरनिख़, मदाम स्ताल, टालीरान, फ़िख़्ते, शातोब्रिआन व अन्य लोगों का कार्य-कलाप भी सन् १८१३ के अभियान और बोर्बोन वंश के फिर से गद्दी पर बैठाये जाने का कारण था। स्पष्ट है कि इतिहासकार ने अलेक्सान्द्र की सत्ता को अंगभूतों: टालीरान, शातोब्रिआन इत्यादि में विभाजित कर दिया; इन अंगभूतों का योग, अर्थात् शातोब्रिआन, टालीरान, मदाम स्ताल इत्यादि का पारस्परिक प्रभाव, स्पष्टतः, सारी परिणामी शक्ति यानी उस परिघटना के बराबर नहीं है कि करोड़ों फ़्रांसीसी बोर्बोन के अधीन हो गये। शातोब्रिआन, मदाम स्ताल व अन्य लोगों ने एक-दूसरे को फ़लां-फ़लां शब्द कहे – इसका अर्थ यह है कि उनके आपसी सम्बन्ध कैसे थे, पर वे करोड़ों लोगों के पराभव का कारण नहीं हो सकते। अतः यह स्पष्ट करने के लिये कि इन घटकों के परिणाम-स्वरूप करोड़ों-करोड़ों ने कैसे अधीनता स्वीकार की यानी केवल एक **अ** के

बराबर अंगभूतों से एक हज़ार **अ** के बराबर परिणामी शक्ति कैसे निकली, इतिहासकार को फिर से सत्ता की उसी शक्ति को मानने की आवश्यकता पड़ती है जिसका वह खंडन करता है और जिसे वह अन्य शक्तियों का परिणाम मानता है, अर्थात् उसे अंगभूत शक्ति पर किसी अविवेचित शक्ति के प्रभाव को मानना पड़ता है। सामान्य इतिहासकार यही तो करते हैं। और इसके परिणामस्वरूप न केवल विशिष्ट व्यक्तियों के इतिहासकारों का, बल्कि अपना भी खंडन करते हैं।

वर्षा के सही कारणों से अनभिज्ञ गांव के लोग अपनी इस इच्छा के अनुसार कि वे किसी विशेष क्षण में वर्षा चाहते हैं या निर्मल आकाश, यह कहते हैं: हवा ने बादल उड़ा दिये या हवा घटायें ले आयी। सामान्य इतिहासकार भी बिल्कुल इन्हीं के समान हैं: जब कभी उनकी यह इच्छा होती है और जब यह उनके सिद्धान्त के अनुकूल होता है तो वे कहते हैं कि सत्ता घटनाओं का परिणाम है; और जब कभी उन्हें दूसरी बात सिद्ध करनी होती है तो वे कहते हैं कि सत्ता घटनाओं को जन्म देती है।

तीसरे इतिहासकार, जो **संस्कृति के** इतिहासकार कहलाते हैं, सामान्य इतिहासकारों के पद-चिह्नों पर चलते हुए, जो कभी-कभी लेखकों और विशेष महिलाओं को भी घटनाओं को जन्म देनेवाली शक्ति मान लेते हैं, इस शक्ति की अपने ही ढंग से व्याख्या करते हैं। वे इस शक्ति के स्रोत को तथाकथित संस्कृति, बौद्धिक कार्य में देखते हैं।

संस्कृति के इतिहासकार अपने पथ-प्रदर्शकों यानी सामान्य इतिहासकारों का पूर्ण सुसंगतता के साथ अनुसरण करते हैं, क्योंकि अगर ऐतिहासिक घटनाओं की इस तरह से व्याख्या की जा सकती है कि कुछ लोगों ने एक-दूसरे के साथ ऐसा-ऐसा व्यवहार किया, तो क्यों उनकी इस ढंग से व्याख्या नहीं की जा सकती कि फ़लां-फ़लां लोगों ने फ़लां-फ़लां पोथियां लिखी थीं? ये इतिहासकार किसी भी महत्त्वपूर्ण परिघटना के असंख्य लक्षणों में से बौद्धिक कार्य-कलाप के लक्षण को चुनकर कहते हैं कि यही लक्षण इसका कारण है। परन्तु यह दर्शाने के उनके सभी प्रयासों के बावजूद कि बौद्धिक कार्य-कलाप ही किसी घटना का कारण है, बड़ी रियायत करते हुए ही इससे सहमत हुआ जा सकता है कि बौद्धिक कार्य-कलाप और जनगण के प्रयाण और प्रतिप्रयाण में कुछ

सम्बन्ध है। किन्तु किसी भी हालत में यह नहीं माना जा सकता कि बौद्धिक कार्य-कलाप ने लोगों के कार्यों का निर्देशन किया, क्योंकि मानव की समानता के उपदेश से जन्मी फ़्रांसीसी क्रान्ति के नृशंस हत्याकांडों और प्रेम के उपदेश से प्रेरित जघन्यतम युद्धों और मृत्युदंडों जैसी परिघटनायें इस पूर्वाधार की पुष्टि नहीं करतीं।

परन्तु यह मान लेने पर भी कि बड़ी होशियारी से पेश किये जानेवाले वे सभी तर्क-वितर्क सही हैं जिनसे ये इतिहास परिपूर्ण हैं; यह मानने पर भी कि जनगण किसी ऐसी अपरिभाष्य शक्ति से परिचालित होते हैं, जो **विचार** कहलाती है – इतिहास का मूल प्रश्न फिर भी या तो अनुत्तरित रह जाता है या नरेशों की सत्ता और परामर्शदाताओं तथा अन्य व्यक्तियों के प्रभाव की सामान्य इतिहासकारों की **धारणा** के साथ एक नयी शक्ति और जुड़ जाती है और यह ज़रूरी हो जाता है कि जनसाधारण के साथ इसके सम्बन्ध की व्याख्या की जाये। यह समझना सम्भव है कि नेपोलियन के पास सत्ता थी और इसीलिये कोई घटना घटी; कुछ छूट देकर यह भी समझा जा सकता है कि दूसरे प्रभावों के साथ नेपोलियन किसी घटना का कारण बना; पर किस प्रकार Contrat Social* पुस्तक ने यह किया कि फ़्रांस के निवासी एक-दूसरे को नष्ट करने लगे – इस घटना के साथ इस नयी शक्ति के कारण-कार्य-सम्बन्ध की व्याख्या के बिना यह नहीं समझा जा सकता।

निस्सन्देह सभी समकालीनों के बीच सम्बन्ध होता है और इसलिये लोगों के बौद्धिक कार्य और उनकी ऐतिहासिक प्रयाण-विधियों के बीच ठीक उसी तरह से कोई सम्बन्ध खोज लेना सम्भव है, जैसे मानवजाति के प्रयाण और व्यापार, धंधों, बाग़बानी या कुछ और के बीच इस सम्बन्ध को ढूंढ़ा जा सकता है। पर लोगों का बौद्धिक कार्य संस्कृति के इतिहासकारों को क्यों सम्पूर्ण ऐतिहासिक गति का कारण या अभिव्यक्ति लगता है – यह समझना कठिन है। केवल निम्न कारणों से ही इतिहासकार इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते थे: १. कि इतिहास

---

* Contrat Social – अपनी पुस्तक 'सामाजिक समझौते या राजनीतिक विधि का सिद्धान्त' में रुस्सो ने दावा किया कि सरकार और जनता के बीच समझौते को राजनीतिक सत्ता का आधार होना चाहिये। – सं०

को विद्वान लिखते हैं और उनके लिये यह सोचना स्वाभाविक और प्रीतिकर है कि उनके तबक़े का कार्य-कलाप सारी मानवजाति के विकास का आधार है, ठीक उसी तरह जैसे सौदागरों, किसानों और सैनिकों के लिये यह सोचना स्वाभाविक और प्रीतिकर है (हां, इसके बारे में कहा इसलिये नहीं जाता, क्योंकि सौदागर और सैनिक इतिहास नहीं लिखते) तथा २. आत्मिक क्रिया-कलाप, शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति, विचार – यह सब ऐसी अस्पष्ट, अनिश्चित अवधारणायें हैं जिनकी पताका तले और भी कम स्पष्ट अर्थोंवाले शब्दों का उपयोग करने में काफ़ी सुभीता होता है और इसलिये उनको किसी भी सिद्धान्त के अनुरूप ढाला जा सकता है।

किन्तु इस प्रकार के इतिहासों के तात्त्विक महत्त्व की बात तो छोड़ें (हो सकता है कि वे किसी के लिये या किसी चीज़ के लिये उपयोगी हों), संस्कृति के इतिहास, सभी सामान्य इतिहास जिनके अधिकाधिक निकट आने शुरू हो गये हैं, इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं कि घटनाओं के कारणों के रूप में विभिन्न धार्मिक, दार्शनिक, राजनीतिक विचारों की सविस्तार और गम्भीर विवेचना करने के बाद जब भी उन्हें वास्तविक ऐतिहासिक घटना, जैसे कि सन् १८१२ के अभियान का वर्णन करना पड़ता है, तो वे हर बार अनचाहे ही उसे सत्ता के उपयोग का परिणाम बताते हैं – साफ़ शब्दों में कहते हैं कि यह अभियान नेपोलियन की इच्छा का परिणाम था। ऐसा कहते हुए संस्कृति के इतिहासकार अनजाने ही अपना खंडन करते हैं या यह सिद्ध करते हैं कि वह नयी शक्ति, जो उन्होंने सोच निकाली थी, ऐतिहासिक घटनाओं को स्पष्ट नहीं करती और इतिहास को समझने का एकमात्र साधन वह सत्ता है, जिसको वे मानो अस्वीकार करते हैं।

३

रेल का इंजन चल रहा है। सवाल उठता है कि वह कैसे चलता है? किसान कहता है: शैतान उसे चला रहा है। कोई दूसरा व्यक्ति कहता है कि रेल का इंजन इसलिये चल रहा है कि उसके पहिये घूम

रहे हैं। तीसरा दावा करता है कि उसके चलने का कारण धुआं है, जिसे हवा उड़ाकर ले जाती है।

किसान की बात का खंडन नहीं किया जा सकता। उसका खंडन करने के लिये ज़रूरी है कि कोई उसे यह सिद्ध करके दिखाये कि शैतान नहीं होता या कोई दूसरा किसान उसे यह समझाये कि शैतान नहीं, बल्कि जर्मन इंजन चलाता है। केवल तभी, परस्पर-विरोध से ही वे यह देख पायेंगे कि दोनों ग़लत हैं। पर वह, जो कहता है कि इसका कारण पहियों का घूमना है, खुद अपना खंडन करता है, क्योंकि अगर उसने विश्लेषण की भूमि पर क़दम रखा है तो उसे आगे ही आगे बढ़ते जाना चाहिये : उसे पहियों के चलने का कारण समझाना चाहिये। और जब तक वह इंजन के चलने के अंतिम कारण, बॉयलर में संपीड़ित भाप तक नहीं पहुंचता, तब तक उसे कारण की खोज रोकने का अधिकार नहीं। जिसने पीछे की ओर उड़ते जा रहे धुएं को इंजन के चलने का कारण बताया, यह देखकर कि पहियों से सम्बन्धित व्याख्या कारण स्पष्ट नहीं करती, साफ़ नज़र आनेवाले पहले ही लक्षण को ले लिया और अपनी ओर से उसे कारण के रूप में प्रस्तुत कर दिया।

एकमात्र अवधारणा, जो इंजन के चलने की व्याख्या कर सकती है, उस शक्ति की अवधारणा है जो दृष्टिगत गति के बराबर है।

एकमात्र अवधारणा, जिसके माध्यम से जनगण की गति की व्याख्या की जा सकती है, वह जनगण की सम्पूर्ण गति के बराबर शक्ति की अवधारणा है।

फिर भी विभिन्न इतिहासकार इस अवधारणा के अन्तर्गत बिल्कुल भिन्न ऐसी शक्तियों को शामिल करते हैं, जो सभी की सभी दृष्टिगत गति के बराबर नहीं हैं। कुछेक उसमें नायकों की प्रत्यक्ष शक्ति को देखते हैं, जैसे किसान इंजन में शैतान को, दूसरे – किन्हीं अन्य शक्तियों से उत्पन्न शक्ति को – जैसे पहियों का घूमना ; तीसरे – बौद्धिक प्रभाव को – जैसे उड़ता हुआ धुआं।

जब तक **सब का**, निरपवाद रूप से **सभी** लोगों का इतिहास लिखने के बजाय, जो घटना के सहभागी हैं, अलग-अलग व्यक्तियों के, चाहे ये सीज़र, अलेक्सान्द्र या लूथर और वाल्टेयर ही हों, इतिहास लिखे जाते हैं, तब तक लोगों को अपना कार्य-कलाप एक ही लक्ष्य की ओर अभिमुख करने को बाध्य करनेवाली शक्ति की अवधारणा के बिना मानवजाति

की गति का वर्णन करने की कोई सम्भावना नहीं है। और इतिहासकारों को ज्ञात ऐसी एकमात्र अवधारणा है – सत्ता।

यह अवधारणा ही एकमात्र ऐसी छड़ी है जिसके सहारे ऐतिहासिक सामग्री की अब तक की व्याख्या को समझा जा सकता है, और जो व्यक्ति भी इतिहास की सामग्री के उपयोग की कोई अन्य विधि को जाने बिना इस छड़ी को तोड़ देगा, जैसाकि बुक्ले ने किया, वह बस अपने को उसके उपयोग की अन्तिम सम्भावना से भी वंचित कर देगा। ऐतिहासिक परिघटनाओं की व्याख्या के लिये सत्ता से मानो इन्कार करनेवाले सामान्य इतिहासकार और संस्कृति के इतिहासकार ही हर क़दम पर इस अवधारणा का उपयोग करके इसकी अपरिहार्यता का सबसे अच्छा प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

मानवजाति के प्रश्नों के विश्लेषण के मामले में इतिहासशास्त्र अब तक चालू मुद्राओं के काग़ज़ी नोटों और सिक्कों के समान है। जीवनियां और जनता के इतिहास नोटों की तरह हैं। वे अपना प्रयोजन सिद्ध करते हुए चल सकते हैं, उनका विनिमय हो सकता है, उनसे किसी को भी कोई हानि होने के बजाय उलटे लाभ ही हो सकता है, पर सिर्फ़ तब तक, जब तक यह प्रश्न नहीं उठता कि उनकी प्रतिभूति क्या है। इस प्रश्न को भुलाते ही कि नायकों की इच्छा किस प्रकार घटनाओं को जन्म देती है, त्येर और उसके जैसे अन्य इतिहासकारों के इतिवृत्त रोचक, शिक्षाप्रद हो जायेंगे और उनमें काव्य का पुट भी आ जायेगा। पर ठीक उसी तरह, जैसे काग़ज़ी नोटों के वास्तविक मूल्य में या तो इस कारण सन्देह पैदा होता है कि उन्हें छापना आसान है और इसलिये ढेरों छाप दिये जाते हैं, या इस कारण कि उनके बदले में लोग सोना मांगने लगते हैं – इसी प्रकार के इतिहासों के वास्तविक महत्त्व के बारे में या तो इस कारण सन्देह उत्पन्न होता है कि वे बहुत अधिक हैं या इस कारण कि कहीं कोई भोलेपन से पूछ बैठता है : किस शक्ति ने नेपोलियन को ऐसा करने दिया? अर्थात् जब कोई व्यक्ति काग़ज़ के नोट को वास्तविक अवधारणा के सोने में बदलना चाहता है।

सामान्य इतिहासकार और संस्कृति के इतिहासकार उन लोगों की तरह हैं, जो नोटों की असुविधा को मानते हुए काग़ज़ी मुद्रा के स्थान पर सोने की तुलना में किसी घटिया धातु के सिक्के ढालने का

फ़ैसला करते हैं। उनके सिक्के वास्तव में ही टनकते हुए और **खरे** होंगे, पर सिर्फ़ **खरे।** काग़ज़ का नोट तो अज्ञानियों को धोखा दे सकता था, परन्तु मूल्यहीन खरा सिक्का तो किसी को भी धोखा नहीं दे सकता। जैसे सोना तब ही सोना होता है, जब उसका न केवल विनिमय के लिये, बल्कि काम के लिये भी उपयोग किया जा सकता है, इसी तरह सामान्य इतिहासकार भी केवल तभी असली सोना बनेंगे, जब वे इतिहास के इस मूल प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ होंगे: सत्ता क्या है? सामान्य इतिहासकार इस प्रश्न का परस्पर-विरोधी उत्तर देते हैं और संस्कृति के इतिहासकार तो इसे एक तरफ़ हटाकर किसी दूसरी बात का ही उत्तर देते हैं और जैसे सोने की तरह लगनेवाले टोकन सिर्फ़ उन लोगों के बीच ही चल सकते हैं, जिन्होंने उन्हें सोना मानना स्वीकार किया है या उन लोगों के बीच, जो सोने के गुणों से अनभिज्ञ हैं, उसी तरह सामान्य इतिहासकार और संस्कृति के इतिहासकार अपने किन्हीं लक्ष्यों की ख़ातिर मानवता के मूल प्रश्नों को निरुत्तरित छोड़कर, विश्वविद्यालयों और उन पाठकों की भीड़ के लिये – जो जैसाकि वे कहते हैं, गम्भीर पोथियों के इच्छुक हैं, चालू सिक्कों का ही काम करते हैं।

४

दैवी इच्छा के अनुरूप किसी राष्ट्र के जनगण की इच्छा के किसी एक श्रेष्ठ पुरुष के अधीन होने और इस श्रेष्ठ पुरुष की इच्छा के देवताओं के अधीन होने के प्राचीन दृष्टिकोण से इन्कार करके इतिहास असंगतियों के बिना एक भी क़दम आगे नहीं बढ़ा सकता। उसे इन दो बातों में से एक को चुनना होगा: या तो वह मानवता के कामों में देवताओं की प्रत्यक्ष सहभागिता के बारे में पुराने विश्वास की ओर लौटे या ऐतिहासिक घटनाओं को जन्म देनेवाली उस शक्ति के अर्थ की निश्चित व्याख्या करे जो सत्ता कहलाती है।

पहले विकल्प की ओर लौटना असम्भव है: विश्वास नष्ट हो चुका है और इसलिये सत्ता के अर्थ की व्याख्या करना आवश्यक है।

नेपोलियन ने सेना एकत्र करने और युद्ध के लिये जाने का आदेश दिया। हम इस धारणा के इतने आदी हो चुके हैं, यह दृष्टिकोण हमारे दिलों में इतना गहरा उतर चुका है कि नेपोलियन के फ़लां-फ़लां शब्द कहने पर छः लाख लोग क्यों लड़ने के लिये चल दिये, यह प्रश्न हमें निरर्थक लगता है। उसके पास सत्ता थी और इसलिये उसके आदेश को पूरा किया गया।

अगर हम ऐसा मानते हैं कि उसे ईश्वर से सत्ता मिली थी, तो यह उत्तर पूरी तरह से सन्तोषजनक है, पर चूंकि हम यह नहीं मानते, इसलिये यह निश्चित करने की आवश्यकता पैदा होती है कि दूसरे लोगों पर एक व्यक्ति की यह सत्ता क्या है।

यह सत्ता दुर्बल पर बलवान की शारीरिक श्रेष्ठता की प्रत्यक्ष सत्ता नहीं हो सकती, उस श्रेष्ठता की सत्ता, जो शारीरिक बलप्रयोग या उसके प्रयोग की धमकी पर आधारित होती है – जैसे हर्कुलीस की सत्ता ; वह नैतिक शक्ति की श्रेष्ठता पर भी आधारित नहीं हो सकती, जैसाकि भोले मन के कुछ ऐसे इतिहासकार सोचते हैं जो यह कहते हैं कि ऐतिहासिक पात्र नायक के सांचे में ढले होते हैं यानी ऐसी विशेष आत्मिक शक्ति और बुद्धि एवं तथाकथित प्रतिभासम्पन्न लोग होते हैं। यह सत्ता नैतिक शक्ति की श्रेष्ठता पर भी आधारित नहीं हो सकती, क्योंकि नेपोलियनों जैसे नायकों की बात तो अलग रही, जिनके नैतिक गुणों के बारे में काफ़ी मतभेद हैं, इतिहास हमें दिखाता है कि लाखों-करोड़ों लोगों पर शासन करनेवाले न तो लुई ग्यारहवें और न मेतेरनिख़ों में ही आत्मिक शक्ति के कोई ख़ास गुण थे, बल्कि, इसके विपरीत, बहुत-सी बातों में वे उन लाखों-करोड़ों लोगों की तुलना में, जिनपर वे शासन करते थे, नैतिक दृष्टि से हर किसी से हीन-क्षीण थे।

यदि सत्ता का स्रोत उसके वाहक के न तो शारीरिक गुणों और न ही नैतिक गुणों में निहित है, तो स्पष्ट है कि इस सत्ता का स्रोत व्यक्ति के बाहर होना चाहिये – जनसाधारण से सत्ताधारी के सम्बन्धों में।

विधिशास्त्र इसी को सत्ता मानता है। वह इतिहास का वही विनिमय बैंक है जो सत्ता की ऐतिहासिक समझ को असली सोने में बदलने का वचन देता है।

सत्ता जनसाधारण की इच्छाओं की वह समष्टि है जो जनसाधारण की प्रकट या मौन सहमति से उनके द्वारा चुने गये शासकों को सौंपी जाती है।

विधिशास्त्र के क्षेत्र में यह सब बहुत स्पष्ट है, जो इन तर्क-वितर्कों से बना है कि राज्य और सत्ता की रचना कैसे करनी चाहिये अगर यह सब किया जा सकता, पर इतिहास के संदर्भ में सत्ता की यह परिभाषा स्पष्टीकरण की मांग करती है।

विधिशास्त्र राज्य और सत्ता को उसी प्रकार देखता है, जैसे प्राचीन लोग अग्नि को देखते थे यानी एक निरपेक्ष तत्त्व के रूप में। इतिहास के लिये तो राज्य और सत्ता केवल परिघटनायें हैं, ठीक वैसे ही, जैसे आधुनिक भौतिकी के लिये अग्नि मूल तत्त्व नहीं, बल्कि एक परिघटना है।

इतिहास और विधिशास्त्र के दृष्टिकोण में इसी प्रमुख भिन्नता के कारण यह होता है कि विधिशास्त्र विस्तार से इस विषय में बता सकता है कि उसके मतानुसार सत्ता का गठन कैसे होना चाहिये और स्थिर, समय की सीमा से मुक्त सत्ता क्या है; समय के साथ रूपांतरित होनेवाली सत्ता के महत्त्व के विषय में इतिहास के प्रश्नों का वह कोई उत्तर नहीं दे सकता।

यदि सत्ता शासक को सौंपी गयी इच्छाओं की समष्टि है, तो क्या पुगाचोव जनसाधारण की इच्छाओं का अभिवक्ता था? अगर नहीं, तो नेपोलियन प्रथम क्यों था? क्यों नेपोलियन तृतीय, जब उसे बुलोन में पकड़ा गया, अपराधी था और बाद में अपराधी वे थे, जिनको उसने पकड़ा?

महलों के सत्ता-परिवर्तन, जिनमें कभी-कभी दो-तीन लोग ही भाग लेते हैं, क्या वे जनसाधारण की इच्छा को नये व्यक्ति में परिवाहित कर देते हैं? अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में क्या जनसाधारण की इच्छा अपने विजेता में परिवाहित हो जाती है? १८०८ में क्या राइन संघ की इच्छा नेपोलियन में परिवाहित हो गयी थी? १८०९ में, जब हमारी सेनायें फ़्रांसीसियों के साथ संघ बनाकर आस्ट्रिया से लड़ने गयीं, क्या रूस के जनसाधारण की इच्छा नेपोलियन में परिवाहित हो गयी थी?

इन प्रश्नों का तीन प्रकार से उत्तर दिया जा सकता है:

१. यह मानकर कि जनसाधारण की इच्छा सदा अप्रतिबन्ध रूप

से उस या उन शासकों को सौंप दी जाती है जिनको वे चुनते हैं और इसलिये हर नयी सत्ता की उत्पत्ति को, एक बार सौंपी गयी सत्ता के विरुद्ध हर संघर्ष को असली सत्ता के उल्लंघन के रूप में ही देखा जाना चाहिये।

२. यह मानकर कि शासकों को किन्हीं स्पष्ट एवं निश्चित शर्तों पर जनसाधारण की इच्छा सौंपी जाती है और यह दर्शाकर कि सत्ता के सभी संकटों, टकरावों और उसके विनाश तक का कारण यह होता है कि शासक उन शर्तों का, जिनपर उन्हें सत्ता सौंपी गयी, पालन नहीं करते।

३. यह मानकर कि जनसाधारण की इच्छा शासकों को प्रतिबन्ध रूप से ही सौंपी जाती है, किन्तु ये शर्तें अस्पष्ट और अनिश्चित होती हैं और अनेक सत्ताओं की उत्पत्ति, उनका संघर्ष और पतन केवल इसी कारण होता है कि शासक उन अस्पष्ट-अनिश्चित शर्तों का, जिनपर जनसाधारण की इच्छा कुछ व्यक्तियों से दूसरों में स्थानांतरित की जाती है, अधिक या कम पालन करते हैं।

इन तीन तरीक़ों से ही इतिहासकार शासकों के साथ जनसाधारण के सम्बन्धों की व्याख्या करते हैं।

कुछ इतिहासकार, वही, विशिष्ट व्यक्तियों का इतिहास और जीवनियां लिखनेवाले इतिहासकार, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, सत्ता के अर्थ के बारे में प्रश्न को न समझते हुए अपने भोलेपन के कारण मानो यह मानते हैं कि जनसाधारण की इच्छाओं की समष्टि को अप्रतिबन्ध रूप से ऐतिहासिक पात्र को सौंप दिया जाता है और इसलिये किसी एक सत्ता का वर्णन करते हुए ये इतिहासकार इसी सत्ता को परम और एकमात्र वास्तविक सत्ता मानते हैं और इस असली सत्ता का प्रतिरोध करनेवाली प्रत्येक अन्य शक्ति सत्ता नहीं, बल्कि सत्ता का उल्लंघन – मात्र हिंसा है।

उक्त सिद्धान्त, जो इतिहास के आदिमकाल और शान्तिपूर्ण युगों के लिये काम दे सकता है, जनगण के जीवन के जटिल और तूफ़ानी दौरों के मामले में, जब एकसाथ कई सत्ताओं की उत्पत्ति और उनमें आपसी संघर्ष होता है, यही सिद्धान्त यह कठिनाई पैदा करता है कि अगर राजतन्त्र का समर्थक इतिहासकार यह सिद्ध करने लगेगा कि कान्वेंट, डायरेक्टरी और बोनापार्ट केवल सत्ता के उल्लंघन थे तो

प्रजातन्त्रवादी और बोनापार्टवादी प्रमाणित करेंगे : १. कि कान्वेंट असली सत्ता थी और २. कि साम्राज्य और बाक़ी सब कुछ सत्ता का उल्लंघन था। स्पष्ट है कि इन इतिहासकारों की एक-दूसरे का खंडन करनेवाली सत्ता की व्याख्यायें केवल भोले-भाले बच्चों के लिये ही उपयोगी हो सकती हैं।

इतिहास के प्रति उपर्युक्त दृष्टिकोण की भ्रामकता को मानते हुए दूसरे प्रकार के इतिहासकार कहते हैं कि सत्ता शासकों को जनसाधारण की इच्छाओं की समष्टि के सप्रतिबंध सौंपे जाने पर आधारित होती है और यह कि ऐतिहासिक पात्रों के पास केवल इन्हीं शर्तों पर सत्ता होती है कि वे उस कार्यक्रम को अमली जामा पहनायें जो प्रजा की इच्छा अपनी मौन सहमति से उनके लिये निर्दिष्ट करती है। किन्तु ये शर्तें क्या हैं, इतिहासकार हमें यह नहीं बताते और अगर बताते भी हैं तो हमेशा एक-दूसरे का खंडन करते हैं।

प्रत्येक इतिहासकार जनता की प्रगति के लक्ष्य के विषय में अपने दृष्टिकोण के अनुसार फ़्रांस या किसी अन्य राज्य के नागरिकों की महत्ता, समृद्धि, स्वतन्त्रता और प्रबोधन के रूप में ये शर्तें देखता है। परन्तु ये शर्तें क्या हैं, इस विषय में इतिहासकारों के अन्तर्विरोधों की बात छोड़कर और यह मानकर भी कि इन शर्तों का सबके लिये एक सामान्य कार्यक्रम होता है, हम पायेंगे कि ऐतिहासिक तथ्य लगभग सदा ही इस सिद्धान्त के विरुद्ध होते हैं। यदि वे शर्तें, जिनपर सत्ता सौंपी जाती है, प्रजा की समृद्धि, स्वतन्त्रता और प्रबोधन हैं, तो क्यों लुई चौदहवें और इओआन चतुर्थ* चैन से राज करते रहे और लुई सोलहवें और चार्ल्स प्रथम को उनकी प्रजाओं ने मृत्युदंड दिया? इतिहासकार यह कहकर इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि लुई चौदहवें के कार्यक्रम-विरोधी क्रिया-कलाप का लुई सोलहवें पर असर पड़ा। किन्तु यह असर लुई चौदहवें और पन्द्रहवें पर क्यों नहीं पड़ा, वह लुई सोलहवें पर ही क्यों पड़ना चाहिये था? और यह असर कितने काल में पड़ता है? इन प्रश्नों का न कोई उत्तर है और न हो ही सकता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार इस चीज़ का भी बहुत कम ही कारण समझ में आता है कि जनगण की इच्छाओं की समष्टि कई शताब्दियों तक

---

* इओआन चतुर्थ – इवान चतुर्थ रौद्र (१५३०–१५८४) – प्रथम रूसी ज़ार। – सं०

उनके शासकों और उनके उत्तराधिकारियों में परिवाहित होती रहती है, किन्तु बाद में अचानक, पचास वर्ष के काल में कान्वेंट, डायरेक्टरी, नेपोलियन, अलेक्सान्द्र, लुई अठारहवें, फिर से नेपोलियन, चार्ल्स दशम, लुई फ़िलिप, प्रजातन्त्रवादी सरकार और नेपोलियन तृतीय में परिवाहित होती है। एक पात्र से दूसरे पात्र की ओर तीव्र गति से होनेवाले इच्छाओं के इन स्थानान्तरणों की, विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, विजयों और संघों के संदर्भ में व्याख्या करते समय इन इतिहासकारों को अनचाहे यह मानना पड़ता है कि इन परिघटनाओं में से कुछ, इच्छाओं का सही परिवहन नहीं, बल्कि ऐसे संयोग हैं जो कभी तो किसी कूटनीतिज्ञ या नरेश या दल के नेता की चालाकी, तो कभी उसकी ग़लती, या कपट या कमज़ोरी के परिणाम होते हैं। इसलिये ये इतिहासकार इतिहास की अधिकांश परिघटनाओं – गृहयुद्धों, क्रान्तियों और विजयों को इच्छाओं के स्वतन्त्र स्थानान्तरण का परिणाम नहीं, बल्कि एक या कुछ लोगों की दिग्भ्रमित इच्छा की उपज, अर्थात्, फिर वही, सत्ता के उल्लंघन मानते हैं। और इसलिये इस प्रकार के इतिहासकार भी ऐतिहासिक घटनाओं को अपने सिद्धान्त के अपवाद के रूप में देखते हैं।

ये इतिहासकार उस वनस्पतिशास्त्री की तरह हैं जो यह देखकर कि कुछ पेड़-पौधों के अंकुरों में दो पत्तियां होती हैं, यह दावा करने लगता है कि हर पौधा दो पत्तियों में विभाजित होकर उगता है; और यह कि ताड़ और कुकुरमुत्ता और बलूत तक, जो बड़ा होकर बहुशाखीय हो जाता है और दो पत्तियों जैसा नहीं रहता, ये सब सिद्धांत के अपवाद हैं।

तीसरे इतिहासकार स्वीकार करते हैं कि ऐतिहासिक पात्रों को किन्हीं शर्तों पर जनसाधारण की इच्छा सौंपी जाती है, मगर ये शर्तें हमें अज्ञात हैं। वे कहते हैं कि ऐतिहासिक पात्रों के पास सत्ता केवल इसीलिये होती है कि वे जनसाधारण द्वारा उनमें परिवाहित इच्छा की पूर्त्ति करते हैं।

पर इस हालत में, अगर जनगण को चलायमान करनेवाली शक्ति ऐतिहासिक पात्रों में नहीं, बल्कि स्वयं जनगण में निहित है तो इन ऐतिहासिक पात्रों का महत्त्व ही क्या रह जाता है?

ये इतिहासकार कहते हैं कि ऐतिहासिक पात्र अपने माध्यम से

जनसाधारण की इच्छा को व्यक्त करते हैं; ऐतिहासिक पात्रों का कार्य-कलाप जनसाधारण के कार्य-कलाप का प्रतिनिधित्व करता है।

पर ऐसी हालत में सवाल उठता है कि क्या ऐतिहासिक पात्रों का सम्पूर्ण कार्य-कलाप या उसका कोई निश्चित पक्ष ही जनसाधारण की इच्छा को अभिव्यक्ति देता है? यदि ऐतिहासिक पात्रों का सम्पूर्ण कार्य-कलाप जनसाधारण की इच्छा को अभिव्यक्ति देता है, जैसाकि कुछेक सोचते हैं, तो दरबार की निन्दा-चुगलियों के सभी ब्योरों से भरपूर नेपोलियनों, येकतेरीनाओं के जीवनवृत्त जनगण के जीवन को व्यक्त करनेवाले माने जाने चाहिये, जोकि स्पटतः बेसिरपैर की बात है। अगर ऐतिहासिक पात्र के कार्य-कलाप का केवल एक पक्ष ही जनगण के जीवन की अभिव्यंजना करता है, जैसाकि दूसरे, तथाकथित दार्शनिक इतिहासकारों का मत है, तो यह निश्चित करने के लिये कि ऐतिहासिक पात्र के कार्य-कलाप का कौन-सा पक्ष जनता के जीवन को व्यक्त करता है, सर्वप्रथम यह जानना चाहिये कि जनता का जीवन क्या है।

इस कठिनाई का सामना होने पर इस प्रकार के इतिहासकार एक अत्यन्त अस्पष्ट, अबोधगम्य और ऐसी सामान्य संकल्पना गढ़ लेते हैं जिसकी लाठी से अधिकतम घटनाओं को हांकना सम्भव हो और कहते हैं कि इस संकल्पना में ही मानवजाति की गति का लक्ष्य निहित है। लगभग सभी इतिहासकारों द्वारा स्वीकृत अत्यन्त सामान्य संकल्पनायें ये हैं: स्वतन्त्रता, समता, प्रबोधन, प्रगति, सभ्यता, संस्कृति। किसी अमूर्त संकल्पना को मानवजाति की गति का लक्ष्य मानकर इतिहासकार अपने बाद अधिकतम कार्य-स्मारक छोड़ गये लोगों – राजाओं, मन्त्रियों, सेनापतियों, रचनाकारों, समाज-सुधारकों, धर्मगुरुओं, पत्रकारों का अध्ययन करते हैं जो उनके मतानुसार इस निश्चित संकल्पना का न्यूनाधिक समर्थन या प्रतिरोध करते थे। लेकिन चूंकि किसी भी चीज़ से यह सिद्ध नहीं होता कि मानवजाति का लक्ष्य स्वतन्त्रता, समता, प्रबोधन या सभ्यता था और चूंकि शासकों और मानवता के प्रबोधकों के साथ जनसाधारण का सम्बन्ध केवल इस मन-मानी धारण पर आधारित है कि जनसाधारण की इच्छाओं की समष्टि सदा उन पात्रों में परिवाहित होती है जो हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं, इसलिये विस्थापित होनेवाले, घरों को जलाने, खेतीबाड़ी को छोड़ने और एक-दूसरे का संहार करनेवाले लाखों-करोड़ों लोगों का

कार्य-कलाप कभी भी उन दर्जन भर पात्रों के कार्य-कलाप के वर्णन में प्रतिबिम्बित नहीं होता जो अपने हाथों घर नहीं जलाते, खेती नहीं करते और अपने जैसों को मौत के घाट नहीं उतारते हैं।

इतिहास हर क़दम पर इसी चीज़ को सिद्ध करता है। पिछली सदी के अन्त में हुई पश्चिम के जनगण की उथल-पुथल और पूरब की ओर जाने की उनकी उत्कंठा की क्या लुई चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें के कार्य-कलाप, उनकी रखेलों, मन्त्रियों, नेपोलियन, रुस्सो, डिडेरो, बोमार्शे व अन्य के जीवन से व्याख्या की जा सकती है?

क्या रूसी जनता का पूरब की ओर, कज़ान और साइबेरिया की ओर प्रयाण इवान चतुर्थ के उग्र स्वभाव और कूर्बस्की* के साथ उसके पत्राचार के ब्योरों में व्यक्त होता है?

धर्म-युद्धों के समय जनगण के प्रयाण को क्या गोटफ़्रिडों** और लुडविगों और उनकी प्रेयसियों का अध्ययन करके समझा जा सकता है? किसी लक्ष्य और किसी की अगुआई के बिना, आवारों के झुण्ड के साथ, प्योत्र पुस्तीन्निक के साथ जनगण का पश्चिम से पूरब की ओर प्रयाण हमारे लिये अबोधगम्य ही रह गया, और तब इस प्रयाण का उस वक़्त रुक जाना तो और भी समझ में नहीं आता, जब ऐतिहासिक पात्रों ने अभियानों का स्पष्ट, विवेकपूर्ण, पुनीत लक्ष्य – येरुशलम की मुक्ति का लक्ष्य प्रस्तुत किया। पोप, राजा और नाइट प्रजा को पावन धरती की मुक्ति के लिये प्रेरित करते थे, पर लोग ऐसा करने नहीं जाते थे, क्योंकि वह अज्ञात लक्ष्य, जो उन्हें पहले प्रयाण की प्रेरणा देता था, अब नहीं रहा था। स्पष्ट है कि गोटफ़्रिडों और मिन्नेसिंगरों*** का इतिहास जनगण के जीवन को अपने में समाविष्ट नहीं कर सकता। और गोटफ़्रिडों व मिन्नेसिंगरों का इतिहास गोटफ़्रिडों व मिन्नेसिंगरों का इतिहास ही रह गया तथा जनगण के जीवन और उनकी उत्प्रेरणाओं का इतिहास अज्ञात ही बना रहा।

---

* अ० म० कूर्बस्की (१५२८–१५८३) – प्रिंस, लेखक। – सं०

** गोटफ़्रिड बुल्योन्स्की (१०६०–११००) – ड्यूक, पूरब की ओर पहले धर्म-युद्ध का सेना-संचालक। – सं०

*** मिन्नेसिंगर – १२वीं शताब्दी का जर्मन नाइट, कवि-गायक जिसने नारी से प्रेम, प्रभु और स्वामी की सेवा तथा धर्म-युद्धों का गुणगान किया। – सं०

लेखकों और समाज-सुधारकों का इतिहास हमें जनगण के जीवन को और भी कम स्पष्ट करता है।

संस्कृति का इतिहास हमारे सामने लेखक या सुधारक की अभि-प्रेरणाओं, उसके जीवन की परिस्थितियों और चिन्तन की व्याख्या कर सकता है। उससे हमें यह ज्ञात हो सकता है कि लूथर तुनकमिज़ाज था और उसने फ़लां-फ़लां बातें कहीं ; हमें यह ज्ञात हो सकता है कि रुस्सो शक़्क़ी तबीयत का था और उसने फ़लां-फ़लां पोथियां लिखीं ; पर हमें यह ज्ञात नहीं होगा कि सुधारान्दोलन के बाद क्यों जनगण ने एक-दूसरे का गला काटा और क्यों फ़्रांसीसी क्रांति के दौरान उन्होंने एक-दूसरे पर छुरी चलायी।

अगर इन दो इतिहासों को जोड़कर एक बना दिया जाये, जैसाकि आधुनिक इतिहासकार करते हैं, तो ये राजों-महाराजों और लेखकों के ही इतिहास होंगे, जनगण के जीवन का इतिहास नहीं।

५

जनगण के जीवन को कुछेक लोगों के जीवन में समाविष्ट नहीं किया जा सकता, क्योंकि इन कुछेक लोगों और जनगण के आपसी सम्बन्ध का पता नहीं लगाया जा सका है। इसके बारे में यह सिद्धान्त कि ऐसा सम्बन्ध जनगण द्वारा ऐतिहासिक पात्रों को अपनी इच्छाओं की समष्टि को सौंपने पर आधारित है, एक परिकल्पना मात्र है, जिसकी इतिहास का अनुभव पुष्टि नहीं करता।

ऐतिहासिक पात्रों में जनसाधारण की इच्छाओं की समष्टि के परिवाहित होने का सिद्धान्त विधिविज्ञान के क्षेत्र में शायद बहुत कुछ स्पष्ट करता हो और हो सकता है कि वह कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये आवश्यक हो, परन्तु इतिहास के संदर्भ में, जैसे ही क्रान्तियां, विजयारोहण, गृहयुद्ध सामने आते हैं, जैसे ही इतिहास शुरू होता है – वैसे ही यह सिद्धान्त कुछ भी स्पष्ट नहीं करता।

यह सिद्धान्त इसीलिये अकाट्य लगता है कि जनता की इच्छा के परिवाहित होने के कृत्य की जांच नहीं की जा सकती, क्योंकि इसका कभी भी अस्तित्व नहीं था।

चाहे कोई भी घटना हो, चाहे कोई भी इस घटना का नेतृत्व करे, यह सिद्धान्त सदा कह सकता है कि अमुक पात्र इसलिये घटना का सूत्रधार बना कि इच्छाओं की समष्टि उसमें परिवाहित हो गयी थी।

इतिहास के प्रश्नों के इस सिद्धान्त द्वारा दिये जानेवाले उत्तर उस व्यक्ति के उत्तरों के समान हैं जो भेड़ों के रेवड़ को चलते हुए देखकर विभिन्न स्थानों पर चरागाह की स्थिति और चरवाहे की हांक को ध्यान में रखे बिना उस पशु को ही रेवड़ के किसी ख़ास दिशा में जाने का कारण बताये जो रेवड़ के आगे-आगे चल रहा है।

"रेवड़ इसीलिये इस दिशा में जा रहा है कि आगे-आगे चलनेवाला पशु उसकी अगुआई कर रहा है और बाक़ी सभी पशुओं की इच्छाओं की समष्टि रेवड़ के इस शासक में परिवाहित हो गयी है।" सत्ता के निर्विवाद स्थानांतरण को माननेवाले इतिहासकार ऐसा ही उत्तर देते हैं।

"अगर रेवड़ के आगे-आगे चलनेवाले पशु बदलते हैं तो इसका कारण यह है कि सभी पशुओं की इच्छाओं की समष्टि इस चीज़ के अनुसार एक शासक से दूसरे में परिवाहित हो जाती है कि क्या यह पशु उन्हें उस दिशा में ले जा रहा है या नहीं, जिसे उन सब ने यानी सारे रेवड़ ने चुना है।" ऐसा उत्तर वे इतिहासकार देते हैं जो यह मानते हैं कि जनसाधारण की इच्छाओं की समष्टि पहले से ज्ञात शर्तों पर शासकों में परिवाहित होती है। (प्रेक्षण की इस विधि में प्रायः यह होता है कि प्रेक्षक अपने द्वारा चुनी गयी दिशा से प्रभावित होकर ऐसे लोगों को अगुआ के रूप में तरजीह देता है जो जनसाधारण के दिशा-परिवर्तन के कारण अब वास्तव में अग्रणी न रहकर बग़ल में चलनेवाले और कभी-कभी तो पीछे-पीछे चलनेवाले फिसड्डी भी होते हैं।)

"अगर अगुआई करनेवाले पशु निरन्तर बदलते रहते हैं और सारे रेवड़ के चलने की दिशायें भी अनवरत रूप से बदलती रहती हैं तो इसका कारण यह है कि उस दिशा की प्राप्ति के लिये, जो हमें ज्ञात है, पशु अपनी इच्छायें उन पशुओं को सौंप देते हैं जो ख़ास तौर पर हमारा ध्यान अपनी ओर खींचते हैं और रेवड़ की गति के अध्ययन के लिये हमें रेवड़ के सभी ओर चलनेवाले इन प्रमुख पशुओं का ही

प्रेक्षण करना चाहिये।" तीसरे प्रकार के इतिहासकार, जो नरेशों से लेकर पत्रकारों तक सभी ऐतिहासिक पात्रों को अपने काल की अभिव्यक्ति मानते हैं, यही कहते हैं।

ऐतिहासिक पात्रों में जनसाधारण की इच्छाओं के परिवहन का सिद्धान्त केवल पर्यायोक्ति ही है—प्रश्न के शब्दों को घुमा-फिराकर दूसरे शब्दों में कही गयी बात ही है।

ऐतिहासिक घटनाओं का कारण क्या है? —सत्ता। सत्ता क्या है? —सत्ता एक पात्र में परिवाहित इच्छाओं की समष्टि है। किन परिस्थितियों में जनसाधारण की इच्छायें एक पात्र में परिवाहित होती हैं? —पात्र द्वारा सभी लोगों की इच्छाओं की अभिव्यक्ति की परिस्थितियों में। अर्थात् सत्ता सत्ता है। अर्थात् सत्ता एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ हम नहीं समझते।

यदि मानव संज्ञान का क्षेत्र केवल अमूर्त चिन्तन तक ही सीमित होता, तो सत्ता की उस व्याख्या की आलोचना करके, जो **विज्ञान** हमारे सामने प्रस्तुत करता है, मानवजाति इस निष्कर्ष पर पहुंचती कि सत्ता केवल शब्द मात्र है और वास्तव में उसका अस्तित्व नहीं है। किन्तु परिघटनाओं के संज्ञान के लिये मानव के पास अमूर्त चिन्तन के अलावा अनुभव का औज़ार भी है जिससे वह चिन्तन के परिणामों की जांच करता है। और अनुभव कहता है कि सत्ता केवल शब्द नहीं, बल्कि वास्तविक अस्तित्व रखनेवाली परिघटना है।

यह कहने की ज़रूरत नहीं कि सत्ता की अवधारणा के बिना लोगों के समग्र कार्य-कलाप का कोई वर्णन नहीं किया जा सकता, इतिहास और वर्तमान काल की घटनाओं का प्रेक्षण भी सत्ता के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं।

जब कभी कोई घटना होती है तो सदा कोई ऐसा व्यक्ति या अनेक व्यक्ति प्रकट हो जाते हैं जिनकी इच्छा से घटना घटती है। नेपोलियन तृतीय आदेश देता है और फ़्रांसीसी मेक्सिको की ओर चल पड़ते हैं। प्रशा का बादशाह और बिस्मार्क आदेश देते हैं और उनकी सेनायें बोहेमिया में घुस जाती हैं। नेपोलियन प्रथम आदेश देता है और सेनायें रूस की ओर कूच कर देती हैं। अलेक्सान्द्र प्रथम आदेश देते हैं और फ़्रांस के निवासी बोर्बोन वंश के समक्ष घुटने टेक देते हैं। अनुभव हमें दर्शाता है कि चाहे कोई भी घटना क्यों न घटी हो, वह सदा एक या

कुछ लोगों की इच्छा के साथ जुड़ी रहती है जो यह आदेश देते हैं कि ऐसा किया जाये।

मानव के कार्यों में देवताओं की सहभागिता को मानने की पुरानी आदत के फलस्वरूप इतिहासकार घटना के कारण को सत्ताधारी व्यक्ति की इच्छा की अभिव्यक्ति में देखना चाहते हैं ; किन्तु इस निष्कर्ष की न तर्क-वितर्क और न अनुभव से ही पुष्टि होती है।

एक ओर तो तर्क यह दिखाता है कि व्यक्ति की इच्छा की अभिव्यक्ति – अर्थात् उसके शब्द – उस आम कार्य-कलाप का अंश मात्र हैं जो, उदाहरण के लिये, युद्ध या क्रान्ति जैसी घटना में व्यक्त होता है ; और इसलिये अबोधगम्य, अलौकिक शक्ति – चमत्कार – को मान्यता दिये बिना यह नहीं माना जा सकता कि शब्द लाखों लोगों के प्रयाण का प्रत्यक्ष कारण हो सकते हैं ; और दूसरी ओर अगर यह मान भी लिया जाये कि शब्द घटना का कारण हो सकते हैं तो इतिहास दर्शाता है कि अधिकांश मामलों में ऐतिहासिक पात्रों की इच्छा की अभिव्यक्तियां कोई क्रिया उत्पन्न नहीं करती हैं, यानी अक्सर उनके आदेशों को पूरा करना तो दूर, उलटे उनके आदेशों के बिल्कुल विपरीत कार्य किये जाते हैं।

मानव के कार्यों में देवताओं की सहभागिता को माने बिना हम सत्ता को घटनाओं का कारण नहीं मान सकते।

अनुभव की दृष्टि से सत्ता किसी पात्र की इच्छा की अभिव्यक्ति और दूसरे लोगों द्वारा इस इच्छा की पूर्त्ति के बीच विद्यमान निर्भरता का सम्बन्ध मात्र है।

निर्भरता के इस सम्बन्ध की शर्तों को समझने के लिये हमें सबसे पहले इच्छा की अभिव्यक्ति की मानव से, न कि देवता से सम्बन्धित अवधारणा को फिर से स्वीकार करना चाहिये।

यदि देवता आदेश देता है, अपनी इच्छा को व्यक्त करता है, जैसाकि प्राचीन इतिहास हमें दिखाता है, तो इस इच्छा की अभिव्यक्ति काल पर निर्भर नहीं करती और इसका कोई कारण नहीं है, क्योंकि देवता किसी प्रकार भी घटना से जुड़ा नहीं है। पर आदेशों – निश्चित काल में सक्रिय और आपस में एक-दूसरे से सम्बन्धित लोगों की इच्छा की अभिव्यक्ति की चर्चा करते समय हमें घटनाओं के साथ आदेशों के सम्बन्ध को समझने के लिये निम्न दो बातों को पुनः मानना चाहिये :

१. वह सब जो घटित होता है, उसकी शर्त है : घटना और आदेश देनेवाले पात्र, काल के प्रवाह में दोनों ही की अनवरत गतिशीलता, और २. उन लोगों के साथ आदेश देनेवाले पात्र के आवश्यक सम्बन्ध की शर्त, जो उसके आदेश को पूरा करते हैं।

६

केवल दैवी इच्छा की अभिव्यक्ति ही, जो काल पर निर्भर नहीं करती, कुछ वर्षों या शताब्दियों के बाद होनेवाले घटनाक्रम से वास्ता रख सकती है, और केवल देवता ही, किसी कारण के बिना, बस अपनी इच्छा से ही मानवजाति के प्रयाण की दिशा को निर्धारित कर सकता है; किन्तु मानव तो अपने काल में ही क्रियाशील होता है और स्वयं घटना में भाग लेता है।

काल की शर्त को बहाल करके, जिसकी अवहेलना कर दी गयी थी, हम देखेंगे कि एक भी आदेश तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक कि इससे पहले का आदेश न दिया गया हो जो नये आदेश की पूर्त्ति को सम्भव बनाता है।

कोई भी आदेश कभी भी अपने आप प्रकट नहीं होता और उसमें घटनाओं की पूरी शृंखला समाविष्ट नहीं होती; किन्तु प्रत्येक आदेश दूसरे से निकलता है और कभी भी घटनाओं की पूरी शृंखला से नहीं, बल्कि सदा घटना के केवल एक ही क्षण से सम्बन्धित होता है।

उदाहरण के लिये जब हम कहते हैं कि नेपोलियन ने सेनाओं को युद्ध के लिये जाने का आदेश दिया, तो हम एक बार दिये गये आदेश में, एक-दूसरे पर निर्भर कई क्रमिक आदेशों को जोड़कर एक कर देते हैं। नेपोलियन रूस पर चढ़ाई का आदेश नहीं दे सकता था और उसने कभी इसका आदेश नहीं दिया। एक दिन उसने वियाना, बर्लिन और पीटर्सबर्ग भेजने के लिये फ़लां-फ़लां दस्तावेज़ लिखने का आदेश दिया; अगले दिन – सेना, बेड़े और सैनिक आपूर्त्ति सेवा, आदि से सम्बन्धित फ़लां-फ़लां अध्यादेश और हुक्मनामे इत्यादि, इत्यादि – लाखों आदेश जिनसे कई आदेश-शृंखलायें बनीं, जो उस घटनाक्रम

के अनुरूप थीं, जिसने फ़्रांसीसी सेनाओं को रूस में पहुंचा दिया।

अगर नेपोलियन अपने पूरे शासनकाल में इंगलैंड के विरुद्ध अभियान के बारे में आदेश देता रहा तथा उसने अपने किसी भी काम पर इतना श्रम व समय नष्ट नहीं किया और इस सब के बावजूद उसने अपने इरादे को एक बार भी पूरा करने की कोशिश तक नहीं की, किन्तु रूस के विरुद्ध अभियान शुरू किया, जिसके साथ उसके द्वारा कई बार व्यक्त विश्वास के अनुसार वह मैत्री को लाभदायक मानता था, तो यह इस कारण हुआ कि पहलेवाले आदेश घटनाक्रम के अनुरूप नहीं थे, पर दूसरे थे।

इसके लिये कि आदेश ज़रूर पूरा हो, यह आवश्यक है कि व्यक्ति ऐसा आदेश दे जो पूरा किया जा सके। किन्तु यह जानना कि क्या पूरा किया जा सकता है और क्या नहीं, असम्भव है, न केवल रूस पर नेपोलियन की चढ़ाई के संदर्भ में, जिसमें लाखों ने भाग लिया, बल्कि सबसे सामान्य घटना तक के संदर्भ में भी, क्योंकि दोनों की ही पूर्त्ति के रास्ते में लाखों बाधायें आ सकती हैं। कोई भी पूरा किया गया आदेश न पूरे किये गये असंख्य आदेशों में से सदा एक होता है। सभी असम्भव आदेश घटना से मेल नहीं खाते और पूरे नहीं होते। केवल वे ही, जो सम्भव हैं, घटनाक्रम के अनुरूप आदेशों की क्रमिक शृंखला में जुड़ते हैं और पूरे किये जाते हैं।

घटना के पूर्व दिया गया आदेश घटना का कारण है, इसकी वजह यह है कि जब घटना घट जाती है और हज़ारों आदेशों में से वे कुछेक, जो घटना से मेल खाते थे, पूरे हो गये, तो हम उन आदेशों के बारे में भूल जाते हैं जो पूरे नहीं हुए, क्योंकि वे पूरे नहीं किये जा सकते थे। इसके अलावा इस मामले में हमारे भ्रम का प्रमुख स्रोत यह है कि इतिहास के वर्णन में असंख्य, विविध, गौणतम घटनाओं की पूरी शृंखला को, जैसे कि, उदाहरण के लिये, उन सब घटनाओं को, जो फ़्रांसीसी सेनाओं को रूस में लायीं, उस परिणाम के अनुसार, जो घटनाओं की शृंखला से हुआ, एक घटना में सामान्यीकृत कर दिया जाता है और इस सामान्यीकरण के अनुसार आदेशों की पूरी शृंखला को भी इच्छा की एक अभिव्यक्ति में सामान्यीकृत कर दिया जाता है।

हम कहते हैं: नेपोलियन की इच्छा हुई और उसने रूस पर चढ़ाई कर दी। पर वास्तव में नेपोलियन के सम्पूर्ण कार्य-कलाप में हमें इस

इच्छा की अभिव्यक्ति जैसा कुछ नहीं मिलेगा, बल्कि उसके अत्यन्त विविध और अनिश्चित आदेशों या इच्छा की अभिव्यक्तियों की शृंखलायें मिलेंगी। नेपोलियन के पूरे न किये जानेवाले असंख्य आदेशों की शृंखलाओं में से सन् १८१२ के अभियान के लिये पूरे किये गये आदेशों की शृंखला इसलिये नहीं बन पायी थी कि ये आदेश उन दूसरे, पूरे न किये जानेवाले आदेशों से कुछ भिन्न थे, बल्कि इसलिये कि इन आदेशों की शृंखला फ़्रांसीसी सेनाओं को रूस में लानेवाली घटनाओं के अनुरूप रही ; ठीक उसी तरह से, जैसे स्टेंसिल से कोई अमुक आकृति इसलिये नहीं बनती कि किस दिशा में और कैसे उसपर रंग लगाना चाहिये, बल्कि इसलिये कि स्टेंसिल में बनी आकृति को सब तरफ़ से रंगा गया।

इसलिये काल के संदर्भ में घटनाओं और आदेशों के आपसी सम्बन्ध पर ग़ौर करते हुए हम पायेंगे कि आदेश घटना का कारण हरगिज़ नहीं हो सकता। किन्तु उन दोनों के बीच निश्चित और ठोस निर्भरता विद्यमान है।

यह समझने के लिये कि यह निर्भरता क्या है, हमारे लिये इस दूसरी शर्त को बहाल करना आवश्यक है कि देवता नहीं, बल्कि मानव ही प्रत्येक आदेश देता है और जिसका अर्थ यह है कि आदेश देनेवाला व्यक्ति स्वयं घटना में भाग लेता है।

आदेश देनेवाले और आदेश का पालन करनेवाले व्यक्ति का यही सम्बन्ध तो वही चीज़ है जिसे सत्ता कहते हैं। इस सम्बन्ध को इस तरह स्पष्ट किया जा सकता है :

किसी साझे कार्य के हेतु लोग सदा निश्चित संगठनों में सूत्रबद्ध होते हैं, जिनमें संयुक्त कार्य के लिये सामने रखे गये लक्ष्यों की भिन्नता के बावजूद उनमें भाग लेनेवाले लोगों के बीच सदा एक जैसा सम्बन्ध होता है।

इस तरह सूत्रबद्ध होनेवाले लोगों के बीच सदा यह सम्बन्ध होता है कि इस संगठन के अधिकांश लोग उस संयुक्त कार्य में, जिसके लिये वे संगठन बनाते हैं, अधिक तथा कम संख्या में कुछ लोग न्यूनतम प्रत्यक्ष भाग लेते हैं।

संयुक्त कार्यों के लिये बनाये जानेवाले ऐसे संगठनों में सेना एक सबसे उल्लेखनीय और ठोस संगठन है।

किसी भी सेना में सामान्य सैनिक, जिनकी संख्या सदा अधिकतम

होती है, सबसे नीचे के स्तर पर होते हैं। कॉरपोरेल, सार्जेंट, जिनकी संख्या सैनिकों से कम होती है, उनमें कुछ ऊंचे स्तर पर होते हैं, इसके बाद और ऊंचे पदाधिकारी होते हैं, जिनकी संख्या और भी कम होती है और इस तरह यह क्रम सर्वोच्च सैन्य-सत्ता तक, जो एक व्यक्ति में संकेन्द्रित होती है, चलता जाता है।

सेना की रचना की शंकु की आकृति से सटीक तुलना की जा सकती है, जिसका सबसे अधिक व्यासवाला आधार सामान्य सैनिक होते हैं, उससे ऊपर कम होते जाते व्यास पर शंकु की चोटी तक क्रमानुसार सेना के उच्चाधिकारी होते हैं और सबसे ऊपर सेनापति होता है।

सैनिक, जिनकी संख्या अधिकतम होती है, शंकु के निम्नतम भाग और उसके आधार की रचना करते हैं। सैनिक सदा स्वयं प्रत्यक्ष रूप से मार-काट करता है, जलाता है, लूटता है और इन कार्यों का आदेश सदा ऊपर से पाता है; पर स्वयं कभी भी आदेश नहीं देता। किन्तु सार्जेंट (उनकी संख्या कुछ कम होती है) सैनिक की अपेक्षा यह काम कुछ कम करता है, मगर आदेश देता है। बड़े अफ़सर मार-काट आदि के काम और भी कम करते हैं, पर आदेश और अधिक देते हैं। जनरल तो केवल लक्ष्य बनाकर सेना को चढ़ाई करने का आदेश ही देता है और अस्त्र का लगभग कभी प्रयोग नहीं करता। सेनापति तो कभी भी प्रत्यक्ष रूप से काम में भाग नहीं लेता, वह तो सेना-समूहों के संचालन के बारे में केवल सामान्य निर्देश देता है। साझे कार्य के लिये लोगों के प्रत्येक सम्मिलित संगठन – कृषि, व्यापार और प्रत्येक व्यवस्था में लोगों के बीच यही आपसी सम्बन्ध होता है।

तो शंकु के आपस में जुड़े हुए सभी अंगों और पदों के अनुसार सेना या किसी भी व्यवस्था या साझे ध्येय के संगठन के ओहदों और पदों को कृत्रिम रूप से नीचे से ऊपर तक विभाजित किये बिना एक नियम दृष्टिगोचर होता है, जिसके अनुसार संयुक्त कार्यों के निष्पादन के लिये लोगों में सदा आपस में ऐसा सम्बन्ध बनता है कि कार्य के निष्पादन में लोग जितने अधिक प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं, वे उतने ही कम आदेश दे सकते हैं और ऐसे लोगों की संख्या भी उतनी ही अधिक होती है; और कार्य में जिन लोगों की प्रत्यक्ष सहभागिता जितनी कम होती है, वे उतने ही अधिक आदेश देते हैं और उनकी संख्या भी उतनी ही कम होती है। इस प्रकार निम्न संस्तरों से ऊपर उठते हुए उस अकेले,

अन्तिम व्यक्ति तक पहुंचा जा सकता है जो घटना में न्यूनतम प्रत्यक्ष भाग लेता है और अपने कार्य-कलाप को आदेश देने की ओर ही सबसे अधिक अभिमुख करता है।

आदेश देनेवालों और आदेशों का पालन करनेवालों का यही सम्बन्ध उस अवधारणा का सार है जो सत्ता कहलाती है।

काल की शर्तों को बहाल करके, जिनके अधीन सभी घटनायें होती हैं, हमने पाया कि आदेश केवल तभी पूरा किया जाता है, जब वह घटनाओं की तत्सम्बन्धी शृंखला के अनुरूप होता है। आदेश देनेवाले और उसे पूरा करनेवाले के बीच सम्बन्ध की आवश्यक शर्त को बहाल करके हमने देखा कि अपने गुणानुसार आदेश देनेवाले स्वयं घटना में न्यूनतम भाग लेते हैं और उनका मुख्य कार्य-कलाप सिर्फ़ आदेश देने की ओर ही अभिमुख होता है।

७

जब कोई घटना घटती है तो लोग घटना के बारे में अपना मत, अपनी मनोकामनायें व्यक्त करते हैं और चूंकि घटना का स्रोत अनेक लोगों के संयुक्त कार्य में होता है, तो व्यक्त मतों या मनोकामनाओं में से एक, चाहे मोटे तौर पर ही सही, अवश्य ही पूरी होती है। जब व्यक्त मतों में से कोई एक सही निकलता है तो यह मत घटना के पूर्व दिये गये आदेश के रूप में उसके साथ जुड़ जाता है।

लोग लट्ठा खींचकर ले जा रहे हैं। प्रत्येक इस विषय में अपना मत व्यक्त कर रहा है कि उसे कैसे और किधर खींचा जाना चाहिये। लोग लट्ठा खींच ले गये और पता चला कि यह वैसे किया गया, जैसे उनमें से एक ने कहा था। उसने आदेश दिया था। यही हैं आदेश और सत्ता अपने आदिम रूप में।

उस व्यक्ति को, जो हाथों से अधिक काम कर रहा था, यह सोचने और समझने का कम अवसर प्राप्त था कि वह क्या कर रहा है और साझे कार्य का क्या परिणाम होगा और उसे आदेश देने का भी कम अवसर था। वह, जो अधिकतम आदेश दे रहा था, अपने शाब्दिक

कार्य के कारण स्पष्टतः हाथों से कम काम कर सकता था। किसी एक लक्ष्य पर अपने प्रयास केन्द्रित करनेवाले लोगों के बड़े समूह में ऐसे लोग विशेष रूप से अलग नज़र आते हैं जो सम्मिलित कार्य में प्रत्यक्ष रूप से जितना कम भाग लेते हैं, आदेश देने की ओर उनका कार्य-कलाप उतना ही अधिक अभिमुख होता है।

जब कोई मानव अकेला ही क्रियाशील होता है तो सदा एक निश्चित विचार-श्रृंखला को अपने सामने रखता है जो उसके मतानुसार अतीत में उसके कार्य का निर्देशन करती रही, जो उसके वर्तमान कार्य के औचित्य को प्रमाणित करती है और उसके भावी कृत्यों की पूर्वकल्पना करने की दिशा में उसे निर्देशित करती है।

लोगों के समूह उन लोगों को, जो क्रिया में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेते, अपने संयुक्त कार्य के उपायों, औचित्य और पूर्वकल्पनाओं के विषय में सोचने का काम सौंपकर, ठीक यही करते हैं।

हमें ज्ञात या अज्ञात कारणों से फ़्रांसीसी एक-दूसरे को मारने-काटने और डुबोने लगे। लोगों की व्यक्त इच्छाओं में घटना के अनुरूप उसकी सफ़ाई भी साथ-साथ दी जाती है कि यह फ़्रांस के लिये, स्वतन्त्र-ता के लिये, समता के लिये आवश्यक था। फ़्रांसीसियों ने एक-दूसरे की मार-काट बंद कर दी और ऐसा करने के लिये – सत्ता की एकता, यूरोप को मुंह तोड़ जवाब देने इत्यादि की आवश्यकता के रूप में इसकी सफ़ाई दी गयी। लोग पश्चिम से पूरब की ओर अपने जैसे लोगों का संहार करने जाते हैं और इस घटना के साथ फ़्रांस के गौरव, इंगलैंड की नीचता इत्यादि के बारे में शब्द सुनाई पड़ते हैं। इतिहास हमें दर्शाता है कि घटनाओं की ये सफ़ाइयां वैसे ही बेतुकी और असंगत हैं, जैसे व्यक्ति के अधिकारों की मान्यता के परिणामस्वरूप उसकी हत्या और इंगलैंड को नीचा दिखाने के लिये रूस के लाखों लोगों की हत्या। परन्तु अपने समय में इन सफ़ाइयों का आवश्यक महत्त्व था।

ये सफ़ाइयां घटनाओं के सूत्रधारों पर से नैतिक उत्तरदायित्व हटा देती हैं। ये उपाय रेलवे लाइन को साफ़ करने के लिये रेल के इंजन के आगे लगे छाजों की तरह हैं: वे लोगों के नैतिक दायित्व का रास्ता साफ़ करते हैं। इन सफ़ाइयों के बिना प्रत्येक घटना पर ग़ौर करते समय उत्पन्न होनेवाले इस सरलतम प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता था:

लाखों लोग किस प्रकार सामूहिक अपराध, युद्ध, हत्याकांड इत्यादि करते हैं?

यूरोप के वर्तमान राजकीय और सामाजिक जीवन के जटिल रूपों में क्या किसी ऐसी घटना की कल्पना करना सम्भव है जिसका नरेशों, मन्त्रियों, संसदों, समाचारपत्रों ने आदेश, निर्देश, आदि न दिया हो? क्या कोई ऐसी सामूहिक क्रिया है, जिसकी राजकीय एकता, राष्ट्रीय हित, यूरोप में संतुलन और सभ्यता के नाम पर सफ़ाई न दी जा सकती हो? हां, तो प्रत्येक घटित घटना अवश्य ही किसी न किसी व्यक्त कामना के अनुरूप होती है और अपनी सफ़ाई पाकर वह एक या कई लोगों की इच्छा की उपज लगती है।

जहाज़ चाहे जिस दिशा में चले, उसके आगे-आगे सदा उससे कटती लहरों की धारा होगी। जहाज़ पर सवार लोगों के लिये इस धारा की गति ही एकमात्र दृश्यमान गति होगी।

केवल पास से, क्षण प्रति क्षण इस धारा की गति का अध्ययन करके और इस गति की जहाज़ की गति से तुलना करके ही हमें यह विश्वास हो सकेगा कि हर क्षण जहाज़ की गति से ही धारा की गति निर्धारित होती है और हमें भ्रम इस कारण हुआ कि अगोचर रूप से हम स्वयं गतिमान हैं।

क्षण प्रति क्षण ऐतिहासिक पात्रों की गति का प्रेक्षण करने (अर्थात् वह सब, जो होता है, उसकी अनिवार्य शर्त – काल के प्रवाह में अनवरत गतिशीलता की शर्त को बहाल करके) और ऐतिहासिक पात्रों के साथ जनसाधारण के आवश्यक सम्बन्ध को ध्यान में रखने पर यही चीज़ हमारे सामने आयेगी।

जब जहाज़ एक दिशा में चलता है तो उसके आगे एक ही धारा रहती है; जब वह अक्सर दिशा बदलता है तो उसके आगे दौड़ती धारायें भी अक्सर बदलती हैं। पर वह चाहे जिधर भी मुड़े, सर्वत्र उसके आगे बढ़ने से पहले सामने आनेवाली धारा होगी।

चाहे कुछ भी क्यों न हो, पर सदा यही प्रतीत होगा कि उसके लिये पहले से ही अनुमान लगाया गया था और आदेश दिया गया था। जहाज़ चाहे जिधर भी जाये, पर धारा उसका निर्देशन किये बिना और उसकी गति को बढ़ाये बिना सदा उसके सामने फेन उगलती रहती है और दूर से हमें वह न केवल स्वतः चलती, बल्कि जहाज़ की गति

का निर्देशन करती भी प्रतीत होती है।

ऐतिहासिक पात्रों की इच्छा की केवल उन अभिव्यक्तियों की विवेचना करते हुए, जो घटनाओं के संदर्भ में आदेश सिद्ध हुईं, इतिहासकार सोचते थे कि घटनायें आदेशों पर निर्भर करती हैं। उन्हीं घटनाओं और उसी सम्बन्ध पर ग़ौर करते हुए, जो जनसाधारण और ऐतिहासिक पात्रों के बीच होता है, हमने पाया कि ऐतिहासिक पात्र और उनके आदेश घटनाओं पर निर्भर करते हैं। इस निष्कर्ष का निर्विवाद प्रमाण यह है कि चाहे कितने ही आदेश क्यों न दिये जायें, कोई घटना तब तक नहीं घटेगी, जब तक उसके अन्य कारण नहीं होंगे। किन्तु जैसे ही घटना घट जायेगी – चाहे वह जो भी हो – तो विभिन्न पात्रों द्वारा अनवरत रूप से व्यक्त की जा रही सभी इच्छाओं में कुछ ऐसी अवश्य मिल जायेंगी, जिन्हें अर्थ और समय की दृष्टि से घटना के संदर्भ में आदेश मान लिया जायेगा।

इस निष्कर्ष पर पहुंचकर हम इतिहास के निम्न दो मूल प्रश्नों के स्पष्ट और सकारात्मक उत्तर दे सकते हैं:

१. सत्ता क्या है?

२. वह कौन-सी शक्ति है जो जनगण को चलायमान करती है?

१. सत्ता अन्य व्यक्तियों के साथ किसी व्यक्ति विशेष का ऐसा सम्बन्ध है जिसके अंतर्गत यह व्यक्ति निष्पादित हो रही सामूहिक क्रिया के विषय में जितने ही अधिक मत, पूर्वाधार और औचित्य व्यक्त करता है, वह इस क्रिया में उतना ही कम भाग लेता है।

२. जनगण को न सत्ता चलायमान करती है, न बौद्धिक कार्य-कलाप, इन दोनों का योग भी नहीं, जैसाकि इतिहासकार सोचते थे, बल्कि **सभी** लोगों का कार्य-कलाप, जो किसी घटना में भ़ाग लेते हैं और सदा इस तरह समूहबद्ध होते हैं कि जो घटना में प्रत्यक्ष रूप से अधिकतम भाग लेते हैं अपने ऊपर न्यूनतम दायित्व लेते हैं और इसके विपरीत प्रत्यक्ष रूप में न्यूनतम भाग लेनेवाले अपने ऊपर अधिकतम दायित्व लेते हैं यानी नैतिक दृष्टि से सत्ता घटना का कारण लगती है; भौतिक दृष्टि से – वे लोग, जो सत्ता के अधीन हैं। पर चूंकि भौतिक के बिना नैतिक कार्य-कलाप असम्भव है, तो घटना का कारण न पहले में है और न दूसरे में, बल्कि दोनों के योग में है।

या अगर दूसरे शब्दों में कहें तो उस परिघटना के संदर्भ में,

जिसपर हम विचार कर रहे हैं, कारण की अवधारणा को लागू नहीं किया जा सकता।

अपने अन्तिम विश्लेषण में हम अनन्तता के चक्र, उस अन्तिम सीमा के पास पहुंच जाते हैं, जहां चिन्तन के प्रत्येक क्षेत्र में मानव की बुद्धि (अगर वह अपने विषय से खिलवाड़ नहीं करता) पहुंच जाती है। विद्युत ताप उत्पन्न करती है, ताप विद्युत उत्पन्न करता है। अणु एक-दूसरे को अपनी ओर खींचते हैं, अणु एक-दूसरे को अपने से दूर हटाते हैं।

ताप और विद्युत तथा अणुओं की अन्योन्यक्रिया की चर्चा करते हुए हम यह नहीं बता सकते कि ऐसा क्यों होता है और कहते हैं कि इनकी ऐसी ही प्रकृति है, इनका ऐसा ही नियम है। इतिहास की परिघटनाओं के बारे में भी यही कहा जा सकता है। क्यों युद्ध या क्रान्तियां होती हैं? हम नहीं जानते; हमें सिर्फ़ यही पता है कि किसी कार्य को निष्पादित करने के लिये लोग किन्हीं निश्चित समूहों-संगठनों का निर्माण करते हैं और सब उसमें भाग लेते हैं; और हम कहते हैं कि लोगों की ऐसी ही प्रकृति है, कि यही नियम है।

८

अगर इतिहास का वास्ता बाह्य परिघटनाओं से होता, तो इस सरल और स्पष्ट नियम को मान लेना काफ़ी होता और हम अपना तर्क-वितर्क समाप्त कर देते। किन्तु इतिहास का नियम मानव से सम्बन्ध रखता है। पदार्थ का कण हमसे यह नहीं कह सकता कि वह किसी दूसरे कण की ओर खिंचने तथा उससे दूर हटने की कोई आवश्यकता महसूस नहीं करता और यह सब झूठ है; पर मानव, जो इतिहास का विषय है, साफ़-साफ़ कहता है: मैं स्वतन्त्र हूं और इसलिये मैं नियमों से बंधा हुआ नहीं हूं।

इतिहास के हर क़दम पर मानव की इच्छा की स्वतन्त्रता के प्रश्न की उपस्थिति अनुभव होती है, हालांकि उसे उठाया नहीं जाता।

गम्भीर चिन्तन करनेवाले सभी इतिहासकारों को इस प्रश्न का

सामना करना पड़ता है। इतिहास की सभी असंगतियां और अस्पष्टतायें तथा वह ग़लत राह, जिसपर यह विद्या चल रही है, इन सब का कारण केवल यही है कि इस प्रश्न को हल नहीं किया गया।

यदि प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा स्वतन्त्र होती, यानी हर कोई वही कर सकता, जो वह चाहता, तो सारा इतिहास असम्बद्ध संयोगों की शृंखला ही होता।

अगर सहस्राब्दी के काल में लाखों-करोड़ों में से केवल एक ही मानव को स्वतन्त्र, अर्थात् अपनी इच्छानुसार काम करने की सम्भावना मिल जाती तो स्पष्ट है कि इस व्यक्ति का नियमों के विपरीत एक ही स्वतन्त्र कृत्य सम्पूर्ण मानवजाति के लिये किसी भी तरह के नियमों की उपस्थिति की सम्भावना को नष्ट कर देता।

अगर लोगों की क्रिया को नियंत्रित करनेवाला एक ही नियम है, तो स्वतन्त्र इच्छा नहीं हो सकती, क्योंकि लोगों की इच्छा इस नियम के अधीन होगी।

इस अन्तर्विरोध में इच्छा की स्वतन्त्रता का प्रश्न निहित है, जो प्राचीन काल से ही मानवजाति के श्रेष्ठतम मनीषियों को उद्वेलित करता रहा है और जिसे प्राचीन काल से उसके अपार महत्त्व को समझकर उठाया जाता रहा है।

सवाल यह है कि किसी भी दृष्टिकोण से, वह चाहे धार्मिक, ऐतिहासिक, नैतिक अथवा दार्शनिक हो, प्रेक्षण के पात्र के रूप में मानव का अध्ययन करते हुए हम अनिवार्यता के सामान्य नियम को अपने सामने पाते हैं जिसके वह उसी तरह अधीन है, जैसे कि दुनिया में बाक़ी सब कुछ। पर उसे अपनी अन्तर्दृष्टि से ऐसे पात्र के रूप में देखने पर, जिसकी हमें अपने भीतर चेतना होती है, हम अपने को स्वतन्त्र अनुभव करते हैं।

यह आन्तरिक चेतना आत्मसंज्ञान का विवेक से सर्वथा पृथक और स्वतन्त्र स्रोत है। विवेक के माध्यम से मानव स्वयं अपना पर्यवेक्षण करता है; पर उसे अपना संज्ञान केवल आत्मचेतना के माध्यम से होता है।

आत्मचेतना के बिना किसी पर्यवेक्षण और विवेक के अनुप्रयोग की कल्पना करना सम्भव नहीं।

समझने, प्रेक्षण करने और निष्कर्ष निकालने के लिये मानव

को सर्वप्रथम अपने जीवित होने का बोध होना चाहिये। मानव को इच्छाओं की अनुभूति से ही अपने जीवित होने का बोध होता है, अर्थात् उसे अपनी इच्छा की चेतना होती है। अपनी इच्छा के रूप में ही, जो उसके जीवन का मूल सार है, मानव अपनी स्वतन्त्रता अनुभव करता है और इसे ऐसा अनुभव किये बिना नहीं रह सकता।

अगर अपना प्रेक्षण करते समय मानव देखता है कि उसकी इच्छा सदा एक ही नियम से चलती है (चाहे वह आहार ग्रहण करने की आवश्यकता, मस्तिष्क के कार्य या किसी और चीज़ का प्रेक्षण करता है), वह अपनी इच्छा की सदा एक ही अभिमुखता को उसके परिसीमन के अलावा और कुछ नहीं मान सकता। किन्तु जो स्वतन्त्र नहीं, वह सीमित भी नहीं हो सकता। मानव की इच्छा उसे इसीलिये परिसीमित लगती है कि उसे केवल स्वतन्त्र होने के रूप में ही इसकी चेतना है।

आप कहते हैं: मैं स्वतन्त्र नहीं हूं। किन्तु मैं अपना हाथ ऊपर उठाता हूं और फिर उसे नीचे गिरा देता हूं। हर कोई समझता है कि यह उत्तर तर्कहीन होते हुए भी स्वतन्त्रता का अकाट्य प्रमाण है।

यह उत्तर ऐसी चेतना या बोध की अभिव्यक्ति है जो विवेक से स्वतन्त्र है।

अगर स्वतन्त्रता की चेतना आत्मसंज्ञान का विवेक से पृथक और स्वतन्त्र स्रोत न होती, तो वह तर्क और अनुभव के अधीन होती; पर वास्तव में ऐसा नहीं है और ऐसा सोचना भी असम्भव है।

अनेक अन्य तर्कों से प्रत्येक व्यक्ति को यह पता चल जाता है कि प्रेक्षण के पात्र के रूप में वह निश्चित नियमों के अधीन है और मानव उन्हें स्वीकार कर लेता है तथा उन्हें जानने के बाद कभी भी ज्ञात नियम के विरुद्ध – यह गुरुत्वाकर्षण का नियम हो या अभेद्यता का – संघर्ष नहीं करता। परन्तु अनुभवों और तर्कों की वहीं शृंखला उसे दर्शाती है कि पूर्ण स्वतन्त्रता, जिसकी उसे अपने भीतर चेतना होती है – असम्भव है, कि उसकी प्रत्येक क्रिया उसकी विशिष्ट गठन, उसके स्वभाव और उसे प्रभावित करनेवाले उत्प्रेरकों पर निर्भर करती है; किन्तु मानव इन प्रयोगों और तर्कों के निष्कर्षों को कभी भी स्वीकार नहीं करता।

अनुभव और तर्क से यह जानकर कि पत्थर नीचे गिरता है,

मानव इसमें निश्चय ही विश्वास करता है और हर बार ही उसे ज्ञात हुए इस नियम की पूर्त्ति की अपेक्षा करता है।

परन्तु इसी तरह निश्चित रूप से यह जानकर कि उसकी इच्छा नियमों के अधीन है, वह इसमें विश्वास नहीं करता और कर भी नहीं सकता।

अनुभव और तर्क मानव को चाहे कितनी बार ही यह दिखायें कि एक जैसी परिस्थितियों में, उसी स्वभाव के साथ वह वही करेगा, जो उसने पहले किया था, फिर भी उन्हीं परिस्थितियों में और उसी स्वभाव के साथ हज़ारवीं बार वही क्रिया शुरू करते समय, जिसकी परिणति सदा एक ही रही, वह अपने को निर्विवाद रूप से आश्वस्त महसूस करता है कि अपनी मर्ज़ी से वैसे ही काम कर सकता है, जैसे अनुभव की प्राप्ति से पहले करता था। कोई भी व्यक्ति, वह वहशी हो या चिन्तक, तर्क और अनुभव ने उसे इसका चाहे कितना ही अकाट्य प्रमाण दिया हो कि एक जैसी परिस्थितियों में दो भिन्न कृत्यों की कल्पना करना असम्भव है, महसूस करता है कि इस बेतुकी धारणा के बिना (जो स्वतन्त्रता का सार है) वह जीवन की कल्पना तक नहीं कर सकता। वह महसूस करता है कि यह चाहे कितना ही असम्भव क्यों न हो, पर ऐसा ही है; क्योंकि स्वतन्त्रता की इस धारणा के बिना वह न केवल जीवन को नहीं समझ पायेगा, बल्कि एक पल भी जीवित नहीं रह सकेगा।

वह इसलिये नहीं जीवित रह सकेगा कि लोगों की सभी उत्कण्ठायें, जीने की सभी उत्प्रेरणायें वास्तव में केवल स्वतन्त्रता की वृद्धि की ही उत्कण्ठायें हैं। अमीरी और ग़रीबी, ख्याति और गुमनामी, सत्ता और दासता, शक्ति और दुर्बलता, स्वास्थ्य और बीमारी, शिक्षा और अज्ञान, श्रम और विश्राम, परितृप्ति और क्षुधा, गुण और दोष – ये केवल स्वतन्त्रता की ही न्यूनाधिक कोटियां हैं।

केवल मृत मानव ही स्वतन्त्र नहीं होता।

अगर विवेक को स्वतन्त्रता की अवधारणा ऐसी ही निरर्थक असंगति लगती है, जैसे काल के एक ही क्षण में दो कृत्य करना या किसी कारण के बिना किसी परिणाम का सम्भव होना तो यह सिर्फ़ यही सिद्ध करता है कि चेतना या बोध विवेक के अधीन नहीं होते।

स्वतन्त्रता की यही दृढ़ और निर्विवाद, अनुभव और तर्क से

मुक्त चेतना, जिसको सभी चिन्तक मान्यता देते हैं और किसी अपवाद के बिना जिसकी सभी लोगों को अनुभूति होती है, यही चेतना, जिसके बिना मानव की कल्पना ही नहीं की जा सकती, प्रश्न का दूसरा पक्ष है।

मानव सर्वशक्तिमान, सर्वकल्याणकारी और सर्वज्ञाता ईश्वर की सृष्टि है। आखिर पाप क्या है, जिसकी अवधारणा मानव के स्वतन्त्रता-बोध से उत्पन्न होती है? यह धर्मशास्त्र का प्रश्न है।

लोगों की क्रियायें सांख्यिकी द्वारा व्यक्त सामान्य और अपरिवर्तनीय नियमों के अधीन हैं। समाज के सम्मुख मानव का उत्तरदायित्व क्या है, जिसकी अवधारणा मानव के स्वतन्त्रता के बोध से उत्पन्न होती है? यह विधिशास्त्र का प्रश्न है।

मानव के कृत्यों का उद्‌गम उसके जन्मजात स्वभाव और उसे प्रभावित करनेवाले अभिप्रेरकों में निहित है। स्वतन्त्रता के बोध से उत्पन्न आत्मा की आवाज़ और कृत्यों के अच्छे और बुरे होने का बोध क्या है? यह नीतिशास्त्र का प्रश्न है।

मानवजाति के सामान्य जीवन के संदर्भ में मानव उन नियमों के अधीन लगता है जो इस जीवन को निर्धारित करते हैं। किन्तु इस संदर्भ के बाहर वही मानव स्वतन्त्र लगता है। जनगण और मानवजाति के अतीत के जीवन को किस प्रकार देखना चाहिये – लोगों के स्वतन्त्र या अस्वतन्त्र कार्य की उपज के रूप में? यह इतिहास का प्रश्न है।

केवल ज्ञान के सरलीकृत प्रसार के हमारे दम्भी काल में अज्ञान के अत्यन्त शक्तिशाली साधन – पुस्तक प्रकाशन के फलस्वरूप इच्छा की स्वतन्त्रता का प्रश्न ऐसे धरातल पर रख दिया गया है, जहां यह प्रश्न ही नहीं रह जाता। हमारे काल में अधिकांश तथाकथित 'अग्रणी' लोग (अर्थात् अज्ञानियों की भीड़) प्रश्न के एक पक्ष का अध्ययन करने-वाले प्रकृतिविज्ञानियों के कार्यों को सम्पूर्ण प्रश्न का समाधान मान बैठे हैं।

ऐसे लोग यह कहते, लिखते और छापते हैं कि आत्मा और स्वतन्त्र-ता का कोई अस्तित्व नहीं है, क्योंकि मानव का जीवन मांसपेशियों की गतियों में व्यक्त होता है और मांसपेशियों की क्रियाशीलता स्नायुतन्त्र की क्रिया पर निर्भर करती है; आत्मा और स्वतन्त्रता का इसलिये अस्तित्व नहीं है कि काल की किसी अज्ञात अवधि में बन्दरों से हमारी उत्पत्ति हुई, पर उन्हें तनिक भी यह ख़्याल नहीं आता कि हज़ारों

वर्ष पहले सभी धर्मों ने, सभी चिन्तकों ने अनिवार्यता के उस नियम को न केवल स्वीकार किया, बल्कि उसका कभी खंडन ही नहीं किया गया, जिसको वे अब शरीरविज्ञान और तुलनात्मक जन्तुविज्ञान की सहायता से सिद्ध करने के इतने अधिक प्रयास कर रहे हैं। वे यह नहीं देखते कि इस प्रश्न में प्रकृतिविज्ञान की भूमिका उसके केवल एक पक्ष को उजागर करने तक सीमित है। कारण कि यदि प्रेक्षण की दृष्टि से विवेक और इच्छा मस्तिष्क के केवल स्राव मात्र हैं और यह कि यदि विकास के आम नियम के अनुसार काल की अज्ञात अवधि में मानव निम्न जीवों से विकसित हो सका, तो यह सब, सभी धर्मों और दार्शनिक सिद्धान्तों द्वारा हज़ारों साल पहले स्वीकृत इस सत्य को ही एक नये पक्ष से स्पष्ट करता है कि विवेक की दृष्टि से मानव अनिवार्यता के नियमों के अधीन है, पर इससे प्रश्न के समाधान में रत्ती भर भी प्रगति नहीं होती, जिसका एक दूसरा, स्वतन्त्रता के बोध पर आधारित विलोमी पक्ष है।

अगर काल की एक अज्ञात अवधि में बन्दरों से लोगों की उत्पत्ति हुई, तो यह उतना ही स्पष्ट है, जितना यह कि काल की ज्ञात अवधि में मुट्ठी भर मिट्टी से लोगों की उत्पत्ति हुई (पहले मामले में x काल है और दूसरे में – उत्पत्ति) और यह प्रश्न कि मानव के स्वतन्त्रता-बोध को अनिवार्यता के उस नियम के साथ किस प्रकार जोड़ा जाये, जिसके अधीन मानव होता है, तुलनात्मक शरीरविज्ञान और जन्तुविज्ञान से हल नहीं हो सकता, क्योंकि मेढ़क, ख़रगोश और बन्दर में हम केवल मांसपेशियों और स्नायुतन्त्र की क्रिया को देख सकते हैं, जबकि मानव में – मांसपेशियों और स्नायुतन्त्र की क्रिया के अलावा चेतना भी पाते हैं।

प्रकृतिविज्ञानी और उनके प्रशंसक, जो यह समझते हैं कि वे इस प्रश्न को हल कर रहे हैं, उन पलस्तर करनेवालों की तरह हैं जिन्हें गिरजे की एक दीवार पर एक तरफ़ से पलस्तर करने का काम सौंपा गया हो और जो ओवरसीयर की अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए अपने जोश में खिड़कियों, देवचित्रों, मचानों और अभी पूरी तरह से न बनी दीवारों पर भी पलस्तर कर देते हैं और इस बात से खुश होते हैं कि उनके पलस्तर करनेवालों के दृष्टिकोण से सब कुछ समतल और बढ़िया हो गया है।

स्वतन्त्रता और अनिवार्यता के प्रश्न के समाधान में ज्ञान की उन शाखाओं की तुलना में, जिनमें इस प्रश्न का समाधान किया गया, इतिहास को यह सुविधा है कि इतिहास के लिये यह प्रश्न मानव की इच्छा के मूल सार से नहीं, बल्कि अतीत और निश्चित परिस्थितियों में इस इच्छा की अभिव्यक्ति के बारे में धारणा से सम्बन्धित है।

इस प्रश्न के समाधान के मामले में अन्य विज्ञानों के बीच इतिहास की वही स्थिति है जो चिन्तनपरक विज्ञानों के बीच प्रयोगात्मक की होती है।

मानव की इच्छा नहीं, बल्कि उसके बारे में हमारी धारणा इतिहास की विषय-वस्तु है।

और इस कारण धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र और दर्शनशास्त्र की तरह इतिहास के लिये स्वतन्त्रता और अनिवार्यता के योग की हल न होनेवाली रहस्यपूर्ण गुत्थी का अस्तित्व नहीं है। इतिहास मानव के जीवन की विवेचना करता है, जिसमें इन दो विषमताओं का संयोग हो चुका होता है।

इसके बावजूद कि प्रत्येक घटना अंशतः स्वतन्त्र, अंशतः अनिवार्य होती है, वास्तविक जीवन में प्रत्येक ऐतिहासिक घटना, मानव की प्रत्येक क्रिया को विषमता की तनिक-सी अनुभूति के बिना काफ़ी स्पष्ट और निश्चित रूप से समझा जाता है।

इस प्रश्न के समाधान के लिये कि स्वतन्त्रता और अनिवार्यता का किस तरह योग होता है और इन दो अवधारणाओं का सार क्या है, इतिहास का दर्शन अन्य विज्ञानों के विपरीत मार्ग अपना सकता है और उसे अपनाना भी चाहिये। स्वतन्त्रता और अनिवार्यता की परिभाषा बनाकर जीवन की परिघटनाओं को इन परिभाषाओं की कसौटी पर कसने के बजाय इतिहास को अपनी असंख्य परिघटनाओं से, जो सदा स्वतन्त्रता और अनिवार्यता पर निर्भर होती हैं, स्वयं स्वतन्त्रता और अनिवार्यता की अवधारणाओं की परिभाषायें निर्धारित करनी चाहिये।

एक या अनेक व्यक्तियों के किसी भी कार्य-कलाप की विवेचना करते हुए हम उसे अंशतः मानव की स्वतन्त्रता और अंशतः अनिवार्यता के नियमों की उपज के अलावा और कुछ नहीं मानते।

चाहे हम जनगण के प्रयाण और बर्बरों के हमलों की चर्चा करें या नेपोलियन तृतीय के आदेशों की या किसी व्यक्ति के एक घंटा पहले किये गये इस कृत्य की कि उसने टहलने की कई दिशाओं में से एक चुनी – हमें इनमें किसी भी तरह की विषमता की अनुभूति नहीं होती। इन लोगों के कृत्यों का निर्देशन करनेवाला स्वतन्त्रता और अनिवार्यता का अनुपात हमारे लिये स्पष्ट रूप से निश्चित है।

हम किसी परिघटना की जिस दृष्टिकोण से विवेचना करते हैं, उसकी भिन्नता के कारण अधिक या कम स्वतन्त्रता की हमारी धारणा अक्सर भिन्न हो सकती है; मानव की प्रत्येक क्रिया हमें स्वतन्त्रता और अनिवार्यता के निश्चित योग के रूप में सदा एक जैसी प्रतीत होती है। विवेचनाधीन प्रत्येक क्रिया में हम स्वतन्त्रता और अनिवार्यता के निश्चित अंश देखते हैं। और सदा किसी भी क्रिया में हम जितनी अधिक स्वतन्त्रता देखते हैं, उतनी ही कम अनिवार्यता; और जितनी अधिक अनिवार्यता, उतनी ही कम स्वतन्त्रता।

जिस दृष्टिकोण से किसी कृत्य की विवेचना की जाती है, स्वतन्त्रता और अनिवार्यता का अनुपात उसके अनुसार घटता और बढ़ता है, पर यह सदा व्युत्क्रमानुपाती यानी एक-दूसरे के प्रतिकूल रहता है।

खुद डूबता हुआ व्यक्ति किसी दूसरे को पकड़कर उसे भी अपने साथ डुबोनेवाला व्यक्ति या बच्चे को दूध पिलानेवाली और भूख के कारण बेहाल होकर रोटी की चोरी करनेवाली मां या फ़ौज में आदेश मिलने पर असहाय मानव की हत्या करनेवाला अनुशासन का आदी सैनिक – उस व्यक्ति को, जो उन परिस्थितियों को जानता है जिनमें ये लोग थे, कम दोषी यानी कम स्वतन्त्र और अनिवार्यता के नियम के अधिक अधीन लगते हैं और किसी उस दूसरे व्यक्ति को अधिक स्वतन्त्र प्रतीत होते हैं, जो यह नहीं जानता कि डूब रहे व्यक्ति के सामने कोई चारा नहीं था, कि मां भूखी थी, कि सैनिक फ़ौज में था, आदि, आदि। ठीक इसी तरह बीस वर्ष पहले हत्या करनेवाला और उसके बाद शान्ति से और किसी को कोई तक़लीफ़ दिये बिना समाज में रहनेवाला व्यक्ति कम दोषी लगता है; हत्यारे का कृत्य – उस व्यक्ति को अनिवार्यता के नियम के अधिक अधीन लगता है, जो बीस साल बीतने पर उसके कृत्य पर विचार करता है और उस व्यक्ति को अधिक स्वतन्त्र लगता है जिसने इसी कृत्य पर इसके एक दिन बाद विचार किया था। ठीक

इसी प्रकार पागल, शराबी या अति उत्तेजित व्यक्ति का प्रत्येक कृत्य उस आदमी को कम स्वतन्त्र और अधिक अनिवार्य लगता है जो उक्त लोगों की मनोदशा को जानता है और जो यह नहीं जानता, उसे उनका प्रत्येक कृत्य अधिक स्वतन्त्र और कम अनिवार्य लगता है। इन सभी मामलों में कृत्य पर जिस दृष्टिकोण से विचार किया जाता है, उसके अनुसार स्वतन्त्रता की अवधारणा बढ़ या घट जाती है और उसी के अनुपात में अनिवार्यता की अवधारणा कम या ज़्यादा हो जाती है। इस प्रकार अनिवार्यता जितनी अधिक होती है, स्वतन्त्रता उतनी ही कम। और इसके उलट भी।

धर्म, मानवता की सहज-बुद्धि, विधिशास्त्र और स्वयं इतिहास अनिवार्यता और स्वतन्त्रता के बीच इस सम्बन्ध को एक ही तरह से समझते हैं।

उन सभी मामलों में, जिनमें स्वतन्त्रता और अनिवार्यता के अनुपात के बारे में हमारी धारणा बढ़ती और घटती है, किसी अपवाद के बिना केवल तीन आधार होते हैं:

१. कृत्य करनेवाले मानव का बाह्य जगत से सम्बन्ध,

२. काल से उसका सम्बन्ध और

३. कृत्य को प्रेरित करनेवाले कारणों से उसका सम्बन्ध।

पहला आधार बाह्य जगत के साथ मानव का अधिक या कम दिखाई देनेवाला सम्बन्ध है, उस निश्चित स्थान के बारे में हमारी न्यूनाधिक स्पष्ट समझ है जो प्रत्येक मानव को एक ही समय में उसके साथ विद्यमान सब कुछ के संदर्भ में प्राप्त है। यह वह आधार है जिसके फलस्वरूप यह स्पष्ट हो जाता है कि डूबता हुआ व्यक्ति तट पर खड़े व्यक्ति की अपेक्षा कम स्वतन्त्र और अनिवार्यता के अधिक अधीन है; यह वह आधार है जिसके फलस्वरूप अन्य लोगों के साथ घनिष्ठ सम्बन्धों और काम, परिवार, नौकरी तथा उद्यमों से जुड़े और घनी आबादीवाले स्थान पर रहनेवाले व्यक्ति के कार्य-कलाप निश्चय ही किसी जगह एकान्त में एकाकी रहनेवाले व्यक्ति के कृत्यों की तुलना में कम स्वतन्त्र तथा अनिवार्यता के अधिक अधीन होते हैं।

अगर हम किसी अकेले व्यक्ति पर, परिवेश से उसके सम्बन्धों के बिना विचार करते हैं, तो उसकी प्रत्येक क्रिया हमें स्वतन्त्र लगती है। किन्तु अगर हम परिवेश से उसके किसी भी सम्बन्ध को देखते

हैं, उसके सहसम्बन्ध को ध्यान में रखते हैं, यह सम्बन्ध चाहे जो भी हो – किसी व्यक्ति के साथ उसकी बातचीत, किसी पुस्तक का पठन, उसके द्वारा किये गये काम, उसके चारों ओर विद्यमान हवा और उसके आस-पास की चीज़ों पर पड़नेवाले प्रकाश तक से उसका सम्बन्ध – तो हम अनुभव करते हैं कि इनमें से प्रत्येक परिस्थिति का उसपर प्रभाव पड़ता है और वह उसके कार्य-कलाप के कम से कम एक पक्ष का तो अवश्य निर्देशन करती है। और इन प्रभावों को हम जितना अधिक पायेंगे, इस व्यक्ति की स्वतन्त्रता के बारे में हमारी धारणा उतनी ही कम हो जायेगी और उस अनिवार्यता के बारे में धारणा बढ़ जायेगी जिसके वह अधीन है।

२. दूसरा आधार है: बाह्य जगत के साथ मानव का अधिक या कम सीमा तक दृष्टिगोचर कालगत सम्बन्ध; मानव की क्रिया को कालक्रम में प्राप्त स्थान के बारे में हमारी न्यूनाधिक स्पष्ट समझ। यह वह आधार है जिसके फलस्वरूप प्रथम मनुष्य का पतन और परिणामस्वरूप मानवजाति की उत्पत्ति, आधुनिक मानव के विवाह की तुलना में स्पष्टतः कम स्वतन्त्र लगती है। यही वह आधार है जिसके फलस्वरूप शताब्दियां पहले रहनेवाले और मेरे साथ काल से सम्बन्धित लोगों का जीवन और कार्य-कलाप मुझे इतना स्वतन्त्र नहीं लग सकता जितना कि आधुनिक जीवन जिसके परिणाम मुझे अभी अज्ञात हैं।

इस सम्बन्ध में अधिक या कम स्वतन्त्रता और अनिवार्यता के बारे में हमारी धारणा की कसौटी कृत्य और उसके मूल्यांकन के बीच अधिक या कम कालांतर पर निर्भर करती है।

अगर मैं अपने द्वारा एक मिनट पहले लगभग उन्हीं परिस्थितियों में किये गये कृत्य पर विचार करता हूं, जिनमें मैं इस समय हूं, तो मुझे अपना कृत्य निश्चय ही स्वतन्त्र लगता है। पर अगर मैं एक महीने पहले किये गये कृत्य पर विचार करता हूं तो भिन्न परिस्थितियों में होने के कारण मैं यह स्वीकार किये बिना नहीं रह सकता कि अगर यह कृत्य न किया गया होता तो इसके फलस्वरूप होनेवाली बहुत-सी लाभकारी, प्रिय और आवश्यक बातें भी न हुई होतीं। अगर मैं बहुत समय पहले, दस वर्ष या उससे पहले किये गये कृत्य पर विचार करूं तो उसके परिणाम मुझे और भी स्पष्ट लगेंगे तथा मुझे यह अनुमान लगाने में कठिनाई होगी कि अगर यह कृत्य न हुआ होता, तो

क्या होता। अतीत की अपनी यादों के मामले में मैं जितना पीछे जाऊंगा या जितनी देर से मैं अपना मूल्यांकन करूंगा, जो वास्तव में एक ही बात होगी, कृत्य की स्वतन्त्रता के बारे में मेरा विचार उतना ही संदिग्ध होता जायेगा।

इतिहास में भी हम मानवजाति के आम कार्यों में स्वतन्त्र इच्छा की सहभागिता के बारे में इसी अनुक्रम को सही पाते हैं। कुछ ही समय पहले की कोई घटना हमें निस्सन्देह उन लोगों का कृत्य लगती है, जिन्हें हम जानते हैं, किन्तु अधिक पुरानी घटना में हम उसके अवश्य-म्भावी परिणामों को देखते हैं, जिनके अलावा हम कोई और अनुमान नहीं लगा सकते। और घटनाओं के अध्ययन में हम जितना अधिक पीछे की ओर लौटते जाते हैं, वे हमें उतनी ही कम स्वतन्त्र लगती हैं।

आस्ट्रिया-प्रशा युद्ध हमें निर्विवाद रूप से चालाक बिस्मार्क की गतिविधियों आदि का परिणाम लगता है।

नेपोलियन की लड़ाइयां, बेशक कुछ संदेह के साथ ही सही, अभी हमें नायकों की इच्छा की उपज लगती हैं; किन्तु धर्म-युद्धों के रूप में हम एक ऐसी घटना को देखते हैं, जिसका एक अपना विशिष्ट स्थान है और जिसके बिना यूरोप के आधुनिक इतिहास की कल्पना तक करना असम्भव है, हालांकि उनके इतिहास-लेखकों को यह घटना केवल कुछ पात्रों की इच्छा की उपज ही लगती थी। जनगण के देशांतरण के बारे में आज किसी के मन में यह विचार तक नहीं आता कि अटीला* के स्वेच्छाचार पर यूरोपीय जगत का नवीनीकरण निर्भर करता था। इतिहास में हम जितना पीछे हटते जाते हैं घटना को जन्म देनेवाले लोगों की स्वतन्त्रता उतनी ही संदिग्ध लगने लगती है और अनि-वार्यता का नियम उतना ही स्पष्ट हो जाता है।

३. तीसरा आधार हमारे लिये कारणों के उस अन्तहीन सहसम्बन्ध को समझने की अधिक या कम सुगमता है जो विवेक की अनिवार्य मांग है और जिसमें समझ में आ सकनेवाली प्रत्येक परिघटना और इसीलिये मानव की प्रत्येक क्रिया का पहली के परिणाम और अगली क्रियाओं के कारण के रूप में अपना निश्चित स्थान होना चाहिये।

---

* अटीला (?–४५३) – हुन्नों का सेनाध्यक्ष। – सं०

यह वह आधार है जिसके फलस्वरूप हमें अपनी और अन्य लोगों की क्रियायें तब उतनी ही अधिक स्वतन्त्र और अनिवार्यता के उतनी कम अधीन लगती हैं, जितना अधिक हम शरीरविज्ञान, मनोविज्ञान और इतिहास के उन नियमों से अवगत होते हैं, जिनके अधीन मानव होता है, और हमने क्रिया के शरीरवैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक या ऐतिहासिक कारण को जितना अधिक सही भांपा होता है; तथा जब स्वयं प्रेक्षणाधीन क्रिया अधिक सरल और उस व्यक्ति का स्वभाव और बुद्धि अधिक सामान्य होती है।

जब हम कृत्य के कारण को बिल्कुल नहीं समझते: यह कृत्य चाहे अच्छा या बुरा अथवा न अच्छा और न बुरा हो,—हम ऐसे कृत्य में स्वतन्त्रता का अधिक अंश देखते हैं। बुरे कृत्य के मामले में हम अधिक ज़ोर से दंड की मांग करते हैं; अच्छे कृत्य के मामले में हम अधिक प्रशंसा करते हैं। मामले के अच्छा या बुरा न होने पर हम अधिकतम वैयक्तिकता, मौलिकता और स्वतन्त्रता को मान्यता देते हैं। किन्तु यदि हमें कृत्य के असंख्य कारणों में से कोई एक भी ज्ञात हो जाता है, तब हम फ़ौरन अनिवार्यता के एक निश्चित अंश को मान लेते हैं। और बुरे कृत्य के लिये सज़ा देने की कम मांग करते हैं, अच्छे कृत्य की कम प्रशंसा करते हैं, मौलिक लगनेवाले कृत्य में कम स्वतन्त्रता देखते हैं। यह तथ्य कि कुकर्मी दुष्टों के बीच पलकर बड़ा हुआ, उसके दोष को कम कर देता है। मां-बाप की निस्स्वार्थता, पुरस्कार पाने की सम्भावना से प्रेरित निस्स्वार्थता को किसी भी कारण से न प्रेरित होनेवाली निस्स्वार्थता की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है और इसलिये वह कम सहानुभूति के योग्य है, कम स्वतन्त्र है। किसी संप्रदाय या दल के संस्थापक अथवा आविष्कारक का हम पर तब कम प्रभाव पड़ता है, जब हमें यह मालूम होता है कि उसके कार्य-कलाप के लिये कैसे और किसके द्वारा पथ प्रशस्त किया गया। अगर हम अनुभवों से समृद्ध हैं और हमारा प्रेक्षण लोगों की क्रियाओं में कारणों और परिणामों के बीच सहसम्बन्ध की खोज की ओर निरन्तर अभिमुख है, तो हम जितने सही तौर पर परिणामों को कारणों से जोड़ेंगे, लोगों की क्रियायें हमें उतनी ही अधिक अनिवार्य और उतनी ही कम स्वतन्त्र लगेंगी। अगर विचाराधीन क्रियायें सरल हैं और हमारे पास प्रेक्षण के लिये ऐसी असंख्य क्रियायें हैं तो उनकी अनिवार्यता के बारे में हमारी

धारणा और भी पूर्ण होगी। बेईमान बाप के बेटे की बेईमानी, किन्हीं ख़ास परिस्थितियों की शिकार औरत की बदचलनी, शराबी की फिर से शराबख़ोरी, इत्यादि ऐसे कृत्य हैं जो हमें उतने ही कम स्वतन्त्र लगते हैं, जितना अधिक हम उनके कारणों को समझते हैं। अगर स्वयं वह मनुष्य भी, जिसकी क्रिया पर हम विचार कर रहे हैं, बुद्धि के विकास के न्यूनतम स्तर पर है, जैसे बालक, पागल, मूर्ख, तो क्रिया के कारणों, स्वभाव और बुद्धि के निम्न स्तर को जानते हुए, हम इतनी अधिक अनिवार्यता और इतनी कम स्वतन्त्रता देखते हैं कि जैसे ही हमें क्रिया को जन्म देनेवाले कारण का पता चलता है, वैसे ही हम कृत्य की भविष्यवाणी कर सकते हैं।

सभी दंड-विधानों में अपराधों के अनुत्तरदायित्व और दोष को कम करनेवाली परिस्थितियों के यही तीन आधार हैं। उत्तरदायित्व इन बातों पर अधिक या कम प्रतीत होता है कि हमें उन परिस्थितियों का अधिक या कम ज्ञान है जिनमें वह व्यक्ति था, जिसका कृत्य विचाराधीन है, तथा इसपर भी कि कृत्य और उसके मूल्यांकन के बीच अधिक या कम कालांतर है और कृत्य के कारणों की हमारी समझ अधिक है या कम।

१०

इस प्रकार, बाह्य जगत से अधिक या कम सम्बन्ध, कालक्रम की अधिक या कम दूरी और उन कारणों पर, जिनमें हम मानव के जीवन की परिघटना पर विचार करते हैं, अधिक या कम निर्भरता के अनुसार स्वतन्त्रता और अनिवार्यता के बारे में हमारी धारणा क्रमशः घटती या बढ़ती जाती है।

इसलिये अगर हम किसी मानव की ऐसी स्थिति पर विचार कर रहे हैं, जिसमें बाह्य जगत से उसका सम्बन्ध अधिकतम विदित है, उसके द्वारा किये गये कृत्य और उसके मूल्यांकन के समय के बीच काल का अधिकतम अंतर है और कृत्य के कारण अत्यन्त सुगम हैं, तो हमें अधिकतम अनिवार्यता और न्यूनतम स्वतन्त्रता का पता चलता है।

अगर हम बाह्य परिस्थितियों पर मानव की न्यूनतम निर्भरता की हालत में विचार करते हैं, अगर उसकी क्रिया कुछ ही समय पहले हुई और उसकी क्रिया के कारण हमारी समझ के बाहर हैं, तो हमें न्यूनतम अनिवार्यता और अधिकतम स्वतन्त्रता का बोध होगा।

किन्तु दोनों ही स्थितियों में हम अपने दृष्टिकोण को चाहे कितना ही क्यों न बदलें, उस सम्बन्ध को चाहे कितना ही स्पष्ट करने का प्रयास क्यों न करें, जो मानव और बाह्य जगत के बीच है या हमें वह कितना ही सुगम क्यों न लगे, कालावधि को हम चाहे कितना ही क्यों न घटायें या बढ़ायें, कारण हमारे लिये कितने ही अबोध या सुगम क्यों न हों – हम कभी भी न तो पूर्ण स्वतन्त्रता और न पूर्ण अनिवार्यता की ही कल्पना कर पायेंगे।

१. हम बाह्य जगत के प्रभाव से मुक्त मानव की चाहे कितनी ही कल्पना क्यों न करें, पर हम कभी भी दिक् में स्वतन्त्रता की धारणा नहीं पा सकते। मानव की प्रत्येक क्रिया उसके परिवेश और स्वयं मानव के शरीर से भी अनिवार्य रूप से अनुबद्ध है। मैं हाथ उठाता हूं और उसे नीचे कर लेता हूं। अपनी क्रिया मुझे स्वतन्त्र लगती है, किन्तु अपने से यह प्रश्न पूछकर: क्या मैं सभी दिशाओं में हाथ उठा सकता था – मैं देखता हूं कि मैंने हाथ उस दिशा में उठाया जिसमें इस क्रिया के लिये मेरे चारों ओर की वस्तुएं और मेरे शरीर की रचना भी कम से कम बाधा बन सकती थीं। अगर सभी सम्भव दिशाओं में से मैंने कोई एक चुनी, तो मैंने केवल इसलिये ऐसा किया कि इस दिशा में कम बाधायें थीं। इस हेतु कि मेरी क्रिया स्वतन्त्र हो, यह आवश्यक है कि उसके सामने कोई बाधा न आये। स्वतन्त्र मानव की कल्पना करने के लिये हमें उसे दिक् से अनपेक्ष मानना पड़ेगा जो स्पष्टतः असम्भव है।

२. हम किसी कृत्य के मूल्यांकन के समय को उस कृत्य के किये जाने के समय के चाहे कितना भी पास क्यों न लायें, पर हम काल के प्रभाव से स्वतन्त्रता की धारणा कभी नहीं प्राप्त कर सकेंगे। अगर मैं एक सेकंड पहले के कृत्य पर विचार करता हूं, तब भी मुझे कृत्य के स्वतन्त्र न होने को स्वीकार करना होगा, क्योंकि कृत्य काल के उस क्षण के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है जिसमें वह हुआ। क्या मैं अपना हाथ उठा सकता हूं? और मैं उसे उठाता हूं; किन्तु मैं

अपने से पूछता हूं: काल के उस क्षण में, जो बीत चुका है, क्या मैं हाथ नहीं भी उठा सकता था? इसके बारे में आश्वस्त होने के लिये मैं अगले क्षण हाथ नहीं उठाता हूं। पर मैं अब अपने को उस पहले क्षण में हाथ उठाने से नहीं रोक रहा हूं, जब मैंने स्वतन्त्रता के बारे में प्रश्न उठाया था। काल बीत चुका है जिसे रोके रखना मेरे बस में नहीं था, और वह हाथ जिसे मैंने तब उठाया और वह हवा जिसमें मैंने तब वह क्रिया की, अब न तो वही हवा है जो अब मेरे चारों ओर है और न हाथ भी वही है, जिसे अब मैं नहीं हिला रहा हूं। वह क्षण, जिसमें पहली हरकत हुई, नहीं लौटाया जा सकता, और उस क्षण में मैं केवल एक ही हरकत कर सकता था, और चाहे मैं जो भी हरकत करता, वह केवल एक ही हरकत हो सकती थी। यह तथ्य कि मैंने अगले क्षण हाथ नहीं उठाया, इस चीज़ को सिद्ध नहीं करता कि मैं उसे नहीं भी उठा सकता था। और चूंकि काल के एक क्षण में मैं सिर्फ़ एक ही हरकत कर सकता था, तो वह कोई दूसरी हरकत हो ही नहीं सकती थी। इसके स्वतन्त्र होने की कल्पना करने के लिये अतीत और भविष्य की सीमा पर वर्तमान में इसकी कल्पना करनी चाहिये अर्थात् काल से अनपेक्ष, जो कि असम्भव है।

३. किसी कृत्य के कारण को समझ पाना कितना ही कठिन क्यों न हो, किन्तु हम कभी भी पूर्ण स्वतन्त्रता की धारणा, अर्थात् कारण की अनुपस्थिति की धारण को कभी नहीं प्राप्त कर सकेंगे। अपने या पराये कृत्य में इच्छा की अभिव्यक्ति का कारण हमारे लिये चाहे कितना ही अबोधगम्य क्यों न हो, बुद्धि की सर्वप्रथम मांग यही होती है कि कारण का अनुमान लगाया जाये और उसकी खोज की जाये, जिसके बिना किसी भी परिघटना की कल्पना तक नहीं की जा सकती। मैं किसी भी कारण पर निर्भर न होनेवाला कृत्य करने के लिये हाथ उठाता हूं, पर यही चीज़ कि मैं बिना कारण के कृत्य करना चाहता हूं, मेरे कृत्य का कारण है।

किन्तु यदि हम सभी प्रभावों से मुक्त किसी मानव की कल्पना कर भी लें और वर्तमान में किसी भी कारण के बिना किये गये उसके क्षणिक कृत्य पर विचार करते हुए अनिवार्यता के तत्त्व को न्यूनतम यानी शून्य के बराबर मान लें, तब भी हम मानव की पूर्ण स्वतन्त्रता की धारणा तक नहीं पहुंच पायेंगे, क्योंकि बाह्य जगत के प्रभावों को

ग्रहण न करनेवाला, काल से अनपेक्ष, कारणों पर न निर्भर जीव तो मानव ही नहीं रह जायेगा।

ठीक इसी तरह से हम स्वतन्त्रता के अंश के बिना और केवल अनिवार्यता के नियम के अधीन मानव की क्रिया की कभी भी कल्पना नहीं कर सकते।

१. दिक् की उन परिस्थितियों के विषय में, जिनमें मानव रहता है, हमारा ज्ञान चाहे कितना ही क्यों न बढ़े, यह ज्ञान कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता, क्योंकि ये परिस्थितियां उसी तरह असंख्य हैं जिस तरह दिक् अनन्त है। और चूंकि मानव पर प्रभाव की सभी परिस्थि-तियां निश्चित नहीं हैं, इसलिये अनिवार्यता का चक्र भी पूर्ण नहीं होता और इसमें स्वतन्त्रता का कुछ अंश आ जाता है।

२. विचाराधीन परिघटना और उसके मूल्यांकन के काल की अवधि को हम चाहे कितना ही लम्बा क्यों न करें, यह अवधि सीमित होगी, जबकि काल तो असीम है, इसलिये इस दृष्टि से भी पूर्ण अनि-वार्यता कभी नहीं हो सकती।

३. किसी भी कृत्य के कारणों की शृंखला हमारी पहुंच के चाहे कितनी भी भीतर क्यों न हो, फिर भी हम पूरी शृंखला को कभी भी नहीं जान पायेंगे, क्योंकि वह अन्तहीन है और इसलिये कभी भी पूर्ण अनिवार्यता की धारणा को नहीं पा सकेंगे।

इसके अलावा अगर हम किसी मामले में न्यूनतम स्वतन्त्रता को शून्य के बराबर मान भी लें, उदाहरण के लिये दम तोड़ते आदमी, भ्रूण या पागल व्यक्ति में स्वतन्त्रता की पूर्ण अनुपस्थिति को स्वीकार कर लें, तो ऐसा करके भी हम मानव के बारे में विचाराधीन धारणा को ही नष्ट कर देंगे, क्योंकि जैसे ही स्वतन्त्रता नहीं रहेगी, मानव भी नहीं रहेगा। इस तरह अंशमात्र स्वतन्त्रता के बिना केवल अनिवार्यता के नियम के अधीन मनुष्य की क्रिया की कल्पना करना उसी तरह असम्भव है जैसे मानव की पूर्ण रूप से स्वतन्त्र क्रिया की।

तो स्वतन्त्रता के बिना, केवल अनिवार्यता के नियम के ही अधीन मानव की क्रिया की कल्पना करने के लिये हमें **अनन्त** संख्या में दिक् परिस्थितियों, काल की **अनन्त** लम्बी अवधि और कारणों की **अनन्त** शृंखला के ज्ञान की ज़रूरत होगी।

पूर्ण रूप से स्वतन्त्र, अनिवार्यता के नियम से मुक्त व्यक्ति की

कल्पना करने के लिये हमें **दिक् काल और कारणों की अधीनता के प्रभाव से मुक्त** एकाकी मनुष्य के रूप में उसकी कल्पना करनी पड़ेगी।

पहले मामले में अगर स्वतन्त्रता के बिना अनिवार्यता सम्भव होती तो हम उसी अनिवार्यता के कारण अनिवार्यता के नियम की परिभाषा, अर्थात्, अन्तर्वस्तु के बिना केवल रूप ही पाते।

दूसरे मामले में, अगर अनिवार्यता के बिना स्वतन्त्रता सम्भव होती तो हम दिक्, काल और कारणों के प्रभाव से मुक्त पूर्ण स्वतन्त्रता पाते, जो इसी बात से कि वह पूर्ण होती और किसी भी चीज़ से परिसीमित न होती, कुछ भी न होती या बिना रूप के अन्तर्वस्तु ही होती।

कुल मिलाकर या मोटे तौर पर हम उन दो आधारों पर पहुंचते जिनसे मनुष्य का सम्पूर्ण विश्वदृष्टिकोण बनता है। ये हैं–जीवन का अबोधगम्य सार और इस सार को निर्धारित करनेवाले नियम।

विवेक कहता है: १. दिक् अपने सभी रूपों में, जो उसे पदार्थ देता है, अनन्त है और किसी अन्य रूप में उसकी कल्पना करना असम्भव है। २. काल एक पल के विराम के बिना अनन्त गति है और उसकी कोई अन्य कल्पंना नहीं की जा सकती। ३. कारणों और परिणामों के सहसम्बन्ध का न आदि है और न अन्त हो सकता है।

चेतना कहती है: १. मैं अकेली हूं और वह सब जो विद्यमान है, केवल मैं ही हूं; अर्थात् मुझमें दिक् समाविष्ट है; २. मैं दौड़ते काल को वर्तमान के उस जड़ क्षण से मापती हूं, केवल जिसमें मैं अपने को जीवित महसूस करती हूं, अर्थात् मैं काल के प्रभाव से मुक्त हूं और ३. मैं कारण से निरपेक्ष हूं, क्योंकि मैं अपने को अपने जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति का कारण मानती हूं।

विवेक अनिवार्यता के नियमों को व्यक्त करता है। चेतना स्वतन्त्रता के सार को व्यक्त करती है।

किसी भी तरह से सीमित न होनेवाली स्वतन्त्रता मानव की चेतना में जीवन का सार है। बिना अन्तर्वस्तु के अनिवार्यता अपने तीन रूपों के साथ मानव का विवेक है।

स्वतन्त्रता वह है, जिसका निरीक्षण किया जाता है। अनिवार्यता वह है, जो निरीक्षण करती है। स्वतन्त्रता अन्तर्वस्तु है। अनिवार्यता रूप है।

संज्ञान के इन दो स्रोतों को अलग करके ही, जिनमें वही सम्बन्ध है, जो रूप का अन्तर्वस्तु से होता है, स्वतन्त्रता और अनिवार्यता के बारे में अलग, परस्पर-विरोधी, अबोधगम्य धारणायें प्राप्त की जा सकती हैं।

केवल उनके योग से ही मनुष्य के जीवन के बारे में स्पष्ट ज्ञान प्राप्त होता है।

रूप और अन्तर्वस्तु की तरह अपने विश्लेषण में एक-दूसरे को निर्धारित करनेवाली इन दो धारणाओं के बिना जीवन की कोई भी कल्पना असम्भव है।

लोगों के जीवन के विषय में हम जो कुछ जानते हैं, वह सब अनिवार्यता के साथ स्वतन्त्रता का, अर्थात् विवेक के नियमों के साथ चेतना का निश्चित सम्बन्ध है।

प्रकृति के बाह्य जगत के बारे में हम जो कुछ जानते हैं, वह सब केवल अनिवार्यता के साथ प्रकृति की शक्तियों का या विवेक के नियमों के साथ जीवन के सार का निश्चित सम्बन्ध है।

प्रकृति की शक्तियां हमारे बाहर हैं और हमें उनका बोध नहीं होता और हम इन शक्तियों को गुरुत्वाकर्षण, जड़त्व, विद्युत, पशु-बल, इत्यादि कहते हैं; पर मानव की जीवन-शक्ति का हमें बोध है और उसे हम स्वतन्त्रता कहते हैं।

पर ठीक उसी तरह से, जैसे गुरुत्वाकर्षण की शक्ति, जो स्वयं में अबोधगम्य है, किन्तु जिसे प्रत्येक मनुष्य महसूस करता है, केवल उस हद तक ही हमारी समझ में आती है, जिस हद तक हम अनिवार्यता के उन नियमों को जानते हैं जिनके वह अधीन है (सभी वस्तुओं के वज़न के प्रथम ज्ञान से लेकर न्यूटन के सिद्धान्त तक), ठीक इसी तरह अपने आपमें अबोधगम्य स्वतन्त्रता की शक्ति भी, जिसको प्रत्येक व्यक्ति महसूस करता है, हमारे लिये उस हद तक ही स्पष्ट है, जिस हद तक हम अनिवार्यता के उन नियमों को जानते हैं जिनके वह अधीन है (इस ज्ञान से लेकर कि प्रत्येक मनुष्य नश्वर है, जटिलतम आर्थिक और ऐतिहासिक नियमों के ज्ञान तक)।

जीवन के सार को विवेक के नियमों के अन्तर्गत लाना ही ज्ञान है।

मानव की स्वतन्त्रता अन्य सभी शक्तियों से इस बात में भिन्न

है कि इस शक्ति का मानव को प्रत्यक्ष रूप से बोध है; पर विवेक के लिये वह किसी अन्य शक्ति से भिन्न नहीं है। गुरुत्वाकर्षण, विद्युत या रसायनिक पदार्थ की शक्ति बस इसीलिये एक-दूसरी से भिन्न है कि विवेक ने इन शक्तियों की भिन्न-भिन्न व्याख्या की है। ठीक इसी प्रकार विवेक के लिये मनुष्य की स्वतन्त्रता की शक्ति प्रकृति की अन्य शक्तियों से केवल विवेक द्वारा की गयी व्याख्या के कारण भिन्न है। अनिवार्यता के बिना स्वतन्त्रता यानी उसे निर्धारित करनेवाले विवेक के नियमों के बिना वह गुरुत्वाकर्षण, या ताप, या वनस्पति की शक्ति से बिल्कुल भी भिन्न नहीं है – विवेक के लिये वह जीवन की क्षणिक, अपरिभाष्य अनुभूति मात्र है।

और जिस प्रकार खगोल पिंडों को गति देनेवाली शक्ति का अपरिभाष्य सार, ताप, विद्युत या रसायनिक पदार्थ की शक्ति या जीवन-शक्ति का अपरिभाष्य सार क्रमशः खगोलशास्त्र, भौतिकशास्त्र, रसायन-शास्त्र, वनस्पतिशास्त्र या जन्तुविज्ञान, इत्यादि की अन्तर्वस्तु है, ठीक उसी प्रकार स्वतन्त्रता की शक्ति का सार इतिहास की अन्तर्वस्तु है। किन्तु ठीक उसी प्रकार, जैसे जीवन के इस अज्ञात सार की अभिव्यक्ति किसी भी विज्ञान की विषय-वस्तु है, पर स्वयं यह सार केवल तत्वमीमांसा का ही विषय हो सकता है, ठीक इसी प्रकार दिक्, काल और कारणों की अधीनता में लोगों की स्वतन्त्रता की शक्ति की अभिव्यक्ति भी इतिहास की विषय-वस्तु है और स्वयं स्वतन्त्रता तत्त्वमीमांसा का विषय है।

प्रयोगवादी विज्ञान में हमें जो कुछ ज्ञात होता है, हम उसे अनिवार्यता का नियम कहते हैं, पर जो हमें अज्ञात है, उसे जीवन-शक्ति कहते हैं। जीवन के सार के विषय में हम जो कुछ जानते हैं, जीवन-शक्ति उसके अज्ञात शेष की अभिव्यक्ति मात्र है।

ठीक इसी प्रकार इतिहास में भी हमें जो ज्ञात है, हम उसे अनिवार्यता का नियम कहते हैं; जो अज्ञात है – उसे स्वतन्त्रता। इतिहास के लिये स्वतन्त्रता मानव जीवन के नियमों के बारे में हमारे ज्ञान के अज्ञात शेष की अभिव्यक्ति मात्र ही है।

११

इतिहास मानव की स्वतन्त्रता की अभिव्यक्तियों पर देश-काल के सम्बन्ध में और किन्हीं कारणों पर उसकी निर्भरता के बारे में विचार करता है, यानी इस स्वतन्त्रता को विवेक के नियमों से निश्चित करता है। इसलिये इतिहासशास्त्र केवल उस हद तक ही विज्ञान है जिस हद तक ये नियम स्वतन्त्रता को निश्चित करते हैं।

इतिहास के लिये लोगों की स्वतन्त्रता को ऐतिहासिक घटनाओं को प्रभावित कर सकनेवाली शक्ति मान लेना, यानी उसे नियमों से मुक्त मान लेना, उसी तरह होगा जैसे खगोलशास्त्र द्वारा खगोलीय पिंडों की गति की स्वतन्त्र शक्ति का मान लिया जाना।

यह मान्यता नियमों के अस्तित्व की, अर्थात् किसी भी ज्ञान की सम्भावना को नष्ट कर देती है। यदि एक भी ऐसा खगोलीय पिंड है जो स्वतन्त्र रूप से चलता है तो कैपलर और न्यूटन के सिद्धान्त नहीं रह जायेंगे और खगोलीय पिंडों की गति के बारे में कोई धारणा ही नहीं बचेगी। यदि मानव का एक भी कृत्य उसकी स्वतन्त्र इच्छा का कृत्य है, तो इतिहास का एक भी नियम नहीं रहेगा और ऐतिहासिक घटनाओं के बारे में कोई धारणा नहीं बचेगी।

इतिहास मानव की इच्छाओं की गति की रेखाओं से सम्बन्धित है, जिन रेखाओं का एक सिरा अज्ञात में छिपा है और जिनके दूसरे सिरे पर दिक् में, काल में और कारणों की अधीनता में लोगों की स्वतन्त्रता की चेतना वर्तमान में गतिमान रहती है।

मानवीय इच्छाओं की गति का यह क्षेत्र हमारे सामने जितना अधिक स्पष्ट होता है, गति के नियम भी उतने ही स्पष्ट होते हैं। इन नियमों को जानना और उनकी व्याख्या करना ही इतिहास का उद्देश्य है।

उस दृष्टिकोण से, जिससे यह शास्त्र अपनी विषय-वस्तु पर अब विचार करता है, उस मार्ग से, जिसपर वह परिघटनाओं के कारणों को लोगों की स्वतन्त्र इच्छा में खोजता चल रहा है, विज्ञान के लिये नियमों को व्यक्त करना असम्भव है, क्योंकि हम लोगों की स्वतन्त्रता को चाहे कितना ही सीमित क्यों न करें, किन्तु जैसे ही हम उसे नियमों से मुक्त शक्ति मान लेते हैं, वैसे ही नियम का अस्तित्व तक असम्भव हो जाता है।

इस स्वतन्त्रता को अधिकतम सीमित करके, यानी उसे अत्यन्त न्यून मानकर ही हम कारणों की पूर्ण अनुपगम्यता के बारे में आश्वस्त हो सकते हैं और तब इतिहास कारणों की खोज के स्थान पर नियमों की खोज को अपना उद्देश्य बनायेगा।

बहुत पहले से ही इन नियमों की खोज शुरू हो चुकी है और चिन्तन की वे नयी विधियां, जिन्हें इतिहास को आत्मसात करना चाहिये, आत्मनाश की उस प्रक्रिया के साथ-साथ अस्तित्व में आ रही हैं, जिसकी ओर परिघटनाओं के कारणों को विभाजित और प्रभाजित करता हुआ पुराना इतिहास बढ़ रहा है।

मानवजाति के सभी विज्ञान इसी मार्ग पर चले हैं। सटीकतम विज्ञान – गणित – अत्यल्प तक पहुंचकर विभाजित-प्रभाजित करने की प्रक्रिया छोड़कर अज्ञात, अत्यल्प संख्याओं के योग की प्रक्रिया शुरू करता है। कारणों की अवधारणा को छोड़कर गणित सभी अज्ञात अत्यल्प तत्त्वों के लिये सामान्य नियम, अर्थात् गुणों या लक्षणों की खोज करता है।

अन्य विज्ञान भी चिन्तन के इसी मार्ग पर चले हैं, हालांकि भिन्न रूप में। जब न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त बनाया, तब यह नहीं कहा कि सूर्य या पृथ्वी में आकर्षित करने का गुण है; उसने कहा कि बड़े से लेकर सूक्ष्मतम पिंड तक प्रत्येक में एक-दूसरे को आकर्षित करने का गुण है, यानी पिंडों की गति के कारण के बारे में प्रश्न को एक तरफ़ रखकर उसने अत्यन्त विशाल से लेकर अत्यल्प पिंडों के लिये सामान्य गुण व्यक्त किया। सारे प्रकृतिविज्ञान भी यही करते हैं: कारण के प्रश्न को एक तरफ़ हटाकर वे नियमों की खोज करते हैं। इतिहास भी इसी मार्ग पर अग्रसर हो रहा है। और अगर लोगों के जीवन की घटनाओं के वर्णन के बजाय जनगण और मानवजाति की गति को इतिहास की विवेचना का विषय बनना है, तो उसे कारणों की धारणा को छोड़कर सभी, समान और एक-दूसरे से अविच्छेद्य रूप से जुड़े हुए स्वतन्त्रता के अत्यल्प तत्त्वों के लिये सामान्य नियमों की खोज करनी होगी।

जब से कोपरनिकस के सिद्धान्त की खोज हुई और उसे सिद्ध किया गया, यही मान लेने से कि सूर्य नहीं, बल्कि पृथ्वी चलती है, पूरे प्राचीन खगोलशास्त्र की धज्जियां उड़ गयीं। इस सिद्धान्त का खंडन करके खगोलीय पिंडों की गति के बारे में पुराने दृष्टिकोण को बनाये रखा जा सकता था, पर उसका खंडन किये बिना प्तोलेमी के संसारों का अध्ययन जारी रखना असम्भव लगता था। किन्तु कोपरनिकस के सिद्धान्त की खोज के बाद भी काफ़ी लम्बी अवधि तक प्तोलेमी के संसारों का अध्ययन जारी रहा।*

जब से पहले मनुष्य ने यह कहा और सिद्ध किया कि जन्म-दर या अपराधों की संख्या गणित के नियमों के अधीन होती है और यह कि कुछ विशेष भौगोलिक और राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियां किसी शासनप्रणाली को निर्धारित करती हैं, यह कि भूमि के साथ आबादी के कुछ निश्चित सम्बन्ध जनगण को गतिमान बनाते हैं, – तब से वास्तव में वे आधार ही नष्ट हो गये, जिनपर इतिहास टिका हुआ था।

नये नियमों का खंडन करके इतिहास के बारे में पुराने दृष्टिकोण को बनाये रखा जा सकता था, पर उनका खंडन किये बिना ऐतिहासिक घटनाओं का लोगों की स्वतन्त्र इच्छा की उपज के रूप में अध्ययन जारी रखना असम्भव प्रतीत होता था। कारण कि अगर किन्हीं भौगोलिक, नृजातीय या आर्थिक परिस्थितियों के फलस्वरूप कोई निश्चित शासन-प्रणाली स्थापित हुई या जनगण की कोई निश्चित गति हुई तो इस हालत में उन लोगों की इच्छा को, जो हमें शासनप्रणाली के संस्थापक या जनगण की गति के प्रेरक लगते हैं, कारण के रूप में नहीं माना जा सकता।

पर इसी बीच पुराने इतिहास का सांख्यिकी, भूगोल, राजनीतिक अर्थशास्त्र, तुलनात्मक भाषाविज्ञान और भूगर्भशास्त्र के उन नियमों

---

* प्तोलेमी क्लाव्दी (लगभग ९०– लगभग १६०) – प्राचीन यूनानी खगोलशास्त्री, जिसने पृथ्वी को धुरी और शेष खगोलीय पिण्डों को उसके गिर्द घूमने का नियम बनाया था। – सं०

के साथ-साथ अध्ययन जारी है जो उसकी धारणाओं के स्पष्ट रूप से परस्पर-विरोधी हैं।

भौतिकवादी दर्शन में पुराने और नये दृष्टिकोण के बीच लम्बा और ज़ोरदार संघर्ष चला। धर्मशास्त्र पुराने दृष्टिकोण का रक्षक था और नये पर प्रकाशना को नष्ट करने का आरोप लगाता था। किन्तु जब सत्य की विजय हुई तो विजयी धर्मशास्त्र नयी भूमि पर भी उसी दृढ़ता से खड़ा हो गया।

इसी प्रकार आजकल इतिहास के पुराने और नये दृष्टिकोण के बीच लम्बा और ज़ोरदार संघर्ष चल रहा है और ठीक उसी तरह से धर्मशास्त्र पुराने दृष्टिकोण का रक्षक है और नये पर प्रकाशना को नष्ट करने का आरोप लगाता है।

दोनों ही मामलों में और दोनों ही पक्षों में संघर्ष उत्तेजना उत्पन्न करता है और सत्य को कुंठित करता है। एक ओर तो सदियों के दौरान निर्मित पूरी इमारत के नाश से उत्पन्न होनेवाला भय और करुणा का भाव सामने आता है और दूसरी ओर – नाश का जोश।

भौतिकवादी दर्शन की प्रकट होती सचाई के विरुद्ध संघर्ष करनेवाले लोगों को लगता था कि उनके द्वारा इस सचाई को मानते ही ईश्वर, संसार की सृष्टि और ईसा मसीह के चमत्कार में विश्वास नष्ट हो जायेगा। कोपरनिकस और न्यूटन के सिद्धान्तों के समर्थकों, उदाहरण के लिये वाल्टेयर को लगता था कि खगोलशास्त्र के नियम धर्म का अन्त कर देते हैं और उसने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्तों का धर्म के विरुद्ध एक अस्त्र के रूप में उपयोग किया।

ठीक इसी तरह से अब ऐसा लगता है कि अनिवार्यता के नियम को मानते ही आत्मा, भलाई और बुराई के बारे में धारणा नष्ट हो जायेगी और इस धारणा पर टिकी सभी राजकीय और धार्मिक संस्थाओं की इमारतें ढह जायेंगी।

ठीक उसी तरह, जैसे वाल्टेयर ने अपने काल में किया, अनिवार्यता के नियम के अपने आप ही बन जानेवाले रक्षक इस नियम का धर्म के विरुद्ध अस्त्र के रूप में उपयोग करते हैं, जबकि – जैसे कि खगोल-शास्त्र में कोपरनिकस का सिद्धांत, ठीक वैसे ही – इतिहास में अनिवार्यता का नियम उस भूमि को नष्ट करना तो दूर, उलटे पुष्ट तक करता

है जिसपर राजकीय और धार्मिक संस्थायें आधारित होती हैं।

जैसे तब खगोलशास्त्र के मामले में, उसी तरह अब इतिहास के मामले में दृष्टिकोण की सारी भिन्नता दृष्टिगोचर परिघटनाओं के मानदंड का काम करनेवाली समग्र इकाई की मान्यता या अमान्यता पर आधारित है। खगोलशास्त्र में यह पृथ्वी की अचलता थी ; इतिहास में यह है – व्यक्ति की स्वाधीनता – उसकी इच्छा की स्वतन्त्रता।

जिस प्रकार खगोलशास्त्र के लिये पृथ्वी की गति को मानने की कठिनाई पृथ्वी की स्थिरता की प्रत्यक्ष अनुभूति और ग्रहों की गति की ऐसी ही अनुभूति से इन्कार करने में निहित थी, उसी प्रकार इतिहास के लिये यह मानना कठिन है कि हर व्यक्ति दिक्, काल और कारणों के अधीन है, क्योंकि ऐसा करने के लिये उसे अपने व्यक्तित्व की स्वाधीनता की प्रत्यक्ष अनुभूति को नकारना होगा। परन्तु, जैसाकि खगोलशास्त्र में नया दृष्टिकोण कहता था: "सच है कि हम पृथ्वी की गति को महसूस नहीं करते, पर उसकी स्थिरता को मानकर हम अनर्गलता पर पहुंचते हैं, जबकि गति को मानकर, जिसे हम महसूस नहीं करते, नियम पाते हैं", – इसी प्रकार इतिहास में भी नया दृष्टिकोण कहता है: "यह सच है कि हम अपनी अधीनता को महसूस नहीं करते, पर अपनी स्वतन्त्रता को मानकर हम अनर्गलता पर पहुंचते हैं, जबकि बाह्य जगत, काल और कारणों पर अपनी निर्भरता को मानकर हम नियम पाते हैं।"

पहले मामले में दिक् में अस्तित्वहीन स्थिरता के बोध से इन्कार करके उस गति को मानना था जिसका हम बोध नहीं करते ; और इस मामले में – ठीक इसी तरह अस्तित्वहीन स्वतन्त्रता से इन्कार करके उस अधीनता को स्वीकार करने की आवश्यकता है जिसे हम महसूस नहीं करते।

पाठकों से

रादुगा प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। हमें आशा है कि आपकी भाषा में प्रकाशित रूसी और सोवियत साहित्य से आपको हमारे देश की संस्कृति और इसके लोगों की जीवन-पद्धति को अधिक अच्छी तरह जानने-समझने में मदद मिलेगी।

हमारा पता है:
रादुगा प्रकाशन,
१७, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।

श्री विक्रम पन्नु जी सैक्टर-14
रोहतक द्वारा इस किताब की
मुल प्राति उपलब्ध करवाई
गई ताकि सत्यनारायण हुड्डा
इसकी पीडीएफ बना कर
मुफ्त में सर्वसुलभ करवा
सकें

वह प्रश्न, जो ... दिन भर प्येर को परेशान करता रहा था, अब उसे सर्वथा स्पष्ट और हल हो चुका-सा प्रतीत हुआ। वह अब इस युद्ध और अगले दिन होनेवाली लड़ाई का पूरा सार और महत्त्व समझ गया था। इस पूरे दिन में उसने जो कुछ देखा था, उसे सैनिकों के चेहरों पर जिन अर्थपूर्ण तथा कठोर भावनाओं की झलक मिली थी, वे अब एक नयी ही रोशनी में उसके सामने आलोकित हो उठीं। उसने देशभक्ति की उस छिपी आग को अनुभव कर लिया था जो उन सभी लोगों के दिलों में थी जिनसे उसकी भेंट हुई थी और जो उसे यह स्पष्ट करती थी कि किस कारण ये सब लोग बड़े इतमीनान से, यहां तक कि ज़िन्दादिली से मरने को तैयार हो रहे थे।

('युद्ध और शान्ति', खण्ड ३, पृ० 307)

"लेट जाओ!" जल्दी से ज़मीन पर लेटता हुआ एड्जुटेंट चिल्लाया। प्रिंस अन्द्रेई दुविधा की स्थिति में खड़ा रहा। विस्फोटक गोला जुती ज़मीन और चरागाह की सीमा पर, नागदौने की झाड़ी के क़रीब उसके तथा ज़मीन पर लेटे एड्जुटेंट के बीच धुआं उगलता हुआ लट्टू की तरह घूम रहा था।

"क्या यह मौत है?" प्रिंस अन्द्रेई ने घूमते हुए काले गोले से निकलते तथा बल खाते धुएं, घास और नागदौने की झाड़ी को सर्वथा नई, ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हुए सोचा। "मैं मर नहीं सकता, मैं मरना नहीं चाहता, मैं जीवन को प्यार करता हूं, इस घास, धरती और हवा को प्यार करता हूं..."

('युद्ध और शान्ति', खण्ड ३, पृ० 370)

रादुगा प्रकाशन · मास्को

"मेरी नजर में तो कोई भी ऐसा लेखक नहीं है जिसने युद्ध के बारे में तोलस्तोय से बेहतर लिखा हो।"

एर्नेस्ट हेमिंगुए

"'युद्ध और शान्ति' युद्ध के सम्बन्ध में विश्व साहित्य की सबसे सशक्त रचना है।"

थामस मन

ISBN 5-05-001494-8
ISBN 5-05-002099-9

"तोलस्तोय – यह तो महान शिक्षा के प्रतीक हैं। अपने कृतित्व के माध्यम से वह हमें यह शिक्षा देते हैं कि सचाई के बल पर ही सौन्दर्य अपने निखरे और सजीव रूप में हमारे सामने आता है... अपने जीवन द्वारा वह निष्कपटता-निश्छलता, ध्येयनिष्ठा, दृढ़ता, शान्त और स्थिर वीरता की घोषणा करते हैं। वह सीख देते हैं कि हमें निश्छल और शक्तिशाली होना चाहिये।

"हां, हमें इसलिये शक्तिशाली होना चाहिये कि हम क्रूर न हों, इसलिये शक्तिशाली होना चाहिये कि न्यायप्रिय हों, कि दयालु हों, कि नर्मदिल हों, यहां तक कि मुस्कराने के लिये भी हमारा शक्तिशाली होना ज़रूरी है। चूंकि वह शक्तिशाली थे, इसीलिये हमेशा सत्यवादी थे! दुर्बलता सचाई का आह्वान नहीं कर सकती।"

अनातोल फ्रांस